उपक्रमणिका

ठाकुर श्री रामकृष्ण— संक्षिप्त चरितामृत

श्री रामकृष्ण का जन्म, पिता क्षुदिराम और माता चन्द्रमणि, पाठशाला, श्री रघुवीर-सेवा, साधुसंग और पुराण-श्रवण, अद्भुत ज्योति-दर्शन, कलकत्ता में आगमन और दक्षिणेश्वर-कालीबाड़ी में साधुसंग, अद्भुत 'ईश्वरीय' रूप-दर्शन, ठाकुर उन्मादवत्, कालीबाड़ी में साधुसंग, भैरवी ब्राह्मणी, तोतापुरी और ठाकुर का वेदान्त-श्रवण, तन्त्रोक्त और पुराणोक्त साधन, ठाकुर की जगन्माता के साथ कथा-वार्त्ता, तीर्थ-दर्शन, ठाकुर के अन्तरंग, ठाकुर और भक्तगण, ठाकुर और ब्राह्मसमाज, हिन्दू, क्रिश्चियन (ईसाई), मुसलमान इत्यादि सर्वधर्म-समन्वय, ठाकुर की स्त्री भक्तगण, भक्त-परिवार।

ठाकुर श्री श्री रामकृष्ण ने हुगली ज़िले के अन्तर्वर्त्ती कामारपुकुर ग्राम में एक सद्ब्राह्मण के घर फाल्गुन की शुक्ला द्वितीया को जन्म ग्रहण किया था। कामारपुकुर ग्राम, जहानाबाद (आरामबाग) से चार कोस पश्चिम में और वर्धमान से 12 / 13 कोस दक्षिण में है।

ठाकुर श्री रामकृष्ण के जन्मदिन के सम्बन्ध में मतभेद हैं—

– अम्बिका आचार्य की जन्मपत्री ठाकुर के असुख के समय बनी थी, तीसरे कार्त्तिक 1286 (बं०) साल, अंग्रेज़ी 1879 को। इसमें जन्मदिन लिखा है— 1756 शक, 10वाँ फाल्गुन, बुधवार, शुक्ला द्वितीया, पूर्व भाद्रपद नक्षत्र। उनकी गणना है— 1756 / 10/9/59/12.

– क्षेत्रनाथ भट्ट की 1300 साल में गणना है— 1754/10/9/0/12. इस मत में 1754 शक, 10वाँ फाल्गुन, बुधवार, शुक्ला द्वितीया, पूर्व भाद्रपद, सब मिलता है। 1239 साल, 20 फरवरी 1833; लग्न में रवि-चन्द्र-बुध का योग, कुम्भ राशि[1]। बृहस्पति-शुक्र का योग होने के कारण 'सम्प्रदाय के प्रभु' होंगे।
– नारायण ज्योतिर्भूषण की नई पत्री (मठ में बनी हुई) है। इसकी गणना के अनुसार 1242 साल, छटा फाल्गुन, बुधवार, 17 फरवरी, 1836, भोर रात 4 बजे, फाल्गुन शुक्ला द्वितीया, त्रिग्रहों का योग, नक्षत्र— सब मिलता है। केवल अम्बिका आचार्य द्वारा लिखित 10वाँ फाल्गुन नहीं बनता। 1757 / 10/5/59 / 28 / 21.

ठाकुर मानव शरीर में 51-52 वर्ष थे।

ठाकुर के पिता श्री क्षुदिराम चट्टोपाध्याय अति निष्ठावान और परम भक्त थे। माँ श्रीमती चन्द्रमणि देवी सरलता और दया की प्रतिमूर्त्ति थीं। पहले उनका देरे नामक ग्राम में वास था, कामारपुकुर से डेढ़ कोस की दूरी पर। उसी ग्रामस्थ ज़मींदार के पक्ष के मुकद्दमे में क्षुदिराम जी ने साक्षी नहीं दी और फिर अपना परिवार लेकर कामारपुकुर में आकर वास करने लग गए।

ठाकुर श्री रामकृष्ण का बचपन का नाम था गदाधर। पाठशाला में साधारण पढ़ना सीखने के पश्चात् घर में रहकर श्री रघुवीर जी के विग्रह की सेवा किया करते। स्वयं फूल चुनकर लाकर नित्य पूजा करते। पाठशाला में 'शुभंकरी धाँधा लागतो' (हिसाब में उन्हें गड़बड़ लगती थी)।

अपने आप गाना गा सकते थे— अतिशय सुमिष्ट कण्ठ से। यात्रा गान (गीति-नाटक) सुनकर प्रायः अधिकांश गाने ही गा लेते थे।

---

[1] श्री श्री रामकृष्ण कथामृत, भाग 4,खण्ड 23, परिच्छेद 9.

बाल्यकाल से ही सदानन्द। मुहल्ले में बालक-वृद्ध-वनिताएँ सब ही उन्हें प्यार करते।

घर के निकट लाहा बाबुओं के बाग में, जहाँ अतिथिशाला है— सर्वदा साधुओं का यातायात रहता था। गदाधर वहाँ पर साधुओं का संग और उनकी सेवा किया करते। कथावाचक जब पुराण-पाठ किया करते, तब ये दत्तचित्त मन से समस्त सुना करते। इसी प्रकार रामायण, महाभारत, श्रीमद्भागवत की कथाएँ, सब याद कर ली थीं।

एक दिन मैदान से हो कर अपने घर के निकटवर्ती ग्राम आनुड़ को जा रहे थे। तब 11 वर्ष की आयु थी। ठाकुर ने अपने मुख से कहा है, हठात् अद्भुत ज्योति-दर्शन करके बेहोश हो गए। लोगों ने कहा, मूर्छा है। ठाकुर को भाव-समाधि हुई थी।

पिता श्री क्षुदिराम जी की मृत्यु के पश्चात् ठाकुर अपने ज्येष्ठ भ्राता के साथ कलकत्ता आ गए। तब उनकी आयु 17/18 वर्ष की थी। कलकत्ता में कुछ दिन नाथेर बागान में, कुछ दिन झामापुकुर में गोबिन्द चैटर्जी के घर में रहकर पूजा करते रहे। इसी सूत्र से ही झामापुकुर वाले मित्रों (the Mitras) के घर कुछ दिन पूजा की थी।

राणी रासमणि ने कलकत्ता से अढ़ाई कोस दूर दक्षिणेश्वर में कालीबाड़ी की 1262 बंगला साल, 18वें ज्येष्ठ, बृहस्पतिवार को स्नानयात्रा के दिन स्थापना की। अंग्रेज़ी 13 मई, 1855 ईसवी[1]। श्री रामकृष्ण के ज्येष्ठ भ्राता पण्डित राम कुमार कालीबाड़ी के प्रथम पुजारी नियुक्त हुए। ठाकुर भी बीच-बीच में कलकत्ता से आया करते

---

[1] यह समस्त राणी रासमणि की कालीबाड़ी के बिक्री-बयनामा-पत्र से लिया है–

Deed of Conveyance—
Date of purchase of the Temple-grounds, 6th September, 1847.
Date of registration, 27th August, 1861;
Price of Dinajpur-zamindary which supports the Temple, Rs. 2,26,000.

थे और कुछ दिन पश्चात् स्वयं भी पूजा-कार्य में नियुक्त हो गए। तब उनकी आयु 21/22 वर्ष की होगी। मध्यम भ्राता रामेश्वर भी कभी-कभी कालीबाड़ी में पूजा किया करते थे। उनके दो पुत्र थे— श्रीयुक्त रामलाल और श्रीयुक्त शिवराम और एक कन्या थी, श्रीमती लक्ष्मी देवी।

कई-एक दिन पूजा करते-करते श्री रामकृष्ण के मन की अवस्था और ही एक प्रकार की हो गई। सर्वदा ही विमना रहते और ठाकुर-प्रतिमा के निकट बैठे रहते।

उनके प्रियजनों ने उसी समय उनका विवाह कर दिया। सोचा, विवाह हो जाने पर सम्भवतः अवस्थान्तर हो जाए। कामारपुकुर से दो कोस दूर जयरामवाटी ग्राम के श्री रामचन्द्र मुखोपाध्याय की कन्या श्री सारदामणि देवी के साथ 1859 में विवाह हो गया। ठाकुर की आयु थी 22/23 वर्ष, और श्री श्री माँ की छह वर्ष।

विवाह के बाद दक्षिणेश्वर-काली-मन्दिर में लौट आने के कुछ दिन पश्चात् उनमें एकदम अवस्थान्तर हुआ। काली-विग्रह-पूजा करते-करते कैसे अद्भुत ईश्वरीय रूप-दर्शन करने लगे! आरती कर रहे हैं, पर आरती का शेष नहीं हो रहा। पूजा करने बैठे हैं, पूजा का शेष नहीं हो रहा, कभी शायद फिर अपने ही सिर पर फूल दे रहे हैं।

पूजा फिर और कर ही नहीं सक रहे हैं— उन्मादी की न्याईं विचरण करने लग जाते। राणी रासमणि के जमाई मथुर उनकी महापुरुष-ज्ञान में सेवा करने लगे और अन्य ब्राह्मण द्वारा माँ काली की पूजा का बन्दोबस्त कर दिया। ठाकुर के भानजे श्रीयुक्त हृदय मुखोपाध्याय के ऊपर इस पूजा का और ठाकुर श्री रामकृष्ण की सेवा का भार दे दिया।

ठाकुर ने न तो फिर पूजा ही की और न फिर गृहस्थी ही की। विवाह तो नाममात्र को हुआ। निशि-दिन माँ! माँ! कभी तो काठ की पुतली की न्याईं रहते, कभी फिर पागलवत् विचरण करते। कभी

बालक की न्याईं रहते, कभी फिर कामिनी-कांचनासक्त विषयियों को देखकर छिपते फिरते। ईश्वरीय वाणी बिना और कुछ अच्छा नहीं लगता था— सर्वदा ही माँ! माँ!

कालीबाड़ी में सदाव्रत था (अब भी है)। साधु-संन्यासी सर्वदा आते रहते थे। तोतापुरी ने ग्यारह महीने रहकर ठाकुर को वेदान्त सुनाया। थोड़ा-सा ही सुनाते-सुनाते तोतापुरी ने देख लिया था ठाकुर की निर्विकल्प समाधि हो जाती है; सम्भवतः 1866 ईसवी।

भैरवी ब्राह्मणी पहले से ही (1859 ई० में) आई हुई थी। उन्होंने ठाकुर को तन्त्रोक्त अनेक साधन करवाए थे और उन्हें श्री गौरांग-ज्ञान में 'श्री चरितामृत' आदि वैष्णव ग्रन्थ सुनाए थे। तोतापुरी से वेदान्त श्रवण करते हुए देखकर ब्राह्मणी उनको सावधान कर दिया करती और कहती— बाबा, वेदान्त सुनो ना, ओते भाव-भक्ति सब कमे जाबे (बेटा, वेदान्त मत सुनो— इससे भाव-भक्ति सब कम हो जाएँगे)।

वैष्णव पण्डित वैष्णवचरण भी सर्वदा आया करते। वे ही ठाकुर को कलुटोला में चैतन्य-सभा में ले गए थे। इसी सभा में ठाकुर श्री रामकृष्ण भावाविष्ट होकर श्री चैतन्य के आसन पर जाकर बैठ गए थे। वैष्णवचरण चैतन्य-सभा के सभापति थे।

वैष्णवचरण ने मथुर से कह दिया था— यह उन्माद सामान्य नहीं है, प्रेमोन्माद है। ये ईश्वर के लिए पागल हैं। ब्राह्मणी और वैष्णवचरण ने ठाकुर की महाभाव की अवस्था देख ली थी। चैतन्य देव की न्याईं कभी अन्तर्दशा (तब ही जड़वत् समाधिस्थ), कभी अर्धबाह्य; कभी फिर बाह्यदशा होती।

ठाकुर माँ-माँ करके क्रन्दन किया करते— सर्वदा माँ के संग में बातें करते, माँ के पास से उपदेश लेते। कहते, 'माँ तेरी बात ही केवल सुनूँगा। मैं शास्त्र को भी नहीं जानता। पण्डित को भी नहीं जानता। तू ही समझाएगी, तभी विश्वास करूँगा।' ठाकुर जानते थे और कहा करते, जो परब्रह्म अखण्ड सच्चिदानन्द हैं, वे ही हैं माँ।

ठाकुर को जगन्माता ने बता दिया था, 'तू और मैं एक। तू भक्ति लेकर रह जीव के मंगल के लिए। भक्तगण सब आएँगे। तुझ को तब केवल विषयियों को देखना नहीं पड़ेगा, अनेक शुद्ध कामनाशून्य भक्त हैं— वे आवेंगे।'

मन्दिर में आरती के समय जब कांसर-घण्टा बजा करता, तब श्री रामकृष्ण कोठी की छत पर जाकर उच्च स्वर में पुकारा करते, अरे ओ भक्तो, तुम लोग कौन-कौन कहाँ पर हो, शीघ्र आओ।'

माता चन्द्रमणि देवी को ठाकुर जगज्जननी का रूपान्तर समझते और उसी भाव में पूजा किया करते। ज्येष्ठ भ्राता रामकुमार की स्वर्ग-प्राप्ति पर माता पुत्र-शोक में कातर हो गई थी। तीन-चार वर्ष के मध्य ही उन्हें कालीबाड़ी बुलाकर अपने निकट रख लिया था और प्रतिदिन दर्शन करते, पदधूलि ग्रहण करते और 'माँ कैसी हो' पूछते।

ठाकुर ने दो बार तीर्थ-गमन किया था। प्रथम बार माँ को साथ लेकर गए। संग में श्रीयुक्त राम चैटर्जी और मथुर के कई एक पुत्र थे। उनकी अवस्थान्तर के 5-6 वर्षों के मध्य ही; तब तभी-तभी काशी की रेल खुली ही थी । तब रात-दिन प्रायः ही समाधिस्थ अथवा भाव में गर्गर मतवाले रहा करते। इस बार श्री वैद्यनाथ-दर्शन के पश्चात् श्री काशीधाम और प्रयाग-दर्शन हुआ था 1863 ईसवी में।

द्वितीय बार तीर्थ-गमन हुआ इसके पाँच वर्ष पश्चात् जनवरी 1868 में मथुर बाबू और उनकी स्त्री जगदम्बा दासी के साथ। भानजे हृदय इस बार साथ में थे। इस यात्रा में श्री काशीधाम, प्रयाग, श्री वृन्दावन के दर्शन किए। काशी में मणिकर्णिका (घाट) पर समाधिस्थ होकर विश्वनाथ के गंभीर चिन्मय रूप-दर्शन किए— मुमूर्षुओं के कान में तारकब्रह्म नाम दे रहे हैं। और मौनव्रतधारी त्रैलँग स्वामी के साथ आलाप किया। मथुरा में ध्रुवघाट पर वसुदेव की गोद में श्री कृष्ण, श्री वृन्दावन में सन्ध्या समय लौटती गोष्ठ (गायों) में श्री कृष्ण धेनु लेकर यमुना पार होकर आ रहे हैं, इत्यादि लीलाएँ

भावचक्षु से दर्शन की थीं। निधुवन में राधा-प्रेम में विभोर गंगा माता के साथ आलाप करके बड़े ही आनन्दित हुए थे।

श्रीयुक्त केशवसेन जब बेल-घर के बागान में भक्तों के संग ईश्वर का ध्यान चिन्तन कर रहे थे, तब ठाकुर श्री रामकृष्ण भानजे हृदय के संग 1875 ईसवी में उन्हें देखने गए, विश्वनाथ उपाध्याय नेपाल के कात्तेन इसी समय आया करते थे। सिंतिर गोपाल (बूढो गोपाल) और महेन्द्र कविराज, कृष्णनगर के किशोरी और महिमाचरण ने इस समय तक ठाकुर के दर्शन कर लिए थे।

ठाकुर के अन्तरंग भक्तगण 1879-80 ईसवी से ठाकुर के पास आने लग गए थे। उन्होंने जब ठाकुर को देखा था, तब ठाकुर की उन्माद-अवस्था प्रायः चली गई थी। तब शान्त-सदानन्द बालक की अवस्था थी। किन्तु प्रायःसर्वदा समाधिस्थ— कभी जड़-समाधि, कभी भाव-समाधि होती। समाधि-भंग होने पर भाव-राज्य में विचरण किया करते। जैसे पाँच वर्ष का लड़का। सर्वदा ही माँ! माँ!

राम और मनमोहन 1879 ईसवी के शेष भाग में मिले। केदार, सुरेन्द्र उसके बाद आए। चुनी, लाटू, नित्यगोपाल और तारक भी पीछे आए। 1881 के शेष भाग और 1882 के प्रारम्भ के बीच नरेन्द्र, राखाल, भवनाथ; बाबूराम, बलराम, निरंजन, मास्टर, योगीन आ गए। 1883-84 ईसवी के मध्य किशोरी, अधर, निताई, छोटे गोपाल, बेलघर के तारक, शरत, शशि; 1884 के मध्य सान्याल, गंगाधर, काली, गिरीश, देवेन्द्र,शारदा, कालीपद, उपेन्द्र, द्विज और हरि; 1885 के मध्य में सुबोध, छोटे नरेन्द्र, पल्टु, पूर्ण, नारायण, तेजचन्द्र, हरिपद आ गए। इसी प्रकार हरमोहन, यज्ञेश्वर, हाजरा, क्षीरोद, कृष्ण नगर के योगीन, मणीन्द्र, भूपति, अक्षय, नवगोपाल, बेलघर के गोविन्द, आशु, गिरीन्द्र, अतुल, दुर्गाचरण, सुरेश, प्राणकृष्ण, नबाई चैतन्य, हरिप्रसन्न, महेन्द्र (मुखर्जी), प्रिय (मुखर्जी), साधु प्रियनाथ (मन्मथ), विनोद, तुलसी, हरीश (मुस्तफी), बसाख, कथक ठाकुर, बाली का शशि (ब्रह्मचारी),नित्यगोपाल (गोस्वामी),

कोन्नगर के विपिन, बिहारी, धीरेन, राखाल (हलदार) क्रमशः आ मिले।

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, शशधर पण्डित, डॉक्टर राजेन्द्र, डॉक्टर सरकार, बंकिम (चैटर्जी), अमेरिका के कुक साहब, भक्त विलियम्स, मिसिर साहब, माईकल मधुसूदन, कृष्णदास (पाल), पण्डित दीनबन्धु, पण्डित श्यामापद, रामनारायण डॉक्टर, दुर्गाचरण डॉक्टर, राधिका गोस्वामी, शिशिर (घोष), नवीन (मुन्शी), नीलकण्ठ— इन्होंने भी दर्शन किए थे। ठाकुर के संग त्रैलंग स्वामी का श्री काशीधाम में और गंगा माता का श्री वृन्दावन में मिलाप हुआ था। गंगा माता ठाकुर को श्रीमती राधा-ज्ञान में वृन्दावन से जाने देना नहीं चाहती थीं।

अन्तरंग भक्तों के आने से पहले कृष्णकिशोर, मधुर, शम्भुमल्लिक, नारायण शास्त्री, इन्दास के गौरी पण्डित, चन्द्र, अचलानन्द सर्वदा ठाकुर के दर्शन किया करते। वर्धमान के राजा के सभा-पण्डित पद्मलोचन और आर्यसमाज के दयानन्द ने भी ठाकुर के दर्शन किए थे। ठाकुर की जन्म भूमि कामारपुकुर एवं सिओड, श्याम बाज़ार इत्यादि स्थानों के अनेकों ही भक्तों ने उनको देखा था।

ब्राह्मसमाज के अनेकों ठाकुर के पास सर्वदा जाते रहते थे। केशव, विजय, काली (बसु), प्रताप, शिवनाथ, अमृत, त्रैलोक्य, कृष्णबिहारी, मणिलाल, उमेश, हीरानन्द, भवानी, नन्दलाल और अन्यान्य अनेक ब्राह्म भक्त सर्वदा आते रहते। ठाकुर भी ब्राह्मों को देखने जाया करते। मथुर की जीवितावस्था में ठाकुर उनके साथ देवेन्द्रनाथ ठाकुर के मकान पर और उपासनाकाल में आदि ब्राह्मसमाज देखने गए थे। पीछे केशव के ब्राह्म मन्दिर और साधारण समाज में उपासनाकाल में देखने के लिए गए थे। केशव के घर सर्वदा जाया करते और ब्राह्म भक्तों के संग कितना आनन्द किया करते! केशव भी सर्वदा कभी-कभी भक्तों के संग, अथवा कभी अकेले आया करते।

कालना में भगवानदास बाबा जी के संग मिलन हुआ था। ठाकुर की समाधि-अवस्था देखकर बाबा जी ने कहा था— आप महापुरुष हैं; चैतन्य देव के आसन पर बैठने के आप ही उपयुक्त हैं।

ठाकुर ने सर्वधर्म समन्वयार्थ वैष्णव, शाक्त, शैव इत्यादि भाव-साधन किया था और दूसरी ओर अल्लाह्-मन्त्र-जप और क्राईस्ट (ईसा मसीह) का चिन्तन भी किया था। जिस कमरे में ठाकुर रहते थे, वहाँ पर देवताओं की छवियाँ और बुद्ध देव की मूर्त्ति थी। यीशु क्राईस्ट जलमग्न पीटर का उद्धार कर रहे हैं— यह छवि भी थी। अब भी उस कमरे में जाने पर वे दिखाई देती हैं। आज उसी कमरे में अंग्रेज़ और अमेरिकन भक्त आकर ठाकुर का ध्यान-चिन्तन करते हुए दिखाई देते हैं।

एक दिन व्याकुल होकर माँ से कहा, 'माँ तेरे क्रिश्चियन भक्त तुझे किस प्रकार पुकारते हैं, देखूँगा। मुझे ले चलो।' कुछ दिन पश्चात् कलकत्ता जाकर गिर्जे के द्वार पर खड़े होकर उपासना देखी थी। ठाकुर ने लौट आकर भक्तों से कहा, 'मैं खजांची के भय से भीतर जाकर बैठा नहीं— सोचा, क्या पता फिर यदि मुझे काली-मन्दिर में जाने न दे।'

ठाकुर की अनेक स्त्री-भक्त हैं। गोपाल की माँ को ठाकुर ने माँ कहा था और 'गोपाल की माँ' कहकर पुकारते थे। सब स्त्रियों को ही वे साक्षात् भगवती देखा करते और 'माँ'-ज्ञान में पूजा किया करते। जब तक स्त्री में केवल साक्षात् माँ-बोध नहीं होता, जब तक ईश्वर में शुद्धा भक्ति नहीं होती, तब तक स्त्री के सम्बन्ध में पुरुषों को सावधान रहने के लिए कहा करते। यहाँ तक कि परम भक्तिमती होने पर भी उनके साथ सम्पर्क में आने के लिए मना किया करते। माँ से स्वयं कहा था, 'माँ, मेरे भीतर यदि काम-भाव हुआ, तो फिर मैं माँ अपने गले पर बस छुरी ही मारूँगा।'

ठाकुर के भक्त असंख्य हैं। उनमें कोई-कोई तो प्रकाशित हैं, और कोई-कोई गुप्त हैं। सब का नाम लेना असम्भव है। 'श्री श्री रामकृष्ण

कथामृत' में अनेकों के ही नाम मिल जाएँगे। बाल्यकाल के अनेकों हैं— रामकृष्ण, पल्टु, तुलसी, शान्ति, शशि, विपिन, हीरालाल, नगेन्द्र मित्र, उपेन्द्र, सुरेन्द्र, सुरेन इत्यादि; और छोटी-छोटी अनेक लड़कियों ने ठाकुर को देखा था। इस समय वे भी ठाकुर की सेवक हैं।

लीला-संवरण के पश्चात् उनके कितने ही भक्त हुए हैं और हो रहे हैं। मद्रास, श्रीलंका, उत्तरप्रदेश, राजपूताना, कुमाऊँ, नेपाल, बम्बई, पंजाब, जापान में और फिर अमेरिका, इंग्लैण्ड— सर्वस्थानों पर भक्त-परिवार फैल रहे हैं और उत्तरोत्तर बढ़ रहे हैं।

- जन्माष्टमी, 1310 (बं.) साल; 1903 ईसवी।

प्रथम खण्ड

दक्षिणेश्वर में ठाकुर श्री रामकृष्ण

प्रथम परिच्छेद

कालीबाड़ी और उद्यान

[श्री रामकृष्ण दक्षिणेश्वर में कालीबाड़ी के मध्य में— चाँदनी और द्वादश शिवमन्दिर— पक्का आँगन और विष्णुमन्दिर— श्री श्री भवतारिणी माँ काली— नाटमन्दिर— भण्डार, भोग-घर, अतिथिशाला और बलि का स्थान— दफ्तरखाना— श्री रामकृष्ण का कमरा— नहबत, बकुलतला और पञ्चवटी— झाउतला, बेलतला और कोठी— बासन माँजने का घाट, गाजीतला, सदर फाटक और खिड़की फाटक— हंसपुकुर, अस्तबल, गोशाला और पुष्पोद्यान— श्री रामकृष्ण के कमरे का बरामदा— 'आनन्द निकेतन'।]

आज रविवार। भक्तों को अवसर है। जभी वे लोग दल के दल श्री श्री परमहंसदेव के दर्शन करने के लिए दक्षिणेश्वर के कालीमन्दिर में आ रहे हैं। सब के लिए ही द्वार खुला है। जो जन आते हैं, ठाकुर उन्हींके साथ बातें करते हैं। साधु, परमहंस, हिन्दू, क्रिश्चियन, ब्रह्म-ज्ञानी, शाक्त, वैष्णव, पुरुष, स्त्रियाँ, सब ही आते हैं। धन्य राणी रासमणि! तुम्हारे ही सुकृतिबल से ऐसा सुन्दर देवालय प्रतिष्ठित हुआ है; और फिर ऐसी सचल प्रतिमा है! ऐसे महापुरुष के यहाँ आकर लोग दर्शन और पूजा कर पाते हैं।

चाँदनी और द्वादश शिव मन्दिर

कालीबाड़ी कलकत्ता से उत्तर में प्रायः अढ़ाई कोस होगी। यह ठीक गंगा के ऊपर है। नौका से उतरकर सुविस्तीर्ण सोपानावली द्वारा चढ़कर पूर्वास्य होकर कालीबाड़ी में प्रवेश किया जाता है। इसी घाट पर परमहंसदेव स्नान किया करते हैं। सोपान के पश्चात् ही है चाँदनी। वहाँ पर मन्दिर के चौकीदारगण रहते हैं। उनकी खटिया, आम की लकड़ी का सन्दूक, दो-एक लोटे आदि, उसी चाँदनी में कहीं-कहीं पड़े हुए हैं। मोहल्ले के बाबू लोग जब गंगास्नान करने आते हैं, कोई-कोई इसी चाँदनी में बैठकर गप्प-शप्प लड़ाते हुए तेल मालिश करते हैं। जो साधु, फ़कीर, वैष्णव, वैष्णवी अतिथिशाला का प्रसाद प्राप्त करने के लिए आते हैं, वे लोग भी कोई-कोई भोग के घण्टे बजने तक इसी चाँदनी में प्रतीक्षा करते हैं। कभी-कभी गैरिकवस्त्रधारिणी भैरवी त्रिशूल हाथ में लिए इसी स्थान पर बैठी हुई दिखाई दे जाती हैं। वे भी समय होने पर अतिथिशाला में जाएँगी। चाँदनी द्वादश शिवमन्दिरों के ठीक मध्यवर्ती है। उनमें से छह मन्दिर तो चाँदनी के ठीक उत्तर में हैं और छह चाँदनी के ठीक दक्षिण में हैं। नौका के यात्रीगण इन द्वादश मन्दिरों को दूर से ही देखकर कहने लगते हैं, 'वही है रासमणि की ठाकुरबाड़ी'।

पक्का आँगन और विष्णुघर

चाँदनी और द्वादश मन्दिर के पूर्व में ईंटों से बना हुआ पक्का आँगन है। आँगन के बीच में आमने-सामने दो मन्दिर हैं। उत्तर दिशा में श्री राधाकान्त का मन्दिर है। उसके ठीक दक्षिण में माँ काली का मन्दिर है। श्री राधाकान्त के मन्दिर में श्री श्री राधाकृष्ण-विग्रह है, पश्चिमास्य। सीढ़ियों द्वारा मन्दिर में जाया जाता है। मन्दिर-तल संगमरमर का बना हुआ है। मन्दिर के सम्मुखस्थ दालान में झाड़ टँगा हुआ है। अब व्यवहार में नहीं आता, तभी लाल वस्त्र की आवरणी द्वारा रक्षित है। एक द्वारपाल पहरा देता है। दोपहर के समय पश्चिम

की धूप से ठाकुर को कष्ट न हो, जभी कैन्वस के परदे का बन्दोबस्त है। दालान के किनारे के पंक्तियों की पंक्तियाँ खम्बों की चन्द्राकार मेहराबों के छेद इस पर्दे के द्वारा आवृत्त होते हैं। दालान के दक्षिण-पूर्व कोने में गंगाजल का एक मटका है। मन्दिर के चौकठ के निकट एक पात्र में श्रीचरणामृत है। भक्त आकर ठाकुर-प्रणाम करके वही चरणामृत लेंगे। मन्दिर के मध्य में सिंहासनारूढ़ श्री श्री राधाकृष्ण की मूर्त्तियाँ हैं। श्री रामकृष्ण इसी मन्दिर में पुजारी के कार्य पर प्रथम व्रती हुए थे— 1857-58 ईसवी में।

श्री श्री भवतारिणी माँ काली

दक्षिण के मन्दिर में सुन्दर पाषाणमयी काली-प्रतिमा है। माँ का नाम भवतारिणी। श्वेत-कृष्ण संगमरमर से आवृत्त मन्दिर-तल और सोपानयुक्त उच्चवेदी चाँदीमय है। वेदी के ऊपर चाँदी का सहस्रदल पद्म है। इसके ऊपर शिव, शव होकर दक्षिण की ओर मस्तक, उत्तर की ओर पैर करके पड़े हुए हैं। शिव की मूर्त्ति श्वेत पत्थर की बनी है। उनके हृदय के ऊपर बनारसी साड़ी पहने नाना आभूषणों से अलंकृत, इसी सुन्दर त्रिनयनी श्यामाकाली की पत्थर की मूर्त्ति है। श्रीपादपद्मों में नूपुर, गुजरी, पंचेम, पायजेब, चुटकी और जवा बिल्वपत्र हैं। पायजेब पश्चिम (पंजाब, उत्तर-प्रदेश) की स्त्रियाँ पहनती हैं। परमहंसदेव की बड़ी अभिलाषा थी, तभी मथुर बाबू ने पहनाई थी। माँ के हाथों में सोने की बाउटि (चौड़ी चूड़ी), ताबीज़ (अनन्त) इत्यादि हैं। अग्रहाथ में हैं बाला (कड़ा), फूल वाली चूड़ी पौंची, चपटी चूड़ी। मध्य हाथ में ढ़ाई बल वाला कड़ा, अनन्त और बाजु है। अनन्त का झुमका दोलायमान है। गले में (चिक) गुलुबन्द, मुक्ता की सतलड़ी माला, सोने की बत्तीस लड़ी माला, ताराहार और सुवर्ण निर्मित मुण्डमाला, माथे पर मुकुट, कानों में कानबाले, कानपाश (टोपस), फूल-झुमके, चौद्दानी (सोने का गोल कान) और मछली। नासिका में नथ, नोलक पहने हैं। त्रिनयनी के बाएँ दोनों हाथों में नृमुण्ड और असि; दाएँ हाथ दोनों वराभय। कटि में नरकरमाला,

निमफल (तोड़ा) और कमरपट्टा हैं। मन्दिर के मध्य में उत्तर-पूर्व कोण में विचित्र शय्या है। माँ इस पर विश्राम करती हैं। दीवार की एक तरफ़ चँवर झूल रहा है। भगवान श्री रामकृष्ण ने इस चँवर को लेकर कितनी ही बार माँ पर डुलाया है। वेदी के ऊपर पद्मासन पर चाँदी के गिलास में जल है। नीचे धरती पर पंक्तियों में घटियाँ हैं, उनमें श्यामा के पीने के लिए जल है। पद्मासन के ऊपर पश्चिम में अष्टधातु निर्मित सिंह है और पूर्व में गोधिका (गोह) और त्रिशूल हैं। वेदी के अग्निकोण में शिवा (शृगाली), दक्षिण में काले पत्थर का वृष और ईशान कोण में हंस हैं। वेदी पर चढ़ने वाली सीढ़ी पर चाँदी के छोटे सिंहासन के ऊपर नारायणशिला, एक तरफ़ परमहंसदेव की संन्यासी द्वारा प्राप्त अष्टधातुनिर्मित रामलाला नामधारी श्री रामचन्द्र की विग्रह मूर्त्ति और बाणेश्वर शिव हैं। और भी अन्यान्य देवता हैं। देवी की प्रतिमा दक्षिणास्या है। इनके (भवतारिणी के) ठीक सामने अर्थात् वेदी के ठीक दक्षिण में घट स्थापित हुआ है। पूजा के बाद सिन्दूर-रंजित, नानाकुसुमविभूषित, पुष्पमालाशोभित मंगलघट है। दीवार की एक बगल में जलपूर्ण ताम्बे की झारी है, माँ मुख धोएँगी। ऊपर मन्दिर में चँदोवा है, मूर्त्ति के पीछे की ओर सुन्दर बनारसी वस्त्र का टुकड़ा लटक रहा है। वेदी के चारों कोनों में चाँदी के स्तम्भ हैं। उनके ऊपर बहुमूल्य चन्द्रातप है। उससे प्रतिमा की शोभा बढ़ रही है। मन्दिर मध्यम आकार का है। दालान के कई एक दरवाज़े सुदृढ़ कपाटों द्वारा सुरक्षित हैं। एक कपाट के पास चौकीदार बैठा हुआ है। मन्दिर के द्वार पर पंचपात्र में श्रीचरणामृत रखा हुआ है। मन्दिर-शीर्ष नवरत्न मण्डित है। नीचे की श्रेणी में चार चूड़े हैं, मध्य में भी चार ही हैं और सर्वोपरि एक चूड़ा है, अब टूटा हुआ है। इस मन्दिर में और श्री राधाकान्त के मन्दिर में परमहंसदेव ने पूजा की थी।

नाटमन्दिर

कालीमन्दिर के सम्मुख अर्थात् दक्षिण दिशा में सुन्दर, सुविस्तृत नाटमन्दिर है। नाटमन्दिर के ऊपर श्री श्री महादेव और नन्दी और भृंगी हैं। माँ के मन्दिर में प्रवेश करने से पहले श्री रामकृष्ण श्री महादेव को हाथ जोड़ कर प्रणाम किया करते मानो उनकी आज्ञा लेकर मन्दिर में प्रवेश करते हैं। नाटमन्दिर के उत्तर-दक्षिण में स्थापित दो पंक्तियों में बहुत ऊँचे-ऊँचे स्तम्भ हैं। उनके ऊपर छत है। स्तम्भों की श्रेणी के पूर्व की ओर और पश्चिम की ओर नाटमन्दिर के दो पक्ष हैं। पूजा के समय महोत्सवकाल में, विशेषतः काली-पूजा के दिन नाटमन्दिर में यात्रा (गीति नाटिका) होती है। इसी नाटमन्दिर में रासमणि के जामाता मथुर बाबू ने श्री रामकृष्ण के उपदेशों से ही धान्य-मेरु किया था। इसी नाटमन्दिर में ही सब के सामने ठाकुर श्री रामकृष्ण ने भैरवी-पूजा की थी।

भण्डार, भोगघर, अतिथिशाला, बलिस्थान

वर्गाकार आँगन के पश्चिम की ओर द्वादश शिवमन्दिर और तीनों ओर एक मंज़िला कमरे हैं। पूर्व की ओर के कमरों के मध्य भण्डार, लुचि-घर, विष्णुभोग-घर, नैवेद्य का कमरा, माँ का भोग-घर, देवी-देवताओं की रन्धनशाला और अतिथिशाला हैं। अतिथि, साधु यदि अतिथिशाला में नहीं खाते हैं तो फिर उन्हें दफ्तर में खजांची के पास जाना पड़ता है। खजांची की भण्डारी को आज्ञा मिलने पर साधु भण्डार से सीधा ले लेते हैं। नाटमन्दिर के दक्षिण में बलि का स्थान है।

विष्णुघर का भोजन निरामिष होता है। कालीघर के भोग की रन्धनशाला भिन्न है। रन्धनशाला के सम्मुख दासियाँ बड़ी-बड़ी बोटियों (दरान्तों) से मछली काटती हैं। अमावस्या को एक छाग (बकरा) बलि होता है। भोग दूसरे प्रहर के मध्य हो जाता है। इसी बीच अतिथिशाला से एक-एक शालपत्तल लेकर पंक्तियों में कंगाल,

साधु, अतिथि बैठ जाते हैं। ब्राह्मणों को पृथक् स्थान दिया जाता है। कर्मचारी-ब्राह्मणों के पृथक् आसन होते हैं। खजांची का प्रसाद उसके घर में पहुँचा दिया जाता है। जान बाज़ार के बाबुओं के आने से वे कोठी में रहते हैं। वहीं पर प्रसाद भेजा जाता है।

दफ्तर

आँगन के दक्षिण की पंक्ति के कमरों में दफ़्तर और कर्मचारियों के ठहरने का स्थान है। यहाँ पर खज़ांची-क्लर्क सर्वदा रहते हैं, और भण्डारी, दास-दासी, पुजारी, रन्धनकार (रसोइये), ब्राह्मण, ठाकुर इत्यादि और द्वारपाल का सर्वदा यातायात रहता है। किसी-किसी कमरे में ताला लगा हुआ है। उनमें मन्दिर का सामान— दरियाँ, शामियाने इत्यादि रखे रहते हैं। इसी पंक्ति के कई एक कमरे परमहंसदेव के जन्मोत्सव के उपलक्ष्य में भण्डार-घर बनाए जाते हैं। उसके दक्षिण दिशा की भूमि पर महामहोत्सव का भोजन बनता है।

आँगन के उत्तर में एक तल के कमरों की श्रेणी है। उसके ठीक बीच में ड्योढ़ी है। चाँदनी की भाँति यहाँ पर भी द्वारपालगण पहरा देते हैं। दोनों स्थानों पर प्रवेश करने से पहले बाहर जूता उतारना होता है।

ठाकुर श्री रामकृष्ण का कमरा

आँगन के ठीक उत्तर-पश्चिम कोण में अर्थात् द्वादश शिवमन्दिरों के ठीक उत्तर में श्री श्री रामकृष्ण परमहंसदेव का कमरा है। कमरे के ठीक पश्चिम की ओर एक अर्धमण्डलाकार बरामदा है। उसी बरामदे में श्री रामकृष्ण पश्चिमास्य होकर गंगा-दर्शन किया करते। इसी बरामदे के पश्चात् ही पथ है; उसके पश्चिम में पुष्पोद्यान, फिर पोस्ता। उसके बाद ही पूतसलिला सर्वतीर्थमयी कलकलनादिनी गंगा जी हैं।

नहबत, बकुलतला और पञ्चवटी

परमहंसदेव के घर के ठीक उत्तर में एक चतुष्कोण बरामदा है। उसके उत्तर में है उद्यानपथ। उसके उत्तर में फिर और पुष्पोद्यान है। उसके परे ही नहबतखाना है। नीचे वाले कमरे में उनकी स्वर्गीया परमाराध्या वृद्धा माता जी और फिर श्री श्री माँ रहती थीं। नहबत के बाद ही बकुलतला और बकुलतला का घाट है। यहाँ पर मोहल्ले की स्त्रियाँ स्नान करती हैं। इसी घाट पर परमहंसदेव की वृद्धा माता जी को श्री गंगा-लाभ हुआ था, 1877 ईसवी में।

बकुलतला के और भी कुछ उत्तर में पञ्चवटी है। इसी पञ्चवटी के चरणतले बैठकर परमहंसदेव ने अनेक साधनाएँ की थीं और अब भक्तों के संग में सर्वदा टहलते रहते। गम्भीर रात को यहाँ पर कभी-कभी उठकर आ जाते। पञ्चवटी के वृक्ष समूह— वट, पीपल (अश्वत्थ), नीम, आमला और बिल्व— ठाकुर ने अपने तत्त्वावधान में रोपण कराए थे। श्री वृन्दावन से लौटकर आकर यहाँ पर वहाँ की रज बिखेर दी थी। इसी पञ्चवटी के ठीक पूर्व की तरफ़ एक कुटीर बनवाकर भगवान श्री रामकृष्ण ने उसमें आकर अनेक ईश्वर-चिन्तन, अनेक तपस्या की थी। यह कुटीर अब पक्की बन गई है।

पञ्चवटी के मध्य में एक वट-वृक्ष है। उसके संग में एक अश्वत्थ वृक्ष (पीपल का पेड़) है। ये दोनों मिलकर मानो एक हो गए हैं। वह वृद्ध वृक्ष अधिक प्राचीन होने और बहुविशिष्ट कोटरों के कारण नाना पक्षियों तथा अन्यान्य जीवों का भी आवास-स्थान हो गया है। इसके नीचे ईंटों की बनी हुई सीढ़ियों वाली मण्डलाकार वेदी सुशोभित है। इसी वेदी के उत्तर-पश्चिम अंश पर बैठकर भगवान श्री रामकृष्ण ने अनेक साधना की थी और बछड़े के लिए जैसे गाय व्याकुल हो जाती है, उसी प्रकार व्याकुल होकर वे भगवान को कितना पुकारा करते! आज उसी पवित्र आसन के ऊपर वाले वट-वृक्ष के सखीवृक्ष पीपल की एक डाल टूट गई है। वह डाल पूरी तरह से टूटी नहीं है। मूल वृक्ष के

संग में आधी सी लगी हुई है। बोध होता है, उस आसन पर बैठने वाले किसी भी महापुरुष का जन्म अभी नहीं हुआ है।

झाउतला, बेलतला और कोठी

पञ्चवटी के और भी उत्तर में थोड़ा-सा जाकर लोहे के तार की रेलबाड़ है। उसी रेलबाड़ के उस पार झाउतला है। एक के बाद एक चार झाउवृक्ष हैं। झाउतला से पूर्व की ओर थोड़ा जाने पर बेलतला है। यहाँ पर भी परमहंसदेव ने अनेक कठिन साधनाएँ की थीं। झाउतला और बेलतला के बाद ही उन्नत प्राचीर है। उसके ही उत्तर में गवर्नमेंट का बारूदखाना है।

आँगन की ड्योढ़ी से उत्तर की ओर को बाहर आने पर सामने दो मंज़िली कोठी दिखाई देती है। मन्दिर में आने पर राणी रासमणि, उनका जमाई मथुर बाबू आदि उसी कोठी में रहते थे। उनके जीवनकाल में परमहंसदेव इसी कोठी वाले घर के नीचे के पश्चिम के कमरे में रहते थे। इस कमरे से बकुलतला घाट पर जाया जाता है और सुन्दर गंगा-दर्शन होता है।

बासन माँजने का घाट, गाजीतला और दो फाटक

आँगन की ड्योढ़ी और कोठी के मध्यवर्त्ती जो पथ है, उसी पथ द्वारा पूर्व की ओर जाते-जाते दाईं ओर एक विशेष पक्के बने घाट वाली सुन्दर पुष्करिणी है। माँ काली के मन्दिर के ठीक पूर्व की ओर इसी तालाब का एक बर्तन माँजने वाला घाट है तथा उल्लिखित पथ से अनतिदूर और एक घाट है। उसी पथ के किनारे उसी घाट के निकट एक वृक्ष है, उसको गाजीतला कहते हैं। उसी पथ से और भी थोड़ा पूर्वमुखी जाने पर फिर और एक ड्योढ़ी है— वह बाग से बाहर आने का सदर फाटक है। इसी फाटक द्वारा आलम बाज़ार अथवा कलकत्ता के लोग यातायात करते हैं। दक्षिणेश्वर के लोग खिड़की फाटक द्वारा आते हैं। कलकत्ता के लोग प्रायः ही इसी सदर फाटक द्वारा

कालीबाड़ी में प्रवेश करते हैं। वहाँ पर भी द्वारपाल पहरा देता है। कलकत्ता से परमहंसदेव जब आधी रात को कालीबाड़ी में लौटकर आया करते थे, तब इसी ड्योढ़ी का द्वारपाल ताला खोल दिया करता था। परमहंसदेव द्वारपाल को बुलाकर घर में ले जाते और पूरी, मिठाई आदि भगवान का प्रसाद उस को देते थे।

हंसपुकुर, अस्तबल, गोशाला और पुष्पोद्यान

पञ्चवटी के पूर्व की ओर एक और सरोवर है— नाम हंसपुकुर है। उसी सरोवर के उत्तर-पूर्व कोण में अस्तबल और गोशाला है। गोशाला के पूर्व की ओर खिड़की फाटक है। इसी फाटक द्वारा दक्षिणेश्वर के ग्राम में जाया जाता है। जिन-जिन पुजारियों और अन्य कर्मचारियों ने अपने-अपने परिवार दक्षिणेश्वर में लाकर बसाए हैं, वे लोग अथवा उनके लड़के-लड़कियाँ उसी पथ द्वारा यातायात करते हैं।

उद्यान के दक्षिण प्रान्त से होकर उत्तर में बकुलतला और पञ्चवटी तक गंगा के किनारे-किनारे पथ गया है। उस पथ के दोनों ओर पुष्प-वृक्ष हैं। और फिर कोठी के दक्षिण की ओर से पूर्व-पश्चिम में जो पथ गया है, उसके भी दोनों ओर पुष्प-वृक्ष हैं। गाजीतला से लेकर गोशाला तक कोठी और हंसपुकुर के पूर्व की ओर जो भूमि-खण्ड है, उसके मध्य भी नानाजातीय पुष्प तथा फलों के वृक्ष हैं और एक तालाब है।

अति भोरे पूर्व दिशा के रक्तिमवर्ण होते-न-होते जब मंगल आरती का सुमधुर शब्द होता रहता है और शहनाई पर प्रभाती राग-रागिणी बजती रहती है, तब से माँ काली के बाग में पुष्पचयन आरम्भ हो जाता है। गंगातीर पर पञ्चवटी के सम्मुख बिल्ववृक्ष और सौरभपूर्ण गुलची फूल के वृक्ष हैं। मल्लिका, माधवी और गुलची फूलों को श्री रामकृष्ण बड़ा पसन्द करते थे। माधवी लता को उन्होंने श्री वृन्दावन धाम से लाकर लगा दिया था। हंसपुकुर और कोठी की पूर्व दिशा में जो भूमि-खण्ड है, उसमें पुकुर (तालाब) के किनारे

चम्पक-वृक्ष हैं। कुछ दूर पर झुमकाजवा, गुलाब और काञ्चन पुष्प (कचनार) हैं। बाड़ के ऊपर अपराजिता, निकट ही जूही, कहीं पर शेफालिका (हरसिंगार) हैं। द्वादश मन्दिर के पश्चिम की दीवार के साथ-साथ लगातार श्वेतकरवी, रक्तकरवी, गुलाब, जूही, मोतिया हैं। अथवा कहीं-कहीं हैं धुस्तुर पुष्प (धतूरे के फूल)— महादेव की पूजा होती है। बीच-बीच में तुलसी ऊँचे ईंटों से बने मंचों में उगाई गई हैं। नहबत के दक्षिण की ओर बेल (मोतिया), जूही, गन्धराज और गुलाब हैं। पक्के घाट से अनतिदूर है पद्मकरवी और कोकिलाक्ष। परमहंसदेव के कमरे के निकट दो-एक कृष्ण चूड़ा के वृक्ष और आसपास मोतिया, जूही, गंधराज, गुलाब, मल्लिका, जवा, श्वेतकरवी, रक्तकरवी, पञ्चमुखी जवा और चीन जातीय जवा हैं।

श्री रामकृष्ण भी एक समय पुष्पचयन किया करते। एक दिन पंचवटी के सम्मुखस्थ एक बिल्ववृक्ष से बिल्वपत्र चयन कर रहे थे। बिल्वपत्र तोड़ते समय वृक्ष की तनिक सी छाल उखड़ आई थी। तब उन्हें ऐसी अनुभूति हुई कि जो सर्वभूतों में हैं, उनको न जाने कितना कष्ट हुआ है। इस प्रकार फिर और बिल्वपत्र नहीं तोड़ सके। और एक दिन पुष्प-चयन करने के लिए विचरण कर रहे थे। उसी समय किसी ने झट से दप् करके दिखा दिया कि कुसुमित वृक्षसमूह इसी विराट शिवमूर्त्ति के ऊपर मानो फूलों का एक-एक स्तबक (तोड़ा) शोभा पा रहा है; मानो उनकी ही रात-दिन पूजा हो रही है! उसी दिन से फिर और फूल तोड़ना नहीं हुआ।

ठाकुर श्री रामकृष्ण के कक्ष का बरामदा

परमहंसदेव के कमरे की पूर्वदिशा में लगातार बरामदा है। बरामदे का एक भाग आँगन की ओर अर्थात् दक्षिणमुखी है। इसी बरामदे में परमहंसदेव प्रायः भक्तों के संग बैठा करते और ईश्वरीय बातें करते तथा संकीर्तन किया करते। इसी पूर्व वाले बरामदे का दूसरा आधा भाग उत्तरमुखी है। इस बरामदे में भक्तगण उनके पास

आकर उनका जन्मोत्सव मनाया करते; उनके संग बैठकर संकीर्तन किया करते; और वे उनके साथ एक संग बैठकर कितनी ही बार प्रसाद ग्रहण किया करते। इसी बरामदे में श्रीयुक्त केशवचन्द्र सेन शिष्य की भाँति आकर उनके साथ कितना आलाप किया करते, आमोद-प्रमोद करते-करते मुरमुरा, नारियल, पूरी, मिठाई आदि एक संग बैठकर खाते! इसी बरामदे में नरेन्द्र का दर्शन करके श्री रामकृष्ण समाधिस्थ हो गए थे।

आनन्द निकेतन

कालीबाड़ी आनन्द-निकेतन बन गया है। यहाँ पर राधाकान्त, भवतारिणी और महादेव की नित्यपूजा, भोगरागादि और अतिथि-सेवा है। एक ओर भागीरथी का बहुदूर पर्यन्त पवित्र दर्शन, और फिर सौरभाकुल सुन्दर नानावर्णरंजित विशेष कुसुमयुक्त मनोहर पुष्पोद्यान। उस पर फिर एक चेतन मनुष्य रात-दिन ईश्वर-प्रेम में मतवाले हुए रहे हैं। आनन्दमयी का नित्य उत्सव है। नहबत से राग-रागिणियाँ सर्वदा बजती रहती हैं। एक बार प्रभात में बजती हैं, मंगल आरती के समय। उसके पश्चात् नौ बजे के समय, जब पूजा आरम्भ होती है। फिर दूसरे प्रहर के समय जब भोग-आरती के बाद देवी-देवता विश्राम करने जाते हैं। और फिर चार बजे के समय नहबत बजती है, तब वे विश्राम करने के पश्चात् उठते हैं और मुख धोते हैं। उसके बाद फिर सन्ध्या-आरती के समय। अन्त में रात के नौ बजे के समय जब शीतल भोग के बाद देवताओं का शयन होता है, तब भी नहबत बजती रहती है।

●

दक्षिणेश्वर मन्दिर

द्वितीय परिच्छेद

तव कथामृतं तप्तजीवनम्, कविभिरीडितं कल्मषापहम्।
श्रवणमंगलं श्रीमदाततम्, भुवि गृणन्ति ये भूरिदा जनाः ॥
श्रीमद्भागवत, गोपीगीता (रास पंचाध्याय), स्कन्ध 10, श्लोक 9

प्रथम दर्शन[1]— 1882 फरवरी मास

गंगा-तीर पर दक्षिणेश्वर में कालीबाड़ी। माँ काली का मन्दिर। वसन्तकाल, अंग्रेज़ी 1882 ईसवी का फरवरी का महीना। ठाकुर के जन्मोत्सव के कई-एक दिन पश्चात् श्रीयुक्त केशवसेन और श्रीयुक्त जोसफ़ कुक के संग 23 फरवरी, बृहस्पतिवार को ठाकुर स्टीमर में टहले थे, उसके ही कई-एक दिन पीछे। सन्ध्या हुई-कि-हुई। मास्टर

---

[1] ग्रन्थकार (मास्टर महाशय) के प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ दर्शनों की तारीखों का 'श्री श्री रामकृष्ण कथामृत' प्रथम भाग में उल्लेख न रहने पर भी पंचम भाग के प्रथम खण्ड, प्रथम परिच्छेद में उनके सम्बन्ध में ग्रन्थकार ने स्वयं ही संकेत दिया है— 23 फरवरी के कई दिन बाद रविवार को प्रथम दर्शन हुआ। तृतीय दर्शन भी हुआ रविवार को ही। चतुर्थ दर्शन हुआ तृतीय दर्शन के अगले दिन सोमवार को। चतुर्थ दर्शन के दिन श्री रामकृष्ण मास्टर महाशय को बलराम बसु के घर आने का आदेश करते हैं। बलराम बसु के घर श्री रामकृष्ण का शुभागमन हुआ था 11 मार्च, शनिवार को। 23 फरवरी से 11 मार्च के मध्य दो रविवार आते हैं— 26 फरवरी और 5 मार्च को।

ग्रन्थकार की इन घटनाओं के ऊपर निर्भर करके प्रथम दर्शन— 26 फरवरी को, द्वितीय दर्शन 26 फरवरी और 5 मार्च के मध्य जिस किसी भी दिन हुआ। तृतीय दर्शन 5 मार्च को और चतुर्थ दर्शन 6 मार्च तो लिपिबद्ध है ही।

ठाकुर श्री रामकृष्ण के कमरे में आकर उपस्थित हुए। यही है प्रथम दर्शन।

उन्होंने देखा, कमरा भर लोग निस्तब्ध होकर उनका कथामृत-पान कर रहे हैं। ठाकुर तख़्तपोश पर पूर्वास्य बैठे हुए सहास्यवदन हरि-कथा कह रहे हैं। भक्तगण ज़मीन पर बैठे हुए हैं।

(कर्म-त्याग कब)

मास्टर खड़े हुए अवाक् होकर देख रहे हैं। उन्हें बोध हुआ जैसे साक्षात् शुकदेव भगवत्-कथा कह रहे हैं और सर्वतीर्थों का समागम हुआ है। अथवा जैसे श्री चैतन्य पुरी-क्षेत्र में रामानन्द, स्वरूप आदि भक्तों के संग बैठे हुए हैं और भगवान का नाम-गुण-कीर्त्तन कर रहे हैं। ठाकुर कह रहे हैं, "जब एक बार हरि वा एक बार राम-नाम करने पर रोमाञ्च हो जाए, अश्रुपात हो जाए, तब निश्चय ही जानो कि सन्ध्या आदि कर्म और नहीं करने पड़ेंगे। तब कर्म-त्याग का अधिकार हो गया है— कर्म अपने आप ही छूटते जाते हैं। तब केवल रामनाम या हरिनाम या शुद्ध ॐकार जप लेने से ही हो जाता है।" और फिर कहा, "सन्ध्या गायत्री में लय हो जाती है। गायत्री भी फिर ॐकार में लय हो जाती है।"

मास्टर सिधु[1] के संग बराहनगर में इस बाग से उस बाग में टहलते-टहलते यहाँ पर आ गए हैं। आज है रविवार; 26 फरवरी, 15 फाल्गुन; अवकाश है, तभी टहलने आए हैं। श्रीयुक्त प्रसन्न बॉडुज्ये के बाग में कुछ क्षण पहले टहल रहे थे। तब सिधु ने कहा था, "गंगा के तीर पर एक सुन्दर बाग है, उस बाग को देखने चलोगे? वहाँ पर एक परमहंस रहते हैं।"

---

[1] श्रीयुक्त सिद्धेश्वर मजूमदार, उत्तर बराहनगर में घर।

बाग में सदर फाटक से प्रवेश करके मास्टर और सिधु सीधे ही श्री रामकृष्ण के कमरे में आ गए। मास्टर अवाक् होकर देखते-देखते सोचते हैं, आहा, कैसा सुन्दर स्थान! कैसा सुन्दर मनुष्य! कैसी सुन्दर कथा! यहाँ से हिलने की इच्छा नहीं होती। कुछ क्षणों पश्चात् मन-ही-मन कहने लगे, एक बार देख तो लूँ कहाँ पर आया हुआ हूँ। तब फिर यहाँ पर आकर बैठूँगा।

सिधु के संग कमरे के बाहर आते-न-आते आरती का मधुर स्वर होने लगा। एक साथ कांसर, घण्टा, खोल, करताल बज उठे। बाग के दक्षिण सीमान्त से नहबत का मधुर शब्द आने लगा। यही शब्द भागीरथी के वक्ष पर भ्रमण करता-करता मानो अतिदूर जाकर कहीं पर मिलने लगा। मन्द-मन्द कुसुमगन्धवाही वसन्त अनिल। अब ज्योत्स्ना खिलने लगी। ठाकुरों की आरती का मानो चारों ओर आयोजन हो रहा है। मास्टर ने द्वादश शिवमन्दिर में, श्री श्री राधाकान्त के मन्दिर में, श्री श्री भवतारिणी के मन्दिर में आरती-दर्शन करके परम प्रीति-लाभ किया। सिधु ने बताया, "यही है रासमणि का देवालय। यहाँ पर नित्य सेवा होती है। अनेक अतिथि और कंगाल आते हैं।"

बातें करते-करते भवतारिणी के मन्दिर से होकर बृहत् पक्के आँगन के मध्य से चलते हुए दोनों जने फिर दुबारा ठाकुर श्री रामकृष्ण-कक्ष के सम्मुख आ पहुँचे। इस समय देखा, कमरे का द्वार भिड़ा हुआ है।

अभी-अभी धूना दिया गया है। मास्टर अंग्रेज़ी पढ़े हुए हैं, कमरे में हठात् प्रवेश नहीं कर सके। द्वार पर बृन्दे (दासी) खड़ी हुई थी। जिज्ञासा की, "क्यों जी, क्या ये साधु महाराज अब इस कमरे में हैं?"

बृन्दे— हाँ, इसी कमरे के भीतर हैं।

मास्टर— ये यहाँ कितने दिनों से हैं?

बृन्दे— वे तो बहुत दिनों से हैं।

मास्टर— अच्छा, ये क्या खूब किताबें पढ़ते हैं?

बृन्दे— अरे बाबा, किताबें-शिताबें सब इनके मुख में हैं।

मास्टर तो सद्य पढ़ाई आदि करते हुए आए हैं। 'ठाकुर श्री रामकृष्ण पुस्तकें पढ़ते ही नहीं' सुनकर और भी अवाक् हो गए।

मास्टर— अच्छा, शायद अब ये सन्ध्या करेंगे। हम क्या इस कमरे में जा सकते हैं? तुम एक बार सूचना दोगी?

बृन्दे— तुम लोग जाओ न बेटा। जाकर कमरे में बैठो।

तब उन्होंने कमरे में प्रवेश करके देखा, कमरे में और कोई नहीं है। ठाकुर श्री रामकृष्ण कमरे में एकाकी तख़्तपोश पर बैठे हुए हैं। कमरे में धूना[1] दे रखा है और सब दरवाज़े बन्द हैं। मास्टर ने प्रवेश करके हाथ जोड़कर प्रणाम किया। ठाकुर श्री रामकृष्ण से बैठने की अनुमति पाकर वे और सिधु ज़मीन पर बैठ गए।

ठाकुर ने पूछा, "कहाँ रहते हो, क्या करते हो, बराहनगर में क्या करने आए हो," इत्यादि। मास्टर ने समस्त परिचय दे दिया, किन्तु देखने लगे कि ठाकुर बीच-बीच में अन्यमनस्क हो रहे हैं। पीछे सुना, इसी का नाम भाव है। जैसे कोई छिप[2] हाथ में लेकर मछली पकड़ने के लिए लगा है। मछली आकर चारा खाने लगती है। फातना जब हिलता है, तब वह व्यक्ति जैसे सावधान होकर छिप (बाँस) हाथ में लेकर फातना की ओर एक मन से एक टक देखता रहता है; किसी के साथ भी बात नहीं करता; यह ठीक वैसा ही भाव है। पीछे फिर सुना, और देखा, ठाकुर का सन्ध्या के पश्चात् इसी प्रकार का भावान्तर हो जाता है। कभी-कभी वे बिल्कुल बाह्यज्ञान-शून्य हो जाते हैं।

मास्टर— आप अब सन्ध्या करेंगे, तो फिर हम चलते हैं।

श्री रामकृष्ण *(भावस्थ)*— ना– सन्ध्या– वह ऐसा कुछ नहीं है।

---

[1] धूप-धूना

[2] छिप— पतला लम्बा बाँस जिसके सिरे पर मछली फँसाने के लिए सूत और बंसी लगी होती है।

और कुछ बातचीत के बाद मास्टर ने प्रणाम करके विदा ली। ठाकुर बोले, "फिर आइयो (आबार ऐशो)।"

मास्टर लौटते समय सोचने लगे, ये सौम्य कौन हैं जिनके पास से लौटकर जाने की इच्छा नहीं हो रही है। पुस्तक बिना पढ़े क्या मनुष्य महत् होता है? कैसा आश्चर्य, फिर दुबारा आने की इच्छा हो रही है। इन्होंने भी कहा है, 'आबार ऐशो' (फिर भी आइयो)। कल या परसों प्रातः आऊँगा।

तृतीय परिच्छेद

अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

(द्वितीय दर्शन और गुरु-शिष्य संवाद)

द्वितीय दर्शन। प्रात:काल आठ बजे। ठाकुर तब हजामत बनवाने के लिए जा रहे हैं। अब भी कुछ-कुछ शीत है। तभी उनके शरीर पर मोलस्किन का रैपर है। रैपर का किनारा शालु से मढ़ा गया है। मास्टर को देखकर बोले, "तुम आ गए? अच्छा यहाँ पर बैठो।"

यह बात दक्षिण-पूर्व बरामदे में हुई थी। नाई उपस्थित है। उसी बरामदे में ठाकुर हजामत बनवाने बैठ गए और बीच-बीच में मास्टर के साथ बातें करने लगे। शरीर पर उसी प्रकार रैपर है, पाँव में चटीजूता (स्लीपर)। सहास्यवदन। बातें करते समय तनिक 'तोतला'।

श्री रामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— हाँ जी, तुम्हारा घर कहाँ है?

मास्टर— जी, कलकत्ता में।

श्री रामकृष्ण— यहाँ पर कहाँ आए हो?

मास्टर— यहाँ पर बराहनगर में बड़ी दीदी के घर आया हुआ हूँ, ईशान कविराज के मकान में।

श्री रामकृष्ण— ओह! ईशान के घर!

(केशवचन्द्र और माँ के निकट ठाकुर का क्रन्दन)

श्री रामकृष्ण— हाँ जी, केशव कैसा है? बड़ा बीमार हुआ था।"

मास्टर— मैंने भी सुना तो था, अब शायद ठीक हैं।

श्री रामकृष्ण— मैंने फिर केशव के लिए माँ के निकट नारियल और चीनी की मन्नत मानी थी। पिछली रात को नींद टूट जाती और माँ के पास रोया करता और कहता, माँ, केशव का रोग ठीक कर दो। केशव के न रहने पर मैं कलकत्ता जाकर किसके संग बातें करूँगा? तभी डाब-चीनी मानी थी।

"अच्छा, कुक साहब नामक एक जन आया था। वह क्या लेक्चर देता है? मुझे केशव जहाज़ में ले गया था। कुक साहब भी था।"

मास्टर— जी, मैंने ऐसा सुना तो था, किन्तु मैंने उनका लेक्चर नहीं सुना है। मैं उनके विषय में विशेष नहीं जानता।

(गृहस्थ और पिता का कर्तव्य)

श्री रामकृष्ण— प्रताप का भाई आया था। यहाँ पर कई दिन तक था। काज-कर्म नहीं। कहता था, मैं यहाँ पर रहूँगा। सुना, स्त्री, पुत्र, कन्या— सब को ससुराल में छोड़ आया है। बहुत से बच्चे हैं। मैंने डाँटा— देखो तो, लड़के बच्चे हुए हैं, उन्हें क्या फिर उस मोहल्ले के लोग खिलाएँगे, पिलाएँगे, बड़ा करेंगे? लज्जा नहीं आती कि स्त्री-बच्चों को कोई और खिलाता है, और उन्हें ससुराल में डाल रखा है। मैंने खूब डाँटा और काज-कर्म खोजने के लिए कहा। तब फिर कहीं यहाँ से जाने को हुआ।

चतुर्थ परिच्छेद

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानांजनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

(मास्टर का तिरस्कार और उनका अहंकार-चूर्णकरण)

श्री रामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— तुम्हारा विवाह हो गया क्या?

मास्टर— जी हाँ।

श्री रामकृष्ण *(सिहर कर)*— ओ रे रामलाल[1]! अरे इसने तो विवाह कर डाला!

मास्टर घोरतर अपराधी की न्यायीं अवाक् हुए अवनत-मस्तक चुप किए बैठे रहे। सोचने लगे, विवाह करना क्या इतना बड़ा दोष है?'

ठाकुर ने फिर और पूछा, "क्या तुम्हारे बच्चे हुए हैं?"

मास्टर की छाती धक्-धक् करती है। डर-डर के बोले, "जी हाँ, बच्चे हुए हैं।" ठाकुर फिर और आक्षेप करते हुए कहते हैं, "अरे बच्चे भी हो गए हैं!" तिरस्कृत होकर वे स्तब्ध हो गए।

उनका अहंकार चूर्ण होने लगा। कुछ क्षण पश्चात् ठाकुर श्री रामकृष्ण फिर और कृपादृष्टि करके सस्नेह कहने लगे, "देखो, तुम्हारा लक्षण अच्छा था, मैं मस्तक (कपाल), चक्षु आदि देखने से पहचान सकता हूँ।"

"अच्छा, तुम्हारी पत्नी कैसी है? विद्याशक्ति कि अविद्याशक्ति?"

---

[1] श्रीयुक्त रामलाल, ठाकुर का भतीजा और कालीबाड़ी का पुजारी।

(ज्ञान किसे कहते हैं? प्रतिमा-पूजा)

मास्टर— जी भली हैं, किन्तु अज्ञान हैं।

श्री रामकृष्ण— *(विरक्त होकर)*— और तुम ज्ञानी?

ज्ञान किसे कहते हैं और अज्ञान किसे कहते हैं, वे अब तक भी जानते नहीं हैं। अब तक इतना ही जानते हैं कि लिखना-पढ़ना सीख लेना और पुस्तक पढ़ सकना ही ज्ञान होता है। यह भ्रम पीछे दूर हुआ था, जब सुना कि ईश्वर को जानने का नाम है ज्ञान, ईश्वर को न जानने का नाम ही है अज्ञान। ठाकुर ने कहा, 'तुम क्या ज्ञानी?' मास्टर के अहंकार को फिर और विशेष आघात लगा।

श्री रामकृष्ण— अच्छा, तुम्हारा साकार पर विश्वास है कि निराकार पर?

मास्टर *(अवाक् होकर, स्वगत)*— साकार पर विश्वास रहने पर क्या फिर निराकार पर भी विश्वास होता है? 'ईश्वर निराकार है'— ऐसा विश्वास रहने पर 'ईश्वर साकार है', फिर ऐसा विश्वास क्या हो सकता है? विरुद्ध अवस्थाएँ, दोनों ही क्या सत्य हो सकती हैं? सफ़ेद वस्तु दूध क्या फिर काला हो सकता है?

मास्टर— जी निराकार, मुझे तो यही अच्छा लगता है।

श्री रामकृष्ण— सो तो अच्छा है। किसी एक पर विश्वास रहने से ही हुआ। निराकार पर विश्वास, वह तो अच्छा ही है। तो भी फिर ऐसी बुद्धि न करो कि यह ही केवल सत्य है और सब मिथ्या। यही जानो कि निराकार भी सत्य है और साकार भी सत्य। तुम्हारा जो भी विश्वास है, उसको ही पकड़े रहो।

'दोनों ही सत्य हैं', यह बात बार-बार सुनकर मास्टर अवाक् हो गए। यह बात तो उनकी पोथीगत विद्या में नहीं है! उनका अहंकार तीसरी बार चूर्ण होने लगा। किन्तु तब तक भी सम्पूर्ण नहीं हुआ था। तभी फिर और थोड़ा-सा तर्क करने के लिए अग्रसर हुए।

मास्टर— जी, वे साकार हैं, यह विश्वास तो चलो जैसे भी, हो भी गया! किन्तु मिट्टी की प्रतिमा तो वे नहीं हैं?

श्री रामकृष्ण— मिट्टी की क्यों भई? चिन्मयी प्रतिमा!

मास्टर चिन्मयी प्रतिमा समझ नहीं सके। कहा, "अच्छा, जो मिट्टी की मूर्त्ति की पूजा करते हैं, उन्हें तो समझा देना उचित है कि मिट्टी की मूर्त्ति ईश्वर नहीं हैं और मूर्त्ति के सामने ईश्वर को उद्देश्य करके पूजा करो। मिट्टी को पूजना उचित नहीं।"

(लेक्चर (Lecture) और ठाकुर श्री रामकृष्ण)

श्री रामकृष्ण *(विरक्त होकर)*— तुम कलकत्ता के लोगों का यही एक है। केवल लेक्चर देना और समझा देना। अपने को कौन समझाए, यह निश्चय नहीं। तुम कौन हो समझाने वाले? जिनका जगत है, वे समझाएँगे। उन्होंने इस जगत को रचा है— चन्द्र, सूर्य, ऋतु, मनुष्य, जीव-जन्तु बनाए हैं, जीव जन्तुओं के आहार का उपाय, पालन करने के लिए माँ-बाप बनाए हैं, माँ-बाप का स्नेह बनाया है, वे ही समझाएँगे। उन्होंने इतना किया है, फिर यह उपाय नहीं करेंगे? यदि समझाना आवश्यक होगा, तो वे ही समझा देंगे। वे तो अन्तर्यामी हैं। यदि वैसी मिट्टी की मूर्त्ति की पूजा करने में कुछ भूल रहती है, तो वे क्या जानते नहीं कि उन्हें ही पुकारा जा रहा है? वे उसी पूजा से ही सन्तुष्ट होते हैं। उसके लिए तुम्हारे सिर में व्यथा क्यों? तुम वही चेष्टा करो जिससे कि तुम्हें स्वयं ज्ञान हो, भक्ति हो।

इस बार उनका अहंकार शायद पूरी तरह चूर्ण हो गया।

वे विचार करने लगे, ये जो कह रहे हैं, वही तो ठीक! मुझे समझाने जाने की क्या आवश्यकता है? मैने क्या ईश्वर को जान लिया है? ना ही मेरी उनके ऊपर भक्ति हुई है। 'आपनि शुते स्थान पाय ना, शंकरा के डाके' (अपने लेटने को तो स्थान नहीं मिला, शंकर को पुकारना)। जानना नहीं, सुनना नहीं, दूसरों को समझाने के लिए

चल पड़ना! बड़ी ही लज्जा की बात है, और हीन बुद्धि का कार्य है। यह क्या गणित है, अथवा इतिहास या साहित्य कि अन्य को समझाएँगे? यह तो है ईश्वर-तत्त्व! ये जो-जो बातें कह रहे हैं, मन में खूब लग रही हैं।

ठाकुर के साथ उनका यही प्रथम और अन्तिम तर्क!

श्री रामकृष्ण— तुम मिट्टी की प्रतिमा की पूजा का कह रहे थे। यदि मिट्टी की होती है, तो उस पूजा का भी प्रयोजन है। नाना प्रकार की पूजाओं का आयोजन ईश्वर ने ही किया है। जिनका जगत् है, उन्होंने ही समस्त बनाया है अधिकारी-भेद से। जिसके पेट जो सहन होता है, माँ उसी प्रकार के भोजन का बन्दोबस्त करती है।

"एक माँ के पाँच बच्चे हैं। घर में मछली आई है। माँ मछली के नाना प्रकार के व्यञ्जन तैयार करती है— जिसके पेट को जो सह्य। किसी के लिए मछली का पुलाव, किसी के लिए मछली का अम्बल (खट्टा), मछली की चड़चड़ि (भुजिया), तली हुई मछली— सब बनाती है। जो भी जिसको पसन्द हो; जो भी जिसके पेट को सहन हो। समझ गए?"

मास्टर— जी हाँ।

पंचम परिच्छेद

संसारार्णवघोरे यः कर्णधारस्वरूपकः।
नमोऽस्तु रामकृष्णाय तस्मै श्री गुरवे नमः।

(भक्ति का उपाय)

मास्टर *(विनीत भाव से)*— ईश्वर में मन कैसे हो?

श्री रामकृष्ण— ईश्वर का नाम-गुण-गान सर्वदा करना चाहिए। और सत्संग— ईश्वर के भक्त अथवा साधु के पास बीच-बीच में जाना

चाहिए। गृहस्थ के भीतर और विषय-कार्य में रात-दिन रहने से ईश्वर में मन नहीं होता। बीच-बीच में निर्जन में जाकर उनका चिन्तन करना बहुत आवश्यक है। शुरु-शुरु की अवस्था में निर्जन न होने से ईश्वर में मन रखना बड़ा ही कठिन है। जब पौधा छोटा होता है, तब उसके चारों ओर घेरा लगाना चाहिए। घेरा न होने से बकरी, गाय उसे खा लेते हैं।

"ध्यान करोगे मन में, कोने में और बन में और सर्वदा सत्-असत्-विचार करोगे। ईश्वर ही सत् अर्थात् नित्य वस्तु है, और सब असत् अर्थात् अनित्य। ऐसा विचार करते-करते अनित्य वस्तु का मन से त्याग करोगे।"

मास्टर *(विनीत भाव से)*— गृहस्थ में किस प्रकार रहना होगा?

(गृहस्थ-संन्यास— उपाय— निर्जन में साधना)

श्री रामकृष्ण— सब कार्य करोगे किन्तु मन ईश्वर में रखोगे। स्त्री, पुत्र, बाप, माँ— सब को लेकर रहोगे और सेवा करोगे, मानो वे हैं कितने अपने जन! किन्तु मन में जानोगे कि ये तुम्हारे कोई नहीं।

"बड़े आदमी के घर की दासी सब काम करती है किन्तु गाँव के अपने घर की ओर मन पड़ा रहता है। और फिर वह मालिक के बच्चों का अपने बच्चों की भाँति पालन करती है। कहती है, 'मेरा राम', 'मेरा हरि'— किन्तु मन में खूब जानती है— ये मेरे कोई नहीं हैं।

"कच्छप जल में विचरण करता है किन्तु उसका मन कहाँ पर पड़ा रहता है, जानते हो? घाट पर सूखे में पड़ा रहता है, जहाँ पर उसके अण्डे हैं। संसार का सर्व कर्म करोगे, किन्तु ईश्वर में मन को डाले रखोगे।

"ईश्वर में भक्ति प्राप्त किए बिना यदि गृहस्थ करने जाओगे, तब तो फिर और भी फँस जाओगे। विपद्, शोक, ताप— इन सब में अधीर

हो जाओगे। और फिर जितनी ही विषय-चिन्ता करोगे, उतनी ही आसक्ति बढ़ेगी।

"तेल हाथ पर मलकर कटहल तोड़ना चाहिए। वैसा न होने पर लेस हाथ पर चिपक जाएगी। ईश्वर में भक्ति-रूप तेल प्राप्त करके तब गृहस्थी के कार्य में हाथ देना चाहिए।

"किन्तु इस भक्ति को प्राप्त करना हो तो निर्जन होना चाहिए। मक्खन निकालना हो तो निर्जन में दही जमाना होता है; हिलाने-डुलाने से दही जमता नहीं। उसके पश्चात् निर्जन में बैठकर, सब कार्य छोड़कर दही का मन्थन करना पड़ता है; तभी फिर मक्खन निकलता है।

"और भी देखो, इसी मन से निर्जन में ईश्वर-चिन्तन करने से ज्ञान, वैराग्य, भक्ति की प्राप्ति होती है। किन्तु संसार में डाले रखने से वही मन ही नीचे हो जाता है। गृहस्थ में तो केवल कामिनी-काञ्चन की चिन्ता ही तो है।

"गृहस्थ मानो जल है, और मन जैसे दूध। यदि जल में दूध को डाल दें, तो फिर तो दूध जल में मिलकर एक हो जाएगा; शुद्ध दूध खोजने पर भी नहीं मिलेगा। दूध का दही जमाकर मक्खन निकाल कर यदि जल में रखा जाए, तो फिर तैरता रहता है। इसीलिए निर्जन में साधना द्वारा पहले ज्ञान-भक्ति रूप मक्खन प्राप्त करो। फिर वह मक्खन गृहस्थ-जल में डाले रखने पर भी मिलेगा नहीं, तैरता ही रहेगा।

"संग-संग विचार करना भी खूब आवश्यक है। कामिनी-काञ्चन अनित्य, ईश्वर ही एक मात्र वस्तु हैं। रुपये से क्या होता है? भात होता है, दाल होती है, कपड़ा होता है, रहने को स्थान होता है— यहीं तक तो। किन्तु इससे भगवान-लाभ नहीं होता। जभी रुपया जीवन का उद्देश्य नहीं हो सकता— इसका नाम है विचार। समझे?"

मास्टर— जी हाँ। 'प्रबोधचन्द्रोदय' नाटक में मैंने अभी पढ़ा है, उसमें है 'वस्तु-विचार'।

श्री रामकृष्ण— हाँ, 'वस्तु-विचार'। यही देखो, रुपये में फिर है भी क्या, और सुन्दर देह में भी क्या है फिर? विचार करो, सुन्दरी की देह में भी तो केवल हाड़, मांस, चरबी, मल-मूत्र— यही सब तो है। ईश्वर को छोड़ कर ऐसी वस्तु में मनुष्य क्यों मन देता है? क्यों ईश्वर को भूल जाता है?

(ईश्वर-दर्शन के उपाय)

मास्टर— ईश्वर का क्या दर्शन किया जाता है?

श्री रामकृष्ण— हाँ, अवश्य किया जाता है। बीच-बीच में निर्जन-वास, उनका नाम-गुण-गान, वस्तु-विचार— ये समस्त उपाय अवलम्बन करने चाहिएँ।

मास्टर— कैसी अवस्था में उनका दर्शन होता है?

श्री रामकृष्ण— खूब व्याकुल होकर क्रन्दन करने से उनको देखा जाता है। स्त्री-पुत्र के लिए व्यक्ति घड़ों रोता है, रुपये-पैसे के लिए लोग रो-रो नदियाँ बहा देते हैं, किन्तु ईश्वर के लिए कौन क्रन्दन करता है? 'डाकार मत डाकते हय' (आन्तरिक पुकार की तरह से पुकारना चाहिए)— यह कह कर ठाकुर ने गाना गाया—

डाक देखि मन डाकार मत केमन श्यामा थाकते पारे।
केमन श्यामा थाकते पारे, केमन काली थाकते पारे।
मन यदि एकान्त हओ, जवा बिल्वदल लओ।
भक्ति चन्दन मिशाइये (मार) पदे, पुष्पाञ्जलि दाओ॥

[हे मन! आन्तरिक पुकार से पुकारो तो देखूँ फिर माँ कैसे रह सकती हैं? कैसे श्यामा रहती हैं? कैसे काली रह सकती हैं? हे मन, यदि एकान्त में हो तो जवा, बिल्वदल ले लो और भक्ति रूप चन्दन मिलाकर (माँ के) चरणों में पुष्पाञ्जलि प्रदान करो।]

"व्याकुलता होने पर अरुणोदय होता है। तत्पश्चात् सूर्य दिखाई देगा। व्याकुलता के बाद ही ईश्वर-दर्शन।

"तीन आकर्षण एकत्र होने पर ही वे दर्शन देती हैं— विषयी का विषय के ऊपर, माँ का सन्तान के ऊपर, और सती स्त्री का पति के ऊपर। ये तीनों आकर्षण यदि किसी के भी एक संग में हों, तो वह उसी आकर्षण के ज़ोर से ईश्वर को प्राप्त कर सकता है।

"बात तो यही है, ईश्वर को प्यार करना चाहिए। माँ जैसे लड़के को प्यार करती है, पतिव्रता जैसे पति को प्यार करती है, विषयी जैसे विषय को प्यार करता है— इन तीनों जनों का प्यार, यही तीन खेंच, एकत्र कर लेने पर जितना होता है, उतना ईश्वर को दे सकने पर उनका दर्शन प्राप्त होता है।

"व्याकुल होकर उन्हें पुकारना चाहिए।

"बिल्ली का बच्चा केवल मियुँ-मियुँ करके माँ को पुकारना जानता है। माँ उसको जहाँ पर रखती है, वह वहीं पर ही रहता है— कभी-कभी रसोई में, कभी-कभी धरती पर, कभी फिर बिस्तरे के ऊपर रख देती है। उसको कष्ट होने पर वह केवल मियुँ-मियुँ करके पुकारता है, और कुछ नहीं जानता। माँ कहीं भी रहती है, इस मियुँ-मियुँ को सुनकर आ जाती है।"

षष्ठ परिच्छेद

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ॥ — गीता 6 : 29

(तृतीय दर्शन— नरेन्द्रनाथ, भवनाथ, मास्टर)

मास्टर तब बराहनगर में बहिन के घर में थे। ठाकुर श्री रामकृष्ण के दर्शन करने के समय से सर्वक्षण उनका ही चिन्तन करते। सर्वदा ही जैसे वही आनन्दमय मूर्त्ति देख रहे हैं और उनकी वही अमृतमयी कथा सुन रहे हैं। विचार करने लगे, 'दरिद्र ब्राह्मण ने किस

प्रकार यह सारा गम्भीर तत्त्व अनुसन्धान किया है और जाना है और इतने सहज में ये समस्त बातें समझाते हुए तो उन्होंने अब तक किसी को भी नहीं देखा। कब उनके पास जाएँगे तथा फिर उनके दर्शन करेंगे— यही बात रात-दिन सोचते हैं।

देखते ही देखते रविवार, 5 मार्च आ गई। बराहनगर के नेपाल बाबू के संग तीन या चार बजे वे दक्षिणेश्वर के उद्यान में आ पहुँचे। देखा, उसी पूर्वपरिचित कमरे में ठाकुर श्री रामकृष्ण छोटे तख़्तपोष के ऊपर बैठे हैं। वहाँ पर कमरा भर लोग हैं। रविवार को अवकाश मिला है, जभी भक्तगण दर्शन करने आए हैं। अभी तक मास्टर के साथ किसी का भी आलाप नहीं हुआ। उन्होंने सभा में एक तरफ़ आसन ग्रहण किया। देखा, भक्तों के संग सहास्यवदन ठाकुर बातें कर रहे हैं।

एक उन्नीस वर्ष के वयस्क युवक को लक्ष्य करके और उनकी ओर देखकर ठाकुर जाने कितने आनन्दित होकर अनेक बातें कह रहे थे। लड़के का नाम नरेन्द्र है, कॉलेज में पढ़ते हैं और साधारण ब्राह्मसमाज में यातायात करते हैं। बातें सब तेज-परिपूर्ण हैं। चक्षु दोनों उज्ज्वल। भक्त चेहरा।

मास्टर ने अनुमान से समझ लिया कि बातें विषयासक्त गृही व्यक्ति के सम्बन्ध में हो रही थीं। जो केवल ईश्वर-ईश्वर करता है, धर्म-धर्म करता है, उसकी सब लोग निन्दा करते हैं; और संसार में कितने ही दुष्ट लोग होते हैं, उनके संग किस प्रकार व्यवहार करना उचित है— ऐसी ही सब बातें हो रही हैं।

श्री रामकृष्ण *(नरेन्द्र के प्रति)*— नरेन्द्र, तू क्या कहता है? गृहस्थी लोग कितना-कुछ ही बोलते हैं। किन्तु देख, हाथी जब चल रहा होता है, पीछे-पीछे कितने ही जानवर कितनी तरह से चीत्कार करते रहते हैं। किन्तु हाथी मुड़कर भी नहीं देखता। यदि कोई तेरी निन्दा करे, तू मन में क्या समझेगा?

नरेन्द्र— मैं समझूँगा, कुत्ते भौं-भौं कर रहे हैं।

श्री रामकृष्ण *(सहास्य)*— ना रे, इतनी दूर नहीं। *(सबका हास्य)*। ईश्वर सर्वभूतों में हैं। तो भी भले लोगों के संग में मेल-मिलाप चलता है, मन्दे लोगों के निकट रहते हुए फासला रखना चाहिए। बाघ के भीतर भी नारायण हैं, इसीलिए बाघ का आलिंगन नहीं चलता *(सब का हास्य)*। यदि कहो, बाघ तो नारायण हैं, तो फिर क्यों भागूँ? उसका उत्तर है— जो कहते हैं 'भाग जाओ', वे भी तो नारायण हैं। उनकी बात क्यों न सुनूँ? एक कहानी सुनो—

"किसी एक वन में एक साधु रहते थे। उनके बहुत से शिष्य थे। उन्होंने एक दिन शिष्यों को उपदेश दिया कि 'सर्वभूतों में नारायण हैं, यही जानकर सबको नमस्कार करोगे।' एक दिन एक शिष्य होम के लिए लकड़ी लेने वन में गया। तब एक शोर होने लगा, 'जो कोई कहीं भी है, भागो— एक पागल हाथी आ रहा है।' सब ही भाग गए, किन्तु शिष्य नहीं भागा। वह समझता है कि हाथी में भी तो नारायण हैं, फिर मैं क्यों भागूँ; यह सोच कर वह खड़ा रहा। नमस्कार करके स्तव-स्तुति करने लगा। इधर महावत चीत्कार करके कहता है, भागो, भागो। वह शिष्य फिर भी नहीं हिला। अन्त में वही हाथी सूंड से उठाकर उसको एक किनारे पटक कर चला गया। शिष्य क्षत-विक्षत हो, बेहोश पड़ा रहा।

"यह संवाद पाकर गुरु और अन्य शिष्य उसे उठाकर आश्रम में ले आए और औषध देने लगे। कुछ देर पश्चात् होश आने पर उससे किसी ने पूछा, हाथी आ रहा है, सुनकर भी तुम क्यों हटे नहीं? उसने उत्तर दिया, गुरुदेव ने जो मुझसे कह दिया था, नारायण ही मनुष्य, जीव-जन्तु सब-कुछ होकर रह रहे हैं। जभी मैं हाथी-नारायण आ रहे हैं, देखकर वहाँ से हटा नहीं। गुरु ने तब कहा, बेटा! हाँ, हाथी-नारायण तो आ ही रहे थे निश्चय, यह सत्य है, किन्तु बेटा, महावत-नारायण ने तुम्हें मना किया था। यदि सब ही नारायण हैं, तब तो

उसकी बात पर विश्वास क्यों नहीं किया? महावत-नारायण की बात भी सुननी चाहिए। *(सब का हास्य)*।

"शास्त्र में है 'आपो नारायण:'— जल नारायण। किन्तु कोई जल तो ठाकुर-सेवा में लगता है, और फिर कोई जल कुल्ला-हाथ-मुँह धोने में, बर्तन माँजने, कपड़े धोने में ही केवल चलता है, किन्तु आहार या ठाकुर-सेवा में नहीं चलता। उसी प्रकार साधु-असाधु, भक्त-अभक्त सबके ही हृदय में नारायण हैं। किन्तु असाधु, अभक्त, दुष्ट लोगों के संग व्यवहार नहीं चलता, मेल-मिलाप नहीं चलता। किसी के साथ केवल मुख का आलाप पर्यन्त ही चलता है, और किसी के संग वह भी नहीं चलता। वैसे लोगों से कुछ अन्तर पर ही रहना चाहिए।"

एक जन भक्त— महाशय, दुष्ट व्यक्ति यदि अनिष्ट करने आता है, अथवा अनिष्ट करता है, तो फिर क्या चुप रहना उचित है?

(गृहस्थ और तमोगुण)

श्री रामकृष्ण— लोगों के साथ वास करने के लिए, दुष्ट लोगों के हाथ से अपनी रक्षा करने के लिए, थोड़ा-सा तमोगुण भी दिखाना प्रयोजनीय है। किन्तु वह अनिष्ट करेगा, समझ कर उल्टे उसका अनिष्ट करना उचित नहीं।

"एक मैदान में एक चरवाहा गाय चराया करता था। उसी मैदान में एक भयानक विषैला साँप था। सब ही उस साँप के भय से अत्यन्त सावधान रहते थे। एक दिन एक ब्रह्मचारी उसी मैदान के मार्ग से आ रहा था। चरवाहों ने दौड़कर कहा, ठाकुर महाशय, उस तरफ़ से मत जाएँ। उधर एक भयानक विषाक्त साँप रहता है। ब्रह्मचारी ने कहा, बेटा वह होने दो, मुझे उससे भय नहीं है, मैं मन्त्र जानता हूँ। यह बात कहकर ब्रह्मचारी उसी ओर चल दिया। भय से कोई भी चरवाहा उसके संग नहीं गया। इधर वही साँप फण उठाकर दौड़ता हुआ आने लगा। किन्तु निकट आते-न-आते ब्रह्मचारी ने ज्योंहि

एक विशेष मन्त्र पढ़ा, त्योंहि वह साँप तो केंचवे की भाँति पैरों के पास पड़ गया। ब्रह्मचारी ने कहा, 'ओ रे, तू क्यों दूसरों की हिंसा करता हुआ घूम रहा है? आ, तुझे मन्त्र दूँ। इस मन्त्र के जपने पर तेरी भगवान में भक्ति होगी, भगवान-लाभ होगा, और हिंसा-प्रवृत्ति नहीं रहेगी', यह कहकर उसने साँप को मन्त्र दे दिया। साँप ने मन्त्र पाकर गुरु को प्रणाम करके पूछा, 'ठाकुर, साधना कैसे करूँ? बताइए।' गुरु ने कहा, 'इसी मन्त्र का जप कर, और किसी की भी हिंसा मत कर।' ब्रह्मचारी ने जाते समय कहा, 'मैं फिर आऊँगा।'

"इसी प्रकार कुछ दिन चले गए। चरवाहों ने देखा कि साँप तो अब काटने नहीं आता। ढेला मारते हैं, तब भी क्रोध नहीं करता, केंचवे जैसा हो गया है। एक दिन एक चरवाहे ने उसके पास जाकर उसे पूँछ से पकड़ कर धरती पर पटक-पटक कर मारा। साँप के मुख से रक्त निकलने लगा और वह बेहोश हो गया। न हिलता है, न डुलता है। चरवाहों ने सोचा कि साँप मर गया है। यही सोचकर वे सब लोग चले गए। बड़ी रात गए साँप को होश आया। वह धीरे-धीरे अति कष्ट से अपने बिल में चला गया। शरीर चूर-चूर हो गया था; हिलने की शक्ति नहीं रही। कई दिनों पश्चात् जब शरीर कंकाल-सा हो गया तब बाहर आहार की चेष्टा में रात को एक बार चरने के लिए आता, भय से दिन के समय नहीं आता था। मन्त्र लेने की अवधि से हिंसा नहीं करता था। धरती पर गिरे पत्ते, वृक्ष से गिरे फल खाकर प्राण-रक्षा करता।

"प्रायः एक वर्ष के बाद ब्रह्मचारी उसी मार्ग से फिर आया। आते ही साँप की खोज की। चरवाहों ने बताया, वह साँप तो मर गया है। किन्तु ब्रह्मचारी को उस बात पर विश्वास नहीं हुआ। वह जानता था, जो मन्त्र उसने लिया है, उसका साधन हुए बिना देह-त्याग नहीं होगा। खोजते-खोजते उसी ओर उसको दिए हुए नाम से पुकारने लगा। वह गुरुदेव की आवाज़ सुनकर बिल से बाहर आया और खूब भक्तिपूर्वक प्रणाम किया। ब्रह्मचारी ने पूछा, 'तू कैसा है?' वह बोला,

'जी अच्छा हूँ।' ब्रह्मचारी ने पूछा, 'तू ऐसा दुर्बल कैसे हो गया?' साँप बोला, 'ठाकुर, आपने आदेश किया था, किसी की हिंसा मत करना। तभी पत्ते-फल खाता हूँ, इसीलिए लगता है दुर्बल हो गया हूँ।' उसका सत्त्वगुण हो गया था कि ना! तभी किसी के ऊपर क्रोध नहीं। वह भूल ही गया था कि चरवाहों ने मार डालने का आयोजन किया था। ब्रह्मचारी ने कहा, 'केवल न खाने के कारण ऐसी अवस्था नहीं होती, अवश्य और कारण है। सोच कर देखो।' साँप को याद आया कि चरवाहों ने घुमेटियाँ दी थीं। वे तो अनजान हैं। मेरे मन की क्या अवस्था है, वे नहीं जानते थे। मैं जो किसी को भी काटूँगा नहीं या किसी प्रकार का भी अनिष्ट नहीं करूँगा— कैसे वे जानेंगे? ब्रह्मचारी ने कहा, 'छि:! तू तो इतना मूर्ख है कि अपनी रक्षा करना भी नहीं जानता। मैंने डंक मारने को ही मना किया था, फुत्कारने के लिए तो नहीं। फुत्कार करके उन्हें भय क्यों नहीं दिखाया?'

"दुष्ट लोगों के निकट फुत्कार करके भय दिखाना चाहिए, ताकि फिर हानि न करें। उनके ऊपर विष नहीं फेंकते, अनिष्ट नहीं करते।"

(भिन्न प्रकृति— Are all men equal?)

"ईश्वर की सृष्टि में नाना प्रकार के जीव-जन्तु, पेड़-पौधे हैं। जानवरों के मध्य भले हैं, मन्दे हैं। बाघ जैसे हिंसक जन्तु हैं। वृक्षों के मध्य अमृत की न्यायीं फल होते हैं— ऐसे हैं। और फिर विष-फल भी हैं। उसी प्रकार मनुष्यों के मध्य भला है, मन्दा भी है, असाधु भी है, संसारी जीव है और फिर भक्त भी है।

"जीव चार प्रकार के हैं— बद्ध जीव, मुमुक्षु जीव, मुक्त जीव और नित्य जीव। नित्य जीव जैसे नारद आदि। ये संसार में रहते हैं जीवों के मंगल के लिए, जीवों को शिक्षा देने के लिए।

बद्ध जीव— विषय में आसक्त हुए रहते हैं, और भगवान को भूले रहते हैं— भूल कर भी भगवान का चिन्तन नहीं करते।

मुमुक्षु जीव— मुक्त होने की इच्छा करते हैं। किन्तु उनमें से कोई मुक्त हो पाते हैं, कोई नहीं हो पाते।

मुक्त जीव— जो संसार में कामिनी-काञ्चन में आबद्ध नहीं हैं, जैसे साधु, महात्मागण, जिनके मन में विषयबुद्धि नहीं, और जो सर्वदा ही हरि-पादपद्म-चिन्तन करते हैं।

"जैसे तालाब में जाल डाला हुआ है। दो-चार मछलियाँ इतनी सयानी हैं कि कभी भी जाल में नहीं गिरतीं— यह है नित्य जीव का उपमास्थल। किन्तु बहुत-सी मछलियाँ जाल में पड़ ही जाती हैं। इनमें से कितनी ही भागने की चेष्टा करती हैं, ये मुमुक्षु जीव की उपमा हैं। किन्तु सारी ही मछलियाँ भाग नहीं सकतीं। दो चार ही केवल ध्याँग-ध्याँग करके जाल में से भाग जाती हैं। तब मछेरे कहते हैं— वह देखो, एक तो बहुत ही बड़ी मछली भाग गई। (यह है मुक्त जीव की उपमा।) किन्तु जो जाल में पड़ गई हैं, अधिकांश ही भाग नहीं सकतीं; और भागने की चेष्टा भी नहीं करतीं। बल्कि जाल को मुख में दबाकर तालाब के कीचड़ के भीतर चुप करके, मुख छिपाकर लेट जाती हैं। मन में सोचती हैं, अब और कोई भय नहीं, हम ठीक हैं। किन्तु जानती नहीं कि मछेरा हड़-हड़ करके खींच कर ज़मीन पर रख देगा। ये ही हैं बद्ध जीव की उपमा।"

(संसारी जीव— बद्ध जीव)

"बद्ध जीव संसार के कामिनी-काञ्चन में बद्ध हुए रहते हैं, हाथ-पैर बँधे हुए रहते हैं— और सोचते भी यही हैं कि संसार में इसी कामिनी-काञ्चन से ही सुख मिलेगा और निर्भय रहते हैं। जानते नहीं कि उसमें ही मृत्यु होगी। बद्ध जीव मरता है, उसकी स्त्री कहती है, 'तुम तो चल दिए, मेरा क्या कर चले?' और फिर ऐसी माया कि प्रदीप में अधिक बत्ती जलने पर बद्ध जीव कहता है, 'तेल फुक जाएगा, बत्ती को कम कर दो', उधर मृत्यु-शय्या पर लेटा हुआ है।

"बद्ध जीव ईश्वर-चिन्तन नहीं करता। यदि अवसर होता भी है तो भी फिर इधर-उधर की फालतू गप्प लगाता है। नहीं तो वृथा कार्य करता है। पूछने पर कहता है, मैं चुप करके रह नहीं सकता, तभी घेरा बाँध रहा हूँ। शायद समय कटता न देखकर ताश खेलना आरम्भ कर देता है।" *(सभी स्तब्ध!)*

सप्तम परिच्छेद

योमामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम्।
असंमूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ — गीता 10 : 3

(उपाय— विश्वास)

एक जन भक्त— महाशय, इस प्रकार के संसारी जीव का क्या कोई उपाय नहीं?

श्री रामकृष्ण— उपाय अवश्य है। बीच-बीच में साधुसंग और कभी-कभी निर्जन-वास में ईश्वर-चिन्तन करना चाहिए और विचार करना चाहिए। उनके निकट प्रार्थना करनी चाहिए— मुझे भक्ति-विश्वास दो।

"विश्वास हो जाने पर ही हुआ। विश्वास से बढ़कर और कोई वस्तु नहीं है।"

(केदार के प्रति)— विश्वास का कितना ज़ोर है— वह तो तुमने सुना है? पुराण में है, रामचन्द्र जो साक्षात् पूर्णब्रह्म नारायण, उन्हें लंका जाने के लिए सेतु बाँधना पड़ा था। किन्तु हनुमान राम-नाम में विश्वास करके छलाँग मार कर पार जा पड़ा। उसे फिर सेतु का प्रयोजन नहीं हुआ। *(सब का हास्य)*।

"विभीषण ने एक पत्ते पर राम-नाम लिख कर उसी पत्ते को एक व्यक्ति के कपड़े की छोर में बाँध दिया। उस व्यक्ति ने समुद्र के पार

जाना था। विभीषण ने उससे कहा, 'तुम्हें भय नहीं, तुम विश्वास करके जल के ऊपर से चले जाओ, किन्तु देखो ज्योंहि अविश्वास करोगे, त्योंहि डूब जाओगे।' वह व्यक्ति भली प्रकार समुद्र के ऊपर चला जा रहा था। उसी समय उसकी बड़ी भारी इच्छा हुई कि कपड़े की खूँट में क्या बँधा हुआ है, एक बार देखे। खोलकर देखा तो केवल 'राम-नाम' लिखा हुआ है। तब उसने सोचा, 'यह क्या? केवल राम-नाम ही एकमात्र लिखा हुआ है?' जैसे ही अविश्वास हुआ, वैसे ही डूब गया।

"जिसका ईश्वर पर विश्वास है, वह यदि महापाप भी करे— गौ, ब्राह्मण, स्त्री की हत्या करे, तो भी भगवान में इस विश्वास के बल पर बड़े-बड़े पापों से उद्धार हो सकता है। वह यदि बोले, मैं ऐसा काम नहीं करूँगा, उसको किसी से भय नहीं होता"— यह कहकर ठाकुर गाना गाने लगे—

(महापातक और नाम-माहात्म्य)

आमि दुर्गा दुर्गा बोले मा यदि मरि।
आखेरे ए दीने, ना तारो केमने, जाना जाबे गो शंकरी॥
नाशि गो ब्राह्मण, हत्या करि भ्रूण, सुरापान आदि विनाशि नारी।
ए सब पातक , ना भाबि तिलेक, ब्रह्मपद निते पारि॥

[दुर्गा-दुर्गा अगर जपूँ मैं, जब मेरे निकलेंगे प्राण।
देखू कैसे नहीं तारती हो तुम करुणा की खान॥
गौ-ब्राह्मण की हत्या करके, करके भी मदिरा का पान।
ज़रा नहीं परवाह पापों की, लूँगा निश्चय पद निर्वाण॥ —निराला]

(नरेन्द्र— होमा पक्षी)

"इसी लड़के को देख रहे हो, यहाँ पर एक प्रकार से है। शैतान लड़का जब बाप के पास बैठता है, जैसे हव्वे के पास हो; और फिर जब चाँदनी में खेलता है, तब और एक मूर्त्ति। ये नित्य सिद्ध के स्तर

के हैं। ये लोग कभी भी संसार में बद्ध नहीं होते। थोड़ी वयस् होते ही चैतन्य हो जाता है और भगवान की ओर चले जाते हैं। ये संसार में आते हैं जीव-शिक्षा के लिए। इन्हें संसार की वस्तु कुछ भी अच्छी नहीं लगती— ये लोग कामिनी-काञ्चन में कभी आसक्त नहीं होते।

"वेद में है होमा पक्षी की कथा। वह पक्षी खूब ऊँचे आकाश में रहता है। उसी आकाश में अण्डे देता है। अण्डे देने पर वह गिरने लगता है। किन्तु इतना ऊँचे पर होता है कि अनेक दिनों तक अण्डा गिरता ही रहता है। अण्डा गिरते-गिरते फूट जाता है। तब बच्चा गिरने लगता है। गिरते-गिरते उसकी आँखें खुल जाती हैं और पंख निकल आते हैं। आँखें खुलते ही देखता है कि वह गिर रहा है, और धरती लगने से तो वह चकनाचूर हो जाएगा। तब वह पक्षी, माँ की ओर एकदम वेग से दौड़ लगाता है, फिर ऊँचे चढ़ जाता है।"

नरेन्द्र उठकर चले गए।

सभा में केदार, प्राणकृष्ण, मास्टर इत्यादि अनेक जन हैं।

श्री रामकृष्ण— देखो, नरेन्द्र गाने-बजाने, पढ़ने-लिखने, सब में ही अच्छा है। उस दिन केदार के संग तर्क कर रहा था। केदार की बातों को कच-कच करके काटने लगा। *(ठाकुर और सबका हास्य)*

(मास्टर के प्रति)— अंग्रेज़ी में क्या तर्क की कोई किताब है?

मास्टर— हाँ जी, है। अंग्रेज़ी में न्याय-शास्त्र (Logic) है।

श्री रामकृष्ण— अच्छा, कैसे है? ज़रा बताओ तो।

मास्टर अब मुश्किल में पड़ गए। बोले, "एक प्रकार तो है साधारण सिद्धान्त से विशेष सिद्धान्त पर पहुँचना, जैसे सब मनुष्य मरेंगे, पण्डितगण मनुष्य हैं, अतएव पण्डितगण भी मर जाएँगे।

"और एक प्रकार से है, विशेष दृष्टान्त अथवा घटना देखकर साधारण सिद्धान्त पर पहुँचना। जैसे— यह कौवा काला है, वह कौवा काला है, (और फिर) जितने कव्वे देखता हूँ, सब ही काले हैं, अतएव सब कौवे ही काले हैं।

"किन्तु इस प्रकार से सिद्धान्त बनाने पर ग़लती हो सकती है, क्योंकि हो सकता है खोजते-खोजते किसी एक देश में सफ़ेद कौवा दिखाई पड़ जाए।

"और एक दृष्टान्त है— जहाँ पर वर्षा है, वहाँ पर मेघ था या है, अतएव यह साधारण सिद्धान्त हुआ कि मेघ से वृष्टि होती है। और भी एक दृष्टान्त है— इस मनुष्य के बत्तीस दाँत हैं, उस मनुष्य के भी बत्तीस दाँत हैं, और फिर जिस-किसी भी मनुष्य को देखते हैं, उसके ही बत्तीस दाँत हैं। अतएव सब मनुष्यों के ही बत्तीस दाँत होते हैं।

"इस प्रकार साधारण सिद्धान्त की बातें अंग्रेज़ी न्याय-शास्त्र में हैं।"

श्री रामकृष्ण ने बातें सुनीं मात्र। सुनते-सुनते ही अन्यमनस्क हो गए। फिर इसीलिए इस विषय पर अधिक प्रसंग नहीं हुआ।

अष्टम परिच्छेद

श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला।
समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि॥ (गीता 2 : 53)

(समाधि-मन्दिर में)

सभा भंग हो गई। भक्त इधर-उधर टहल रहे हैं। मास्टर भी पंचवटी इत्यादि स्थानों पर टहल रहे हैं। समय लगभग पाँच का। कुछ क्षण पश्चात् उन्होंने श्री रामकृष्ण के कमरे की ओर आकर देखा, कमरे के उत्तर की ओर के छोटे बरामदे के बीच में अद्भुत व्यापार हो रहा है!

श्री रामकृष्ण स्थिर हुए खड़े हैं। नरेन्द्र गाना गा रहे हैं; दो-चार जन भक्त खड़े हुए हैं। मास्टर गाना सुनकर आकृष्ट हुए। ठाकुर के गाने के अतिरिक्त ऐसा मधुर गाना उन्होंने कभी भी, कहीं भी नहीं सुना

था। हठात् ठाकुर की ओर दृष्टिपात करते ही वे अवाक् हो गए। ठाकुर खड़े हुए हैं— निस्पन्द, पलकें हिलती नहीं, निःश्वास-प्रश्वास चल रहा है कि नहीं! पूछने पर एक भक्त ने कहा, इसका नाम समाधि है। मास्टर ने इस प्रकार कभी देखा भी नहीं था, सुना भी नहीं था। अवाक् होकर वे सोचने लगे, भगवान का चिन्तन करते हुए मनुष्य क्या इतना बाह्यज्ञान-शून्य हो जाता है? न जाने कितना अधिक भक्ति-विश्वास होने पर इस प्रकार होता है। गाना यह है—

चिन्तय मम मानस हरि चिद्घन निरञ्जन
किवा, अनुपमभाति, मोहनमूरति भकत-हृदय-रञ्जन।
नवरागे रञ्जित, कोटि शशि विनिन्दित,
किंवा बिजलि चमके से रूप आलोके, पुलके, शिहरे जीवन।

गाने के इस चरण को गाते समय ठाकुर श्री रामकृष्ण सिहरने लगे। देह रोमाञ्चित हो गया। चक्षुओं से आनन्दाश्रु विगलित हो रहे हैं। बीच-बीच में मानो कुछ देखकर हँस रहे हैं। न जाने 'कोटि शशि विनिन्दित' का कैसा अनुपम रूप-दर्शन कर रहे हैं! क्या इसी का नाम भगवान का चिन्मय रूप-दर्शन है? कितना साधन करने पर, कितनी तपस्या के फल से, कितने परिमाण में भक्ति-विश्वास के बल पर इस प्रकार ईश्वर-दर्शन होता है? फिर और गाना चलने लगा—

हृदि कमलासने, भजो तार चरण,
देख शान्त मने, प्रेम नयने, अपरूप प्रिय दर्शन!

फिर दुबारा वही भुवन-मोहन हास्य! शरीर उसी प्रकार निस्पन्द, स्तिमित लोचन। किन्तु शायद कोई अपरूप रूप-दर्शन कर रहे हैं और उसी अपरूप रूप का दर्शन करके महानन्द में तैर रहे हैं।

अब गाने का शेष हो रहा है। नरेन्द्र ने गाया—

चिदानन्दरसे भक्तियोगावेशे, हओ रे चिरमगन।
(चिदानन्दरसे, हाय रे) (प्रेमानन्दरसे)

[हे मेरे मन! हरि चिद्घन निरञ्जन का चिन्तन करो, वह मोहन मूर्त्ति भक्तों के हृदय को प्रसन्न करने वाली कैसी अनुपम

ज्योतिर्मय है! नव अनुराग में रञ्जित हुई, करोड़ों शशियों को विनिन्दित करती है, अथवा बिजली की चमक से वह रूप प्रकाशित होता है और जीवन-प्राण पुलकित होता हुआ काँपता है। हृदय रूप कमलासन पर उनके चरणों को भजो और शान्त मन से, प्रेम-पूर्ण नयनों से वह अपरूप प्रिय-दर्शन करो। चिदानन्द रस में भक्तियोग के आवेश में हे मन, चिरमगन हो जाओ। चिदानन्द रस में! हाय रे प्रेमानन्द रस में!]

समाधि की और प्रेमानन्दकी यह अद्भुत छवि हृदय में ग्रहण करके मास्टर गृह को लौटने लगे। बीच-बीच में हृदय के बीच उसी हृदयोन्मत्तकारी मधुर संगीत का स्फुरण उठने लगा—

प्रेमानन्दरसे हओ रे चिरमगन
(हरि प्रेम में मस्त हो जाओ)।

नवम परिच्छेद

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते ॥ (गीता 6 : 22)

(चतुर्थ दर्शन— नरेन्द्रनाथ, भवनाथ आदि के संग आनन्द)

उसके अगले दिन (6 मार्च) को भी छुट्टी थी। 3 बजे दोपहर के समय मास्टर फिर आ उपस्थित हुए। ठाकुर श्री रामकृष्ण उसी पूर्व परिचित कमरे में बैठे हैं। ज़मीन पर मादुर (चटाई) बिछी है। वहाँ पर नरेन्द्र, भवनाथ, और भी दो जन बैठे हैं। कई-एक उन्नीस-बीस वर्ष के लड़के हैं। ठाकुर सहास्यवदन, छोटे तख्तपोश के ऊपर बैठे हैं, और छोकरों के साथ आनन्द में बातें कर रहे हैं।

मास्टर को कमरे में प्रवेश करते हुए देखकर ठाकुर उच्च हास्य करके लड़कों से कह उठे, “भई लो, फिर आ गया!”— कहते ही हास्य!

सब हँसने लगे। मास्टर आकर भूमिष्ठ होकर प्रणाम करके बैठ गए। पहले तो हाथ जोड़कर खड़े होकर प्रणाम किया करते थे— अंग्रेज़ी पढ़ा-लिखा जन जैसे करता है। किन्तु आज उन्होंने भूमिष्ठ होकर प्रणाम करना सीखा है। उनके आसन ग्रहण कर लेने पर, श्री रामकृष्ण क्यों हँस रहे थे, वही नरेन्द्र आदि भक्तों को समझाते हैं:

'देखो, एक मोर को दोपहर चार बजे अफ़ीम खिला दी थी। उसके दूसरे दिन ठीक चार बजे वही मोर आ उपस्थित हुआ— अफ़ीम का मोहताज़ हो गया है, ठीक समय अफ़ीम खाने आया है।' *(सब का हास्य)*।

मास्टर मन-मन में सोच रहे हैं, 'ये ठीक बात ही कर रहे हैं। घर जाता हूँ, किन्तु दिन-रात इनकी ओर ही मन पड़ा रहता है— कब देखूँगा! कब देखूँगा!! यहाँ पर कोई खींच कर ले आया है। मन होने पर भी अन्य स्थान पर नहीं जाया जाता. यहाँ पर आना ही पड़ता है'— इसी प्रकार सोच रहे हैं। इधर ठाकुर लड़कों के संग अनेक हँसी-मज़ाक करने लगे मानो इनके समवयस्क हों। हँसी की लहर बढ़ने लगी, मानो आनन्द की हाट लगी है!

मास्टर अवाक् होकर इसी अद्भुत चरित्र को देख रहे हैं। सोच रहे हैं, 'क्या इनकी ही पिछले दिन (कल) समाधि और अदृष्टपूर्व प्रेमानन्द देखा था? वही व्यक्ति ही क्या प्राकृत (साधारण) जन की न्याईं व्यवहार कर रहा है? इन्होंने ही क्या प्रथम दिन उपदेश देने के समय मेरा तिरस्कार किया था? इन्होंने ही क्या मुझे 'तुम क्या ज्ञानी' कहा था? इन्होंने ही क्या 'साकार-निराकार दोनों ही सत्य हैं', कहा था? इन्होंने ही क्या मुझ से कहा था कि ईश्वर ही सत्य और संसार का समस्त ही अनित्य है? इन्होंने ही क्या मुझ से संसार में दासी की भाँति रहने के लिए कहा था?'

ठाकुर श्री रामकृष्ण आनन्द कर रहे हैं और मास्टर को एक-एक बार देख रहे हैं। देखा कि वह अवाक् हुआ बैठा है। तब रामलाल को

सम्बोधन करके बोले, "देख, इसकी उमर कुछ थोड़ी अधिक है कि ना, जभी तनिक गम्भीर है। ये लोग इतनी हँसी-खुशी कर रहे हैं, किन्तु यह चुप करके बैठा है।" मास्टर की वयस् तब सत्ताईस वर्ष की होगी।

बातें करते-करते परम भक्त हनुमान की बात चल पड़ी। हनुमान का एक चित्रपट ठाकुर के कमरे की दीवार पर था। ठाकुर बोले, "देख, हनुमान का क्या भाव है! धन, मान, देह-सुख— कुछ भी नहीं चाहता, केवल भगवान को चाहता है। जब स्फटिक-स्तम्भ से ब्रह्मास्त्र लेकर भागते हैं, उस समय मन्दोदरी अनेक भाँति के फल लेकर दिखाने लगी। सोचा कि फलों के लोभ से नीचे आकर यदि उस अस्त्र को फेंक दे। किन्तु हनुमान भूलने वाले नहीं। वे बोले :

(गीत— श्री राम कल्पतरु)

आमार कि फलेर अभाव?
पेयेछि जे फल, जनम सफल, मोक्ष-फलेर-वृक्ष राम हृदये॥
श्री राम-कल्पतरु मूले बोसे रई—
जखन जे फल वाञ्छा सेइ फल प्राप्त होई।
फलेर-कथा कई, (धनि गो) ओ फल ग्राहक नई,
जाबो तोदेर-प्रतिफल जे दिये॥

[मुझे क्या फलों का अभाव है? मैंने जो फल पाया है, उससे मेरा जन्म सफल हो गया है। मेरे हृदय में मोक्ष-फल के वृक्ष, राम लगे हुए हैं। श्री राम-कल्पतरु के नीचे मैं बैठा रहता हूँ। जब जिस फल की वाञ्छा होती है, वही प्राप्त हो जाता है। हे नारी! तुम जिस फल की बात करती हो, मैं उसका ग्राहक नहीं। मैं तो तुम्हें प्रतिफल ही देकर जाऊँगा।]

(समाधि-मन्दिर में)

ठाकुर यही गाना गा रहे हैं; और फिर वही समाधि! फिर निस्पन्द देह, स्तिमित लोचन, देह स्थिर। बैठे हुए हैं, जैसे फोटोग्राफ में छवि दिखाई देती है। भक्तगण अभी-अभी इतनी हँसी-खुशी कर रहे थे, अब सब ही एक दृष्टि से ठाकुर की उसी अद्भुत अवस्था का निरीक्षण कर रहे हैं। समाधि-अवस्था का मास्टर ने यह द्वितीय बार दर्शन किया है। अनेक क्षण पश्चात् उस अवस्था का परिवर्तन होने लगा। देह शिथिल हो गई। मुख सहास्य हो गया। इन्द्रियाँ फिर दुबारा अपना-अपना कार्य करने लगीं। चक्षुओं के कोनों से आनन्दाश्रु विसर्जन करते-करते ठाकुर 'राम', 'राम'— यह नाम उच्चारण करने लगे!

मास्टर सोचने लगे, यही महापुरुष ही क्या लड़कों के संग हँसी-मज़ाक कर रहे थे? तब तो ये थे बिल्कुल मानो पाँच वर्ष के बालक!

ठाकुर पूर्ववत् प्रकृतिस्थ होकर फिर प्राकृत व्यक्ति की भाँति व्यवहार कर रहे हैं। मास्टर को और नरेन्द्र को सम्बोधन करके बोले, 'तुम दोनों जन अंग्रेज़ी में कुछ बातें करो और विचार करो, मैं सुनूँगा।'

मास्टर और नरेन्द्र दोनों यह बात सुनकर हँस रहे हैं। दोनों जन कुछ-कुछ आलाप करने लगे, किन्तु बंगाली में। ठाकुर के सामने मास्टर का और विचार सम्भव नहीं। उनका तर्क का घर ठाकुर की कृपा से एक प्रकार से बन्द ही हो गया है। फिर किस प्रकार तर्क-विचार करेंगे? ठाकुर ने फिर एक बार ज़िद्द की, किन्तु अंग्रेज़ी में तर्क करना नहीं हुआ।

दशम परिच्छेद

त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं, त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्।
त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे॥ (गीता 11:18)

(अन्तरंगों के संग में— 'मैं कौन'?)

पाँच बज गए हैं। भक्त कई तो अपने-अपने घर चले गए हैं। केवल मास्टर और नरेन्द्र रह गए हैं। नरेन्द्र गाड़ू (लोटा) लेकर हंसपुकुर और झाउतले की ओर मुख धोने गए। मास्टर मन्दिर के इधर-उधर टहल रहे हैं। कुछ क्षण पश्चात् कोठी के निकट हंसपुकुर की ओर आने लगे। देखा, पुकुर के दक्षिण की ओर की सीढ़ियों के ऊपर श्री रामकृष्ण खड़े हैं। ठाकुर कह रहे हैं, "देख और तनिक अधिक-अधिक आया कर। अभी नूतन आने लगा है कि ना! प्रथम आलाप के पश्चात् नए-नए सब ही घना-घना आते हैं, जैसे नूतन पति। (नरेन्द्र और मास्टर का हास्य)। क्यों, आएगा ना?"

नरेन्द्र ब्राह्मसमाज का लड़का है। हँसते-हँसते कहने लगा, "हाँ, चेष्टा करूँगा"।

सब कोठी की राह से ठाकुर के कमरे में आते हैं। कोठी के निकट मास्टर से ठाकुर कहने लगे, "देखो, किसान बाज़ार में बैल खरीदने जाते हैं। वे भले बैल और मन्दे बैल को खूब पहचानते हैं। पूँछ के नीचे हाथ देकर देखते हैं। कोई-कोई बैल पूँछ में हाथ देने पर लेट जाता है। उस बैल को नहीं खरीदते। जो बैल पूँछ में हाथ देने पर तिडिंग-मिडिंग करके (छिनमिना कर) उछल पड़ता है, उसी बैल को पसन्द करते हैं। नरेन्द्र है उसी बैल की जात, भीतर खूब तेज है।"

यह कहकर ठाकुर हँसते हैं।

"और फिर कोई-कोई जन होता है, जैसे भीगा चिड़वा, तेज नहीं, ज़ोर नहीं, गिल-गिल करता है।"

सन्ध्या हो गई। ठाकुर ईश्वर-चिन्तन करते हैं। मास्टर से कहा, "तुम नरेन्द्र के संग बात-चीत करो, मुझे बताना कैसा लड़का है?"

आरती हो गई। मास्टर काफ़ी देर पश्चात् चाँदनी के पश्चिम की तरफ़ नरेन्द्र को मिले। परस्पर बात-चीत होने लगी। नरेन्द्र ने बताया, 'मैं साधारण ब्राह्मसमाज का हूँ, कॉलेज में पढ़ता हूँ'... इत्यादि।

रात हो गई है। मास्टर अब विदा ग्रहण करेंगे। किन्तु जा नहीं पा रहे हैं। तभी नरेन्द्र के निकट से आकर ठाकुर श्री रामकृष्ण को खोजने लगे। उनका गाना सुनकर हृदय-मन मुग्ध हो गया है। बड़ी साध है कि फिर उनके श्रीमुख से और गाना सुनें। खोजते-खोजते देखा, माँ काली के मन्दिर के सम्मुख नाट-मन्दिर के मध्य ठाकुर एकाकी टहल रहे हैं। माँ के मन्दिर के दोनों ओर प्रकाश जल रहा था। बृहत् नाट-मन्दिर में एक ही रोशनी जल रही थी, क्षीण आलोक। आलोक और अन्धकार मिश्रित होने से जैसा होता है, नाट-मन्दिर में उसी प्रकार का दिखाई दे रहा था।

मास्टर ठाकुर का गाना सुनकर अपने को भूल गए हैं। जैसे मन्त्र-मुग्ध सर्प। अब संकुचित भाव से ठाकुर से पूछा, "आज और गाना होगा?" ठाकुर ने सोचकर कहा, "नहीं, आज और गाना नहीं होगा।"

यह कहकर जैसे कुछ याद आ गया, झट बोले, "तो भी एक काम करना। मैं बलराम के घर कलकत्ता जाऊँगा, तुम आना। वहाँ पर गाना होगा।"

मास्टर— जी अच्छा।

श्री रामकृष्ण— तुम जानते तो हो, बलराम बसु को?

मास्टर— जी नहीं।

श्री रामकृष्ण— बलराम बसु; बोस पाड़े में घर है।

मास्टर— जी अच्छा, मैं पूछ लूँगा।

श्री रामकृष्ण *(मास्टर के संग नाट-मन्दिर में टहलते-टहलते)*— अच्छा, तुमसे एक बात पूछता हूँ— मुझ में तुम्हें क्या बोध होता है?

मास्टर चुप रहे। ठाकुर फिर कहते हैं— "तुम्हें कैसा लगता है, मुझे कितने आने ज्ञान हुआ है?"

मास्टर— 'आना' यह बात तो नहीं समझ सकता, तो भी ऐसा ज्ञान, प्रेम, भक्ति वा विश्वास वा वैराग्य वा उदार भाव कभी भी, कहीं भी नहीं देखा।

ठाकुर श्री रामकृष्ण हँसने लगे।

इस प्रकार बात-चीत के बाद मास्टर ने प्रणाम करके विदा ली। सदर फाटक तक आकर फिर कुछ स्मरण हो आया, झट लौट आए। फिर दोबारा नाट-मन्दिर में ठाकुर श्री रामकृष्ण के पास आ उपस्थित हुए।

ठाकुर उसी क्षीण आलोक में टहल रहे थे— एकाकी, नि:संग; पशुराज जैसे अरण्य में अपने-आप एकाकी विचरण करता है। आत्माराम! सिंह अकेला रहना, अकेला टहलना पसन्द करता है! अनपेक्ष! मास्टर अवाक् होकर फिर वही महापुरुष-दर्शन करते हैं।

श्री रामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— फिर लौट आए?

मास्टर— जी, बड़े मनुष्य के घर में जाने देंगे कि नहीं, तभी सोच रहा हूँ, नहीं जाऊँगा। यहाँ पर आकर ही फिर आप को मिलूँगा।

श्री रामकृष्ण— नहीं जी, वैसा क्यों? तुम मेरा नाम लेना। कहना, उनके पास जाऊँगा, वैसा करने पर ही कोई मेरे पास ले आएगा।

मास्टर ने 'जो आज्ञा' कहकर फिर प्रणाम करके विदा ली।

•

द्वितीय खण्ड

श्रीयुक्त केशवचन्द्र सेन के साथ ठाकुर श्री रामकृष्ण का नौका-विहार, आनन्द और कथोपकथन

प्रथम परिच्छेद

(ठाकुर श्री रामकृष्ण— 'समाधि-मन्दिर' में)

आज कोजागर लक्ष्मी-पूजा[1]। शुक्रवार 27 अक्तूबर, 1882 ईसवी। ठाकुर दक्षिणेश्वर की काली-बाड़ी के उसी पूर्व परिचित कमरे में बैठे हुए हैं। विजय गोस्वामी और हरलाल के साथ कथा-वार्त्ता हो रही है। एक जन ने आकर कहा, 'केशव सेन जहाज़ में घाट पर आए हैं।' केशव के शिष्यों ने प्रणाम करके कहा, "महाशय, जहाज़ आया है, आपको चलना होगा। चलिए, तनिक टहल आइए, केशव बाबू जहाज़ में हैं, हमें भेजा है।"

समय चार का हो गया है। ठाकुर नौका द्वारा जहाज़ में चढ़ रहे हैं। विजय संग हैं। नौका में चढ़ते ही बाह्य-शून्य; समाधिस्थ!

---

[1] कोजागर लक्ष्मी-पूजा— आश्विन शुक्ला पूर्णिमा की रात्रि, जिसमें बंगाल में लक्ष्मी-पूजा होती है। उत्तर भारत में दीवाली पर अमावस्या को लक्ष्मी-पूजा होती है। बंगाल में उसके पन्द्रह दिन पूर्व लक्ष्मी-पूजा होती है। दीवाली के दिन वहाँ काली-पूजा करते हैं।

मास्टर जहाज़ पर खड़े हुए यह समाधि-चित्र देखते हैं। वे तीन बजे केशव के जहाज़ में चढ़कर कलकत्ता से आए हैं। बड़ी साध है कि देखें ठाकुर और केशव का मिलन तथा आनन्द, और सुनें उनकी कथा-वार्त्ता। केशव ने अपने साधु-चरित्र और वक्तृता-बल से मास्टर की भाँति अनेक बंगाली युवकों का मन हरण कर लिया है। बहुतों ने ही उन्हें 'परम आत्मीय' मानकर हृदय का प्यार दिया है। केशव अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे व्यक्ति हैं, अंग्रेज़ी दर्शन-साहित्य पढ़ा हुआ है। उन्होंने अनेकों बार देव-देवी-पूजा को 'पौतलिकता' (मूर्त्तिपूजा) कहा है। ऐसे व्यक्ति श्री रामकृष्ण पर भक्ति-श्रद्धा करते हैं, और फिर कभी-कभी दर्शन करने आते हैं— यह तो निश्चय ही विस्मयजनक व्यापार ही है। उनके मन का मेल कहाँ पर है अथवा कैसे हुआ है, यह रहस्य भेदन करने के लिए मास्टर आदि बहुत ही उत्सुक हो रहे हैं। ठाकुर चाहे निराकारवादी तो हैं, किन्तु फिर वे साकारवादी भी तो हैं। ब्रह्म का चिन्तन करते हैं, और साथ ही देव-देवी-प्रतिमा के सम्मुख फूल-चन्दन द्वारा पूजा करते हैं और प्रेम में मग्न होकर नृत्य-गीत करते हैं। खाट-बिछौने पर बैठते हैं। लाल किनारी की धोती, कमीज़, मौजे, जूता आदि पहनते हैं। किन्तु गृहस्थी नहीं करते। समस्त भाव संन्यासी का है, इसीलिए सब लोग परमहंस कहते हैं। इधर केशव निराकारवादी हैं, स्त्री-पुत्र लेकर गृहस्थी करते हैं, अंग्रेज़ी में लेक्चर देते हैं, संवाद-पत्र लिखते हैं, विषय-कर्म करते हैं।

केशव सहित सभी प्रमुख ब्राह्म भक्तगण जहाज़ से ठाकुर-बाड़ी की शोभा-सन्दर्शन करते हैं। जहाज़ के पूर्व की ओर अनतिदूर पक्के घाट और ठाकुर-बाड़ी की चाँदनी है। आरोहियों के बाँई ओर चाँदनी के उत्तर में द्वादश शिव-मन्दिरों में से लगातार छ : मन्दिर हैं , दाहिनी ओर भी छः शिव-मन्दिर हैं। शरत् के नील आकाश-चित्रपट पर भवतारिणी के मन्दिर का चूड़ा और उत्तर की दिशा में पञ्चवटी और झाउ-वृक्षों के शिखर दिखाई दे रहे हैं। बकुलतला के निकट एक नहबतखाना तथा कालीबाड़ी के दक्षिण-प्रान्त में एक और

नहबतखाना है। दोनों नहबतखानों के मध्यवर्त्ती उद्यान-पथ हैं तथा किनारे-किनारे पुष्पवृक्षों की पंक्तियाँ हैं। शरत् के नीलाकाश की नीलिमा जाह्नवी-जल में प्रतिभासित हो रही है। बहिर्जगत् में कोमल भाव है, ब्राह्म भक्तों के हृदय में भी वही कोमल भाव है। ऊपर सुन्दर, सुनील अनन्त आकाश, सम्मुख सुन्दर ठाकुर-बाड़ी, नीचे पवित्रसलिला गंगा, जिसके तीर पर आर्य ऋषिगण भगवान का चिन्तन किया करते थे। अब फिर एक विशेष महापुरुष आ रहे हैं— साक्षात् सनातन धर्म। ऐसा दर्शन मनुष्य के भाग्य में सर्वदा नहीं घटता। ऐसे स्थल पर, समाधिस्थ महापुरुष के ऊपर किसे भक्ति का उद्रेक नहीं होता, किस का पाषाण हृदय नहीं विगलित होता?

द्वितीय परिच्छेद

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय, नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही॥ (गीता 2:22)

('समाधि-मन्दिर' में— आत्मा अविनश्वर— पवहारी बाबा)

नौका आकर लग गई। सब ही ठाकुर श्री रामकृष्ण को देखने के लिए उतावले हैं। भीड़ हो गई है। ठाकुर को आराम से उतारने के लिए केशव अति व्यग्र हैं। बहुत कठिनाई से कुछ होश में लाकर कमरे के भीतर ले जाया जा रहा है। अब भी भावस्थ हैं। एक भक्त के ऊपर भार देकर आ रहे हैं। पाँव ही मात्र हिल रहे हैं। केबिन में प्रवेश किया। केशव आदि भक्तों ने प्रणाम किया, किन्तु कोई होश नहीं। कमरे में एक टेबल और कुछ कुर्सियाँ हैं। एक कुर्सी पर ठाकुर को बिठाया, एक पर केशव बैठे। विजय बैठ गए। और-और भक्त लोग, जिसे जहाँ जगह मिली, ज़मीन पर ही बैठ गए। बहुतों के लिए स्थान नहीं हुआ। वे लोग बाहिर से झाँक कर देखने लगे। ठाकुर बैठकर फिर

समाधिस्थ हो गए। सम्पूर्ण बाह्य-शून्य। सब ही एक दृष्टि से देख रहे हैं।

केशव ने देखा केबिन में बहुत लोग हैं, ठाकुर को कष्ट हो रहा है। विजय उन्हें त्याग करके साधारण ब्राह्मसमाज-भुक्त हो गए हैं, और कन्या के विवाह इत्यादि कार्यों के विरुद्ध अनेक वक्तृताएँ भी दी हैं, जभी विजय को देखकर केशव परेशान हो रहे हैं। केशव आसन त्याग करके उठे, कमरे की खिड़की खोलेंगे।

ब्राह्म भक्तगण एक दृष्टि से देख रहे हैं। ठाकुर की समाधि भंग हुई। अब भी भाव पूर्ण मात्रा में है। ठाकुर अपने अस्फुट स्वर में कह रहे हैं, 'माँ मुझे यहाँ पर क्यों लाई हो? मैं क्या इन लोगों की घेरे के भीतर से रक्षा कर सकूँगा?'

क्या ठाकुर देख रहे हैं कि संसारी व्यक्ति घेरे के भीतर बद्ध हैं, बाहिर नहीं आ सकते— बाहिर का प्रकाश भी देख नहीं सकते। सब के ही विषय-कर्मों में हाथ-पाँव बँधे हुए हैं। केवल घर के अन्दर की वस्तुओं को ही देखते हैं, और मन में सोचते हैं कि जीवन का उद्देश्य केवल देह-सुख और विषय-कर्म— कामिनी और काञ्चन ही है। जभी क्या ठाकुर ऐसी बातें कह रहे हैं, 'माँ मुझ को यहाँ पर क्यों लाई? मैं क्या इनकी घेरे के भीतर से रक्षा कर सकूँगा?'

ठाकुर को क्रमशः होश आ रहा है। गाज़ीपुर के नीलमाधव और ब्राह्म भक्त ने पवहारी बाबा की बात उठाई।

एक ब्राह्म भक्त *(ठाकुर के प्रति)*— महाशय, इन सब ने पवहारी बाबा को देखा है। वे गाज़ीपुर में रहते हैं। आप के जैसे वे एक और जन हैं।

ठाकुर अभी बातें नहीं कर सकते। ईषत् मुस्कुराए।

ब्राह्म भक्त *(ठाकुर के प्रति)*— महाशय, पवहारी बाबा ने अपने कमरे में आपका फोटोग्राफ़ रखा हुआ है।

ठाकुर ईषत् हास्य करके अपनी देह की ओर उंगली दिखाकर बोले, 'खोलटा'! (यह तो 'गिलाफ़' है)।

तृतीय परिच्छेद

यत् सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते।
एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति ॥ — गीता 5:5

(ज्ञानयोग, भक्तियोग और कर्मयोग का समन्वय)

तकिया और उसका गिलाफ़— देही और देह। ठाकुर क्या कह रहे हैं कि देह विनश्वर है, रहेगी नहीं? देह के भीतर जो देही हैं, वे ही हैं अविनाशी। अतएव देह का फोटोग्राफ़ लेने से क्या होगा? देह अनित्य वस्तु है, इसका आदर करने से क्या होगा? अपितु जो अन्तर्यामी भगवान मनुष्य के हृदय के मध्य में विराजमान हैं, उनकी ही पूजा करना उचित है।

ठाकुर तनिक प्रकृतिस्थ हो रहे हैं। वे कह रहे हैं, "तो भी एक बात तो है, भक्त का हृदय उनका आवास-स्थान है। वे हैं तो चाहे सर्वभूतों में, किन्तु भक्त-हृदय में विशेष रूप से हैं। जैसे कोई ज़मींदार अपनी ज़मींदारी के सब स्थानों पर ही रह सकता है। किन्तु वे अमुक बैठकखाने में प्रायः रहते हैं, ऐसा लोग कहते हैं। भक्त का हृदय है भगवान का बैठकखाना।" *(सब का आनन्द)*।

(एक ईश्वर— उनके भिन्न नाम— ज्ञानी, योगी और भक्त)

"ज्ञानी जिसे ब्रह्म कहते हैं, योगीजन उन्हें ही आत्मा कहते हैं और भक्तगण उन्हें ही भगवान कहते हैं।

"एक ही ब्राह्मण। जब पूजा करता है, उसका नाम होता है पुजारी। जब रन्धन करता है, तब बामन (पाचक ब्राह्मण)। जो ज्ञानी है, ज्ञानयोग को पकड़े हुए है, वह नेति-नेति विचार करता है। ब्रह्म यह नहीं, वह नहीं; जीव नहीं, जगत् नहीं। इसी प्रकार विचार करते-करते जब मन स्थिर हो जाता है, मन का लय हो जाता है, समाधि होती है, तब होता है ब्रह्म-ज्ञान। ब्रह्म-ज्ञानी को निश्चित धारणा होती है— ब्रह्म सत्य, जगत् मिथ्या। नाम, रूप— ये सब स्वप्नवत् हैं। ब्रह्म क्या जो है, वह भी तो मुख से नहीं बोला जाता। वे जो व्यक्ति (Personal God) हैं, वह भी बोला नहीं जा सकता।

"ज्ञानीगण उसी तरह कहते हैं, जैसे वेदान्तवादीगण। किन्तु भक्त लोग तो सब अवस्थाओं को ही लेते हैं। जाग्रत अवस्था को भी सत्य कहते हैं। जगत् को स्वप्नवत् नहीं कहते। भक्त कहते हैं, यह जगत् भगवान का ऐश्वर्य है। आकाश, नक्षत्र, चन्द्र, सूर्य, पर्वत, समुद्र, जीव-जन्तु— इन सबको ईश्वर ने बनाया है। यह उनका ही ऐश्वर्य है। वे अन्तर में, हृदय के बीच में हैं और फिर बाहिर भी हैं। उत्तम भक्त कहता है, वे निज ही ये चौबीस तत्त्व— जीव, जगत् हुए हैं। भक्त की साध होती है कि चीनी खाऊँ। वह चीनी होना नहीं पसन्द करता। *(सब का हास्य)*।

"भक्त का भाव कैसा है, जानते हो? हे भगवन्! तुम प्रभु, मैं तुम्हारा दास; तुम माँ, मैं तुम्हारी सन्तान और फिर तुम्हीं मेरे पिता व माता हो। तुम पूर्ण हो, मैं तुम्हारा अंश हूँ। भक्त ऐसी वाणी बोलने की इच्छा नहीं करता कि मैं ब्रह्म हूँ।

"योगी भी परमात्मा का साक्षात्कार करने की चेष्टा करता है। उद्देश्य है, जीवात्मा और परमात्मा का योग। योगी विषयों से मन समेट लेता है और परमात्मा में मन स्थिर करने की चेष्टा करता है। इसीलिये प्रथम अवस्था में निर्जन में स्थिर आसन पर अनन्यमन होकर ध्यान-चिन्तन करता है।

"किन्तु वस्तु एक ही है। नाम-भेद मात्र है। जो ब्रह्म हैं, वे ही आत्मा है, वे ही भगवान हैं। ब्रह्म-ज्ञानी का ब्रह्म, योगी का परमात्मा, भक्त का भगवान।"

चतुर्थ परिच्छेद

त्वमेव सूक्ष्मा त्वं स्थूला व्यक्ताव्यक्तस्वरूपिणी।
निराकारापि साकारा कस्त्वां वेदितुमर्हति ॥
— महानिर्वाणतन्त्र, चतुर्थोल्लास, 15

(वेद और तन्त्र का समन्वय— आद्याशक्ति का ऐश्वर्य)

इधर आग्नेयपोत (जहाज़) कलकत्ता की ओर चल रहा है। कमरे में श्री रामकृष्ण के जो लोग दर्शन और उनकी अमृतमयी वाणी श्रवण कर रहे हैं, जहाज़ चल भी रहा है कि नहीं, यह बात उन्हें पता ही नहीं लग रही। भ्रमर फूल पर बैठने पर फिर क्या भन-भन करता है?

क्रमशः जहाज़ ने दक्षिणेश्वर छोड़ दिया। सुन्दर देवालय की छवि दृश्य-पट से चली गई। पोतचक्र-विक्षुब्ध नीलाभ गंगावारि तरंगायित फेनिल कल्लोलपूर्ण होने लगी। भक्तों के कानों में वह कल्लोल अब नहीं पहुँची। वे लोग मुग्ध होकर देख रहे हैं— सहास्यवदन, आनन्दमय, प्रेमानुरंजित-नयन, प्रियदर्शन अद्‌भुत एक योगी। वे लोग मुग्ध होकर देख रहे हैं, सर्वत्यागी एक प्रेमिक वैरागी। ईश्वर के बिना कुछ नहीं जानते! इधर ठाकुर की बातें चल रही हैं।

श्री रामकृष्ण— वेदान्तवादी ब्रह्म-ज्ञानीगण कहते हैं, सृष्टि, स्थिति, प्रलय, जीव, जगत्— ये सब शक्ति का खेल है। विचार करने लगो,तो ये सब स्वप्नवत् हैं। ब्रह्म ही वस्तु और सब अवस्तु! शक्ति भी स्वप्नवत्, अवस्तु।

"किन्तु हज़ार विचार करो, समाधिस्थ बिना हुए शक्ति के इलाके को छोड़ा ही नहीं जाता। मैं ध्यान कर रहा हूँ , 'मैं चिन्तन कर रहा हूँ— ये समस्त शक्ति के इलाके में हैं, शक्ति के ऐश्वर्य के मध्य हैं।

"जभी तो ब्रह्म और शक्ति अभेद हैं। एक को मान लें तो अन्य को मानना ही पड़ता है। जैसे अग्नि और उसकी दाहिका शक्ति। अग्नि मान लेने पर दाहिका शक्ति माननी ही पड़ती है। दाहिका शक्ति के बिना अग्नि का विचार भी नहीं होता और फिर अग्नि को हटा कर दाहिका शक्ति का विचार भी नहीं होता। सूर्य को निकालकर सूर्य की किरणों का विचार नहीं होता, सूर्य की किरणों को छोड़ कर सूर्य का विचार नहीं होता।

"दूध कैसा है? जी, सफ़ेद-सफ़ेद! दूध को हटा कर दूध का धवलत्व सोचा नहीं जा सकता। और फिर धवलत्व को छोड़ कर दूध की भावना नहीं की जा सकती।

"जभी ब्रह्म को छोड़ शक्ति का, शक्ति को छोड़ ब्रह्म का विचार नहीं होता। नित्य को छोड़ कर लीला की, लीला को छोड़कर नित्य की भावना नहीं होती।

"आद्याशक्ति लीलामयी, सृष्टि-स्थिति-प्रलय करती हैं। उनका ही नाम है काली। काली ही ब्रह्म, ब्रह्म ही काली। एक ही वस्तु। जब वे निष्क्रिय हैं; सृष्टि, स्थिति, प्रलय कोई भी कार्य नहीं करतीं— जब यह बात सोचता हूँ, तब उनको ब्रह्म नाम से कह देता हूँ। जब वे ये सब कार्य करती हैं, तब उनको काली कहता हूँ, शक्ति कहता हूँ। व्यक्ति एक ही— नाम-रूप भेद।

"जैसे 'जल', 'वाटर', 'पानी'। एक तालाब के तीन-चार घाट हैं। एक घाट पर हिन्दू लोग जल पीते हैं, वे कहते हैं 'जल'। एक घाट पर मुसलमान लोग जल पीते हैं, वे कहते हैं 'पानी'। और एक घाट पर अंग्रेज़ लोग पानी पीते हैं, वे कहते हैं 'वाटर'। तीनों ही एक हैं, किन्तु नाम में अन्तर है। उनको कोई कहता है 'अल्लाह', कोई 'गॉड'; कोई

कहता है 'ब्रह्म', कोई 'काली'; कोई कहता है 'राम', 'हरि', 'यीसु', 'दुर्गा'।"

केशव *(सहास्य)*— काली कितनी प्रकार से लीला करती हैं, उसी बात को एक बार कहिए।

(केशव के साथ बातें— महाकाली और सृष्टि-प्रकरण)

श्री रामकृष्ण *(सहास्य)*— वे नाना प्रकार से लीला कर रही हैं। वे ही महाकाली, नित्यकाली, श्मशानकाली, रक्षाकाली, श्यामाकाली हैं। महाकाली और नित्यकाली की कथा तन्त्र में है। जब सृष्टि हुई नहीं थी, चन्द्र-सूर्य-पृथ्वी थी नहीं, निबिड़ अन्धेरा था, तब केवल माँ निराकारा महाकाली थीं— महाकाल के संग विराज रही थीं।

"श्यामाकाली का तो बहुत कोमल भाव है, वराभयदायिनी। गृहस्थ-घर में उनकी पूजा होती है। जब महामारी, दुर्भिक्ष, भूमिकम्प, अनावृष्टि, अतिवृष्टि होती है, तब रक्षाकाली की पूजा करनी चाहिए। श्मशान काली की है संहार-मूर्त्ति। शव, शिवा, डाकिनी,योगिनी के बीच श्मशान में रहती हैं। रुधिर-धारा, गले में मुण्डमाला, कमर में नरहस्त कमरबन्ध। जब जगत्-नाश होता है, महाप्रलय होती है, तब माँ सृष्टि के समस्त बीज जमा करके रख लेती हैं। गृहिणी-माता के पास जैसे एक 'निकचुक' (होचपोच) की हण्डी होती है, और उसी हण्डी में गृहिणी सब प्रकार की वस्तुएँ उठा रखती है।" *(केशव और सब का हास्य)*।

(सहास्य)— "जी हाँ। गृहिणियों के पास ऐसी एक हण्डी होती है। उसमें समुद्रझाग (समुद्रफेन), नील की डली, छोटी-छोटी पोटलियों में बँधे हुए खीरे के बीज, कद्दू के बीज, घिया के बीज इत्यादि— ऐसे सब प्रकार के बीज समेट कर रखे रहते हैं; प्रयोजन होने पर बाहिर निकाल लेती हैं। माँ ब्रह्ममयी सृष्टि-नाश के समय इसी प्रकार सब बीज समेट कर रख लेती हैं। सृष्टि के बाद आद्याशक्ति

जगत् के भीतर ही रहती हैं। जगत् प्रसव करती हैं और फिर जगत् के मध्य ही रहती हैं। वेद में 'ऊर्णनाभि' की बात है— मकड़ी और उसका जाला। मकड़ी भीतर से जाला निकालती है, और फिर उसी जाले के ऊपर रहती है। ईश्वर जगत् का आधार और आधेय दोनों ही हैं।"

(काली ब्रह्म— काली निर्गुणा और सगुणा)

"काली क्या काली हैं? दूर हैं, तभी काली दिखती हैं, जान लेने पर फिर काली नहीं।

"आकाश दूर से नीलवर्ण दिखाई देता है। निकट से देखो, कोई भी रंग नहीं। समुद्र का जल दूर से नीला लगता है, निकट जाकर हाथ में लेकर देखो, कोई रंग नहीं।" यह बात कह कर प्रेमोन्मत्त होकर श्री रामकृष्ण गाना गाने लगे—

मा कि आमार कालो रे।
कालरूप दिगम्बरी, हृदपद्म करे आलो रे॥

[मेरी माँ क्या काली हैं भाई? काल रूप दिगम्बरी वे हृदय कमल को आलोकित कर रही हैं।]

पंचम परिच्छेद

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत्।
मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम्॥— गीता 7 : 13

(यह संसार क्यों है?)

श्री रामकृष्ण *(केशव आदि के प्रति)*— बन्धन और मुक्ति, दोनों के कर्ता ही वे। उनकी माया से संसारी जीव कामिनी-काञ्चन में बद्ध

है, और फिर उनकी दया होने से मुक्त हो जाता है। वे ही हैं भवबन्धन की बन्धन-हारिणी-तारिणी।

यह कह कर गन्धर्व-अनिन्दित कण्ठ से रामप्रसाद का गाना गाने लगे—

श्यामा मा उड़ाच्छो घुड़ि (भव संसार बाज़ार माझे)
(ओई जे) आशा वायु भरे उड़े, बाँधा ताहे माया दड़ि॥
या काक गण्डि मण्डि गांथा, पंजरादि नाना नाड़ी।
घुड़ि स्वगुणे निर्माण करा, कारिगिरि बाड़ाबाड़ि॥
विषये मेजेछो मांजा, कर्कशा होयेछे दड़ि।
घुड़ि लक्षेर दुटा एकटा काटे, हेसे देओ मा हात चापड़ि॥
प्रसाद बोले दक्षिणा बातासे घुड़ि जाबे उड़ि।
भव संसार समुद्रपारे पड़वे गिये ताड़ाताड़ि॥

[ओ श्यामा माँ! तुम संसार के भरे बाज़ार में गुड्डी उड़ा रही हो। गुड्डियाँ आशारूप वायु भरकर मायारूप डोर से बँधी हुई हैं। वे खूब ऊँची उड़ रही हैं। उनके फ्रेम, मानव-पिंजर, नाना कागज़ों और लेही से जुड़े हुए हैं तथा अपने तीनों गुणों से बने हुए हैं। किन्तु इनकी यह सब कारीगरी दिखावे के लिए है। पतंग की डोर पर आपने संसारीपन का माँजा लगा दिया है ताकि एक-एक धागा अधिक तेज़ और पक्का हो जाए। लाखों पतंगों, गुड्डियों में से एक दो ही कटती हैं और उन्हें देखकर आप हँसती हुई तालियाँ बजाती हैं। रामप्रसाद कहते हैं, दक्षिण पवन में कटी हुई गुड्डी उड़ी जा रही है और वह तुरन्त ही संसार-समुद्र के पार गिर जाएगी।]

"वे लीलामयी हैं! संसार उनकी लीला है। वे इच्छामयी हैं, आनन्दमयी हैं। लाखों में से एक जन को मुक्ति देती हैं।"

ब्राह्म भक्त— महाशय, वे चाहें तो सब को मुक्त कर सकती हैं। क्यों फिर हम लोगों को संसार में बद्ध करके रखा हुआ है?

श्री रामकृष्ण— उनकी इच्छा। उनकी इच्छा है कि यह सब कुछ लेकर वे खेल करें। धाई को पहले ही छू लें तो दौड़ा-दौड़ी नहीं होती। सब ही यदि छू लें, तो खेल कैसे चले? सब ही छू लेते हैं तो धाई असन्तुष्ट हो जाती है। खेल चलता रहे, तो धाई को खुशी होती है। जभी तो लाखों में से एक-दो को ही काट कर, ताली बजाकर प्रसन्न होती हैं। *(सब का आनन्द)*

"उन्होंने मन को आँख का इशारा करके कह दिया है कि जाओ, अब जाकर संसार करो। मन का क्या दोष है? वे यदि फिर दया करके मन को बदल दें, तब फिर विषय-बुद्धि के हाथ से मुक्ति हो जाती है। तब फिर उनके पादपद्मों में मन लग जाता है।"

ठाकुर संसारी के भाव में माँ के निकट अभिमान करके गाना गाते हैं—

आमि ओई खेदे खेद करी।
तुमि माता थाकते आमार जागा घरे चुरि॥
मने करि तोमार नाम करि, किन्तु समये पासरि।
आमि बुझेछि जेनेछि, आशय पेयेछि ए सब तोमारि चातुरी॥
किछु दिले ना पेले ना, निले ना खेले ना से दोष कि आमारि।
यदि दिते पेते, निते खेते, दिताम खाउयाताम तोमारि॥
यश, अपयश, सुरस, कुरस सकल रस तोमारि।
(ओ गो) रसे थेके रसभंग केनो करो रसेश्वरी॥
प्रसाद बोले मन दियेछो, मनेरे आंखि ठारि।
(ओ मा) तोमार सृष्टि दृष्टि पोड़ा मिष्टि बोले घुरि॥

[माँ, मुझे यही बड़ा खेद है कि तुम जैसी माता के रहते हुए और मेरे जागते हुए भी मेरे घर में डाका पड़ रहा है। बहुत बार सोचता हूँ कि तुम्हारा नाम करूँ, करूँ; किन्तु समय आने पर भूल जाता हूँ। मैंने समझ लिया है, जान लिया है तथा मुझे हृदय में बोध हो गया है कि यह सब तुम्हारी ही चातुरी है। तुमने मुझे दिया नहीं, तो तभी तुम्हें नहीं मिला। तुमने लिया नहीं, तो खाया नहीं। यह दोष क्या मेरा है? यदि तुमने मुझे दिया होता,

तो तुम अवश्य प्राप्त करतीं और तुम्हें मैं देता और खिलाता। यश, अपयश, सुरस, कुरस सब ही रस तो तुम्हारे ही हैं। हे रसेश्वरी! तुम इन रसों में रहकर रस-भंग क्यों करती हो? रामप्रसाद कहते हैं कि तुमने मन तो दिया है, किन्तु मन को अपनी आँख का इशारा कर दिया है। तभी तो यह दग्ध संसार नाशवान होते हुए भी शाश्वत-जैसा मीठा लगने लगा है और मैं घूम रहा हूँ।]

"उनकी ही माया में भूल कर मनुष्य संसारी बना है। प्रसाद कहता है, मन दिया है, मन की ही आँख के इशारे से मैं चल रहा हूँ।"

(कर्मयोग के सम्बन्ध में शिक्षा— संसार और निष्काम कर्म)

ब्राह्म भक्त— महाशय, सर्वस्व त्याग के बिना क्या ईश्वर की प्राप्ति नहीं होगी?

श्री रामकृष्ण *(सहास्य)*— नहीं जी, तुम लोगों को सब कुछ क्यों त्याग करना होगा? तुम लोग इसी तरह आनन्द में खूब अच्छे हो। सा रे मा पर (तोमरा रसे बोसे बेश आछो, सारे माते।) *(सब का हास्य)*। तुम ठीक हो। नक्स का खेल जानते हो? मैं अधिक काटने से जल गया हूँ। तुम बड़े होशियार हो। कोई दस में हो, कोई छ: में हो, कोई पाँच में हो। अधिक नहीं काटा है, इसीलिए मेरी तरह जले नहीं। खेल चल रहा है— यही तो सुन्दर है। *(सब का हास्य)*।

"सत्य कहता हूँ तुम लोग गृहस्थ-संसार कर रहे हो, इसमें दोष नहीं है। फिर भी ईश्वर की ओर मन रखना होगा। वैसा न होने से नहीं होगा। एक हाथ से कर्म करो और एक हाथ से ईश्वर को पकड़े रहो। कर्म समाप्त होने पर दोनों हाथों से ईश्वर को पकड़ लोगे।

"मन की ही तो बात है। मन से ही बद्ध, मन से ही मुक्त। मन को जिस रंग में रंगोगे, उसी रंग में रंगा जाएगा। जैसे धोबी का धुला हुआ सफ़ेद कपड़ा। लाल रंगवाओ लाल, नीला रंगवाओ नीला, हरा रंग

रंगवाओ हरा। जिस रंग में डालो, वही रंग ही चढ़ जाता है। देखो न, यदि तनिक अंग्रेज़ी पढ़ो, तो झट मुख में अंग्रेज़ी की बात ही आ जाती है। फुट-फाट, इट-मिट *(सब का हास्य)*। और साथ ही पैर में बूट-जूता, सीटी बजाकर गाना गाना— ये सब भाव आ जाते हैं। और फिर यदि पण्डित संस्कृत पढ़ता है तो झट से श्लोक झाड़ने लगता है। मन को यदि कुसंग में रखो, तो उसी प्रकार की बात-चीत, विचार हो जाता है। यदि भक्त के संग रखो तो ईश्वर-चिन्तन, हरि-कथा इत्यादि होने लगेगी।

"मन की ही तो बात है। एक तरफ़ स्त्री, एक ओर सन्तान। एक को एक तरह से, सन्तान को और एक भाव से देखता है। किन्तु मन एक ही है।"

षष्ठ परिच्छेद

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥— गीता 18 : 66

(ब्राह्मणों को उपदेश— ईसाई धर्म, ब्राह्मसमाज और पापवाद)

श्री रामकृष्ण *(ब्राह्म भक्तों के प्रति)*— मन से ही बद्ध, मन से ही मुक्त। मैं मुक्त पुरुष हूँ, गृहस्थ में रहूँ, या वन में ही रहूँ; मेरा क्या बन्धन? मैं ईश्वर की सन्तान हूँ, राजाधिराज का लड़का हूँ। मुझ को फिर कौन बाँधेगा? यदि साँप काटे और ज़ोर से कहा जाए कि विष नहीं है, तो विष छोड़कर चला जाता है। वैसे ही 'मैं बद्ध नहीं हूँ', 'मैं मुक्त हूँ'— यह बात ज़ोर से बोलते-बोलते वैसा ही हो जाता है, मुक्त हो जाता है।

(पूर्वकथा, श्री रामकृष्ण का बाइबल श्रवण, कृष्णकिशोर का विश्वास)

"ईसाइयों की एक पुस्तक किसी ने दी थी, मैंने पढ़कर सुनाने के लिए कहा। उसमें केवल 'पाप ही पाप' है। (केशव के प्रति) तुम्हारे ब्राह्मसमाज में भी केवल 'पाप' है। जो व्यक्ति 'मैं बद्ध' , 'मैं बद्ध' बार-बार कहता है, वह साला बद्ध ही हो जाता है। जो रात-दिन 'मैं पापी', 'मैं पापी', ऐसा कहता रहता है, वह वैसा ही हो जाता है।

"ईश्वर के नाम पर ऐसा विश्वास होना चाहिए— 'मैंने उनका नाम किया है, क्या मेरा अब भी पाप रहेगा? मुझे पाप क्या? मेरा फिर बन्धन क्या?"

"कृष्णकिशोर परम हिन्दू सदाचार-निष्ठ ब्राह्मण है। वह वृन्दावन गया था। एक दिन भ्रमण करते-करते उसे प्यास लगी। एक कुएँ के पास जाकर देखा, वहाँ पर एक व्यक्ति खड़ा था। उससे कहा, अरे भाई, तुम मुझे एक लोटा पानी दे सकते हो; तेरी जात क्या है? उसने कहा, पंडित जी, मैं छोटी जात का हूँ— मोची।' कृष्णकिशोर ने कहा, 'तो कह, शिव। ले, अब जल निकाल दे।'

"भगवान का नाम लेने पर मनुष्य की देह, मन सब शुद्ध हो जाते हैं।

"केवल पाप और नरक, ऐसी ही बातें क्यों? एक बार कहो, जो मैंने गलत काम किया है, फिर नहीं करूँगा; और उनके नाम पर विश्वास करो।"

ठाकुर प्रेमोन्मत्त होकर नाम-माहात्म्य गाने लगे—

आमि दुर्गा दुर्गा बोले मा यदि मरि।
ऑखेरे ए दीने ना तारो केमने, जाना जाबे गो शंकरी॥[1]

"मैंने माँ से केवल भक्ति माँगी थी, हाथ में फूल लेकर माँ के पादपद्मों में दिए थे और कहा था, 'माँ, यह लो अपना पाप, यह लो अपना पुण्य, मुझे शुद्धा भक्ति दो; यह लो अपना ज्ञान, यह लो अपना

---

[1] अर्थ के लिए कथामृत प्रथम भाग, प्रथम खण्ड, सप्तम परिच्छेद देखिए।

अज्ञान, मुझे शुद्धा भक्ति दो; यह लो अपनी शुचि, यह लो अपनी अशुचि, मुझे शुद्धा भक्ति दो; यह लो अपना धर्म, यह लो अपना अधर्म, मुझे शुद्धा भक्ति दो। "

(ब्राह्म भक्तों के प्रति)— रामप्रसाद का एक गाना सुनो:—

आय मन बेड़ाते जाबि।
काली कल्पतरुमूले रे (मन) चारि फल कुड़ाए पाबि॥
प्रवृत्ति निवृत्ति जाया (तार) निवृत्ति रे संगे लोबि।
ओ रे विवेक नामे तार बेटा, तत्त्व कथा ताय सधाबि॥
शुचि अशुचिरे लये दिव्य घरे कबे शुबि।
जखन दुई सतीने, पिरित हबे तखन श्यामा माके पाबि॥
अहंकार अविद्या तोर, पिता माताय ताडिए दिबि।
यदि मोह गर्ते टेने लय, धैर्य खौँटा ध'रे रबि॥
धर्माधर्म दुटो अजा, तुच्छ खौँटाय बैँधे थुबि।
यदि ना माने निषेध, तबे ज्ञान खड्गे बलि दिबि॥
प्रथम भार्यार सन्ताने रे दूर होते बुझाइबि।
यदि न माने प्रबोध, ज्ञानसिंधु माझे डुबाइबि॥
प्रसाद बोले एमन होले कालेर काछे जबाब दिबि।
तबे बापु बाछा बापेर ठाकुर, मनेर मत मन होबि॥[1]

"गृहस्थ में ईश्वर-लाभ होगा क्यों नहीं? राजा जनक को हुआ था। यह संसार 'धोखे की टट्टी' है, प्रसाद ने कहा था, उनके चरण-कमलों में भक्ति प्राप्त कर लेने पर—

एइ संसारइ मजार कुटि, अमि खाइ-दाइ आर मजा लुटि।
जनक राजा महातेजा तार बा किसेर छिलो त्रुटि।
से जे एदिक ओदिक दुदिक रेखे, खेये छिले दूधेर बाटि।

(सब का हास्य)

[यही संसार ही मज़े की कुटी बन जाती है। मैं खाता-पीता और मौज करता हूँ। राजा जनक महातेजशाली थे। उनमें किस (बात)

---

[1] अर्थ के लिए देखिए नवम खण्ड, द्वितीय परिच्छेद

की त्रुटि (कमी) थी? इधर-उधर की दोनों दिशाएँ रखते हुए दूध के कटोरे पीते थे।]

(ब्राह्मसमाज और जनक राजा,
गृहस्थ का उपाय, निर्जन में वास और विवेक)

"किन्तु झट से राजा जनक नहीं बना जाता। राजा जनक ने निर्जन में बहुत तपस्या की थी। गृहस्थ में रहकर भी कभी-कभी निर्जन में वास करना चाहिए। घर से बाहिर अकेले जाकर यदि भगवान के लिए तीन दिन भी रोया जाए, वह भी अच्छा है। यहाँ तक कि अवसर मिलते ही एक दिन भी निर्जन में उनकी चिन्ता यदि की जाए, वह भी अच्छा है। लोग स्त्री-पुत्र के लिए घड़ों रोते हैं। ईश्वर के लिए कौन रोता है, बोलो? निर्जन में रहकर बीच-बीच में भगवान के लिए साधन करना चाहिए। संसार के भीतर विशेष कर्मों के बीच रहकर प्रथमावस्था में मन स्थिर करने में बहुत से व्याघात (बाधाएँ) होते हैं। जैसे फुटपाथ के वृक्ष जब पौधे होते हैं,घेरा न लगाने से बकरी-गाय खा जाते हैं। प्रथमावस्था में घेरा लगाना चाहिए। तना मोटा होने पर फिर घेरे का प्रयोजन नहीं रहता। तब तने के साथ हाथी बाँध देने पर भी कुछ नहीं होता।

"रोग तो विकार है। और फिर जिस कमरे में विकार का रोगी है; उसी स्थान पर पानी का घड़ा और इमली का अचार है। यदि विकार-रोगी को ठीक करना चाहो, तो जगह बदलनी होगी। संसारी जीव विकार का रोगी है, विषय जल का मटका है, विषय-भोग-तृष्णा, जल-तृष्णा है। अचार-इमली याद आते ही मुख में जल भर आता है। इन्हें निकट नहीं लाना चाहिए। ऐसी वस्तुएँ तो घर में होती ही हैं— स्त्री-संग आदि। जभी तो निर्जन में चिकित्सा आवश्यक है।

"विवेक-वैराग्य प्राप्त करके गृहस्थ करना चाहिए। संसार-समुद्र में काम-क्रोध आदि मगरमच्छ रहते हैं। हल्दी देह पर मलकर जल में

उतरने पर मगरमच्छ का भय नहीं रहता। विवेक-वैराग्य हल्दी है। सत्-असत् विचार का नाम है विवेक। ईश्वर ही सत्, नित्य वस्तु। और सब है असत्, अनित्य— दो दिनों के लिए। यही तो है बोध और ईश्वर पर अनुराग। उनके ऊपर आकर्षण— प्यार। गोपियों का कृष्ण के ऊपर ऐसा ही आकर्षण था। एक गाना सुनो—

(और उपाय— ईश्वर पर अनुराग— गोपियों जैसा आकर्षण अथवा स्नेह)

बंशी बाजिलो ओई विपिने।
(आमार तो ना गेले नय) (श्याम पथे दाँड़ाये आछे)
तोरा जाबि कि ना जाबि बल गो॥
तोदेर श्याम कथार कथा। आमार श्याम अन्तरेर व्यथा (सोइ)॥
तोदेर बाजे बांशी कानेर काछे। बांशी आमार बाजे हृदय माझे॥
श्यामेर बान्शी बाजे, बेराओ राई। तोमा बिना कुँजेर शोभा नाई॥

[उस वन में बंसी बजी। मेरा तो बिना जाए चलेगा नहीं। श्याम रास्ते में खड़े हैं। तुम लोग सब बताओ, जाओगी अथवा नहीं? तुम्हारा श्याम तो मुख की बात है। मेरा श्याम मेरे अन्तर् की व्यथा है। तुम्हारे तो कान के पास बंसी बजती है। मेरे हृदय में बंसी बजती है— हे राधा! बाहिर निकलो, श्याम की बंसी बज रही है। तुम्हारे बिना कुञ्ज की शोभा नहीं हो रही है।]

ठाकुर ने अश्रुपूर्ण नयनों से इस गाने को गाते-गाते केशव आदि भक्तों से कहा, "राधा-कृष्ण मानो चाहे न मानो, इस आकर्षण को तो लो। भगवान के लिए किस को इस प्रकार की व्याकुलता होती है? चेष्टा करो। व्याकुलता रहने पर ही उनकी प्राप्ति हो जाती है।"

सप्तम परिच्छेद

संनियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः॥— गीता 12 : 4

(श्रीयुक्त केशव सेन के साथ नौका-विहार— सर्वभूतहिते रत)

भाटा हुआ है। आग्नेयपोत (जहाज़) कलकत्ता की ओर तेज़ चाल से चल रहा है। पुल पार करके कम्पनी बाग की ओर थोड़ा-सा टहला कर लाने के लिए कप्तान को हुकुम हुआ था, इसलिए। कितनी दूर तक जहाज़ गया था, बहुतों को ज्ञान ही नहीं है— वे लोग श्री रामकृष्ण की बातें सुनने में मग्न हो गए थे। समय किधर को जा रहा है, होश नहीं।

अब मुड़ि-नारिकेल (नारियल-मुरमुरा) खाया जा रहा है। सबने ही थोड़ा-थोड़ा अपने-अपने पल्लों में ले लिया और खा रहे हैं। आनन्द की हाट है। केशव मुड़ि का आयोजन करके लाए हैं। इस अवसर पर ठाकुर ने देखा, विजय और केशव दोनों ही संकुचित भाव से बैठे हैं। अब जैसे दो अबोध लड़कों का मेल करावाएँगे— सर्वभूतहिते रत।

श्री रामकृष्ण *(केशव के प्रति)*— अरे हाँ। यह विजय आए हैं। तुम लोगों का झगड़ा-विवाद तो ऐसे है जैसे शिव और राम का युद्ध (हास्य)। राम के गुरु हैं शिव। युद्ध भी हुआ, दोनों में मेल भी हो गया। किन्तु शिव के भूत-प्रेतों और राम के बन्दरों में 'किचिमिच' झगड़ा फिर और नहीं मिटता। *(उच्च हास्य)*।

"अपने ही जन तो हैं, इनमें ऐसे होता ही रहता है। लव-कुश ने राम के साथ युद्ध किया था और फिर पता है, माँ-बेटी ने पृथक्-पृथक् मंगलवार किया था। मानो माँ का मंगल और बेटी का मंगल दोनों अलग-अलग हैं। इसके मंगल से उसका मंगल होता है, उसके मंगल से इसका मंगल होता है। वैसे ही तुम लोगों का है। इसकी एक समाज है और उसे एक समाज चाहिए। *(सब का हास्य)*। फिर भी ऐसा होना

चाहिए ही। यदि कहो भगवान स्वयं लीला करते हैं, तो वहाँ जटीला-कुटीला का क्या प्रयोजन है? जटीला-कुटीला न हो तो लीला-वृद्धि नहीं होती। *(सब का हास्य)*। जटीला-कुटीला के बिना 'रगड़' (मज़ा) नहीं होती। *(उच्च हास्य)*।

"रामानुज थे विशिष्टाद्वैतवादी। उनके गुरु थे अद्वैतवादी। अन्त में दोनों का अमेल हो गया। गुरु-शिष्य परस्पर मत-खण्डन करने लगे। ऐसा होता ही रहता है। कुछ भी हो, तो भी है तो अपना जन।"

अष्टम परिच्छेद

पितासि लोकस्य चराचरस्य त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान्।
न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो, लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभाव॥
— गीता 11 : 43

(केशव को शिक्षा— गुरुगिरि और ब्राह्मसमाज— गुरु सच्चिदानन्द)

सब आनन्द मना रहे हैं। ठाकुर केशव से कह रहे हैं— "तुम प्रकृति देखकर शिष्य नहीं बनाते, जभी तो इस प्रकार टुकड़े-टुकड़े हो रहे हैं।

"मनुष्य देखने में तो सब एक जैसे होते हैं, किन्तु प्रकृति भिन्न-भिन्न होती है। किसी में सत्त्वगुण अधिक होता है, किसी में रजोगुण अधिक, किसी में तमोगुण। गुजिया (पुलि) देखने में सब एक ही एक सी लगती हैं। किन्तु किसी में खोये का पूर, किसी के भीतर नारियल का कस, किसी में उड़द की दाल का पूर होता है। *(सब का हास्य)*।

"मेरा भाव क्या है, जानते हो? मैं खाता-पीता हूँ और सब माँ जानती हैं। तीन शब्दों से मेरे शरीर पर काँटा चुभता है— गुरु, कर्त्ता और पिता।

"गुरु तो एक सच्चिदानन्द हैं। वे ही शिक्षा देंगे। मेरा सन्तान-भाव है। मनुष्य-गुरु तो लाखों मिल जाते हैं। सब ही गुरु होना चाहते हैं। शिष्य कौन बनना चाहता है?

"लोक-शिक्षा देना बड़ा कठिन है। यदि वे सामने हों और आदेश दें, तो फिर हो सकता है। नारद, शुकदेव आदि को आदेश हुआ था। शंकर को हुआ था। आदेश बिना हुए कौन तुम्हारी बात सुनेगा? कलकत्ता के आन्दोलन को तो जानते ही हो! जब तक लकड़ी जलती है, दूध फट से उबल पड़ता है। लकड़ी खींच लेने पर कहीं कुछ भी नहीं। कलकत्ता के लोग तो झोंकी हैं। अभी यहाँ पर कुआँ खोदने लगे। कारण, जल चाहिए। यहाँ पर पत्थर आ गया तो छोड़ दिया; और एक स्थान पर खोदना आरम्भ किया। वहाँ पर रेत आ गया, छोड़ दिया; और एक जगह खोदना आरम्भ कर दिया— इसी प्रकार।

"और फिर मन में आदेश होने से भी नहीं होता। वे सच-मुच ही सामने आते हैं, और बातें करते हैं। तब आदेश हो सकता है। उस बात का कितना ज़ोर होता है! पर्वत हिल जाता है। केवल लेक्चर देना! कुछ दिन लोग सुनेंगे। फिर भूल जाएँगे। उस वाणी के अनुसार कार्य नहीं करेंगे।"

(पूर्व-कथा— भाव-चक्षु में हलदार पुकुर-दर्शन)

"उस देश में हलदार पुकुर नामक एक तालाब है। वहाँ किनारे नित्य प्रातः लोग बाह्य कर दिया करते थे। जो प्रातः आते, वे लोग खूब गालियाँ आदि देते। फिर दूसरे दिन भी वैसा ही होता। बाह्य बन्द नहीं होता। *(सब का हास्य)*। तब लोगों ने कम्पनी से कहा। उन्होंने एक चपरासी भेज दिया। उस चपरासी ने एक नोटिस लगा दिया, 'बाह्य मत करो'। तब सब बन्द हो गया। *(सब का हास्य)*।

"जो व्यक्ति शिक्षा देगा, उसके पास चपरास चाहिए। उसके बिना हुए हँसी की बात हो जाती है। अपनी ही (शिक्षा) नहीं होती,

फिर औरों को शिक्षा देना! अन्धे का अन्धे को रास्ता दिखाने ले जाना। *(हास्य)*। हित में विपरीत (भलाई में बुराई)। भगवान-लाभ होने पर अन्तर्दृष्टि हो जाती है। तब रोग क्या है, समझ में आता है। उपदेश दिया जाता है।"

(अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते)

"आदेश न रहने से 'मैं लोक शिक्षा देता हूँ'— यह अहंकार हो जाता है। अहंकार अज्ञान से होता है। अज्ञान से यह बोध हो जाता है कि मैं कर्त्ता हूँ। ईश्वर कर्त्ता हैं, ईश्वर ही सब कर रहे हैं, मैं कुछ नहीं करता— यह बोध हो जाए तो वह जीवन्मुक्त है। 'मैं कर्त्ता', 'मैं कर्त्ता'— यह बोध रहने से ही तो समस्त जितना भी है, सब दुःख, अशान्ति।"

नवम परिच्छेद

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः॥— गीता 3 : 19

(केशव आदि ब्राह्म भक्तों को कर्मयोग के सम्बन्ध में उपदेश)

श्री रामकृष्ण *(केशवादि भक्तों के प्रति)*— तुम कहते हो जगत् का उपकार करना। जगत् क्या इतना-सा ही है, जी? फिर तुम कौन हो जो जगत् का उपकार करोगे? उनका साधन द्वारा दर्शन करो। उनको प्राप्त करो। वे शक्ति देंगे, तब फिर सब का हित कर सकते हो; नचेत् नहीं।

एकजन भक्त— जितने दिन वे न प्राप्त हों, उतने दिन क्या सब कर्म-त्याग करें?

श्री रामकृष्ण— नहीं, कर्म त्याग क्यों करोगे? ईश्वर का चिन्तन, उनका नाम-गुण-गान, नित्यकर्म— ये समस्त करने होंगे।

ब्राह्म भक्त— संसार के कर्म? विषय कर्म?

श्री रामकृष्ण— हाँ, वह भी करोगे, गृहस्थ चलाने के लिए जितना प्रयोजनीय है। किन्तु रो-रो कर निर्जन में उनके निकट प्रार्थना करनी होगी कि जिससे ये समस्त कर्म निष्काम भाव से किए जाएँ; और कहोगे, 'हे ईश्वर, मेरे विषय-कर्म कम कर दो, क्योंकि हे प्रभु, देखता हूँ कि अधिक कर्मों में जड़ित हो जाने पर तुम्हें भूल जाता हूँ। मैं मन में सोचता हूँ, निष्काम कर्म कर रहा हूँ, किन्तु सकाम हो जाता है।' संभवतः दान, सदाव्रत अधिक करने लगने पर लोकमान्य होने की इच्छा हो गई।

(पूर्वकथा— शम्भु मल्लिक के साथ दान आदि कर्मकाण्ड की बात)

"शम्भु मल्लिक ने हस्पताल, औषधालय, स्कूल, रास्ते, तालाब की बात कही थी। मैंने कहा, सामने जो पड़ गया, जिसके किए बिना नहीं चलता, उसको ही निष्काम होकर करना चाहिए। इच्छा करके अधिक कार्य में लगना अच्छा नहीं, ईश्वर को भूल जाता है। कालीघाट पर दान ही करने लग गया, काली-दर्शन तो फिर हुआ ही नहीं। *(हास्य)*। पहले जिस प्रकार से धक्काधुक्की खाकर काली-दर्शन करना चाहिए, तत्पश्चात् दान जितना भी करो या न करो। इच्छा हो तो खूब करो। ईश्वर-लाभ के लिए ही तो कर्म होता है। शम्भु को तभी तो कहा था, यदि ईश्वर सामने आएँ, उन्हें क्या कहोगे? बहुत से हस्पताल, डिस्पेन्सरियाँ बना दो? *(हास्य)*। भक्त कभी भी वह बात नहीं कहता। बल्कि कहेगा— ठाकुर, मुझे अपने पादपद्मों में स्थान दो। अपने संग में सर्वदा रखो। पादपद्मों में शुद्धा भक्ति दो।

"कर्मयोग बड़ा कठिन है। शास्त्र में जो कर्म करने के लिए कहा है, कलियुग में करना बड़ा कठिन है। अन्नगत प्राण हैं। अधिक कर्म चलता

नहीं। ज्वर होने पर कविराजी चिकित्सा करने पर, रोगी ही जो इधर हो जाता है। अधिक देर नहीं सह सकता। अब डी० गुप्त चाहिए। कलियुग में भक्तियोग, भगवान का नाम-गुण-गान और प्रार्थना चाहिए। भक्तियोग ही युगधर्म है।

(ब्राह्म भक्तों के प्रति)— "तुम लोगों का भी भक्तियोग है, तुम हरिनाम करते हो, माँ का गुण-गान करते हो, तुम लोग धन्य हो! तुम्हारा भाव तो सुन्दर है, वेदान्तवादियों की भाँति तुम लोग जगत् को स्वप्नवत् नहीं कहते। वैसे ब्रह्म-ज्ञानी तुम लोग नहीं हो, तुम भक्त हो, तुम ईश्वर को व्यक्ति (Person) कहते हो। यह भी सुन्दर है। तुम भक्त हो। व्याकुल होकर पुकारने पर उन्हें अवश्य प्राप्त करोगे।"

दशम परिच्छेद

(सुरेन्द्र का घर, नरेन्द्र प्रभृति के संग में)

अब जहाज़ कोयलाघाट पर लौट कर आ गया। सब उतरने का प्रयत्न करने लगे। कमरे से बाहिर आकर देखते हैं, कोजागर का पूर्ण चन्द्र हँस रहा है। भागीरथी-वक्ष कौमुदी की लीला-भूमि बना हुआ है। ठाकुर श्री रामकृष्ण के लिए गाड़ी मँगवाई गई। कुछ देर के बाद मास्टर और दो-एक भक्तों के साथ ठाकुर गाड़ी पर चढ़े। केशव का भतीजा— नन्दलाल भी गाड़ी पर बैठे, ठाकुर के संग थोड़ी दूर जाएँगे।

गाड़ी में सबके बैठ जाने पर ठाकुर ने पूछा, कहाँ हैं, वे कहाँ हैं? अर्थात् केशव कहाँ हैं? देखते ही देखते केशव अकेले आ उपस्थित हुए; मुख पर हँसी। आते ही पूछा, कौन-कौन इनके संग जाएगा? सब के गाड़ी पर बैठ जाने के पश्चात् केशव ने भूमिष्ठ हो ठाकुर की पदधूलि ग्रहण की। ठाकुर ने भी सस्नेह सम्भाषण करके विदा दी।

गाड़ी चलने लगी। अंग्रेज़ मुहल्ला। सुन्दर राजपथ। पथ के दोनों ओर सुन्दर-सुन्दर अट्टालिकाएँ। पूर्णचन्द्र उदय हुए हैं। अट्टालिकाएँ मानो विमल-शीतल चन्द्र-किरणों में विश्राम कर रही हैं। मुख्य द्वारों पर गैस के लैम्प, कमरों में दीपमाला, स्थान-स्थान पर हारमोनियम-पियानो के साथ अंग्रेज़ महिलाएँ गाना कर रही हैं। ठाकुर आनन्द से हास्य करते-करते जा रहे हैं। हठात् बोले, "मुझे जल की प्यास लगी है, क्या होगा?" क्या किया जाए? नन्दलाल इण्डिया क्लब के निकट गाड़ी ठहरा कर ऊपर जल लेने गए और काँच के गिलास में जल ले आए। ठाकुर ने सहास्य पूछा, "गिलास को धोया तो?" नन्दलाल ने कहा, "हाँ।" ठाकुर ने उसी गिलास में जल पी लिया।

बालक का स्वभाव! गाड़ी चलने पर ठाकुर मुख बाहिर निकाल कर लोकजन, गाड़ी-घोड़ा, चाँद का प्रकाश देखने लगे— सब में ही आनन्द! नन्दलाल कलुटोले में उतर गए। ठाकुर की गाड़ी सिमुलिया स्ट्रीट में श्रीयुक्त सुरेश मित्र के घर पर आकर ठहरी। ठाकुर उन्हें सुरेन्द्र कहते हैं। सुरेन्द्र ठाकुर के परम भक्त हैं।

किन्तु सुरेन्द्र घर पर नहीं थे। वे अपने नए बाग में गए थे। घर वालों ने बैठने के लिए नीचे का कमरा खोल दिया। गाड़ी का किराया देना होगा। कौन देगा? सुरेन्द्र होते तो वे ही देते। ठाकुर ने एक भक्त से कहा, "किराया औरतों से माँग लो न! वे क्या जानतीं नहीं कि उनके पति तो आते-जाते ही रहते हैं।" *(सब का हास्य)*।

नरेन्द्र उसी मुहल्ले में ही रहते हैं। ठाकुर ने नरेन्द्र को बुलाने के लिए भेजा। इधर घर वालों ने दोतल के कमरे में ठाकुर को बिठाया। कमरे की फ़र्श पर चादर बिछी हुई है, दो-चार तकिये उसके ऊपर हैं, कमरे की दीवार पर सुरेन्द्र द्वारा विशेष यत्न से तैयार छवि (oil painting) है, जिसमें केशव को ठाकुर दिखा रहे हैं— हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, बौद्ध— सर्वधर्म समन्वय। और वैष्णव, शाक्त, शैव इत्यादि सब सम्प्रदायों का समन्वय।

ठाकुर बैठे हुए सहास्य बातें कर रहे थे; उसी समय नरेन्द्र आ पहुँचे। तब ठाकुर का आनन्द मानो दुगुना हो गया। उन्होंने बताया, "आज केशव सेन के संग कैसे जहाज़ पर टहलने गया था। विजय था, ये सब थे।"

मास्टर को निर्देश करके बोले, "इससे पूछो, कैसे मैंने विजय और केशव से कहा था, माँ-बेटी का मंगलवार; और जटीला-कुटीला के बिना लीला की वृद्धि नहीं होती— ये समस्त बातें।" *(मास्टर के प्रति)*— क्यों जी?

मास्टर— जी हाँ।

रात्रि हो गई, तब भी सुरेन्द्र नहीं लौटे। ठाकुर दक्षिणेश्वर जाएँगे, और अधिक देर नहीं की जा सकती; रात के साढ़े दस बज गए हैं। सड़क पर चाँद का प्रकाश है।

गाड़ी आ गई। ठाकुर चढ़ गए। नरेन्द्र और मास्टर प्रणाम करके कलकत्ता स्थित अपने-अपने घरों को लौट गए।

•

तृतीय खण्ड

सींती-ब्राह्मसमाज-दर्शन और श्रीयुक्त शिवनाथ आदि ब्राह्म भक्तों के साथ कथोपकथन और आनन्द

प्रथम परिच्छेद

(उत्सव-मन्दिर में श्री रामकृष्ण)

श्री श्री परमहंसदेव सींती का ब्राह्मसमाज-दर्शन करने आए हैं; 28 अक्तूबर, 1882 ईसवी; शनिवार। आश्विन मास की कृष्णा द्वितीया तिथि।

आज यहाँ पर महोत्सव है— ब्राह्मसमाज का छःमाही। तभी श्री रामकृष्ण का यहाँ पर निमन्त्रण है। 3-4 बजे दोपहर के समय वे कई जन भक्तों के संग गाड़ी करके दक्षिणेश्वर की कालीबाड़ी से श्रीयुक्त बेणीमाधव पाल की मनोहर उद्यान-बाटी में आए हैं। इसी उद्यान-बाटी में ब्राह्मसमाज का अधिवेशन हुआ करता है। ब्राह्मसमाज को वे बहुत प्यार करते हैं। ब्राह्म भक्तगण भी उनमें अतिशय भक्ति-श्रद्धा रखते हैं। अभी कल ही शुक्रवार के दिन शाम को कितना आनन्द करते-करते सशिष्य श्रीयुक्त केशवचन्द्र सेन के साथ भागीरथी-वक्ष पर कालीबाड़ी से कलकत्ता तक भक्तों के संग स्टीमर में टहलने आए थे।

सींती पाइकपाड़ा के निकट है, कलकत्ता से डेढ़ कोस उत्तर में। यह उद्यान-बाटी मनोहर बनी हुई है। यह स्थान भी है निर्जन और भगवान की उपासना के लिए विशेष उपयोगी। उद्यान-स्वामी वर्ष में

दो बार महोत्सव करते हैं। एक बार शरत्काल में और एक बार वसन्त में। इस महोत्सव के उपलक्ष्य में वे कलकत्ता के और सींती के निकटवर्त्ती ग्राम के बहुत से भक्तों को निमन्त्रण देते हैं। जभी आज कलकत्ता से शिवनाथ आदि भक्तगण आए हैं। उनमें से अनेकों ने ही प्रातःकाल की उपासना में योगदान किया था, और फिर सन्ध्याकालीन उपासना होगी, तभी प्रतीक्षा कर रहे हैं। विशेषतः उन्होंने सुना था कि अपराह्न में महापुरुष का आगमन होगा और वे लोग उनकी आनन्दमूर्त्ति देख पाएँगे, उनका हृदयमुग्धकारी कथामृत-पान कर पाएँगे, उनका वही मधुर-संकीर्तन सुन पाएँगे और देव-दुर्लभ हरि-प्रेममय नृत्य देख पाएँगे।

अपराह्न में बाग में बड़ी भीड़ जमा हुई है। कोई लतामण्डप-छाया में लकड़ी के बैंचों पर बैठे हैं। कोई-कोई सुन्दर तालाब के किनारे साथी-बन्धु के साथ घूम रहे हैं। बहुत से तो समाजगृह में श्री रामकृष्ण के आगमन की प्रतीक्षा में पहले से ही आसन-अधिकार करके बैठे हुए हैं। उद्यान के प्रवेश-द्वार पर पान की दुकान है। प्रवेश करते ही लगता है, जैसे पूजा-बाड़ी है। रात को गान-यात्रा होगी। चारों दिशाएँ आनन्द से परिपूर्ण हैं। शरत् के नील आकाश में आनन्द प्रतिभासित हो रहा है। उद्यान के वृक्ष-लता-गुल्म के मध्य प्रभात से ही आनन्द का समीरण बह रहा है। आकाश, जीव-जन्तु, वृक्ष-लता, जैसे एक तान में गान कर रहे हैं— 'आजि कि हरष समीर बहे प्राणे— भगवत मंगल किरणे!' [आज भगवत्-मंगल किरणों द्वारा यह पवन भक्तों के प्राणों में कैसा आनन्द भर रहा है!]

सब ही जैसे भगवद्दर्शन के पिपासु हैं ! ऐसे समय श्री श्री परमहंस देव की गाड़ी समाजगृह के सम्मुख उपस्थित हुई।

सब ही उठकर महापुरुष की अभ्यर्थना कर रहे हैं। वे आए हैं। चारों तरफ़ से लोग उनको मण्डलाकार घेर रहे हैं।

समाजगृह के प्रधान-कक्ष (हॉल) के मध्य वेदी बनी हुई है। वह स्थान लोगों से परिपूर्ण है। सामने दालान है, वहाँ पर परमहंसदेव

बैठे हैं। वहाँ पर भी लोग हैं; और दालान के दोनों ओर दो कमरे हैं, उन कमरों में भी लोग हैं। कमरे के द्वारों पर लोग ऊँची गर्दनें करके खड़े हुए हैं। दालान पर चढ़ने की सीढ़ियाँ बराबर एक छोर से दूसरे छोर तक फैली हुई हैं। ये सोपान भी लोगों से भरी हुई हैं। सोपान से अनतिदूर 2-3 वृक्ष हैं, निकट लता-मण्डप है। वहाँ पर कई बैंच हैं। वहाँ पर से भी लोग उद्ग्रीव और उत्कर्ण होकर महापुरुष का दर्शन कर रहे हैं। पंक्तियों की पंक्तियाँ फलों और पुष्पों के वृक्षों के बीच से रास्ता है। सब वृक्ष हवा के झोंकों से हल्के-हल्के हिल-डुल रहे हैं, जैसे आनन्द में भरकर मस्तक झुका कर उनका स्वागत कर रहे हैं!

ठाकुर श्री रामकृष्ण परमहंस देव ने हँसते-हँसते आसन ग्रहण किया। अब सब की दृष्टि एकदम उन की आनन्दमूर्त्ति के ऊपर पड़ी। जब तक नाट्यशाला का अभिनय आरम्भ नहीं होता, तब तक दर्शकों में से कोई हँसता है, कोई विषय-चर्चा करता है, कोई अकेला अथवा मित्र के साथ टहलता है, कोई पान-तम्बाकू खाता है अथवा सिगरेट पीता है। किन्तु ज्योंहि पर्दा उठता है, त्योंहि सब लोग सब बातें बन्द करके अनन्यमन होकर एक दृष्टि से खेल देखने लगते हैं, मानो नाना पुष्प-परिभ्रमणकारी भौंरे कमलों का सन्धान पा लेने पर अन्य कुसुमों का त्याग करके पद्ममधु-पान करने के लिए छूट पड़ते हैं!

द्वितीय परिच्छेद

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते।
स गुणान् समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥— गीता 14 : 26

(भक्त-सम्भाषण)

सहास्यमुख ठाकुर श्रीयुक्त शिवनाथ आदि भक्तों की ओर देखने लगे। कह रहे हैं, “अरे, ये तो शिवनाथ हैं! देखो, तुम भक्त हो, तुम्हें

देखकर बड़ा आनन्द होता है। गांजाखोर का स्वभाव ही ऐसा होता है कि और एक गंजेड़ी को देख लेने पर वह भारी खुश होता है, सम्भवतः उसके साथ गले ही मिलने लगे।" *(शिवनाथ और सब का हास्य)*।

(संसारी मनुष्य का स्वभाव, नाम-माहात्म्य)

"जिनको देखता हूँ, ईश्वर में मन नहीं है, उनसे मैं कह देता हूँ, 'तुम ज़रा वहाँ जाकर बैठो।' अथवा कह देता हूँ, 'जाओ, सुन्दर बिल्डिंग है (राणी रासमणि का काली-मन्दिर आदि), देखो जाकर।' *(सब का हास्य)*।

"और जब देखता हूँ कि भक्तों के संग हल्के लोग आए हैं, इनकी बड़ी विषय-बुद्धि है, इन्हें ईश्वरीय बात अच्छी नहीं लगती। सम्भवतः वे लोग (भक्त लोग) बहुत देर तक ईश्वरीय बातें करते हैं। इधर ये अधिक बैठ नहीं सकते, छटपटाते हैं। बार-बार उनके कान में फुस-फुस करके कहते हैं, 'कब चलोगे— कब चलोगे?' वे शायद कभी तो कह देते हैं, 'ठहरो न भाई, अभी थोड़ी देर में चलेंगे।' तब ये विरक्त होकर कहते हैं, 'अच्छा तो फिर तुम बातें करो, हम नौका में जाकर बैठते हैं।' *(सब का हास्य)*।

"संसारी मनुष्यों को यदि कहो कि सब त्याग करके ईश्वर के पादपद्मों में मग्न हो जाओ, तो यह बात वे कभी भी नहीं सुनेंगे। इसी लिए तो विषयी मनुष्यों को आकर्षित करने के लिए गौर-निताई दोनों भाइयों ने मिलकर, परामर्श करके यह व्यवस्था की थी— 'मागुर माछेर झोल, युवती मेयेर कोल, बोल हरि बोल।' प्रथम तो इन दोनों के लोभ में बहुत से लोग 'हरिबोल' बोलने के लिए जाने लगे। फिर हरिनाम-सुधा का तनिक-सा स्वाद पा लेने पर समझ सकने लगे कि मागुर (मछली) का झोल कुछ नहीं है, हरि-प्रेम में जो अश्रु गिरते हैं, वही है; युवती मेये (स्त्री) है पृथ्वी। 'युवती स्त्री की गोद में' अर्थात् धूल में, हरि-प्रेम में, लोट-पोट होना।

"निताई किसी न किसी प्रकार से हरिनाम करवा लिया करते। चैतन्यदेव ने कहा था, ईश्वर के नाम का बड़ा माहात्म्य है। शीघ्र फल नहीं भी हो सकता है किन्तु कभी न कभी तो इसका फल होगा ही। जैसे कोई घर की कगार पर बीज रख गया था, बहुत दिन बाद घर ढह गया, तब वही बीज धरती पर गिर कर पेड़ बन गया और उसका फल भी हुआ।"

(मनुष्य-प्रकृति और गुणत्रय— भक्ति का सत्त्व, रज, तम)

"जैसे संसारियों में सत्त्व, रज, तम, तीन गुण होते हैं, वैसे ही भक्ति के भी सत्त्व, रज, तम, तीन गुण होते हैं।

"संसारी व्यक्ति का सत्त्वगुण कैसा होता है, जानते हो? घर इधर से टूटा पड़ा है और उधर से टूटा पड़ा है, मरम्मत नहीं करवाता। मन्दिर के दालान में कबूतर बीठ करते हैं, आँगन में काई लगी है, होश नहीं। सामान पुराना हो गया है, फिटफाट करने की चेष्टा नहीं। कपड़ा जो भी एक-आध है, उससे ही चलता है। व्यक्ति खूब शान्त, शिष्ट, दयालु, सरल होगा। किसी का कोई अनिष्ट नहीं करता।

"गृही के फिर रजोगुण के लक्षण भी हैं। घड़ी, घड़ी की चेन, हाथ में दो-तीन अंगूठियाँ। घर का असबाब खूब फिटफाट। दीवार पर रानी की छवि, राजपुत्र की छवि, किसी बड़े मनुष्य की छवि होगी। मकान पर लिपाई-पुताई आदि हुई हुई ,जैसे कहीं पर भी एक दाग नहीं। नाना प्रकार की बढ़िया पोशाकें होंगी। नौकरों-दासों की पोशाकें इत्यादि-इत्यादि समस्त होगा।

"गृही संसारी के तमोगुण के लक्षण होते हैं— निद्रा, काम, कोध, अंहकार इत्यादि।

"और भक्ति का सत्त्व होता है। जिस भक्त का सत्त्वगुण होता है, वह अति गोपन में ध्यान करता है। वह सम्भवतःमसहरी के भीतर ध्यान कर रहा है। सब समझते हैं, ये सोए हुए हैं; लगता है रात को

निद्रा नहीं आई, तभी उठने में देर हो गई है। इधर शरीर के ऊपर प्यार केवल पेट के निर्वाह तक ही है, साग-रोटी मिल गया तो बस हो गया। खाने आदि में दिखावा नहीं। पोशाक का आडम्बर नहीं। घर के असबाब आदि पर चमक-दमक नहीं। और सत्त्वगुणी भक्त खुशामद करके धन नहीं लेता।

“भक्ति का रज होने पर शायद हो सकता है, उस भक्त के तिलक लगा हो, रुद्राक्ष की माला हो, उसी माला के बीच-बीच में एक-एक सोने का दाना भी हो। (सब का हास्य)। जब पूजा करता है, तो गरद (सिल्क) की धोती पहन कर पूजा करता है।”

तृतीय परिच्छेद

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्वय्युपपद्यते।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप ॥— गीता 2 : 3

(नाम-माहात्म्य और पाप— तीन प्रकार के आचार्य)

श्री रामकृष्ण— भक्ति का तम जिसका होता है, उसका विश्वास ज्वलन्त होता है। वैसा भक्त ईश्वर से ज़बरदस्ती करता है। जैसे डकैती करके धन निकाल लेना। मारो, काटो, बाँधो— डाका पड़ने जैसा भाव।

ठाकुर ऊर्ध्वदृष्टि, अपने प्रेम-रस-अभिषिक्त कण्ठ से गाते हैं—

गया गंगा प्रभासादि काशी कांची केबा चाय।
काली काली काली बोले आमार अजपा यदि फुराय॥
त्रिसन्ध्या जे बले काली, पूजा सन्ध्या से कि चाय।
सन्ध्या तार सन्धाने फेरे, कभु सन्धि नाहि पाय॥
दया व्रत दान आदि, आर किछु ना मने लय।
मदनेर यागयज्ञ, ब्रह्ममयीर रांगा पाय॥

काली नामेर एतो गुण, केबा जानते पारे ताय।
देवादिदेव, महादेव, जांर पंचमुखे गुण गाय॥

['काली, काली, काली!' कहते हुए यदि मेरा प्राण निकलता है तो फिर गया, गंगा, प्रभास, काशी, कांची तीर्थों की कौन इच्छा करता है? जो तीनों सन्ध्याओं के समय 'काली-काली' बोलता रहता है, उसे पूजा-सन्ध्या की चाह नहीं रहती। सन्ध्या ही उसकी खोज में फिरती रहती है, किन्तु कभी सन्धि नहीं प्राप्त कर पाती। दया, व्रत, दान आदि उसके मन पर प्रभाव नहीं डालते। कवि मदन का याग-यज्ञ सब कुछ तो ब्रह्ममयी माँ के लाल चरण ही हैं। माँ काली के नाम के इतने गुण हैं कि कोई उन्हें जान नहीं पाता, देवादिदेव महादेव स्वयं अपने मुख से जिनका गुण गाते रहते हैं।]

ठाकुर भावोन्मत्त, मानो अग्निमन्त्र से दीक्षित होकर गाते हैं—

आमि दुर्गा दुर्गा बोले मा जदि मरि।
आखेरे ए दीने, ना तारो केमने, जाना जाबे गो शंकरी।[1]

"क्या! मैंने उनका नाम लिया है; मुझे फिर पाप? मैं उनका बेटा हूँ— उनके ऐश्वर्य का अधिकारी हूँ। ऐसा तेज होना चाहिए।

"तमोगुण का मोड़ फेर देने पर ईश्वर-लाभ होता है। उनके निकट ज़ोर-ज़बरदस्ती करना, वे तो पराए नहीं हैं, वे तो अपने जन हैं। और फिर देखो, इसी तमोगुण को अन्य के मंगल के लिए व्यवहार किया जाता है। वैद्य तीन प्रकार के होते हैं— उत्तम वैद्य, मध्यम वैद्य, अधम वैद्य। जो वैद्य आकर नाड़ी दबाकर 'औषध खा लेना भाई', यह बात कहकर चला जाता है, वह अधम वैद्य है। रोगी ने खाई है कि नहीं, यह खबर वह नहीं लेता। जो वैद्य रोगी को औषध खाने के लिए बहुत प्रकार से समझाता है, जो मीठी वाणी से कहता है, 'अरे भाई, औषध बिना खाए ठीक कैसे होओगे? प्यारे भाई,खा लो जी। लो, मैं

---

[1] देखिए कथामृत प्रथम भाग, प्रथम खण्ड, 7वाँ परिच्छेद

स्वयं दवाई खिला देता हूँ, लो, खाओ'— वह मध्यम वैद्य है। और जो वैद्य देखता है कि रोगी किसी भी प्रकार से औषधि नहीं खा रहा है, तो छाती पर घुटने रख कर ज़ोर से औषध खिला देता है, वह उत्तम वैद्य है। यही तो है वैद्य का तमोगुण !इस गुण से रोगी का मंगल होता है, अपकार नहीं होता।

"वैद्य की भाँति आचार्य भी तीन प्रकार के हैं। जो धर्मोपदेश देकर शिष्यों की फिर कोई खबर ही नहीं लेते— वे आचार्य अधम हैं। जो शिष्यों के मंगल के लिए उन्हें बार-बार समझाते हैं, जिससे वे उपदेशों की धारणा कर सकें। अनेक अनुनय-विनय करते हैं, प्यार दिखाते हैं— वे मध्यम श्रेणी के आचार्य हैं। और शिष्यगण किसी भी प्रकार से नहीं सुन रहे हैं, देखकर जब कोई-कोई आचार्य ज़बरदस्ती तक करते हैं, उन्हें कहता हूँ— उत्तम आचार्य। "

चतुर्थ परिच्छेद

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।

(तैत्तिरीय उपनिषद्)

(ब्रह्म का स्वरूप मुख से नहीं बोला जाता)

एक ब्राह्म भक्त ने पूछा— ईश्वर साकार हैं वा निराकार?

श्री रामकृष्ण— उनकी इति नहीं की जाती। वे निराकार हैं और फिर साकार भी। भक्त के लिए वे साकार हैं। जो ज्ञानी हैं अर्थात् जो जगत् को स्वप्नवत् समझते हैं, उनके लिए वे निराकार हैं। भक्त समझता है मैं एक वस्तु हूँ, जगत् एक वस्तु है, तभी भक्त के निकट ईश्वर 'व्यक्ति' (Personal God) बनकर दर्शन देते हैं। ज्ञानी जैसे वेदान्तवादी— केवल नेति-नेति विचार करते हैं। विचार करके ज्ञानी को बोधे-बोध होता है कि मैं मिथ्या हूँ, जगत् भी मिथ्या है, स्वप्नवत्

है। ज्ञानी ब्रह्म को बोधे-बोध (अन्तर् में बुद्धि से समझना) करता है। वे क्या हैं, मुख से तो कह नहीं सकता।

"कैसे है, समझते हो? जैसे सच्चिदानन्द-समुद्र— कूल-किनारा नहीं, भक्ति-हिम से स्थान-स्थान पर जल बरफ़ बन जाता है, बरफ़-आकार में वह जम जाता है। अर्थात् भक्त के निकट वे व्यक्त भाव में, कभी-कभी साकार रूप धारण करके रहते हैं। ज्ञान-सूर्य के उदय होने पर वह बरफ़ पिघल जाती है, तब फिर ईश्वर व्यक्ति जैसा नहीं बोध होता— उनका रूप भी दर्शन नहीं होता। वे क्या हैं, मुख से बोला नहीं जाता। कौन कहेगा? जो कहेगा, वही जो नहीं है। उसका 'मैं' तो फिर खोजने पर भी नहीं मिलता।

"विचार करते-करते मैं-शैं कुछ भी नहीं रहता। प्याज़ का तुमने प्रथम तो लाल छिलका उतार लिया, फिर सफ़ेद नरम छिलका। इसी प्रकार लगातार छीलते-छीलते खोजने पर भीतर कुछ भी नहीं मिलता।

"जहाँ खोजने पर अपना 'मैं' नहीं मिलता— और खोजे ही फिर कौन? वहाँ पर ब्रह्म का स्वरूप बोधे-बोध किस प्रकार होता है, यह बात बताएगा ही फिर कौन?

"एक नमक का पुतला समुद्र मापने गया। समुद्र में ज्योंहि उतरा, त्योंहि घुल कर मिल गया। तब खबर कौन देगा?

"पूर्ण ज्ञान का लक्षण है— पूर्ण ज्ञान होने पर मनुष्य चुप हो जाता है। तब 'मैं' रूप नमक का पुतला सच्चिदानन्द-रूप-सागर में घुलकर एक हो जाता है, फिर तनिक-सी भी भेद-बुद्धि नहीं रहती।

"विचार करना जब तक समाप्त नहीं होता, व्यक्ति फड़-फड़ तर्क करता रहता है। समाप्त होने पर चुप हो जाता है। पूर्ण हो जाने पर, घड़े का जल और तालाब का जल एक होने पर फिर शब्द नहीं रहता। जब तक घड़ा भरता नहीं, तब तक ही शब्द।

"पहले के लोग कहा करते, काले पानी में जहाज़ के चले जाने पर वह लौटता नहीं।"

(किन्तु 'मैं' नहीं जाती)

" 'आमि मले घुचिबे जंजाल।' ('मैं' के मरने पर जंजाल छूटेगा)। *(हास्य)*। हज़ार विचार करो, मैं नहीं जाता। तुम्हारे-हमारे पक्ष में भक्त 'मैं'— यह अभिमान अच्छा है।

"भक्त के लिए है— सगुण ब्रह्म। अर्थात् वे सगुण हैं— एक व्यक्ति बनकर, रूप धारण करके, दिखाई देते हैं। वे ही प्रार्थना सुनते हैं। तुम लोग जो प्रार्थना करते हो, उनकी ही करते हो। तुम वेदान्तवादी भी नहीं हो, ज्ञानी भी नहीं हो, तुम भक्त हो। साकार रूप मानो अथवा न मानो, इससे कुछ आता-जाता नहीं। ईश्वर एक व्यक्ति है, यह बोध होने से ही हुआ, जो प्रार्थना सुनता है— सृष्टि-स्थिति-प्रलय करता है, जो अनन्तशक्ति है।

"भक्ति-पथ से ही उन्हें सहज में प्राप्त किया जाता है।"

पंचम परिच्छेद

भक्त्या त्वनन्यया शक्यमहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परन्तप ॥— गीता 11 : 54

(ईश्वर-दर्शन, साकार अथवा निराकार)

एक ब्राह्म भक्त ने पूछा— महाशय, ईश्वर को क्या देखा जाता है? यदि देखा जाता है तो हम देख क्यों नहीं पाते?

श्री रामकृष्ण— हाँ, अवश्य दिखाई देता है। साकार रूप दिखाई देता है, और फिर अरूप भी दिखाई देता है। वह तुम्हें कैसे समझाऊँ!

ब्राह्म भक्त— किस उपाय से दिखाई दे सकता है?

श्री रामकृष्ण— व्याकुल होकर उनके लिए रो सकते हो? लोग लड़के के लिए, स्त्री के लिए, रुपये के लिए घड़े-घड़े रोते हैं। किन्तु ईश्वर के लिए कौन रोता है? जब तक बच्चा चूसनी लेकर भूला रहता है, माँ खाना-पकाना आदि घर का सब कार्य करती रहती है। लड़के को जब फिर चूसनी और अच्छी नहीं लगती, चूसनी फैंक कर चीत्कार करके रोता है, तब माँ भात का पतीला उतार कर, दौड़कर, आकर लड़के को गोद में ले लेती है।"

ब्राह्म भक्त— महाशय, ईश्वर के स्वरूप को लेकर इतने नाना तरह के मत क्यों हैं? कोई कहता है साकार, कोई कहता है निराकार। और साकारवादियों में भी नाना रूपों की बातें सुनते हैं। इतनी गड़बड़ क्यों है?

श्री रामकृष्ण— जो भक्त जो रूप देखता है, वह वही रूप मानता है। वास्तविक तो कोई भी गड़बड़ नहीं है। उनको किसी प्रकार से यदि एक बार प्राप्त कर लिया जाए, तो फिर वे सब कुछ समझा देते हैं। उस मुहल्ले में ही नहीं गए, तो सब खबर कैसे मिलेगी? एक कहानी सुनो—

"एक व्यक्ति बाह्य गया था। उसने देखा एक वृक्ष पर एक जानवर रहता है। उसने आकर अन्य एक व्यक्ति से कहा, 'देखो, अमुक वृक्ष के ऊपर मैंने एक सुन्दर लाल रंग का जानवर देखा है'। दूसरे व्यक्ति ने उत्तर दिया, 'मैं जब बाह्य गया था, मैंने भी देखा था। पर वह तो लाल रंग का नहीं है, वह तो हरे रंग का है।' और एक जन बोला, 'नहीं, नहीं, मैंने देखा है— पीला है'। इसी प्रकार और भी कोई-कोई बोले, 'ना, तम्बाकू (ज़रदा), बैंगनी, नीला इत्यादि'। अन्त में झगड़ा हो गया। तब उन्होंने पेड़ के तले जाकर देखा, एक व्यक्ति वहाँ बैठा है। उससे पूछने पर वह बोला, 'मैं इसी पेड़ तले रहता हूँ। मैं तो उस जानवर को बहुत अच्छी तरह से जानता हूँ। तुम लोग जो-जो कह रहे हो, सब सत्य है। वह कभी लाल, कभी हरा, कभी पीला,

कभी नीला, और भी बहुत कुछ क्या-क्या होता है; बहुरूपी है वह! और फिर कभी-कभी तो देखता हूँ, कोई रंग ही नहीं होता। कभी-कभी सगुण, कभी-कभी निर्गुण।

"अर्थात् जो व्यक्ति सदा-सर्वदा ईश्वर-चिन्तन करता है, वही जान सकता है कि उनका स्वरूप क्या है। वह व्यक्ति ही जानता है कि वे नाना रूपों में दिखाई देते हैं, नाना भावों में दिखाई देते हैं। वे सगुण और फिर वे ही निर्गुण हैं। जो वृक्ष के नीचे रहता है, वही जानता है बहुरूपी के नाना रंग हैं, और फिर कभी-कभी तो कोई रंग भी नहीं; और लोग तो केवल तर्क और झगड़ा करके कष्ट पाते हैं।

"कबीर कहा करते, निराकार मेरा बाप है, साकार मेरी माँ।

"भक्त जिस रूप को प्यार करता है, उसी रूप में वे दर्शन देते हैं— वे भक्तवत्सल जो हैं। पुराण में है— वीरभक्त हनुमान के लिए उन्होंने राम रूप धारण किया था।"

(कालीरूप और श्यामरूप की व्याख्या— अनन्त को जाना नहीं जाता)

"वेदान्त-विचार के निकट रूप-शूप उड़ जाता है। उस विचार का शेष सिद्धान्त यही है— ब्रह्म सत्य और नाम-रूप युक्त जगत् मिथ्या। जब तक 'मैं भक्त', यह अभिमान रहता है, तब तक ही ईश्वर का रूप-दर्शन और ईश्वर को व्यक्ति (person) समझना सम्भव होता है। विचार के चक्षु से देखने पर भक्त का 'मैं'-अभिमान, भक्त को थोड़ा दूर ही रखे रखता है।

"कालीरूप अथवा श्यामरूप साढ़े तीन हाथ का क्यों है? दूर होने के कारण। दूर होने के कारण सूर्य छोटा दिखता है। निकट जाओ, तब इतना बृहत् दिखाई देगा कि धारणा ही नहीं कर सकेगा। और काली-रूप या श्याम रूप श्यामवर्ण के क्यों हैं? वह भी दूर होने के कारण। जैसे सरोवर का जल दूर से हरा, नीला व काले रंग का

दिखता है, निकट जाकर हाथ में जल लेकर देखो तो कोई रंग नहीं। आकाश दूर से देखने पर नीले रंग का लगता है, निकट से देखो, कोई रंग नहीं।

"तभी कहता हूँ, वेदान्त-दर्शन के विचार से ब्रह्म निर्गुण है। उसका क्या स्वरूप है, वह मुख से नहीं बोला जाता। किन्तु जब तक तुम स्वयं सत्य हो, तब तक जगत् भी सत्य है। ईश्वर के नाम-रूप भी सत्य हैं, ईश्वर को एक व्यक्ति समझना भी सत्य है।

"भक्ति-पथ तुम्हारा पथ है। यह बहुत अच्छा और सहज पथ है। अनन्त ईश्वर को क्या जाना जाता है? और उनको जानने की ही फिर क्या आवश्यकता है? यह दुर्लभ मनुष्य-जन्म पाकर हमें चाहिए कि उनके पादपद्मों में जैसे भी हो, भक्ति हो।

"यदि मेरी एक लोटे जल से प्यास बुझती है, तो तालाब में कितना जल है, यह मापने का मुझे क्या प्रयोजन? मैं आधी बोतल मद से मतवाला हो जाता हूँ, तो कलवार की दुकान पर कितने मन शराब है— इस हिसाब की मुझे क्या आवश्यकता? अनन्त को जानने की आवश्यकता ही फिर क्या है?"

षष्ठ परिच्छेद

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः।
आत्मन्येव च सन्तुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते॥ —गीता 3 : 17

(ईश्वर-लाभ के लक्षण— सप्तभूमि और ब्रह्म-ज्ञान)

श्री रामकृष्ण— वेद में ब्रह्मज्ञानी की नाना प्रकार की अवस्थाओं का वर्णन है। यह पथ, ज्ञान-पथ बड़ा कठिन पथ है। विषय-बुद्धि, कामिनी-काञ्चन की आसक्ति, लेशमात्र भी रहने से ज्ञान नहीं होता। यह पथ कलियुग के लिए नहीं है। इस सम्बन्ध में वेद में सप्त-भूमि (seven planes) की बात है। ये सात भूमि ही मन के स्थान हैं—

- जब संसार में मन रहता है, तब लिंग, गुह्य, नाभि मन के वास-स्थान रहते हैं। तब मन की ऊर्ध्वदृष्टि नहीं रहती— केवल कामिनी-काञ्चन में मन रहता है।
- मन की चतुर्थ भूमि है हृदय। तब प्रथम चैतन्य होता है और चारों ओर ज्योति-दर्शन होता है। तब वह व्यक्ति ऐश्वरिक ज्योति देखकर अवाक् होकर कहता है, 'यह क्या!' 'यह क्या!' तब फिर नीचे की ओर (संसार की ओर) मन नहीं जाता।
- मन की पंचम भूमि है कण्ठ। जिसका मन कण्ठ तक चढ़ गया है, उसके अविद्या-अज्ञान सब चले जाते हैं, उसे ईश्वरीय बात बिना अन्य बात सुनना अथवा बोलना अच्छा नहीं लगता। यदि कोई अन्य बातें करता है, तो वहाँ से उठकर चला जाता है।
- मन की षष्ठ भूमि कपाल है। मन के वहाँ चले जाने पर रात-दिन ईश्वरीय रूप-दर्शन होता है। तब भी तनिक-सा 'मैं' रहता है। वह व्यक्ति उस निरुपम-रूप का दर्शन करके उन्मत्त हो जाता है, उस रूप का स्पर्श और आलिंगन करने जाता है किन्तु कर नहीं सकता। जैसे लालटेन के भीतर प्रकाश है, लगता है बस अभी प्रकाश छुआ, कि बस छुआ, किन्तु काँच का व्यवधान होने के कारण छुआ नहीं जा सकता।
- सिर पर सप्तम भूमि है। वहाँ पर मन के चले जाने पर समाधि होती है और ब्रह्मज्ञानी को ब्रह्म का प्रत्यक्ष दर्शन होता है। किन्तु उस अवस्था में शरीर अधिक दिन नहीं रहता। सर्वदा बेहोश, कुछ खा नहीं सकता, मुख में दूध देने पर भी निकल जाता है। इस भूमि पर इक्कीस दिन में मृत्यु हो जाती है। यह है ब्रह्म-ज्ञानी की अवस्था। तुम लोगों के लिए भक्ति-पथ है खूब बढ़िया और सहज।

(समाधि होने पर कर्म-त्याग, पूर्वकथा, ठाकुर का तर्पणादि कर्म-त्याग)

"मुझसे एक जन ने कहा था— महाशय! मुझे इस समाधि को सिखला सकते हैं आप? *(सब का हास्य)* समाधि होने पर सर्व-कर्म-त्याग हो जाता है। पूजा-जप आदि कर्म, विषय कर्म— सर्व त्याग हो जाता है। पहले-पहले तो कर्म की रेल-पेल रहती है। जितना ईश्वर की तरफ़ बढ़ेगा, उतना ही कर्म का आडम्बर कम होता जाएगा। यहाँ तक कि उनका नाम-गुण-गान तक बन्द हो जाता है।

(शिवनाथ के प्रति)— जब तक तुम सभा में आए नहीं हो, तुम्हारा नाम, गुण, कथा बहुत कुछ होता रहता है। ज्योंहि तुम आ गए, त्योंहि ये सब बातें बन्द हो गईं। तब तुम्हारे दर्शनों में ही आनन्द है। तब लोग कहते हैं, यह लो! शिवनाथ बाबू आ गए। तुम्हारे विषय में अन्य समस्त बातें बन्द हो जाती हैं।

"मेरी इस अवस्था के पश्चात् गंगाजल से तर्पण करते समय देखता था कि हाथों की उंगलियों के भीतर से जल बह कर निकल रहा है। तब रोते-रोते हलधारी से पूछा, 'दादा, यह क्या हुआ?' हलधारी ने बताया, इसे गलितहस्त कहते हैं। ईश्वर-दर्शन के बाद तर्पण आदि कर्म नहीं रहते।

"संकीर्तन में पहले कहते हैं, 'निताई आमार माता हाती।' 'निताई आमार माता हाती'। (निताई मेरा मतवाला हाथी)। भाव और गाढ़ा होने पर केवल कहते हैं, 'हाथी'! 'हाथी'! तत्पश्चात् केवल 'हाथी' यह बात ही मुख में रहती है। अन्त में 'हा' कहते हुए भाव-समाधि हो जाती है। तब वह व्यक्ति, जो अब तक कीर्तन कर रहा था, चुप हो जाता है।

"जैसे ब्राह्मण-भोजन में पहले खूब रेल-पेल। जब सब लोग पत्तल सम्मुख रखकर बैठ गए, तब बहुत सी रेल-पेल कम हो गई, केवल 'पूरी लाओ' 'पूरी लाओ' शब्द होता रहता है। फिर जब पूरी-तरकारी

खाना आरम्भ किया, तब बारह आना शब्द कम हो गया। जब दही आ गई, तब सुप-सुप *(सबका हास्य)*। यूँ कहो कि शब्द नहीं रहता है। आहार के बाद निद्रा। तब सब एकदम चुप।

"तभी तो कहता हूँ, प्रथम-प्रथम कर्मों की खूब रेल-पेल रहती है। ईश्वर के पथ पर जितना ही आगे बढ़ोगे, कर्म कम होता जाएगा। अन्त में कर्म-त्याग, फिर समाधि।

"गृहस्थी की बहू के गर्भवती होने पर सास उसके कर्म कम कर देती है। दसवें मास में कर्म प्रायः करना ही नहीं पड़ता। बच्चा हो जाने पर एकदम कर्म-त्याग। माँ बच्चे को ही केवल लेकर रहती है। घर का काम-काज सास, ननद, जिठानी आदि ही करती हैं।

(अवतारादि का शरीर समाधि के बाद लोक-शिक्षा जन्य)

"समाधिस्थ होने के पश्चात् शरीर प्रायः रहता नहीं। किसी-किसी का लोक शिक्षा के लिए शरीर रहता है, जैसे नारद आदि का; और चैतन्यदेव की तरह अवतारों का। कूप के खुद जाने के बाद कोई-कोई टोकरी और कुदाल को विदा कर देते हैं। कोई-कोई रख देते हैं— सोचते हैं शायद यदि मुहल्ले में किसी को ज़रूरत हो। इस प्रकार महापुरुष जीव के दुःख से कातर होते हैं। ये लोग स्वार्थपर नहीं होते कि बस अपने-आप को ज्ञान होने से ही सब हो गया। स्वार्थपर लोगों की बात तो तुम जानते ही हो। यदि कहो कि यहाँ पर मूत दे, तो मूतेगा नहीं, पीछे कहीं तुम्हारा उपकार न हो जाए! *(सब का हास्य)*। एक पैसे का सन्देश दुकान से ले आने को कहो, तो उसे ही चूसते-चूसते लाकर देंगे। *(सब का हास्य)*।

"किन्तु शक्ति विशेष होती है। सामान्य आधार लोक-शिक्षा देते भय करता है। हाबाते काठ (हल्की सड़ी लकड़ी) अपने-आप तो किसी प्रकार तैर जाती है, किन्तु एक भी पक्षी के बैठने पर डूब जाती है। किन्तु नारद आदि बहादुरी काठ (पक्की लकड़ी) हैं। यह लकड़ी स्वयं

भी तैर जाती है और फिर अपने ऊपर कितने मनुष्य, बैल, हाथी तक लेकर जा सकती है।”

सप्तम परिच्छेद

अदृष्टपूर्वं हृषितोऽस्मि दृष्ट्वा, भयेन च प्रव्यथितं मनो मे।
तदेव मे दर्शय देव रूपं, प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥ — गीता 11 : 45

(ब्राह्मसमाज की प्रार्थना-पद्धति और ईश्वर का ऐश्वर्य-वर्णन। पूर्व कथा— दक्षिणेश्वर के राधाकान्त-मन्दिर में गहना चोरी—1869)

श्री रामकृष्ण *(शिवनाथ के प्रति)*— अच्छा जी, तुम ईश्वर के ऐश्वर्य का इतना वर्णन क्यों करते हो? मैंने केशवसेन से यही बात कही थी। एक दिन वे सब वहाँ कालीबाड़ी में गए थे। मैंने कहा, तुम लोग किस प्रकार लेक्चर देते हो, मैं सुनूँगा। तब गंगा के घाट पर चाँदनी में सभा हुई और केशव बोलने लगा। सुन्दर बोला, मुझे भाव हो गया। पीछे केशव से मैंने कहा, तुम ये सब इतना क्यों बोलते हो? हे ईश्वर, तुमने कैसे सुन्दर फूल बनाए हैं, तुमने आकाश बनाया है, तुमने तारे बनाए हैं, तुमने समुद्र बनाया है... इत्यादि। जो स्वयं ऐश्वर्य को प्यार करते हैं, वे ईश्वर के ऐश्वर्य का वर्णन करना पसन्द करते हैं। जब राधाकान्त का गहना चोरी चला गया, सेजो बाबू (रासमणि का जमाई) राधाकान्त मन्दिर में जाकर देवता से कहने लगा, छिः, ठाकुर! तुम अपने गहने की रक्षा नहीं कर सके! मैंने सेजो बाबू से कहा, यह तुम्हारी कैसी बुद्धि! स्वयं लक्ष्मी जिनकी दासी हैं, पद-सेवा करती हैं, उन्हें ऐश्वर्य का क्या अभाव! यह गहना तुम्हारे लिए एक विशेष बड़ी वस्तु है, किन्तु ईश्वर के लिए तो कुछ मिट्टी के ढेले मात्र हैं। छिः! ऐसी हीनबुद्धि की बात नहीं कहते। क्या ऐश्वर्य तुम उनको दे सकते हो? तभी तो कहता हूँ, जिनके द्वारा आनन्द होता है, उनको ही मनुष्य चाहता है। उनका घर कहाँ पर है, कितने घर-

मकान हैं, कितने बाग, कितना धन-जन, दास-दासी हैं, इन सब खबरों से क्या काम? नरेन्द्र को जब देखता हूँ तब मैं सब भूल जाता हूँ। उसका घर कहाँ है, उसका पिता क्या करता है, कितने भाई हैं, इत्यादि बातें एक दिन भूलकर भी मैंने नहीं पूछीं। ईश्वर के माधुर्य-रस में डूब जाओ! उनकी अनन्त सृष्टि, अनन्त ऐश्वर्य! इतनी खबरों से हमें क्या काम?"

फिर दुबारा उसी गन्धर्व अनिन्दित कण्ठ से वही मधुरिमा पूर्ण गाना—

डुब डुब डुब रूपसागरे आमार मन।
तलातल पाताल झुंजले पाबि रे प्रेम रत्न धन।
खुज खुंज खुंज खुजले पाबि हृदय माझे वृन्दावन।
दीप दीप दीप ज्ञानेर बाति, ज्वल्बे हृदे अनुक्षण।
ड्यांग ड्यांग ड्यांग डांगाय डिंगे, चालाय आबार से कौन जन।
कुबीर बोले शोन शोन शोन भाबो गुरुर श्रीचरण॥

[ओ मेरे मन, तू (श्री गुरु के) रूप-सागर में डूब जा, डूब जा, डूब जा। तलातल पाताल खोज, तो तुझे अपने हृदय में प्रेमरत्न धन मिलेगा। खूब खोज लेने पर ही तुम्हें हृदय में आनन्दधाम वृन्दावन प्राप्त हो जाएगा। तब हृदय में सदा ज्ञान की बत्ती जलती रहेगी। ऐसा भला कौन है, जो धरती पर 'डाँगा' (नाव) चलाएगा? कुबीर कहते हैं— तू सदा श्री गुरु के श्रीचरणों का ही अनुध्यान कर।]

"फिर भी दर्शनों के पश्चात् भक्त की साध होती है कि उनकी लीला क्या है, देखूँ।

"रामचन्द्र जी ने राक्षसों के वध के बाद लंकापुरी में प्रवेश किया। बुड्ढी निकषा, रावण की माता भागने लगी। लक्ष्मण ने कहा, राम! यह क्या बात है? देखो, यह निकषा इतनी बूढ़ी है, कितना पुत्र-शोक मिला है! उसे अपने प्राणों का इतना भय है कि भाग रही है! रामचन्द्र जी के निकषा को अभयदान करके, सामने बुलाकर पूछने पर वह

बोली, "राम! इतने दिन बची रहने के कारण ही तो तुम्हारी इतनी लीला देखी है, जभी और बचे रहने की साध है। तुम्हारी और भी कितनी लीला देखूँगी।" *(सब का हास्य)*।

(शिवनाथ के प्रति)— "तुम्हें देखने की इच्छा होती है। शुद्धात्माओं को बिना देखे क्या लेकर रहूँगा? कारण, शुद्धात्माएँ पूर्वजन्म के बन्धु बोध होते हैं।"

एक ब्राह्म भक्त ने पूछा, "महाशय, आप जन्मान्तर मानते हैं?"

(जन्मान्तर)

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन। — गीता 4:5

श्री रामकृष्ण— हाँ, सुना है, जन्मान्तर है। ईश्वर के कार्य हम क्षुद्रबुद्धि से क्या समझेंगे? अनेक जन ही कह गए हैं, जभी अविश्वास नहीं करता। भीष्मदेव देह-त्याग करेंगे, शर-शय्या पर लेटे हुए हैं। सब पाण्डव श्री कृष्ण के संग खड़े हुए हैं। उन्होंने देखा कि भीष्म पितामह की आँखों से जल बह रहा है। अर्जुन ने श्री कृष्ण से कहा, भाई कैसा आश्चर्य! पितामह, जो स्वयं भीष्मदेव, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, ज्ञानी, अष्ट असुओं में एक वसु हैं, वे भी देह-त्याग के समय माया से रो रहे हैं। श्री कृष्ण के भीष्मदेव को यह बात कहने पर उन्होंने कहा, "कृष्ण, तुम तो अच्छी प्रकार जानते हो कि मैं उस कारण नहीं रो रहा। जब विचार करता हूँ कि जिन पाण्डवों के स्वयं भगवान आप सारथी हैं, उनके भी दुःख-विपद् का शेष नहीं है, तब यही मन में सोच कर रोता हूँ कि भगवान के कार्य को कुछ भी समझ न सका।"

(कीर्तनानन्द में— भक्त संग में)

समाजगृह में अब सन्ध्याकालीन उपासना हुई। रात्रि प्रायः साढ़े आठ। सन्ध्या के चार-पाँच दण्डों के पश्चात् रात्रि ज्योत्स्नामयी हो

गई। उद्यान के वृक्ष-समूह, लता-पल्लव शरत्-चन्द्र की विमल किरणों में मानो तैरने लगे हैं। इधर समाजगृह में संकीर्त्तन आरम्भ हो गया। भगवान श्री रामकृष्ण हरि-प्रेम में मतवाले होकर नाच रहे हैं। ब्राह्म भक्त खोल-करताल लेकर उन्हें घेर कर नाच रहे हैं। सब ही भाव में मस्त हैं, जैसे श्री भगवान का दर्शन कर रहे हैं। हरि-नाम की धुन उत्तरोत्तर बढ़ने लगी। चारों ओर ग्रामवासीगण हरि-नाम सुन रहे हैं, और मन ही मन उद्यान-स्वामी भक्त वेणीमाधव को कितना ही धन्यवाद कर रहे हैं।

कीर्तन के अन्त में श्री रामकृष्ण भूमिष्ठ होकर जगन्माता को प्रणाम कर रहे हैं। प्रणाम करते हुए कह रहे हैं, "भागवत-भक्त-भगवान, ज्ञानी के चरणों में प्रणाम, भक्तों के चरणों में प्रणाम, साकारवादी भक्तों के चरणों में प्रणाम, निराकारवादी भक्तों के चरणों में प्रणाम, पहले के ब्रह्म-ज्ञानियों के चरणों में प्रणाम, ब्राह्मसमाज के आजकल के ब्रह्म-ज्ञानियों के चरणों में प्रणाम।"

वेणीमाधव ने नाना प्रकार के उपादेय रुचिकर पकवानों का आयोजन किया और इकट्ठे हुए सब भक्तों को परितोषपूर्वक खिलाया। श्री रामकृष्ण ने भी भक्तों के संग बैठकर आनन्द मनाते-मनाते प्रसाद ग्रहण किया।

•

चतुर्थ खण्ड

श्रीयुक्त विजयकृष्ण गोस्वामी और अन्यान्य ब्राह्म भक्तों के प्रति ठाकुर श्री रामकृष्ण के उपदेश

प्रथम परिच्छेद

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥

— गीता 2 : 20

(मुक्त पुरुष का शरीर-त्याग क्या आत्महत्या है?)

दक्षिणेश्वर-कालीबाड़ी में श्रीयुक्त विजयकृष्ण गोस्वामी भगवान श्री रामकृष्ण के दर्शन करने आए हैं। संग में हैं तीन-चार ब्राह्म भक्त। अग्रहायण, शुक्ला चतुर्थी तिथि। बृहस्पतिवार, अंग्रेज़ी 14 दिसम्बर, 1882 ईसवी। परमहंसदेव के परम भक्त श्रीयुक्त बलराम के साथ ये लोग नौका करके कलकत्ता से आए हैं। श्री रामकृष्ण मध्याह्न काल में उसी समय थोड़ा विश्राम कर रहे थे। रविवार को ही अधिक लोगों का समागम हुआ करता है। जो भक्तगण एकान्त में उनके साथ बातचीत करना चाहते हैं, वे लोग प्रायः अन्य दिन ही आते हैं।

परमहंसदेव तख्तपोश के ऊपर बैठे हैं। विजय, बलराम, मास्टर और अन्य भक्त, पश्चिमास्य हुए उनकी ओर मुख करके कोई चटाई के ऊपर, कोई खाली ज़मीन पर बैठे हैं। कमरे के पश्चिम की दिशा के द्वार से भागीरथी दिखाई दे रही है— शीतकाल की स्थिरा स्वच्छसलिला भागीरथी। द्वार के बाद ही पश्चिम का अर्धमण्डलाकार

बरामदा है। उसके पश्चात् ही है पुष्पोद्यान, फिर पुश्ता (embankment)। पुश्ते के पश्चिम के किनारे से पुण्यसलिला कलुषहारिणी गंगा मानो ईश्वर-मन्दिर के चरण-तल आनन्द से धोती हुई जा रही हैं।

शीतकाल है। तभी सब के शरीरों पर गर्म कपड़े हैं। विजय शूल-वेदना (colic pain) से उग्र यन्त्रणा पाते हैं, इसीलिए साथ में शीशी में औषध लाए हैं। औषध-सेवन का समय होने पर खाएँगे। विजय अब साधारण ब्राह्मसमाज के वेतन-भोगी आचार्य हैं। समाज की वेदी पर बैठ कर उन्हें उपदेश देना पड़ता है। तभी अब समाज के साथ नाना विषयों में मतभेद होता रहता है। कर्म स्वीकार कर लिया है, क्या करें? स्वाधीन भाव से बातें व कार्य नहीं कर सकते। विजय ने अति पवित्र वंश में— अद्वैत गोस्वामी के वंश में जन्म ग्रहण किया है। अद्वैत गोस्वामी ज्ञानी थे, निराकार परब्रह्म की चिन्ता किया करते थे और भक्ति की पराकाष्ठा दिखा गए हैं। वे भगवान चैतन्यदेव के एक प्रधान पार्षद थे। हरि-प्रेम में मतवाले होकर नृत्य किया करते। अपने आपको इतना भूल जाते थे कि नृत्य करते-करते पहना हुआ वस्त्र भी खिसक जाया करता। विजय भी ब्राह्मसमाज में आ गए हैं— निराकार परब्रह्म का चिन्तन करते हैं, किन्तु महाभक्त पूर्वपुरुष श्री अद्वैत का रक्त धमनियों में प्रवाहित हो रहा है, शरीर के मध्य स्थित हरि-प्रेम का बीज अब प्रकाशोन्मुख है; केवल काल की प्रतीक्षा कर रहा है। जभी तो वे भगवान श्री रामकृष्ण की देव-दुर्लभ, हरि-प्रेम में 'गर्गर मतवाली'[1] अवस्था देखकर मुग्ध हो गए हैं। मन्त्रमुग्ध सर्प जैसे साँप पकड़ने वाले सपेरे के निकट बैठा रहता है, विजय भी परमहंसदेव के श्रीमुख से निकली भागवत सुनते-सुनते मुग्ध होकर उनके निकट बैठे रहते हैं और फिर जब वे हरि-प्रेम में बालक की न्यायीं नृत्य करते हैं, विजय भी उनके संग में नाचते रहते हैं।

---

[1] गले तक आई हुई मस्ती वाली

विष्णु का एंड़ेदय में घर है, उसने गले में छुरी मारकर शरीर-त्याग किया है। आज पहले उसकी ही बात की चर्चा हुई।

श्री रामकृष्ण *(विजय, मास्टर और भक्तों के प्रति)*— देखो, इस लड़के ने शरीर-त्याग किया है, यह सुना तो मन खराब हो गया। यहाँ पर आता था, स्कूल में पढ़ता था, किन्तु कहता था, संसार अच्छा नहीं लगता। पश्चिम में (बंगाल के पश्चिम में, उत्तरप्रदेश या पंजाब आदि में) किसी रिश्तेदार के पास कुछ दिन था वहाँ निर्जन मैदान में, वन में, पहाड़ पर सर्वदा बैठ कर ध्यान किया करता। कहता था कि कितने ही कैसे-कैसे ईश्वरीय रूप-दर्शन किया करता है।

"बोध हो रहा है— अन्तिम जन्म था। पूर्वजन्म में बहुत-सा कार्य किया हुआ था। कुछ तनिक सा शेष था, वही उतना-सा लगता है, इस बार हो गया है।

"पूर्वजन्म के संस्कार मानने चाहिएँ। सुना है कि एक व्यक्ति शव-साधना कर रहा था, गम्भीर वन में भगवती की आराधना कर रहा था। किन्तु वह अनेकों विभीषिकाएँ देखने लगा, अन्त में उसे बाघ ले गया। दूसरा एक व्यक्ति बाघ के भय से निकट के एक वृक्ष पर चढ़ा हुआ था। वह, शव और पूजा के अन्यान्य उपकरण तैयार देखकर, नीचे उतरकर, आचमन करके शव के ऊपर बैठ गया। थोड़ा-सा ही जप करते-करते माँ ने दर्शन दिया और बोलीं, 'मैं तुम पर प्रसन्न हूँ, तुम वर लो।' माँ के पादपद्मों में प्रणत होकर वह बोला, "माँ, एक बात पूछता हूँ, तुम्हारा काण्ड देखकर अवाक् हो गया हूँ। वह व्यक्ति इतना परिश्रम करके, इतना आयोजन करके, इतने दिनों से तुम्हारी साधना कर रहा था, उसके ऊपर तुम्हारी दया नहीं हुई। और मैं कुछ जानता नहीं, सुनता नहीं; भजनहीन, साधनहीन, ज्ञानहीन, भक्तिहीन— मेरे ऊपर इतनी कृपा हो गई!"

"भगवती हँसते-हँसते बोली, 'बच्चे, तुम्हें अपने जन्मान्तर की बात स्मरण नहीं है। तुमने जन्म-जन्म मेरी तपस्या की थी। उसी

साधना के बल से इस प्रकार का आयोजन तुम्हारे लिए हुआ, तभी मेरा दर्शन-लाभ हुआ। अब बोलो, क्या वर माँगते हो?”

एक भक्त कहने लगे, आत्महत्या की है, सुनकर भय हो रहा है।

श्री रामकृष्ण— आत्महत्या करना महापाप है, फिर-फिर संसार में आना पड़ेगा और इस संसार की यन्त्रणा भोग करनी पड़ेगी।

“फिर भी यदि ईश्वर-दर्शन होने पर कोई शरीर-त्याग करे, उसे आत्महत्या नहीं कहते। उस शरीर-त्याग में दोष नहीं है। ज्ञान-लाभ के पश्चात् कोई-कोई शरीर-त्याग करता है। जब सोने की मूर्त्ति की एक बार मिट्टी के साँचे में ढलाई हो जाती है, तब मिट्टी का साँचा रखा भी जा सकता है, तोड़कर फेंका भी जा सकता है।

“अनेक वर्ष पहले बराहनगर से एक लड़का आया करता, आयु बीसेक वर्ष होगी। गोपालसेन नाम। जब यहाँ पर आता था, तब इतना भाव होता था कि हृदय को पकड़ना पड़ता था। कहीं फिर गिरने से हाथ-पैर न टूट जाएँ। वह लड़का हठात् मेरे पाँव में हाथ देकर बोला— मैं अब और आ नहीं सकूँगा, तो फिर मैं चलता हूँ। कुछ दिन पीछे सुना कि उसने शरीर-त्याग कर दिया है।”

द्वितीय परिच्छेद

अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्।— गीता 9 : 33

(जीव की चार श्रेणी— बद्ध जीव के लक्षण— कामिनी-काञ्चन)

श्री रामकृष्ण— जीव चार प्रकार के कहे हैं— बद्ध, मुमुक्षु, मुक्त और नित्य। संसार जैसे जाल का स्वरूप है, जीव जैसे मछली है, ईश्वर (जिनकी माया ही यह संसार है), वे हैं मछवा।

- मछवे के जाल में जब मछली पड़ती हैं, उनमें से कितनी ही मछलियाँ जाल काट कर भागने की अर्थात् मुक्त होने की चेष्टा करती हैं। इन्हें मुमुक्षु जीव कहा जाता है।
- जो भागने की चेष्टा करती हैं, वे सारी ही भाग नहीं सकतीं। दो-चार मछलियाँ धप शब्द करके भाग जाती हैं, तब लोग कहते हैं— वह बड़ी मछली तो भाग गई। ये ही दो-चार लोग मुक्त जीव हैं।
- कुछ मछलियाँ स्वभावतः इतनी सावधान होती हैं कि कभी भी जाल में नहीं पड़तीं। नारद आदि नित्य जीव हैं, कभी संसार के जाल में नहीं पड़ते।
- किन्तु अधिकांश मछलियाँ जाल में ही पड़ती हैं, अथच यह बोध नहीं कि जाल में पड़ी हैं, मरना होगा। वे जाल में पड़े-पड़े ही जाल सहित तीर की तरह छूट कर और एकदम कीचड़ में जाकर शरीर छिपाने की चेष्टा करती हैं। भागने की कोई चेष्टा नहीं बल्कि और भी कीचड़ में जाकर गिर जाती हैं। ये ही हैं बद्ध जीव। ये जाल में रहते हैं, किन्तु मन में सोचते हैं यहाँ पर हम अच्छे हैं।

"बद्ध जीव,संसार अर्थात् कामिनी-काञ्चन में आसक्त हुए रहते हैं, कलंक-सागर में मग्न रहते हैं, किन्तु मन में समझते हैं कि बड़े अच्छे हैं। जो मुमुक्षु व मुक्त हैं, संसार उन्हें पात-कुँआ लगता है, अच्छा नहीं लगता। इसीलिए कोई-कोई ज्ञान-लाभ के पश्चात्, भगवान-लाभ के बाद, शरीर-त्याग कर देते हैं। किन्तु उस प्रकार का शरीर-त्याग तो बहुत दूर की बात है।

"बद्ध जीव को, संसारी जीव को किसी भी प्रकार से फिर होश नहीं होता। इतना दुःख, इतनी तपन, इतनी विपद् पड़ती है, फिर भी चैतन्य नहीं होता।

"ऊँट काँटेदार घास बहुत पसन्द करता है। किन्तु जितना भी खाता है, मुख से रक्त धड़-धड़ करके गिरता रहता है, फिर भी वही काँटा-घास ही खाता है, छोड़ता नहीं। संसारी व्यक्ति इतना शोक-

ताप पाता है, फिर भी कुछ दिनों के बाद फिर जैसे का तैसा। स्त्री मर गई या द्विचारिणी हो गई, तब भी फिर दुबारा विवाह करेगा। लड़का मर गया, कितना शोक पाया! कुछ दिन बाद भूल गया। उसी लड़के की माँ ने, जो शोक में अधीर हो गई थी, फिर कुछ दिन पश्चात् बाल बाँधे और गहने पहने। इसी प्रकार लोग लड़की के विवाह में सब खत्म कर देते हैं। फिर भी हर साल उनके लड़की-लड़के होते ही रहते हैं। मुकद्दमों में सब खो देते हैं। फिर मुकद्दमा करते हैं। जो बच्चे हैं, उन्हें ही खिला नहीं सकते, पढ़ा नहीं सकते, अच्छी तरह रख नहीं सकते, और फिर भी हर वर्ष बच्चे होते हैं।

"कभी-कभी तो साँप-छछुन्दर की गति हो जाती है, निगल भी नहीं सकता और छोड़ भी नहीं सकता। बद्ध जीव चाहे समझ तो गया है कि संसार में कुछ भी सार नहीं है। आमड़े में केवल गुठली और छिलका ही है, तो भी छोड़ नहीं सकता, ईश्वर की ओर मन दे नहीं सकता।

"केशवसेन का एक रिश्तेदार, पचास वर्ष आयु, ताश खेल रहा था। मानो अभी भी ईश्वर का नाम करने का समय नहीं हुआ है।

"बद्ध जीव का और भी एक लक्षण है। उसको यदि संसार से हटा कर अच्छी जगह पर रखा जाए, तो तड़प-तड़प कर मर जाएगा। टट्टी के कीड़े को विष्ठा में ही खूब आनन्द मिलता है। उसमें ही बहुत हृष्ट-पुष्ट होता है। यदि उस कीड़े को भात की हाण्डी में रखें, तो मर जाएगा।" *(सभी स्तब्ध!)*

तृतीय परिच्छेद

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येन च गृह्यते ॥ —गीता 6 : 35

(तीव्र वैराग्य और बद्ध जीव)

विजय— बद्ध जीव के मन की कैसी अवस्था होने पर मुक्ति हो सकती है?

श्री रामकृष्ण— ईश्वर की कृपा से तीव्र वैराग्य होने पर, इस कामिनी-काञ्चन पर से आसक्ति से निस्तार हो सकता है। तीव्र वैराग्य किसे कहते हैं? हो रहा है जो, हो जाएगा, ईश्वर का नाम लिए जा— ऐसा तो मन्द वैराग्य से होता है। जिसका तीव्र वैराग्य है, उसका प्राण भगवान के लिए व्याकुल हो जाता है, माँ का प्राण जैसे पेट के बेटे के लिए व्याकुल रहता है। जिस का तीव्र वैराग्य होता है, वह भगवान के अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहता। संसार को पात-कुँआ, मृत्यु का कुँआ देखता है। उसको लगता है, शायद डूब ही गया है। अपनों को काल-सर्प देखता है, उनके निकट से भागने की इच्छा होती रहती है, और फिर भाग भी जाता है। घर का प्रबन्ध करके फिर ईश्वर-चिन्तन करूँगा— यह बात सोचता ही नहीं। भीतर खूब तेज होता है। तीव्र वैराग्य किसे कहते हैं, एक कहानी सुनो—

"एक देश में अनावृष्टि हुई। सब किसान नहरें काट-काट कर दूर से जल लाने लगे। एक किसान में बहुत तेज (रोक) था। उसने एक दिन प्रतिज्ञा की कि जब तक वहाँ जल नहीं आएगा अर्थात् नहर के साथ नदी का जल एक नहीं होगा, तब तक नहर खोदता ही रहूँगा। इधर स्नान करने का समय हो गया। गृहिणी ने लड़की के हाथ तेल भेज दिया। लड़की ने कहा, 'पिता जी, समय हो गया है, तेल मलकर स्नान कर लो।' उसने कहा, 'तू जा, मुझे अभी काम है।' समय दोपहर का हो गया। अभी भी किसान मैदान में काम कर रहा है। स्नान करने का नाम तक नहीं। उसकी स्त्री ने अब मैदान में आकर कहा, 'अभी तक नहाए क्यों नहीं? भात ठण्डा हो गया है। तुम्हारी सब बातें ही बढ़-बढ़ कर हैं। अब नहीं हो रहा तो कल करना, या खा-पी कर करना।' किसान ने कुदाल हाथ में लेकर दो-चार गालियाँ देकर भगा दिया। और बोला, 'तुझे अकल नहीं है। वर्षा हुई नहीं है। खेती-बाड़ी कुछ भी नहीं हुई है। अबकी बार बच्चे आदि क्या खाएँगे? बिना खाए हम सब मर जाएँगे। मैंने प्रतिज्ञा की है कि मैदान में आज जल लाऊँगा, तब फिर नहाने-खाने की बात करूँगा।' स्त्री उस की चाल-

ढाल देखकर भाग गई। किसान ने सारा दिन खूब कठिन परिश्रम करके सन्ध्या के समय नहर के संग नदी का योग कर दिया। तब एक किनारे पर बैठकर देखने लगा कि नदी का जल मैदान में कुल-कुल करके आ रहा है। उसका मन शान्त और आनन्द में भरपूर हो गया। घर जाकर स्त्री को बुलाकर बोला, 'ला, अब तेल दे और थोड़ा तम्बाकू बना।' तत्पश्चात् निश्चिन्त होकर नहा-खा कर सुख से घुर्राटे लेकर सो गया। यही तीव्र वैराग्य की उपमा है।

"और एक किसान था, वह भी मैदान में जल ला रहा था। उसकी स्त्री ने जाकर कहा, 'बहुत देर हो गई है, अब आओ, इतने अधिक काम की आवश्यकता नहीं है।' तब उसने अधिक कुछ कहे-सुने बिना कुदाल रख कर स्त्री से कहा, 'तू जब कहती है, तो फिर चल।' *(सब का हास्य)*। उस किसान से फिर मैदान में जल नहीं लाया गया। यह है मन्द वैराग्य की उपमा। खूब तेज के बिना हुए किसान के मैदान में जैसे जल नहीं आया, उसी प्रकार मनुष्य को ईश्वर की प्राप्ति नहीं होती।"

चतुर्थ परिच्छेद

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं, समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत्।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे, स शान्तिमाप्नोति न कामकामी॥
— गीता 2 : 70

(कामिनी-काञ्चन के लिए दासत्व)

श्री रामकृष्ण *(विजय के प्रति)*— पहले तो इतना आते थे, अब क्यों नहीं आते?

विजय— यहाँ आने की तो इच्छा बहुत है, किन्तु मैं स्वाधीन नहीं हूँ, ब्राह्मसमाज का कार्य स्वीकार कर लिया है।

श्री रामकृष्ण *(विजय के प्रति)*— कामिनी-काञ्चन जीव को बद्ध करते हैं। जीव की स्वाधीनता चली जाती है। कामिनी के रहने से ही काञ्चन की ज़रूरत होती है। उसके लिए ही अन्य का दासत्व करना पड़ता है। स्वाधीनता चली जाती है। अपने मन के अनुसार कार्य नहीं कर सकते।

"जयपुर के गोबिन्दजी के पुजारीगण पहले-पहले विवाह नहीं करते थे। तब खूब तेजस्वी थे। राजा ने एक बार उन्हें बुलावा भेजा, तब वे लोग आए नहीं। कहलवा दिया, राजा को आने के लिए कहो। तब फिर राजा ने पंचों की सलाह करके उनका विवाह कर दिया। (अब) राजा को मिलने के लिए किसी को भी पुजारियों को बुलाने के लिए भेजना नहीं पड़ता था। अपने आप ही आ जाते— महाराज आशीर्वाद करने आया हूँ, यह निर्माल्य लाया हूँ, ग्रहण करो। हर कार्य के लिए ही आना पड़ता है— आज घर बनाना है, आज लड़के का अन्न-प्राशन है, आज हाथ-खड़ी (विद्या-आरम्भ) है, इत्यादि।

"बारह सौ नेड़ा और तेरह सौ नेड़ी तार साक्षी उदम साड़ी— यह कहानी तो जानते ही हो। नित्यानन्द गोस्वामी के लड़के वीरभद्र के तेरह सौ नेड़े (सिर मुंडे) शिष्य थे। वे जब सिद्ध हो गए, तब वीरभद्र को भय हुआ। वे सोचने लगे, ये तो सिद्ध हो गए हैं, लोगों से ये जो कहेंगे, वही फलेगा। जिस दिशा से जाएँगे, उसी तरफ़ भय है, क्योंकि लोग यदि अनजाने में भी अपराध करेंगे, तो उनका अनिष्ट होगा।"

"यही सोचकर वीरभद्र ने उन्हें पुकार कर कहा— तुम लोग गंगा में जाकर सन्ध्या-वन्दना-पूजा आदि करके आओ। नेड़ाओं का इतना तेज था कि ध्यान करते-करते समाधि हो गई। कब ज्वार सिर के ऊपर से चली गई, होश भी नहीं और फिर भाटा पड़ा, तब भी ध्यान भंग न हुआ। तेरह सौ में से एक सौ ने समझ लिया था कि वीरभद्र क्या कहेंगे। गुरु की वाणी का उल्लंघन नहीं करना चाहिए, सो वे लोग तो सरक गए, और वीरभद्र से फिर मिले नहीं। बाकी बारह सौ

आकर मिले। वीरभद्र ने कहा, 'ये तेरह सौ नेड़ियाँ तुम्हारी सेवा करेंगी। तुम लोग इनसे विवाह कर लो।' उन्होंने कहा, 'जो आज्ञा, किन्तु हमारे में से एक सौ लोग तो कहीं चले गए हैं।' उन बारह सौ के प्रत्येक के साथ सेवा-दासी साथ-साथ रहने लगी। तब फिर वह तेज नहीं रहा, वह तपस्या का बल नहीं रहा। स्त्रियों के संग रहते हुए फिर वह बल नहीं रहा, क्योंकि, उनके संग स्वाधीनता लुप्त हो गई।

(विजय के प्रति) "तुम लोग अपने आप ही तो देख रहे हो, दूसरे का कर्म स्वीकार करके क्या हो गए हो। और देखो, इतना पढ़-लिख कर कितने ही अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे पण्डित लोग मालिक की नौकरी करके दोनों वक्त उनके जूतों के ठुड्डे खाते हैं। इसका कारण केवल 'कामिनी' है। विवाह करके गृहस्थ-आनन्द की हाट में बैठकर फिर हाट को हटाने की शक्ति नहीं। जभी तो इतना अपमान-बोध और दासत्व की इतनी यन्त्रणा होती है।"

(ईश्वर-लाभ के पश्चात् कामिनी की मातृ-भाव में पूजा)

"यदि एक बार इसी प्रकार तीव्र वैराग्य होकर ईश्वर-लाभ हो जाता है तो फिर और स्त्रियों में आसक्ति नहीं रहती। घर में रहने पर भी स्त्रियों में आसक्ति नहीं रहती, उनका भय नहीं रहता। यदि एक चुम्बक बहुत बड़ा हो, और एक सामान्य हो, तो लोहे को कौन सा खींच लेगा? बड़ा ही खींच लेगा। ईश्वर बड़ा चुम्बक पत्थर है, उनके सामने कामिनी छोटा चुम्बक पत्थर है। कामिनी क्या करेगी?"

एक भक्त— महाशय! स्त्रियों को क्या घृणा करें?

श्री रामकृष्ण— जिन्होंने ईश्वर-लाभ कर लिया है, वे कामिनी को फिर दूसरी आँख से नहीं देखते, जो भय होगा। वे यथार्थ देखते हैं कि लड़कियाँ माँ ब्रह्ममयी का ही अंश हैं और 'माँ' कहकर तभी तो सब की पूजा करते हैं।

(विजय के प्रति)— तुम कभी-कभी आना, तुम्हें देखने की बड़ी इच्छा होती है।

पंचम परिच्छेद

(ईश्वर का आदेश प्राप्त होने पर ही यथार्थ आचार्य)

विजय— ब्राह्मसमाज का कार्य करना होता है, तभी सदा-सर्वदा आ नहीं सकता, सुविधा होने पर आऊँगा।

श्री रामकृष्ण *(विजय के प्रति)*— देखो, आचार्य का कार्य है बड़ा कठिन। ईश्वर के साक्षात् आदेश के बिना लोक-शिक्षा दी नहीं जाती।

"यदि आदेश बिना पाए उपदेश दिया जाए, तो लोग सुनेंगे नहीं। उस उपदेश की कोई शक्ति नहीं होती। पहले साधन करके, अथवा जिस किसी भी प्रकार से हो, ईश्वर को प्राप्त करना चाहिए। उनका आदेश पाकर लेक्चर देना चाहिए। उस 'देश' में एक पुकुर है, नाम हलधर पुकुर। उसके किनारे लोग रोज़ बाह्य कर दिया करते थे। प्रातः जो घाट पर आते, खूब बुरा-भला कहकर, खूब गड़बड़ किया करते। उस गाली-गलौच से कुछ भी काम नहीं होता था— दूसरे दिन फिर किनारे पर ही बाह्य। अन्त में कम्पनी (म्यूनिसीपेलिटी) का चपरासी नोटिस टाँग गया, 'यहाँ पर कोई ऐसा काम नहीं कर सकता। यदि करेगा, तो दण्ड मिलेगा।' इस नोटिस के बाद फिर कोई वहाँ गन्दा नहीं करता था।

"उनके आदेश के पश्चात् कहीं भी आचार्य बना जा सकता है और लेक्चर दिया जा सकता है। जो उनका आदेश पा लेता है, वह उनके पास से शक्ति पा लेता है। तब आचार्य का यह कठिन कार्य कर सकता है।

"एक बड़े ज़मींदार के विरुद्ध एक सामान्य रिआया (प्रजा) ने बड़ी अदालत में मुकद्दमा कर दिया था। तब लोगों को पता लगा कि इस सामान्य व्यक्ति के पीछे एक बलवान व्यक्ति है। शायद एक और बड़ा ज़मींदार उसके पीछे रहकर मकद्दमा चला रहा है। मनुष्य सामान्य जीव है। ईश्वर की साक्षात् शक्ति बिना प्राप्त किए आचार्य के जैसा कठिन कार्य नहीं कर सकता।"

विजय— महाशय, ब्राह्मसमाज में जो उपदेश आदि होते हैं, उनसे क्या लोगों का परित्राण नहीं होता?

(सच्चिदानन्द ही गुरु— मुक्ति वे ही देते हैं)

श्री रामकृष्ण— मनुष्य में क्या सामर्थ्य है कि दूसरे को संसार-बन्धन से मुक्त करे? जिनकी यह भुवनमोहिनी माया है, वे ही माया से मुक्त कर सकते हैं। सच्चिदानन्द गुरु के बिना और गति नहीं है। जिन्होंने ईश्वर-लाभ नहीं किया, जिन्होंने उनका आदेश नहीं पाया, जो ईश्वर की शक्ति से शक्तिमान नहीं हुए, उनकी क्या सामर्थ्य है कि जीव का भव-बन्धन मोचन करें?

"मैं एक दिन पंचवटी के निकट से झाऊतले में बाह्य जा रहा था। सुना कि एक बड़ा मेंढक खूब पुकार रहा है। पता लगा कि साँप ने पकड़ लिया है। बहुत क्षण पश्चात् लौट कर आ रहा था, तब भी देखा कि मेंढक खूब चिल्ला रहा है। एक बार झाँक कर देखा कि क्या हो रहा है। देखा कि एक ढोंडा (विष-रहित) साँप ने मेंढक को पकड़ा हुआ है, छोड़ भी नहीं सकता है और निगल भी नहीं सकता है। मेंढक की यन्त्रणा समाप्त नहीं हो रही है। तब सोचा, 'अरे, यदि काला नाग पकड़ता तो तीन चीत्कार में मेंढक चुप हो जाता। यह एक ढोंडा ने पकड़ा है न! तभी साँप को भी यन्त्रणा है और मेंढक को भी यन्त्रणा है।'

"यदि सद्गुरु हो तो जीव का अहंकार तीन पुकार में ही समाप्त हो जाता है। गुरु कच्चा हो तो गुरु को भी कष्ट और शिष्य को भी कष्ट। शिष्य का अहंकार-मोचन नहीं होता और फिर संसार का बन्धन नहीं कटता। कच्चे गुरु के पल्ले पड़कर शिष्य मुक्त नहीं होता।"

षष्ठ परिच्छेद

अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते।— गीता 3 : 27

(माया अथवा अहं-आवरण के जाते ही मुक्ति व ईश्वर-लाभ)

विजय— महाशय, क्यों हम इस प्रकार बद्ध हुए हुए हैं? क्यों ईश्वर को देख नहीं पाते?

श्री रामकृष्ण— जीव का अहंकार ही माया है। इस अहंकार ने सब-कुछ ढक कर रखा हुआ है। 'आमि मले घुचिबे जंजाल।' (मैं के मरने पर ही सब जंजाल खत्म हो जाएगा)। यदि ईश्वर की कृपा से 'मैं' अकर्ता, यह बोध हो गया, तो फिर वह व्यक्ति तो जीवन्मुक्त ही हो गया। उसे फिर भय नहीं।

"यही माया अथवा अहं जैसे मेघ का स्वरूप होता है। सामान्य मेघ के कारण सूर्य दिखाई नहीं देता। मेघ के हटते ही सूर्य-दर्शन हो जाता है। यदि गुरु-कृपा से एक बार अहं बुद्धि चली जाती है, तो फिर ईश्वर-दर्शन होता है।

"रामचन्द्र ढाई हाथ की दूरी पर हैं। वे साक्षात् ईश्वर हैं। मध्य में सीतारूपिणी माया व्यवधान होने के कारण लक्ष्मणरूप जीव उसी ईश्वर को देख नहीं सकते। यह देखो, मैं इस अंगोछे से मुख के सामने ओट कर लेता हूँ। अब तुम मुझे देख नहीं सकते, फिर इतने निकट भी हूँ! इसी प्रकार भगवान सब की अपेक्षा हमारे इतने निकट हैं, तब भी इस माया या आवरण के कारण हम उन्हें देख नहीं सकते।

"जीव तो हैं सच्चिदानन्दस्वरूप। किन्तु इस माया व अहंकार से उन पर नाना उपाधियाँ लग गई हैं और वे अपना स्वरूप भूल गए हैं।

"एक-एक उपाधि होती है, और जीव का स्वभाव बदल जाता है। जो काले किनारे की धोती पहने हुए होता है, उसे देखोगे, झट उसको निधु के टप्पों की ताल आ जाती है, और ताश खेलना और टहलने जाने के समय हाथ में छड़ी (stick), ये सब आ मिलती हैं। पतला सूखा-सा भी यदि बूट-जूता पहने तो भी तुरन्त सीटी बजाना आरम्भ कर देता है। सीढ़ियाँ चढ़ते समय साहबों की भाँति फुदक-फुदक कर चढ़ता है। मनुष्य के हाथ में यदि कलम हो, तो कलम का ऐसा गुण है कि वह तुरन्त कोई कागज़ का टुकड़ा मिलते ही उसके ऊपर फस-फस करके लकीरें आदि खींचने लगेगा।

"रुपया भी एक विलक्षण उपाधि है। रुपया होते ही मनुष्य एक और प्रकार का हो जाता है। वह (पहला) मनुष्य नहीं रहता।

"यहाँ पर एक ब्राह्मण आया-जाया करता था। वह बाहर से खूब विनयी था। कुछ दिनों पश्चात् हम कोन्नगर गए। हृदय संग में था। नौका से ज्योहि मैं उतर रहा था, मैंने देखा वही ब्राह्मण गंगा के किनारे बैठा है। ऐसा लगा कि हवा खा रहा है। हमें देखकर बोला, क्यों ठाकुर, कहो कैसे हो?' उसकी बात का स्वर सुनकर मैंने हृदय से कहा, 'ओ रे हृदय! इस व्यक्ति के पास पैसा हो गया है, जभी इस प्रकार कह रहा है। हृदय हँसने लगा।"

"एक मेंढक के पास रुपया था। उसका रुपया एक गड्ढे में रखा हुआ था। एक हाथी उस गर्त को लाँघ कर चला गया। तब मेंढक बाहर आकर खूब क्रोध करके हाथी को लात दिखाने लगा; और बोला, तेरी इतनी हिम्मत कि मुझे लाँघ कर जा रहा है। रुपये का इतना अहंकार होता है।"

(सप्तभूमि— अहंकार कब जाता है— ब्रह्म-ज्ञान की अवस्था)

"ज्ञान-लाभ हो जाने पर अहंकार जा सकता है। ज्ञान-लाभ होने पर समाधिस्थ हो जाता है। समाधिस्थ होने पर ही तब अहं जाता है। वह ज्ञान-लाभ है बड़ा कठिन।

"वेद में है कि मन के सप्तम भूमि पर जाने पर ही अहं चला जा सकता है। समाधि होने पर ही अहं चला जा सकता है। मन का वास प्रायः कहाँ पर होता है? प्रथम तीन भूमि पर— लिंग, गुदा, नाभि में। तब मन की आसक्ति केवल संसार में रहती है, कामिनी-काञ्चन में। हृदय में जब मन का वास होता है, तब ईश्वरीय ज्योति-दर्शन होता है। वह व्यक्ति ज्योति-दर्शन करता हुआ कहता है, यह क्या! यह क्या! इसके पश्चात् कण्ठ है। वहाँ पर केवल ईश्वरीय बातें कहने और सुनने की इच्छा ही होती है। कपाल-भ्रू-मध्य में मन के चले जाने पर तब सच्चिदानन्द-दर्शन होता है। उसी रूप के साथ आलिंगन-स्पर्शन करने की इच्छा होती है, किन्तु कर नहीं सकता। लालटेन के भीतर आलोक का दर्शन तो हो जाता है, किन्तु स्पर्श नहीं होता। ऐसा लगता है कि छू रहा हूँ, छू रहा हूँ, किन्तु छुआ नहीं जाता। सप्तम भूमि पर मन जब चला जाता है, तब फिर अहं नहीं रहता, समाधि हो जाती है।"

विजय— वहाँ पर पहुँचने पर ब्रह्म-ज्ञान हो जाता है, मनुष्य क्या देखता है?

श्री रामकृष्ण— सप्तम भूमि में मन के पहुँचने पर क्या होता है, मुख से नहीं बोला जाता। जहाज़ एक बार काले पानी में जाने पर फिर लौटता नहीं। जहाज़ की खबर फिर नहीं मिलती। समुद्र का समाचार भी जहाज़ से नहीं मिलता।

"नमक की पुतली समुद्र मापने गई थी। किन्तु ज्योंहि उतरी, त्योंहि गल गई। समुद्र कितना गहरा है, कौन खबर देगा? जिसने देनी है, वही मिल गई। सप्तम भूमि में मन का नाश हो जाता है, समाधि होती है। तब क्या बोध होता है, मुख से नहीं बोला जाता।

(अहं किन्तु नहीं जाता— बज्जात 'मैं', दास 'मैं')

"जो 'मैं' संसारी बनाता है, कामिनी-काञ्चन में आसक्त करता है, वह 'मैं' खराब है। इसके बीच में होने के कारण ही जीव और आत्मा का प्रभेद हो गया है। जल के ऊपर यदि एक लाठी रख दी जाए तो दो भाग दिखाई देते हैं। वस्तुतः जल एक ही है, लाठी के कारण दो दिखलाई देते हैं।

'अहं' ही वह लाठी है। लाठी उठा लो, वही एक जल ही रहेगा।

"बज्जात 'मैं' क्या है— जो 'मैं' कहता है, मुझे जानता नहीं? मेरा इतना रुपया है, मेरे से बड़ा व्यक्ति कौन है? यदि चोर दस रुपये चोरी कर लेता है, तो पहले तो रुपया छीन लेता है, फिर चोर को खूब मारता है, उस पर भी नहीं छोड़ता, पहरेदार को बुलाकर पुलिस में देकर दण्ड दिलवाता है। बज्जात 'मैं' कहता है— जानता नहीं; मेरे दस रुपये ले लिए थे। इतनी बड़ी स्पर्धा!"

विजय— यदि अहं बिना गए संसार की आसक्ति नहीं जाती, समाधि नहीं होती, तब तो फिर ब्रह्म-ज्ञान का पथ लेना ही अच्छा है, जिससे समाधि होती है। और भक्तियोग से यदि अहं रहता ही है, तब तो ज्ञानयोग ही अच्छा है।

श्री रामकृष्ण— दो-एक जनों की ही चाहे समाधि होती है और अहं जाता है, किन्तु प्रायः अहं जाता नहीं। हज़ार विचार करो, अहं घूम-फिर कर आ ही जाता है। आज पीपल का वृक्ष काट दो, कल फिर सुबह देखोगे कोंपल निकल आई है। बिल्कुल यदि 'मैं' जाता ही नहीं, तो रहे साला -'दास मैं' बनकर। हे ईश्वर! तुम प्रभु, मैं दास— इसी भाव में रहो। 'मैं दास', 'मैं भक्त', इस प्रकार के 'मैं' में दोष नहीं है। मिठाई खाने से अम्लरोग हो जाता है, किन्तु मिश्री मिठाई में नहीं है।

"ज्ञानयोग बहुत कठिन है। देहात्मबुद्धि बिना गए ज्ञान नहीं होता। कलियुग में अन्नगत प्राण हैं। देहात्मबुद्धि, अहंबुद्धि नहीं जाती। इसीलिए कलियुग के लिए भक्तियोग है। भक्ति-पथ सहज पथ है।

आन्तरिक व्याकुल होकर उनका गुण-गान करो, प्रार्थना करो, भगवान को प्राप्त करोगे— कोई सन्देह नहीं।

"जैसे जलराशि के ऊपर बाँस न रखकर एक रेखा खिंची हुई है; जल जैसे दो भाग हो गया है। फिर रेखा अधिक देर तक नहीं रहती। 'दास मैं' या भक्त का 'मैं' या बालक का 'मैं'— ये मानो 'मैं' की रेखा मात्र हैं।"

सप्तम परिच्छेद

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम्।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते॥ — गीता 12:5

भक्तियोग युगधर्म— ज्ञानयोग बड़ा कठिन
दास-'मैं', भक्त का 'मैं', बालक का 'मैं'

विजय *(श्री रामकृष्ण के प्रति)*— महाशय, आप बज्जात 'मैं' का त्याग करने के लिए कहते हैं। दास 'मैं' में दोष नहीं?

श्री रामकृष्ण— हाँ, दास 'मैं' अर्थात् मैं ईश्वर का दास हूँ, मैं उनका भक्त हूँ, यह अभिमान रहना चाहिए। इसमें दोष नहीं, अपितु इससे ईश्वर-लाभ होता है।

विजय— अच्छा, जिसका दास-'मैं' है, उसके कामक्रोधादि कैसे होते हैं?

श्री रामकृष्ण— ठीक भाव यदि होता है, तब तो फिर काम, क्रोध केवल आकार मात्र रहते हैं। यदि ईश्वर-लाभ के पश्चात् दास-'मैं' अथवा भक्त का 'मैं' रहता है, तो वह व्यक्ति किसी का अनिष्ट नहीं कर सकता। पारस-मणि छू लेने के पश्चात् तलवार सोना हो जाती है, तलवार का आकार रहता है, किन्तु किसी की हिंसा नहीं करती।

"नारियल के वृक्ष के पत्ते सूख कर झड़ते हैं, केवल निशान मात्र रह जाते हैं। उन्हीं निशानों से यही पता लग जाता है कि एक समय यहाँ पर नारियल के पत्ते थे। उसी प्रकार जिसे ईश्वर-लाभ हो गया है, उसके अहंकार का दाग़ मात्र रह जाता है। काम, क्रोध का आकार मात्र रहता है, बालक की अवस्था हो जाती है। बालक जैसे सत्त्व, रज, तम गुणों में से किसी भी गुण के बस में नहीं होता। बालक को किसी भी वस्तु के ऊपर आकर्षण होते हुए जितनी देर लगती है, उसको छोड़ते हुए भी उतनी ही देर लगती है।

"पाँच रुपये का एक कपड़ा तुम धेले की गुड़िया से भुलाकर ले सकते हो, किन्तु प्रथम तो तब बहुत ज़ोर से कहेगा, 'नहीं, मैं नहीं दूँगा, मेरे पिता ने खरीद कर दिया है।' बालक के लिए वैसे तो सब ही समान होते हैं— यह बड़ा, वह छोटा— ऐसा बोध नहीं होता। जभी जाति-विचार नहीं होता। माँ ने कह दिया है, 'वह तेरा दादा है।' फिर वह चाहे बढ़ई ही हो, एक थाली में बैठकर खाना खा लेगा। बालक को घृणा नहीं होती, शुचि-अशुचि-बोध नहीं। शौच जाकर मिट्टी से हाथ नहीं धोता।

"कोई-कोई समाधि के बाद भी 'भक्त का मैं', 'दास-मैं' लेकर रहते हैं। 'मैं दास, तुम प्रभु', 'मैं भक्त, तुम भगवान'— भक्त का यह अभिमान रहता है। ईश्वर-लाभ के पश्चात् भी रहता है, सब 'मैं' नहीं जाती। और फिर यही अभिमान अभ्यास करते-करते ईश्वर-लाभ हो जाता है। इसी का ही नाम है भक्तियोग।

"भक्ति का पथ पकड़ कर जाने से ब्रह्म-ज्ञान हो जाता है। भगवान सर्वशक्तिमान हैं, ऐसा सोचने पर ब्रह्म-ज्ञान भी दे सकते हैं। भक्त प्रायः ब्रह्म-ज्ञान नहीं माँगता। 'मैं दास, तुम प्रभु', 'मैं लड़का, तुम माँ', यह अभिमान रखना चाहता है।"

विजय— जो लोग वेदान्त-विचार करते हैं, वे भी तो उनको प्राप्त करते हैं?

श्री रामकृष्ण— हाँ, विचार-पथ से भी उन्हें प्राप्त किया जाता है। इसको ही ज्ञानयोग कहते हैं। विचार-पथ बड़ा कठिन है। तुम्हें तो सप्तभूमि की बात बताई थी। सप्तम भूमि पर मन के पहुँच जाने पर समाधि होती है। ब्रह्म-सत्य, जगत्-मिथ्या— इसका ठीक बोध होने पर मन का लय होता है, समाधि होती है। किन्तु कलियुग में जीव के अन्नगत प्राण हैं, ब्रह्म-सत्य, जगत् मिथ्या— यह कैसे बोध होगा? वैसा बोध तो देहबुद्धि के बिना गए नहीं होता। मैं देह नहीं, मैं मन नहीं, मैं चौबीस तत्त्व नहीं, मैं सुख-दुःख के अतीत हूँ, तब फिर मुझे रोग, शोक, जरा, मृत्यु कैसे?— ऐसा बोध कलियुग में होना कठिन है। चाहे जितना भी विचार करो, कहाँ से देहबुद्धि आकर दर्शन देने लगती है! पीपल का वृक्ष अभी काट दो, मन में सोचा कि जड़ समेत उखड़ गया है, किन्तु उसके दूसरे दिन ही सुबह देखोगे, वृक्ष की एक फुनगी निकल आई है। देहाभिमान जाता नहीं; तभी कलियुग के लिए भक्तियोग अच्छा और सहज है।

"चीनी बनना मैं नहीं चाहता, चीनी खाना पसन्द करता हूँ। मेरी ऐसी इच्छा तो कभी भी नहीं होती कि कहूँ— 'मैं ब्रह्म हूँ।' मैं कहता हूँ— 'तुम भगवान हो, मैं तुम्हारा दास हूँ।' पंचम भूमि और षष्ठ भूमि के बीच में खेलना अच्छा है। षष्ठ भूमि पार करके सप्तम भूमि पर बहुत देर ठहरने की मेरी साध नहीं होती। मैं उनका नाम-गुण-गान करूँगा— यही मेरी साध है। सेव्य-सेवक भाव खूब अच्छा है। और देखो गंगा की ही लहर सब कहते हैं, लहर की गंगा कोई नहीं कहता। 'मैं ही वह हूँ'— यह अभिमान अच्छा नहीं है। देहात्मबुद्धि रहते हुए जो ऐसा अभिमान करता है, उसकी विशेष हानि होती है, आगे बढ़ नहीं सकता। क्रमशः अध:पतन हो जाता है। दूसरों को ठगता है और फिर अपने-आप को ठगता है, अपनी अवस्था समझ नहीं पाता।"

(द्विविधा भक्ति— उत्तम अधिकारी— ईश्वर-दर्शन के उपाय)

"किन्तु खाली भक्ति करने से ईश्वर प्राप्त नहीं होते। प्रेमाभक्ति न हो तो ईश्वर लाभ नहीं होता। प्रेमाभक्ति का एक और नाम है— राग भक्ति। प्रेम, अनुराग बिना हुए, भगवान-लाभ नहीं होता। ईश्वर के ऊपर प्यार बिना हुए, उन्हें प्राप्त नहीं किया जाता।

"और एक प्रकार की भक्ति है। उसका नाम है वैधी भक्ति। इतना जप करना होगा, उपवास करना होगा, तीर्थ पर जाना होगा, इतने उपचारों से पूजा करनी होगी, इतने बलिदान देने होंगे इत्यादि वैधी भक्ति है। ये सब करते-करते क्रमशः राग भक्ति आ जाती है। किन्तु जब तक राग भक्ति नहीं होगी, तब तक ईश्वर-लाभ नहीं होगा। उन पर प्यार होना चाहिए। संसार-बुद्धि एकदम चली जाएगी और उनके ऊपर सोलह आना मन हो जाएगा, तभी उन्हें पाओगे।

"किन्तु किसी-किसी को राग भक्ति अपने-आप ही हो जाती है। स्वतः सिद्ध। बचपन से ही होती है। बालकपन से ही ईश्वर के लिए रोता है। जैसे प्रह्लाद। विधिवादीय भक्ति— जैसे हवा प्राप्त करने के लिए पंखा करना। हवा के लिए पंखे का प्रयोजन होता है। ईश्वर के ऊपर प्यार आएगा, इस कारण जप-तप, उपवास आदि। किन्तु दक्षिणी हवा अपने आप बहती है तो लोग पंखा छोड़ देते हैं। ईश्वर के ऊपर अनुराग, प्रेम, अपने आप आ जाने पर जप आदि कर्म-त्याग हो जाता है। हरि-प्रेम में मतवाला हो जाने पर वैधी कर्म कौन करेगा?

"जब तक उनके ऊपर प्यार नहीं पैदा होता, तब तक भक्ति कच्ची भक्ति है। उनके ऊपर प्यार आने पर, तब उस भक्ति का नाम है पक्की भक्ति।

"जिसकी कच्ची भक्ति होती है, वह ईश्वर की बातों और उपदेशों को धारण नहीं कर सकता। फोटोग्राफर के काँच पर यदि स्याही (silver nitrate) लगी हुई हो तो फिर जो छवि पड़ती है, वह रह जाती है। किन्तु सादे काँच के ऊपर हज़ारों छवियाँ ही पड़ें, एक भी

नहीं ठहरती— तनिक-सा सरकते ही जैसा काँच था, वैसा ही काँच रहता है। ईश्वर के ऊपर प्यार न रहे, तो उपदेश की धारणा नहीं होती।

विजय— महाशय, ईश्वर को प्राप्त करने के लिए, उनके दर्शन करने के लिए, भक्ति होने से ही हो जाता है?

श्री रामकृष्ण— हाँ, भक्ति के द्वारा ही उनका दर्शन होता है। किन्तु चाहिए पक्की भक्ति, प्रेमाभक्ति। राग भक्ति चाहिए। वह भक्ति आने पर ही उनके ऊपर प्यार आता है। जैसे लड़के का माँ के ऊपर, माँ का पुत्र के ऊपर, स्त्री का पति के ऊपर प्यार।

"यह प्यार, यह राग भक्ति आ जाने पर स्त्री, पुत्र आत्मीय कुटुम्बियों के ऊपर वैसा माया का आकर्षण नहीं रहता। दया रहती है। संसार विदेश लगता है, केवल एक कर्म-भूमि मात्र बोध होता है। जैसे देश के गाँव में घर है किन्तु कलकत्ता में कर्म-भूमि है। कलकत्ता में मकान लेकर रहना पड़ता है, कर्म करने के लिए। ईश्वर पर प्यार आने पर संसारासक्ति, विषयबुद्धि एकदम चली जाएगी।

"विषयबुद्धि का लेशमात्र भी रहने पर उनका दर्शन नहीं होता। दियासलाई अगर गीली हो, तो हज़ार घिसने पर भी किसी प्रकार से भी नहीं जलेगी, केवल ढेरों तीलियों का नुकसान हो जाएगा। विषयासक्त मन भीगी दियासलाई है।

"श्रीमती (राधिका) ने जब कहा, मैं कृष्णमय देख रही हूँ, सखियाँ कहने लगीं, कहाँ; हम तो उनको नहीं देख पा रहीं। तुम क्या प्रलाप कर रही हो? श्रीमती बोलीं, सखि! अनुराग-अंजन नेत्रों में लगाओ, उन्हें देख सकोगी।

(विजय के प्रति) "तुम्हारे ब्राह्मसमाज के गाने में है— हे प्रभु! बिना अनुराग के तुम्हें जाना नहीं जाता, चाहे कितना ही यज्ञ-याग क्यों न करें। यही अनुराग, यही प्रेम, यही पक्की भक्ति, यही प्यार यदि

एक बार हो जाए, तब तो फिर साकार-निराकार दोनों का ही साक्षात्कार हो जाता है।"

(ईश्वर-दर्शन उनकी कृपा हुए बिना नहीं होता)

विजय— ईश्वर-दर्शन कैसे होता है?

श्री रामकृष्ण— चित्तशुद्धि हुए बिना नहीं होता। कामिनी-काञ्चन में मन मलिन हुआ रहता है, मन पर मैल जमी रहती है। सूई पर कीचड़ लिपटी हुई हो, तो उसे चुम्बक नहीं खींचता। मिट्टी-कीचड़ धो दिए जाने पर तब चुम्बक खींचता है। मन का मैल वैसे ही आँखों के जल से धो दिया जाता है। 'हे ईश्वर! मैं अब फिर ऐसे कार्य नहीं करूँगा'— ऐसा कहकर यदि कोई अनुताप से क्रन्दन करे तो फिर मैल धुल जाती है। तब ईश्वर-रूप चुम्बक पत्थर मन रूप सूई को खींच लेते हैं। तब समाधि होती है, ईश्वर-दर्शन होता है।

"किन्तु हज़ार चेष्टा करो, उनकी कृपा हुए बिना, कुछ नहीं होता। उनकी कृपा न हो, तो उनका दर्शन नहीं होता। कृपा क्या सहज में ही हो जाती है? अहंकार एकदम त्याग करना होगा। 'मैं कर्ता', ऐसा बोध रहने से ईश्वर-दर्शन नहीं होता। भण्डार में एक व्यक्ति हो, तब घर के मालिक को यदि कोई कहे, महाशय, आप आकर सामान निकाल दीजिए, तब वह मालिक कहता है, 'भण्डार में तो एक व्यक्ति है, मैं फिर जाकर क्या करूँगा?' जो स्वयं कर्ता बना बैठा है, उसके हृदय में ईश्वर सहज में नहीं आते।

"कृपा होने पर ही दर्शन होता है। वे ज्ञान-सूर्य हैं। उनकी एक ही किरण से इस जगत् में ज्ञान का आलोक पड़ रहा है। इसीलिए हम परस्पर जान सकते हैं, और जगत् में कितनी प्रकार की विद्याएँ उपार्जन करते हैं। अपना प्रकाश यदि एक बार वे अपने मुख पर स्वयं ही रखें, तो फिर दर्शन लाभ होता है। सार्जण्ट (लालटेन मैन) साहब रात के अन्धेरे में लालटेन हाथ में लेकर घूमता है, उसका मुख कोई

नहीं देख पाता। किन्तु उस प्रकाश से वह सब का मुख देख लेता है, और सब परस्पर मुख देख पाते हैं।

"यदि कोई लालटेन-मैन को देखना चाहते हैं, तो फिर उससे ही प्रार्थना करनी चाहिए। कहना चाहिए, 'साहब, कृपा करके एक बार प्रकाश अपने मुख के ऊपर घुमाओ, आपको एक बार देखूँ।'

"ईश्वर से प्रार्थना करनी चाहिए, 'ठाकुर कृपा करके ज्ञान का प्रकाश अपने ऊपर स्वयं एक बार रखो, मैं आपका दर्शन करूँ।'

"घर में यदि प्रकाश न जले, तो वह दरिद्रता का चिन्ह है। तभी हृदय में ज्ञान का आलोक जलाना चाहिए। 'ज्ञानदीप ज्वेले घरे, ब्रह्ममयीर मुख देखो ना।' (घर में ज्ञान-दीप जलाकर ब्रह्ममयी का मुख देखो।)

विजय संग में औषध लाए हैं। ठाकुर के सम्मुख सेवन करेंगे। औषध जल से खानी है। ठाकुर ने जल मँगवा दिया। ठाकुर अहेतुक कृपा-सिन्धु। विजय गाड़ी का भाड़ा, नौका-भाड़ा देकर आ नहीं सकते। ठाकुर बीच-बीच में लोगों को भेज देते हैं, और आने के लिए कहते हैं। अब की बार बलराम को भेजा था। बलराम गाड़ी-भाड़ा देंगे। बलराम के संग विजय आए थे। सन्ध्या के समय विजय, नवकुमार और विजय के अन्य संगी बलराम की नौका में फिर चढ़ गए। बलराम उन्हें बाग बाज़ार के घाट पर पहुँचा देंगे। मास्टर उसी नौका में चढ़ गए।

नौका बाग बाज़ार के अन्नपूर्णा घाट पर आ पहुँची। जब बलराम के बाग बाज़ार के निवास-स्थान के निकट वे लोग पहुँचे, तब ज्योत्स्ना थोड़ी-थोड़ी उदित हुई थी। आज शुक्ल पक्ष की चतुर्थी तिथि है। शीत काल— थोड़ा-थोड़ा शीत लगता है। ठाकुर श्री रामकृष्ण के अमृतोपम उपदेश स्मरण करते-करते और उनकी आनन्दमूर्त्ति हृदय में धारण करके विजय, बलराम, मास्टर आदि घरों को लौटे।

•

पंचम खण्ड

दक्षिणेश्वर कालीबाड़ी में श्रीयुक्त अमृत, श्रीयुक्त त्रैलोक्य आदि ब्राह्म भक्तों के संग बातें

प्रथम परिच्छेद

(समाधि-मन्दिर में)

फाल्गुन की कृष्णा पंचमी तिथि, बृहस्पतिवार, 16 चैत्र, अंग्रेज़ी 29 मार्च, 1883 ईसवी। मध्याह्न भोजन के बाद भगवान श्री रामकृष्ण कुछ विश्राम कर रहे हैं। दक्षिणेश्वर-कालीबाड़ी का वही पूर्व परिचित कमरा। सम्मुख पश्चिम दिशा में गंगा। 2 बजे के समय ज्वार आनी आरम्भ हुई। भक्त कोई-कोई आए हैं। उनमें ब्राह्म भक्त श्रीयुक्त अमृत और मधुरकण्ठ त्रैलोक्य, जो केशव के ब्राह्मसमाज में भगवत् लीला-गुणगान करके आबालवृद्धों का मन कितनी ही बार हरण कर चुके हैं।

राखाल को असुख है। यही बात श्री रामकृष्ण भक्तों से कह रहे हैं—

श्री रामकृष्ण— यही देखो, राखाल को असुख है। अजी, सोडा पीने से क्या ठीक हो जाता है? क्या होगा बापू? राखाल, तू जगन्नाथ का प्रसाद खा।

यह बात कहते-कहते ठाकुर अद्भुत भाव में भावित हो गए। ऐसा लग रहा है कि सम्मुख साक्षात् नारायण को राखाल-रूप में बालक की देह धारण करके आए हुए देख रहे हैं। एक ओर हैं

कामिनी-काञ्चन त्यागी शुद्धात्मा बालक भक्त राखाल, दूसरी ओर ईश्वर-प्रेम में दिन-रात मतवाले श्री रामकृष्ण के वे प्रेम चक्षु, जिनमें सहज ही वात्सल्य-भाव का उदय हो गया है। वे उसी बालक राखाल को वात्सल्य-भाव में देखने लगे और 'गोबिन्द-गोबिन्द' नाम प्रेम से उच्चारण करने लगे। श्री कृष्ण को देखकर यशोदा को जो भाव उदय हुआ करता था, लगता है, यह वही भाव है। भक्तगण यही अद्भुत व्यापार दर्शन कर रहे हैं, ऐसे समय सब स्थिर है। 'गोबिन्द-नाम' करते-करते भक्तावतार ठाकुर श्री रामकृष्ण को समाधि हो गई है। शरीर चित्रार्पितवत् स्थिर है, इन्द्रियाँ मानो काम से जवाब देकर चली गई हैं— दृष्टि नासिका के आगे स्थिर है। निश्वास चल रहा है कि नहीं, शरीर ही मात्र इस लोक में पड़ा हुआ है। आत्मा-पक्षी शायद चिदाकाश में विचरण कर रहा है। इतनी देर तक जो साक्षात् माँ की न्यायीं सन्तान के लिए चिन्तित हो रहे थे, वे अब कहाँ हैं? इसी अद्भुत भावान्तर का नाम ही क्या समाधि है?

इसी समय गेरुए कपड़े पहने हुए एक अपरिचित बंगाली आए और आसन ग्रहण किया।

द्वितीय परिच्छेद

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्।
इन्द्रियार्थान् विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते ॥— गीता 3 :6

(गेरुआ वसन और संन्यासी— अभिनय में भी मिथ्या भला नहीं)

परमहंसदेव की समाधि क्रमशः भंग होने लगी। भावस्थ हुए-हुए बातें करने लगे। अपने आप ही बोल रहे हैं—

श्री रामकृष्ण *(गेरुआ देखकर)*— और फिर यह गेरुआ क्यों? एक कपड़ा पहनने से ही क्या हो जाता है? *(हास्य)*। किसी ने कहा था,

'चण्डी छोड़ कर हो गया ढाकी।'— पहले चण्डी का गाना गाया करता था, अब ढाक (ढोल) पीटता है। *(सब का हास्य)*

"वैराग्य तीन-चार प्रकार का है— संसार की ज्वाला से जल कर गेरुआ वस्त्र पहन लिया— वैसा वैराग्य अधिक दिन नहीं रहता। शायद काम नहीं है, गेरुआ पहन कर काशी चला गया। तीन महीने पश्चात् घर में पत्र आ गया, 'मुझे एक काम मिल गया है, कुछ दिनों के बाद घर आऊँगा, तुम लोग चिन्ता मत करना।' और एक है— सब कुछ है, कोई अभाव नहीं; किन्तु कुछ अच्छा नहीं लगता। भगवान के लिए अकेले-अकेले क्रन्दन करता है। यही वैराग्य यथार्थ वैराग्य है।

"मिथ्या कुछ भी अच्छा नहीं। मिथ्या भेष ठीक नहीं। भेष के अनुसार यदि मन न हो,तो क्रमशः सर्वनाश हो जाता है। मिथ्या बोलते-बोलते अथवा करते-करते क्रमशः भय हट जाता है। उसकी अपेक्षा तो सफ़ेद वस्त्र अच्छा है। मन में आसक्ति है, बीच-बीच में पतन भी हो रहा है और बाहर गेरुआ है; वह बड़ा भयंकर है।

(केशव के घर गमन और नववृन्दावन-दर्शन)

"बात यहाँ तक है कि जो सत् हैं, उनके लिए अभिनय में भी मिथ्या वाणी अथवा कर्म ठीक नहीं। केशवसेन के यहाँ 'नववृन्दावन' नाटक देखने गया था। एक जन क्या लाए थे— क्रॉस (cross) और फिर जल छिड़कने लगे। कहा, शान्तिजल है। देखा, एक व्यक्ति मतवाला बनकर पागलपन कर रहा है।"

ब्राह्म भक्त— कु-बाबु।

श्री रामकृष्ण— भक्त के लिए उस प्रकार अभिनय करना भी अच्छा नहीं। ऐसे विषयों में अधिक देर मन को रखे रहने से दोष होता है। मन धोबी के घर का धुला कपड़ा है। जिस रंग में रंगेंगे, वही रंग चढ़ जाएगा। मिथ्या में बहुत देर रखना रहने पर मिथ्या का रंग ही पकड़ लेगा।

"और एक दिन 'निमाई संन्यास' केशव के घर देखने गया था। इस यात्रा-नाटक को केशव के कुछ खुशामदी शिष्यों ने मिलकर खराब कर दिया था। एक ने केशव से कहा, 'कलि के चैतन्य आप हैं।' केशव ने फिर मेरी तरफ़ देखते हुए हँसते-हँसते कहा, 'तो फिर ये क्या हुए?' मैं बोला, 'मैं तुम लोगों के दास-का दास। रेणु की रेणु।' "केशव में नाम-यश की इच्छा थी।"

(नरेन्द्र आदि नित्य सिद्ध— उनकी भक्ति आजन्म)

(अमृत और त्रैलोक्य के प्रति)— नरेन्द्र, राखाल आदि ये सब लड़के नित्य सिद्ध हैं, ये लोग जन्म-जन्म से ईश्वर के भक्त हैं। बहुतों को साध्य-साधना करके थोड़ी-सी भक्ति होती है, किन्तु इनका आजन्म ईश्वर में प्यार है। जैसे पाताल-फोड़ा शिव— स्थापित शिव नहीं।

"नित्य सिद्ध एक श्रेणी ही विशेष अलग है। सब पक्षियों की चोंच बाँकी नहीं होती। ये कभी भी आसक्त नहीं होते। जैसे प्रह्लाद।

"साधारण लोग साधन करते हैं, ईश्वर पर भक्ति भी करते हैं। और फिर संसार में भी आसक्त होते हैं— कामिनी-काञ्चन में मुग्ध होते हैं। मक्खी जैसे फूल पर बैठती है, सन्देश पर बैठती है, और फिर विष्ठा पर भी बैठती है। *(सब स्तब्ध)*

"नित्य सिद्ध जैसे मधुमक्खी— केवल फूल के ऊपर बैठकर मधुपान करती है। नित्य सिद्ध हरि-रस-पान करते हैं, विषय-रस की ओर नहीं जाते।

"साध्य-साधना करने से जो भक्ति होती है, इनकी वैसी भक्ति नहीं होती। इतना जप, इतना ध्यान करना होगा, इस प्रकार पूजा करनी होगी— ये सब विधिवादीय भक्ति है। जैसे धान लगे होने पर मैदान पार करना हो तो मेंढ़ के चारों ओर घूम कर जाना होता है।

और भी जैसे सामने के गाँव में जाना होगा, किन्तु टेढ़ी नदी के साथ-साथ घूम कर जाना होगा।

"राग भक्ति— प्रेमाभक्ति, ईश्वर में आत्मीयवत् प्यार आने पर फिर और कोई विधि-नियम नहीं रहता। तब जैसे धान कटा मैदान पार होना है। मेंढ़ के साथ-साथ घूमकर जाना नहीं पड़ता। सीधा एक दिशा में जाने से ही हो जाता है।

"बाढ़ आने पर टेढ़ी नदी द्वारा घूम कर नहीं जाना पड़ता। तब मैदान के ऊपर एक-एक बाँस जल होता है, सीधा नौका चलाने से ही हो जाता है।

"ऐसी राग भक्ति, अनुराग, प्यार बिना आए ईश्वर-लाभ नहीं होता।"

(समाधि तत्त्व— सविकल्प और निर्विकल्प)

अमृत— महाशय, आपको इस समाधि-अवस्था में क्या बोध होता है?

श्री रामकृष्ण— तुमने सुना है न, कुमुरेपोका[1] को देखते-देखते आरशुला[2] कुमुरेपोका ही बन जाता है। यह कैसे है, जानते हो? जैसे हाँडी की मछली को गंगा में छोड़ देने से होता है।

अमृत— तब क्या तनिक-सा भी अहं नहीं रहता?

श्री रामकृष्ण— हाँ, मेरा प्राय: तनिक-सा अहं रहता है। सोने का एक छोटा-सा टुकड़ा, सोने के पत्थर पर कितना ही क्यों ना घिसो, तब भी तनिक-सा कण रह ही जाता है। और जैसे बड़ी भारी अग्नि-राशि और उसकी एक चिंगारी। बाह्य ज्ञान चला जाता है, किन्तु

---

[1] कुमुरेपोका— गाँधी कीड़ा; beetle;akind of corn-fly

[2] आरशुला— तेल चट्टा, cockroach.

प्रायः वे थोड़ा-सा अहं रख ही देते हैं— विलास के लिए। 'मैं' और 'तुम' के रहने से ही आस्वादन मिलता है। कभी-कभी उसमें 'मैं' तक को भी वे पोंछ देते हैं। इसका नाम है जड़ समाधि— निर्विकल्प समाधि। तब कैसी अवस्था होती है, मुख से नहीं कहा जाता। नमक का पुतला समुद्र मापने गया, थोड़ा उतरते ही गल गया। 'तदाकारकारित'। तब फिर कौन ऊपर आकर संवाद देगा, समुद्र कितना गहरा है!

●

षष्ठ खण्ड

दक्षिणेश्वर-कालीबाड़ी में भक्तों के संग ब्रह्म-तत्त्व और आद्याशक्ति के विषय में कथोपकथन विद्यासागर और केशव सेन की कथा

प्रथम परिच्छेद

(ज्ञानयोग और निर्वाणमत— पण्डित पद्मलोचन ईश्वरचन्द्र विद्यासागर)

आषाढ़ की कृष्णा तृतीया तिथि; 22 जुलाई, 1883 ईसवी। आज रविवार। भक्तगण श्री श्री रामकृष्णदेव के दर्शन करने के लिए फिर आए हैं। अन्य वारों को वे लोग प्रायः नहीं आ सकते। रविवार को उन्हें अवसर मिलता है। अधर, राखाल, मास्टर कलकत्ता से एक गाड़ी करके एक-दो बजे के समय कालीबाड़ी पहुँचे हैं। ठाकुर श्री रामकृष्ण ने आहार के बाद कुछ थोड़ा-सा विश्राम किया है। कमरे में मणि मल्लिक आदि और भी कई-एक जन भक्त बैठे हैं।

रासमणि की कालीबाड़ी के बड़े प्रांगण के पूर्वांश में श्री श्री राधा कान्त का मन्दिर और श्री श्री भवतारिणी का मन्दिर है। पश्चिमांश में द्वादश शिवमन्दिर हैं। शिवमन्दिरों की पंक्ति के ठीक उत्तर में श्री रामकृष्णदेव का कमरा है। कमरे के पश्चिम में अर्धमण्डलाकार बरामदा है। वहाँ खड़े होकर पश्चिमास्य होकर वे गंगा-दर्शन करते हैं। गंगा के पुश्ते और बरामदे के मध्यवर्त्ती भूमि-खण्ड में ठाकुरबाड़ी का पुष्पोद्यान है। यह बहुत दूर तक फैला हुआ है— दक्षिण में बाग की

सीमा तक, उत्तर में पञ्चवटी तक जहाँ पर ठाकुर श्री रामकृष्ण ने तपस्या की थी; और पूर्व में उद्यान के दोनों प्रवेश-द्वारों तक। परमहंसदेव के कमरे की बगल में दो-एक कृष्णचूड़ा के वृक्ष हैं। पास ही गन्धराज, कोकिलाक्ष, श्वेत और रक्त करवी हैं। कमरे के अन्दर की दीवार पर देवताओं की छवियाँ हैं, उनमें पीटर जल में डूब रहे हैं और ईसू उनका हाथ पकड़ कर उठा रहे हैं— वह छवि भी है। और एक बुद्धदेव की पत्थर की मूर्त्ति भी है। तख़्तपोश के ऊपर ठाकुर उत्तरास्य बैठे हैं। भक्तगण फर्श पर, कोई चटाई पर, कोई आसन पर बैठे हैं। सब ही महापुरुष की आनन्द-मूर्त्ति एक दृष्टि से देख रहे हैं। कमरे से अनतिदूर पोस्ता के पश्चिम-तट से लगकर पूतसलिला गंगा दक्षिणवाहिनी प्रवाहित हो रही है। वर्षा-काल में 'उग्र स्रोता' मानो सागर-संगम तक पहुँचने के लिए उद्विग्न है। पथ में केवल एक बार महापुरुष के ध्यान-मन्दिर के दर्शन-स्पर्शन करके चली जा रही है।

श्रीयुक्त मणि मल्लिक पुराने ब्राह्म भक्त हैं। वयस् साठ-पैंसठ होगी। वे कुछ दिन पूर्व काशीधाम-दर्शन करने गए थे। आज ठाकुर के दर्शन करने आए हैं और उन्हें काशी-यात्रा का वृत्तान्त सुना रहे हैं।

मणि मल्लिक— और एक साधु को देखा। उन्होंने कहा, इन्द्रिय-संयम बिना कुछ नहीं होगा। केवल ईश्वर-ईश्वर करने से क्या होगा?

श्री रामकृष्ण— इनका मत जानते हो क्या है? पहले साधन चाहिए— शम, दम, तितिक्षा चाहिए। ये निर्वाण की चेष्टा करते हैं। ये लोग वेदान्तवादी हैं, केवल विचार करते हैं— ब्रह्म सत्य, जगत् मिथ्या। यह बड़ा कठिन पथ है। जगत् मिथ्या होने पर तो तुम भी मिथ्या हो। जो कहते हैं, वे भी तो मिथ्या हैं। उनकी बातें भी स्वप्नवत् हैं। यह बहुत दूर की बात है।

"जानते हो कैसे है? जैसे कर्पूर जलाने के पश्चात् कुछ नहीं बचता। लकड़ी जलाने के बाद तो फिर भी राख बचती है। अन्तिम विचार के पश्चात् समाधि होती है। तब 'मैं', 'तुम', 'जगत् '— इनकी खबर नहीं रहती।"

(पण्डित पद्मलोचन और विद्यासागर के संग मिलन)

"पद्मलोचन बड़े ज्ञानी थे, किन्तु मैं 'माँ-माँ' करता था। तब भी मुझे बहुत मानते थे। पद्मलोचन वर्धमान के राजा के सभा-पण्डित थे। कलकत्ता में आए थे। आकर कामारहाटि के निकट एक बाग में थे। मेरी पण्डित को देखने की इच्छा हुई। हृदय को मैंने भेज दिया यह जानने के लिए कि उसमें अभिमान है कि नहीं। सुना, पण्डित में अभिमान नहीं है। मेरे साथ मिला भी। इतना ज्ञानी और पण्डित! तब भी मेरे मुख से रामप्रसाद का गाना सुनकर क्रन्दन! उनसे बातें करके मैंने ऐसा सुख कहीं नहीं पाया। मुझसे कहा, 'भक्त का संग करूँगा— यह कामना त्याग करो, नहीं तो तरह-तरह के लोग तुम्हें पतित करेंगे।' वैष्णवचरण के गुरु उत्सवानन्द के संग लिखकर विचार किया था। मुझ से फिर कहा था, 'आप थोड़ा-सा सुनिए।' एक सभा में विचार हो रहा था— शिव बड़े हैं कि ब्रह्मा बड़े हैं। अन्त में पण्डितों ने पद्मलोचन से पूछा। पद्मलोचन ऐसे सरल थे कि वे बोले, 'मेरे चौदह पुरुषों ने शिव भी नहीं देखे, ब्रह्मा भी नहीं देखे।' कामिनी-काञ्चन-त्याग सुनकर मुझ से एक दिन बोले, 'उनका त्याग क्यों किया है? यह रुपया है, यह मिट्टी है, ऐसी भेद-बुद्धि तो अज्ञान से होती है।' मैं क्या बोलता? बोला, 'क्या पता भाई! मुझे रुपया-पैसा इत्यादि अच्छा नहीं लगता।'

(विद्यासागर की दया— किन्तु अन्तर् में सोना दबा है)

"एक पण्डित को बड़ा भारी अभिमान था। ईश्वर के रूप को नहीं मानता था। किन्तु ईश्वर के कार्य को कौन समझेगा? उन्होंने आद्याशक्ति के रूप में दर्शन दिए। पण्डित अनेक क्षण बेहोश रहा। तनिक-सी होश आने पर 'का! का! का!' (अर्थात् काली)— यही शब्द करने लगा।"

भक्त— महाशय, आपने विद्यासागर को देखा है, कैसे लगे?

श्री रामकृष्ण— विद्यासागर में पाण्डित्य है, दया है; किन्तु अन्तर्दृष्टि नहीं। अन्तर् में सोना दबा हुआ है। यदि उस सोने का सन्धान पा लेता तो इतना जो बाहर का कार्य करता है, वह सब कम हो जाता— अन्त में एकदम त्याग हो जाता। अन्तर् में, हृदय के मध्य ईश्वर हैं— यह बात जान लेने पर उनके ही ध्यान-चिन्तन में मन जाता। किसी को निष्काम कर्म बहुत दिन करते-करते अन्त में वैराग्य होता है, और उस ओर मन जाता है— ईश्वर में मन लिप्त होता है।

"ईश्वर विद्यासागर जिस प्रकार का कार्य करता है, वह बहुत अच्छा है। दया खूब अच्छी है। दया और माया में बड़ा अन्तर है। दया अच्छी है, माया अच्छी नहीं। माया अपने जनों के ऊपर प्यार है— स्त्री, पुत्र, भाई, भगिनी, भतीजे, भान्जे, बाप, माँ— इन के ऊपर प्यार। दया है सर्वभूतों में समान प्यार।"

द्वितीय परिच्छेद

गुणत्रयव्यतिरिक्तं सच्चिदानन्दस्वरूपः।

(ब्रह्म त्रिगुणातीत— मुख से बोला नहीं जाता)

मास्टर— दया भी क्या एक बन्धन है?

श्री रामकृष्ण— वह बहुत दूर की बात है। दया सत्त्वगुण से होती है। सत्त्वगुण में पालन, रजोगुण में सृष्टि, तमोगुण में संहार। किन्तु ब्रह्म सत्त्व-रज-तम— तीनों गुणों के पार है। प्रकृति के पार है।

"जहाँ पर ब्रह्म ठीक-ठीक होता है, वहाँ पर गुण पहुँच नहीं सकता। चोर जैसे ठीक जगह पर जा नहीं सकता, भय रहता है कि कहीं पीछे पकड़ा न जाए। सत्त्व-रज-तम— तीनों गुण ही चोर हैं। एक कहानी कहता हूँ, सुनो—

"एक व्यक्ति वन के पथ से जा रहा था। तब उसे तीन चोरों ने आकर पकड़ लिया। उन्होंने उसका सब कुछ निकाल लिया। एक चोर ने कहा— 'अब इस व्यक्ति को बचाकर क्या होगा?' यह बात कहकर तलवार लेकर काटने आया। तब और एक चोर बोला— 'न भाई, काटने से क्या होगा? हाथ-पाँव बाँध कर इसे यहाँ पर फेंक जाओ।' तब उसके हाथ-पैर बाँध कर, उसे वहाँ छोड़ कर चोर चले गए। कुछ क्षण पश्चात् उनमें से एक व्यक्ति वापिस आकर बोला, 'आह! तुम्हें बहुत कष्ट है? आओ, मैं तुम्हारे बन्धन खोल दूँ।' उसके बन्धन खोलकर वह चोर बोला, 'मेरे संग-संग आओ, तुम्हें सदर मार्ग पर डाल देता हूँ।' काफ़ी देर बाद सदर रास्ता आने पर बोला, 'इसी रास्ते से चले जाओ, वह तुम्हारा घर दिखाई दे रहा है।' तब उस व्यक्ति ने चोर से कहा, 'महाशय, आपने मेरा बहुत उपकार किया है। अब आप भी आइए, मेरे घर तक चलिए।' चोर बोला, 'नहीं, मुझे वहाँ नहीं जाना, पुलिस को पता लग जाएगा।'

"संसार ही अरण्य है। इसी वन में सत्त्व-रज-तम, तीनों गुण डाकू हैं। जीव के तत्त्व-ज्ञान को लूट लेते हैं। तमोगुण जीव का विनाश कर देता है। रजोगुण संसार में बद्ध करता है। किन्तु सत्त्वगुण रज-तम से बचाता है। सत्त्वगुण का आश्रय प्राप्त हो जाने पर काम-क्रोध इत्यादि सब तमोगुणों से रक्षा हो जाती है। और सत्त्वगुण तो फिर जीव के संसार-बन्धन भी मोचन करता है। किन्तु सत्त्वगुण भी चोर है, तत्त्वज्ञान दे नहीं सकता। हाँ, उस परम धाम में जाने के पथ पर चला देता है। चला कर कहता है— 'वह देखो, तुम्हारा घर दिखाई दे रहा है।' जहाँ पर ब्रह्म-ज्ञान है, वहाँ से सत्त्वगुण काफ़ी दूर है।

"ब्रह्म क्या है— वह मुख से बोला नहीं जाता। जिसे हो जाता है, वह खबर नहीं दे सकता। एक कहावत है— कालेपानी में जहाज़ जाने पर फिर लौटता नहीं।

"चार मित्रों ने भ्रमण करते-करते दीवार से घिरी हुई एक जगह देखी। प्राचीर (दीवार) बहुत ऊँची थी। 'भीतर क्या है', देखने के लिए

सब बड़े उत्सुक हो गए। प्राचीर पर एक व्यक्ति चढ़ गया। झाँक कर जो देखा, उससे अवाक् होकर 'हा! हा! हा! हा!' बोलकर भीतर गिर गया। फिर कोई भी खबर नहीं दी। जो भी चढ़ता, वही 'हा! हा! हा! हा!' करते हुए गिर जाता। तब खबर फिर कौन देगा?"

(जड़भरत, दत्तात्रेय, शुकदेव— ये ब्रह्मज्ञानी)

"जड़भरत, दत्तात्रेय ब्रह्म-दर्शन करके फिर सूचना नहीं दे सके थे। ब्रह्म-ज्ञान होकर समाधि हो जाने पर फिर 'मैं' नहीं रहता। जभी रामप्रसाद कहता है, 'आपनि जदि ना पारिस मन, तबे रामप्रसाद के संगे नेना।' (अपने आप यदि ब्रह्म-ज्ञान नहीं पा सकता, तो हे मन! रामप्रसाद को संग में ले ले।) मन का लय हो जाना चाहिए, फिर 'रामप्रसाद का लय' अर्थात् अहंतत्त्व का लय हो जाना चाहिए। फिर वहीं ब्रह्म-ज्ञान हो जाता है।"

एक भक्त— महाशय, शुकदेव को क्या ज्ञान नहीं हुआ था?

श्री रामकृष्ण— कोई-कोई कहते हैं,शुकदेव को ब्रह्म-समुद्र के दर्शन-स्पर्शन मात्र हुए थे, उतर कर डुबकी नहीं लगाई थी। तभी तो लौट कर इतना उपदेश दिया था। कोई कहता है,वे ब्रह्म-ज्ञान के पश्चात् लौट आए थे-- लोक-शिक्षा के लिए। परीक्षित को भागवत सुनाएँगे और भी कितनी लोक-शिक्षा देंगे। तभी ईश्वर ने उनके सम्पूर्ण 'मैं' का लय नहीं किया। विद्या का एक 'मैं' रख दिया था।

(केशव को शिक्षा, दल (साम्प्रदायिकता) ठीक नहीं)

एक भक्त— ब्रह्म-ज्ञान हो जाने पर क्या दल-वल रहता है?

श्री रामकृष्ण— केशवसेन के साथ ब्रह्म-ज्ञान की बात हुई थी। केशव ने कहा, 'और भी कहिए।' मैंने कहा, 'और कहने पर दल-वल नहीं रहता।' तब केशव ने कहा, 'तो फिर और रहने दो, महाशय।'

(सब का हास्य)। तब फिर केशव से कहा, 'मैं', 'मेरा'— यही तो अज्ञान है। 'मैं कर्ता हूँ और ये मेरे स्त्री-पुत्र, विषय, मान-इज्जत आदि हैं— यह भाव अज्ञान न होने से नहीं होता।' तब केशव ने कहा, 'महाशय, 'मैं' का त्याग करने पर तो फिर कुछ भी नहीं रहता।' मैंने कहा, 'केशव, तुम्हें सारा 'मैं' त्याग करने के लिए तो नहीं कहता, तुम कच्चा 'मैं' त्याग करो। मैं कर्ता, मेरे स्त्री-पुत्र, मैं गुरु इत्यादि अभिमान कच्चा 'मैं' है। इसे त्याग करो। इसे ही त्याग करके पक्का 'मैं' बनकर रहो— 'मैं उनका दास', 'मैं उनका भक्त, 'मैं अकर्ता, वे कर्ता'।

(ईश्वर का आदेश पाकर तब धर्म-प्रचार करना उचित)

एक भक्त— पक्का 'मैं' क्या दल बना सकता है?

श्री रामकृष्ण— केशवसेन को कहा था, मैं दलपति हूँ, दल बनाया है, मैं लोक-शिक्षा देता हूँ— यह 'मैं' कच्चा 'मैं' है। मत-प्रचार बड़ा कठिन है। ईश्वर की आज्ञा बिना नहीं होता। उनका आदेश चाहिए। जैसे शुकदेव ने भागवत की कथा सुनाने का आदेश पाया था। ईश्वर का साक्षात्कार करके यदि कोई आदेश पा लेता है, वह यदि प्रचार करे, लोक-शिक्षा दे, तो दोष नहीं है। उसका 'मैं' कच्चा 'मैं' नहीं है, पक्का 'मैं' है।

"केशव से कहा था, कच्चा 'मैं' त्याग करो। दास-'मैं', भक्त का 'मैं'— इसमें कोई दोष नहीं है।

"तुम दल-दल कर रहे हो। तुम्हारे दल से लोग टूट-टूट कर जा रहे हैं। केशव ने कहा, 'महाशय! तीन वर्षों में इस दल से फिर दुबारा उसी दल में चले गए हैं। जाते समय फिर गाली-गलौच भी किया।' मैंने कहा था, 'तुम लक्षण क्यों नहीं देखते, जिस किसी को चेला बनाने से क्या होता है?'"

(केशव को शिक्षा— आद्याशक्ति को मानो)

"और केशव से कहा था, 'तुम आद्याशक्ति को मानो। ब्रह्म और शक्ति अभेद हैं। जो 'ब्रह्म' हैं, वे ही शक्ति हैं। जब तक देह-बुद्धि है, तब तक ही दो बोध होते हैं। कहने में ही दो हैं।' केशव काली (शक्ति) को मान गया था।

"एक दिन केशव शिष्यों के साथ यहाँ पर आया था। मैंने कहा, 'तुम्हारा लेक्चर सुनूँगा।' चाँदनी में बैठ कर लेक्चर दिया। फिर घाट पर आकर बैठकर अनेक कथा-वार्त्ता हुई। मैंने कहा, 'जो भगवान हैं, वे ही एक रूप में भक्त हैं। वे ही एक रूप में भागवत हैं। तुम लोग बोलो, भागवत-भक्त-भगवान।' केशव ने कहा, और शिष्यों में भी सब ने एक संग बोला, 'भागवत-भक्त भगवान'। जब मैंने कहा, 'बोलो गुरु-कृष्ण-वैष्णव'; तब केशव ने कहा, 'महाशय, अब इतनी दूर नहीं। वैसा करने पर लोग कट्टर कहेंगे।' "

(पूर्व कथा— श्री रामकृष्ण की मूर्छा— माया का काण्ड देखकर)

"त्रिगुणातीत होना बड़ा कठिन है। ईश्वर-प्राप्ति बिना नहीं होता। जीव माया के राज्य में वास करता है। यही माया ईश्वर को जानने नहीं देती, यही माया मनुष्य को अज्ञानी बनाए हुए है। हृदय एक बछड़ा लाया था। एक दिन देखा, उसे बाग में घास खाने को बाँध दिया है। मैंने पूछा, 'हृदे, उसको रोज़ वहाँ क्यों बाँध देता है?' हृदय बोला, 'मामा, इस बछड़े को देश भेज दूँगा। बड़ा होकर हल चलाएगा।' ज्योंहि यह बात उसने कही, मैं मूर्छित होकर गिर पड़ा। मन में हुआ, माया का कैसा खेल है! कहाँ कामारपुकुर सिओड, कहाँ कलकत्ता! यह ज़रा-सा बछड़ा जाएगा इतने बड़े पथ से! वहाँ पर बड़ा होगा। तत्पश्चात् कितने दिन पीछे हल खींचेगा— इसी का नाम है संसार, इसी का नाम है माया।

"बहुत देर पश्चात् मूर्छा टूटी थी।"

तृतीय परिच्छेद

(समाधि-मन्दिर में)

श्री रामकृष्ण अहर्निशि समाधिस्थ रहते हैं। दिन-रात कहाँ चला जाता है! केवल भक्तों के साथ कभी-कभी ईश्वरीय बातें अथवा कीर्त्तन करते हैं। तीन-चार बजे मास्टर ने देखा, ठाकुर छोटे तख्तपोश पर बैठे हैं, भावाविष्ट। कुछ क्षण पश्चात् माँ से बातें करने लगे।

माँ के साथ बातें करते-करते एक बार बोले— "माँ, उसको एक कला दी क्यों?"

ठाकुर क्षण भर निस्तब्ध रहे। फिर और बोलने लगे— "माँ, समझ गया, एक कला से ही यथेष्ट होगा। एक कला से ही तो तेरा कार्य होगा— जीव-शिक्षा होगी।"

ठाकुर क्या अन्तरंगों, सांगो-पांगों के भीतर इसी प्रकार शक्ति-संचार किया करते हैं? यह सब क्या है? पीछे ये लोग जीव-शिक्षा देंगे, इसका आयोजन हो रहा है? मास्टर के अतिरिक्त कमरे में राखाल भी बैठे हैं। ठाकुर अब भी भावाविष्ट हैं। राखाल से कहते हैं— "तू नाराज़ हो गया था, तुझको मैंने गुस्सा क्यों दिलवाया था? इसका अर्थ है— कारण, औषध ठीक असर करेगी। पेट में तिल्ली अधिक बढ़ने पर मनसा का पत्ता आदि लगाना चाहिए।"

कुछ क्षणों पश्चात् कहते हैं— "हाजरा को देखा, शुष्क काठवत् है। तब भी यहाँ पर क्यों रहता है? इसका अर्थ है, जटिला-कुटिला (श्री राधा की सास और ननद) के रहने से लीला की पुष्टि होती है।"

(मास्टर के प्रति)— "ईश्वरीय रूप मानने चाहिएँ। जगद्धात्री रूप का अर्थ जानते हो? जो जगत् को धारण किए हुए हैं। वे न धारण करें, वे न पालन करें तो जगत् गिर जाए, नष्ट हो जाए। मन रूपी

हाथी को जो वश में कर सकता है, उसके ही हृदय में जगद्धात्री उदय होती हैं।"

राखाल— मत्त-मत्त-करी।

श्री रामकृष्ण— सिंह वाहिनी का सिंह जभी तो हाथी को दबाए हुए है।

सन्ध्या होने पर मन्दिर में आरती हो रही है। सन्ध्या होने पर ठाकुर श्री रामकृष्ण अपने कमरे में देवताओं के नाम ले रहे हैं। कमरे में धूना दिया गया। ठाकुर हाथ जोड़ कर छोटे तख्तपोश के ऊपर बैठे हुए हैं। माँ का चिन्तन कर रहे हैं। बेलघरिया के श्रीयुक्त गोबिन्द मुखर्जी और उनके कई बन्धु आकर, प्रणाम करके, फर्श पर बैठ गए। मास्टर भी बैठे हैं। राखाल भी बैठे हैं।

बाहर चाँद निकला हुआ है। जगत् निस्तब्ध हँस रहा है। कमरे में सब निःशब्द बैठे ठाकुर की शान्त मूर्त्ति देख रहे हैं। ठाकुर भावाविष्ट हैं। कुछ क्षणों के पश्चात् बातें करने लगे। अब भी भावावस्था है।

(श्यामा-रूप— पुरुष-प्रकृति— योगमाया— शिवकाली और राधाकृष्ण-रूप की व्याख्या, उत्तम भक्त— विचार-पथ)

श्री रामकृष्ण *(भावस्थ)*— बोलो, तुम लोगों के जो संशय हों; मैं सब बतलाता हूँ।

गोबिन्द और अन्यान्य भक्त सोचने लगे।

गोबिन्द— महाराज, श्यामा, यह रूप क्यों हुआ?

श्री रामकृष्ण— वह दूर होने के कारण है। निकट जाने पर कोई रंग नहीं। तालाब का पानी दूर से काला दिखता है, पास जाकर हाथ में उठाकर देखो, कोई रंग नहीं! आकाश जैसे दूर से नीला दिखता है। निकट वाला आकाश देखो, कोई रंग नहीं। ईश्वर के जितने ही निकट जाओगे, उतनी ही धारणा होगी, उनका नाम-रूप नहीं है। पीछे

हटकर कुछ दूर आने पर फिर 'वही मेरी श्यामा माँ'— जैसे घास-फूल का रंग।

"श्यामा पुरुष है कि प्रकृति? एक भक्त ने पूजा की थी। और एक व्यक्ति ने आकर दर्शन करते हुए देखा, भगवान के गले में जनेऊ है। वह बोला, तुमने माँ के गले में जनेऊ पहना रखा है? उस भक्त ने कहा, 'भाई, तुम ने ही माँ को पहचाना है। मैं कभी भी पहचान न सका, वे पुरुष हैं कि प्रकृति। इसीलिए जनेऊ पहनाया है।

"जो श्यामा हैं, वे ही हैं ब्रह्म। जिनका रूप; वे ही अरूप। जो सगुण, वे ही निर्गुण। ब्रह्म शक्ति— शक्ति ब्रह्म। अभेद। सच्चिदानन्दमय और सच्चिदानन्दमयी।"

गोबिन्द— योगमाया क्यों कहते हैं?

श्री रामकृष्ण— योगमाया अर्थात् पुरुष-प्रकृति का योग। जो कुछ देखते हो, सब ही पुरुष-प्रकृति का योग है। शिवकाली की मूर्त्ति, शिव के ऊपर काली खड़ी हुई हैं। शिव, शव बने हुए पड़े हैं। काली शिव की ओर देख रही हैं। यह सब ही पुरुष-प्रकृति का योग है। पुरुष निष्क्रिय है, जभी शिव, शव बने हुए हैं। पुरुष के योग से प्रकृति समस्त कार्य करती हैं, सृष्टि-स्थिति-प्रलय करती हैं।

"राधाकृष्ण की युगल मूर्त्ति का अर्थ भी यही है। यह योग-जन्य बंकिम भाव है। उसी योग को दिखाने के लिए ही श्री कृष्ण की नाक में मुक्ता, श्रीमती की नाक में नीलम। श्रीमती का गौर वर्ण मुक्ता की न्यायीं उज्ज्वल है। श्री कृष्ण श्यामवर्ण हैं। इसीलिये श्रीमती का नीलम है। और फिर श्री कृष्ण पीतवसन और श्रीमती नीलवसन पहने हैं।

"उत्तम भक्त कौन है? जो ब्रह्म-ज्ञान के बाद देखता है— वे ही जीव-जगत्, चौबीस तत्त्व हुए हैं। पहले 'नेति-नेति' विचार करके छत पर पहुँचता है। उसके पश्चात् वह देखता है, छत जिस सामग्री से तैयार हुई है— ईंट, चूना, सुर्खी से— सीढ़ियाँ भी उसी सामग्री से तैयार हुई हैं। तब देखता है, ब्रह्म ही जीव-जगत् सब हुए हैं।

"केवल विचार! थू! थू!— ज़रूरत नहीं।" ठाकुर मुखामृत फेंकते हैं। "क्यों विचार करके शुष्क बने रहो? जब तक 'मैं' और 'तुम' है, तब तक जैसे भी हो, उनके पादपद्मों में शुद्धा-भक्ति रहे।"

(गोबिन्द के प्रति)— कभी कहता हूँ— तुम ही मैं हूँ, मैं ही तुम हो। और कभी फिर 'तुम-ही-तुम' हो जाता है। तब 'मैं' को खोजने पर भी नहीं पाता।

"शक्ति का ही अवतार होता है। एक मत में राम और कृष्ण चिदानन्दसागर की दो लहरें ही हैं।

"अद्वैतज्ञान के पश्चात् चैतन्य-लाभ होता है। तब देखता हूँ, सर्वभूतों में, चैतन्य रूप में वे ही हैं। चैतन्य-लाभ के पश्चात् आनन्द। अद्वैत, चैतन्य, नित्यानन्द।"[1]

(ईश्वर का रूप— भोग-वासना जाने पर व्याकुलता)

(मास्टर के प्रति)— और तुम्हें कहता हूँ, रूप— ईश्वरीय रूप पर अविश्वास न करो। रूप है, विश्वास करो। तत्पश्चात् जिस रूप को प्यार करते हो, उसी रूप का ध्यान करो।

(गोबिन्द के प्रति)— क्या होता है, समझते हो? जब तक भोग-वासना रहती है, तब तक ईश्वर को जानने व (उनका) दर्शन करने के लिए प्राण व्याकुल नहीं होते।

"बच्चा खिलौना लेकर भूला रहता है। सन्देश द्वारा भुलाओ, तनिक-सा सन्देश खाएगा। जब खिलौना भी अच्छा नहीं लगता, सन्देश भी अच्छा नहीं लगता, तब कहता है, 'माँ (के पास) जाऊँगा।' फिर सन्देश नहीं चाहता। जिसको यह जानता नहीं, कभी देखा भी

---

[1] अद्वैत, चैतन्य, नित्यानन्द— पन्द्रहवीं शताब्दी में नदिया में तीन महापुरुष भी इन्हीं नामों के हुए। उनमें श्री चैतन्य भगवान के अवतार समझे जाते हैं, अद्वैत और नित्यानन्द उनके पार्षद थे।

नहीं, वह यदि कहे, 'आ रे, माँ के पास ले चलूँ', उसी के संग चला जाएगा। जो गोद में उठाकर ले जाता है, उसी के संग चला जाता है।

"संसार का भोग हो जाने पर ईश्वर के लिए प्राण व्याकुल होते हैं। किस प्रकार उनको पाऊँ, केवल यही चिन्ता होती है। जो जन जो कुछ भी कहता है, वही सुनता है।"

मास्टर *(स्वगत)*– भोग-वासना जाने पर तब ही ईश्वर के लिए प्राण व्याकुल होता है।

●

योगी-चक्षु

श्री रामकृष्ण (मणि के प्रति)— योगी का मन सर्वदा ही ईश्वर में रहता है, सर्वदा ही आत्मस्थ। चक्षु अर्धनिमीलित, देखते ही पता चल जाता है। जैसे पक्षी अण्डे सेता है— सारे का सारा मन उसी अण्डे की ओर। ऊपर नाममात्र को देख रहा है।

-'श्री श्री रामकृष्ण कथामृत' तीसरा भाग, दूसरा खण्ड, पहला परिच्छेद।
24 अगस्त 1882

सप्तम खण्ड

दक्षिणेश्वर-मन्दिर में भक्तों के संग

प्रथम परिच्छेद

(वेदान्त के सम्बन्ध में बातें)

ठाकुर श्री रामकृष्ण आज दक्षिणेश्वर-मन्दिर में भक्तों के संग में हैं। आज रविवार, श्रावण कृष्णा प्रतिपदा, 19 अगस्त 1883 ईसवी। अभी-अभी भोग-आरती के समय शहनाई बज रही थी। मन्दिर बन्द हो गया है। ठाकुर श्री रामकृष्ण ने प्रसाद पाकर थोड़ा विश्राम किया। विश्राम के बाद अब भी मध्याह्नकाल है— वे अपने कमरे में छोटे तख़्तपोश पर बैठे हैं। इस समय मास्टर ने आकर प्रणाम किया। कुछ क्षण पश्चात् वेदान्त के सम्बन्ध में उनसे बातें होने लगीं।

(वेदान्तवादियों का मत— कृष्णकिशोर की बातें)

श्री रामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— देखो, 'अष्टावक्रसंहिता' में आत्मज्ञान की बातें हैं। आत्मज्ञानी कहते हैं, 'सोऽहम्' अर्थात् मैं ही वह परमात्मा हूँ। यह मत वेदान्तवादी संन्यासी का है। संसारी (गृही) के लिए यह मत ठीक नहीं। सब ही किया जाता है, अथच 'मैं ही वह निष्क्रिय परमात्मा हूँ' यह कैसे हो सकता है? वेदान्तवादी कहते हैं, आत्मा निर्लिप्त है। सुख-दुःख, पाप-पुण्य— ये सब आत्मा का कुछ भी अपकार नहीं कर सकते, तो भी देहाभिमानी लोगों को कष्ट दे सकते हैं। धुआँ दीवाल को मैला करता है, आकाश का कुछ नहीं कर सकता।

कृष्णकिशोर ज्ञानियों की भाँति कहता था, मैं 'ख'— अर्थात् आकाशवत् हूँ। फिर वह तो परम भक्त है, उसके मुख से तो यह बात बल्कि सजती है, किन्तु सब के मुख से नहीं।

(पाप और पुण्य, माया या दया)

"किन्तु 'मैं मुक्त हूँ', यह अभिमान खूब भला है। 'मैं मुक्त-मैं मुक्त', यह बात बोलते-बोलते वह मुक्त हो जाता है। और फिर 'मैं बद्ध-मैं बद्ध', यह बात कहते-कहते वह व्यक्ति बद्ध ही हो जाता है। जो केवल कहता रहता है, 'मैं पापी, मैं पापी', वही साला गिर ही जाता है। बल्कि कहना चाहिए, मैंने उनका नाम लिया है, मेरा फिर पाप क्या, बन्धन क्या!"

(मास्टर के प्रति)— देखो, मेरा मन बड़ा खराब हो गया है। हृदय[1] ने चिट्ठी लिखी है, वह बड़ा बीमार है। यह क्या माया है या दया?

मास्टर क्या बोलें? चुप रहे।

श्री रामकृष्ण— माया किसे कहते हैं, जानते हो? बाप-माँ, भाई-भगिनी, स्त्री-पुत्र, भानजा-भानजी, भतीजा-भतीजी, इन सब आत्मीयों के प्रति प्यार, माया है। और दया माने सर्वभूतों में प्यार। मेरा फिर यह क्या हुआ— माया या दया? हृदय ने किन्तु मेरा बहुत किया था— बहुत सेवा की थी, हाथ में गू लेकर साफ़ किया करता था। वैसे ही अन्त में सख्ती भी की थी। इतनी सख्ती करता था कि मैं

---

[1] हृदय ने ईसवी 1881 स्नान-यात्रा के दिन तक कालीबाड़ी, दक्षिणेश्वर में प्रायः तेईस वर्ष परमहंसदेव जी की सेवा की थी। सम्पर्क में हृदय उनके भानजे थे। उनकी जन्मभूमि ज़िला हुगली में सिओड़ ग्राम है— ठाकुर की जन्मभूमि श्री कामारपुकुर से दो कोस। 1306 (बं०) साल; 1899 ईसवी, वैशाख में बासठ वर्ष की आयु में, जन्मभूमि में उनको परलोक-प्राप्ति हुई।

पोश्ता के ऊपर जाकर गंगा में छलांग लगाकर देहत्याग करने चला गया था। किन्तु मेरा बहुत किया था, अब उसे कुछ (रुपया) मिल जाए तो मेरा मन स्थिर हो। किन्तु किस बाबू को अब फिर कहने जाऊँ? कौन कहता फिरे?

द्वितीय परिच्छेद

(मृण्मय आधार में चिन्मयी देवी— विष्णुपुर में मृण्मयी-दर्शन)

दोपहर दो-तीन बजे भक्तवीर श्रीयुक्त अधर सेन और श्रीयुक्त बलराम बसु आए और परमहंस को भूमिष्ठ होकर प्रणाम करके आसन ग्रहण किया। उन्होंने पूछा— आप कैसे हैं? ठाकुर बोले, 'हाँ, शरीर तो अच्छा है, फिर भी मेरे मन को थोड़ा कष्ट हो रहा है।' हृदय की पीड़ा के सम्बन्ध में कोई बात ही नहीं उठाई। बड़े बाज़ार के मल्लिकों की सिंहवाहिनी देवी-विग्रह की बात चली—

श्री रामकृष्ण— सिंहवाहिनी को मैं देखने गया था। चाषाधोपा पाड़ा के एक मल्लिकों के घर में देवी को देखा था। भग्न मकान, वे गरीब हो गए थे। यहाँ पर कबूतरों की बीठें, वहाँ पर काई, इधर झुर-झुर करके रेत-चूना गिर रहा था। अन्य मल्लिकों के घरों में जैसा देखा था, इस घर में वह श्री नहीं थी।

(मास्टर के प्रति)— अच्छा, इसके क्या माने? बताओ न ज़रा!

मास्टर चुप किए रहे।

"जानते हो क्या है, जिसका जो कर्म का भोग है, वह उसे भोगना ही पड़ता है। संसार, प्रारब्ध— ये सब मानने चाहिएँ।

(मास्टर के प्रति)— और भग्न घर में देखा कि वहाँ पर भी सिंहवाहिनी के मुख का भाव झल-झल चमक रहा है। आविर्भाव मानना चाहिए।

"मैं एक बार विष्णुपुर में गया था। राजा का सुन्दर मन्दिर है। वहाँ पर भगवती की मूर्त्ति है, नाम मृण्मयी। मन्दिर के पास बड़ा सरोवर है। कृष्ण बाँध। लाल बाँध। अच्छा बताओ, वहाँ पर सरोवर में आबाठा (माथा घसा, सिर धोने का मसाला) की गन्ध क्यों मुझे मिली? मैं तो जानता नहीं था कि स्त्रियाँ मृण्मयी के दर्शनों के समय उन्हें आबाठा देती हैं। और सरोवर के निकट मुझे भाव समाधि हो गई। तब तक विग्रह नहीं देखा था। आवेश में सरोवर के पास ही मृण्मयी-दर्शन हुआ— कमर तक!"

(भक्त का सुख-दुःख— भागवत और महाभारत की कथा)

अब तक और सब भक्त आकर समवेत हो गए। काबुल के राज-विप्लव की बात उठी। एक ने कहा कि याकूब खाँ सिंहासनच्युत हो गया है। उन्होंने परमहंस को सम्बोधन करके कहा— महाशय, याकूब खाँ वैसे एक बड़ा भक्त व्यक्ति है।

श्री रामकृष्ण— बात तो यह है कि सुख-दुःख देह धारण का धर्म है। कवि कंकण 'चण्डी' में कहता है कि कालुबीर जेल में गया था। उसकी छाती पर पत्थर रख दिए गए। किन्तु वैसे कालुबीर भगवती का वर-पुत्र था। देह धारण करने पर सुख-दुःख-भोग तो रहता ही है।

"श्रीमन्त बहुत बड़ा भक्त था। और उसकी माँ खुल्लना को भगवती प्यार करती थीं। उसी श्रीमन्त को कितनी विपद्! श्मशान में काटने के लिए ले गए!

"एक लकड़हारा परम भक्त था। उसे भगवती का दर्शन हुआ। उन्होंने कितना प्यार किया, कितनी कृपा की! किन्तु उसका, लकड़हारे का काम समाप्त नहीं हुआ— वही लकड़ी काट कर खाना पड़ता है। कारागार में चतुर्भुज, शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी भगवान के देवकी को दर्शन हो गए, किन्तु कारागार-वास खत्म नहीं हुआ।"

मास्टर— केवल जेल-वास ही समाप्त होता क्यों? देह ही तो जंजाल की जड़ है। इस देह को ही समाप्त हो जाना उचित था।

श्री रामकृष्ण— बात क्या है— प्रारब्ध-कर्म का जितने दिन भी भोग है, देह धारण तो करनी पड़ेगी ही। एक काने व्यक्ति ने गंगा-स्नान किया। पाप सब खत्म हो गए। किन्तु आँख का कानापन नहीं हटा। *(सब का हास्य)*। पूर्वजन्म का कर्म था, तभी भोग।

मणि— जो बाण छूट गया है, उस पर कोई भी वश नहीं रहता।

श्री रामकृष्ण— देह का सुख-दुःख जो भी हो, भक्त का ज्ञान, भक्ति का ऐश्वर्य रहता है, वह ऐश्वर्य कभी भी जाने वाला नहीं है। देखो न, पाण्डवों को कितनी विपद्! किन्तु इस विपद् में उन्होंने चैतन्य एक बार भी नहीं खोया। उनके जैसे ज्ञानी और उनके जैसे भक्त कहाँ हैं?

तृतीय परिच्छेद

(समाधि-मन्दिर में— कप्तान और नरेन्द्र का आगमन)

इस समय नरेन्द्र और विश्वनाथ उपाध्याय आ गए। विश्वनाथ नेपाल के राजा के वकील और राज-प्रतिनिधि हैं। ठाकुर इन्हें 'काप्तेन' कहते हैं। नरेन्द्र की वयस् बाईस है, बी. ए. में पढ़ते हैं। बीच-बीच में, विशेषतः रविवार को दर्शन करने आते हैं।

वे प्रणाम करके बैठ गए, परमहंसदेव ने नरेन्द्र से गाना गाने का अनुरोध किया। कमरे के पश्चिम किनारे पर तानपूरा लटक रहा था। सब एक नज़र से गायक की ओर देखने लगे। बाँधा और तबले का सुर बँधने लगा— अब गाना होगा।

श्री रामकृष्ण *(नरेन्द्र के प्रति)*— देख, यह अब वैसा नहीं बजता।

कप्तान— पूर्ण होकर बैठा हुआ है, तभी तो शब्द नहीं है। *(सब का हास्य)* पूर्ण कुम्भ!

श्री रामकृष्ण *(कप्तान के प्रति)*— किन्तु नारद आदि?

कप्तान— वे दूसरों के दुःख में बातें करते थे।

श्री रामकृष्ण— हाँ, नारद-शुकदेव— ये लोग समाधि के बाद उतर आए थे, दया के लिए, अन्य लोगों के हितार्थ उन्होंने बातें की थीं। नरेन्द्र ने गाना आरम्भ किया और गाया—

सत्यं शिवं सुन्दरं रूप भाति हृदिमन्दिरे, शे दिन कबे होबे।
निरखि निरखि अनुदिन मोरा डुबिबो रूपसागरे।
ज्ञान-अनन्त रूपे पोशिबे नाथ मम हृदे,
अवाक् होइये अधीर मन शरण लईबे श्रीपदे।
शान्तं शिवं अद्विितीयं राज-राज-चरणे,
बिकाइबे ओहे प्राणसखा सफल करिबो जीवने।
एमन अधिकार कोथा पाबो आर स्वर्गभोग जीवने (सशरीरे)॥
शुद्धमपापविद्धं रूप हेरिये नाथ तोमार,
आलोक देखिले आँधार जेमन जाय पलाइये सत्वर,
तेमनि नाथ तोमार प्रकाशे पलाइबे पाप-आँधार।
आनन्द अमृतरूप उदिबे हृदय आकाशे,
चन्द्र उदिले चकोर जेमन क्रीड़ये मन हरषे,
आमरा ओ नाथ तेमनि करे मातिबो तव प्रकाशे॥
ओहे ध्रुवतारासम हृदे ज्वलन्त विश्वास हे,
ज्वालि दिये दीनबन्धु पुराओ मनेर आश,
आमि निशिदिन प्रेमानन्दे मगन होइये हे।
आपनारे भूले जाबो तोमारे पाइये हे॥ (शे दिन कबे हबे)॥

[हृदय-मन्दिर में सत्यं शिवं सुन्दरं प्रकाशित हो रहा है। वह दिन कब होगा जब मेरा मन इस रूप-सागर में रात-दिन उसे देखकर डूबा रहेगा? मेरे हृदय में हे नाथ, कब ज्ञान अनन्त रूप में वृद्धि पाएगा और अवाक् होकर यह अधीर मन आपके श्रीचरणों में शरण लेगा? आप राजराजेश्वर के शान्त, शिव और अद्वितीय श्रीचरणों में हे प्राणसखा, कब यह मन बिकेगा और जीवन सफल करेगा? इसी जीवन में सशरीर ऐसा स्वर्गभोग का

अधिकार कहाँ से पाऊँगा? हे नाथ, तुम्हारा शुद्धम्, अपापविद्धं रूप देखकर, तुम्हारा प्रकाश देखकर पाप ऐसे ही भाग जाता है, जैसे आलोक को देखकर अन्धेरा तुरन्त पलायन कर जाता है। जैसे चन्द्रमा के उदय होने पर चकोर मन में हर्षित होकर क्रीड़ा करने लगता है, वैसे ही मेरे हृदय-आकाश में आनन्द अमृत रूप उदय होगा, और मैं हे नाथ! तब वैसे ही तुम्हारे प्रकाश में मतवाला हो जाऊँगा। हे दीनबन्धु! ध्रुव तारे की भाँति मेरे हृदय में ज्वलन्त विश्वास प्रकाशित करके मेरे मन की आशा पूर्ण करो। मैं तब रात-दिन प्रेमानन्द में मग्न होकर, आपको पाकर अपने को भूल जाऊँगा। वह दिन कब होगा?]

'आनन्द अमृतरूपे' (आनन्द अमृतरूप में), यह वाणी कहते ही ठाकुर श्री रामकृष्ण गम्भीर समाधि में निमग्न हो गए। हाथ जोड़कर पलथी मारे बैठे हैं। पूर्वास्य, देह उन्नत। आनन्दमयी के रूपसागर में निमग्न हो गए हैं। जागतिक होश एकदम ही नहीं है। श्वास चल रहा है या नहीं चल रहा! स्पन्दनहीन! निमेष-शून्य! चित्रार्पितवत् बैठे हैं मानो यह राज्य छोड़कर कहीं और चले गए हैं!

चतुर्थ परिच्छेद

(सच्चिदानन्द-लाभ के उपाय— ज्ञानी और भक्त का प्रभेद)

समाधि भंग हुई। इससे पहले श्री रामकृष्ण की समाधि देखकर नरेन्द्र कमरा छोडकर पूर्व दिशा के बरामदे में चले गए थे। वहाँ पर हाजरा महाशय कम्बलासन पर हरिनाम की माला हाथ में लिए हुए बैठे थे। नरेन्द्र उनके साथ बातें करने लगे। इधर कमरा-भर लोग हैं। श्री रामकृष्ण ने समाधि-भंग होने पर भक्तों की ओर देखा। देखा कि नरेन्द्र नहीं हैं, तानपूरा शून्य पड़ा है और भक्तगण सब उनकी ओर उत्सुकता से देख रहे हैं।

श्री रामकृष्ण— आग लगा गया है। अब वह रहे चाहे न रहे!

(कप्तान आदि के प्रति)— चिदानन्द में आरोप करो, तुम लोगों को भी आनन्द होगा। चिदानन्द तो हैं ही, केवल आवरण और विक्षेप हैं। विषय-आसक्ति जितनी कम होगी; ईश्वर के प्रति मति उतनी ही बढ़ेगी।

कप्तान— कलकत्ता के घर की ओर जितना आओगे, काशी से उतना ही अन्तर हो जाएगा और फिर काशी की ओर जितना जाओगे, घर से उतना ही अन्तर हो जाएगा।

श्री रामकृष्ण— श्रीमती जितनी कृष्ण की ओर बढ़ती हैं, उतनी ही कृष्ण की देहगन्ध पाती हैं। ईश्वर के निकट जितना ही जाया जाता है, उतनी ही उनमें भाव-भक्ति होती है। सागर के निकट जितना ही नदी जाती है, उतना ही ज्वार-भाटा दिखाई देता है।

"ज्ञानी के भीतर अविराम गंगा बहती रहती है। उसके लिए सब स्वप्नवत् है। वह सर्वदा स्व-स्वरूप में रहता है। भक्त के भीतर अविराम नहीं, ज्वार-भाटा होता है। हँसता-रोता, नाचता-गाता है। भक्त उनके साथ विलास करना पसन्द करता है— कभी तैरता है, कभी डुबकी लगाता है, कभी चढ़ता है— जैसे जल के भीतर बरफ़ 'टापुर-टुपुर', 'टापुर-टुपुर' (ऊपर-नीचे) होती रहती है। *(हास्य)*।

(सच्चिदानन्द और सच्चिदानन्दमयी— ब्रह्म और आद्याशक्ति अभेद)

"ज्ञानी ब्रह्म को जानना चाहता है। भक्त का भगवान, षडैश्वर्य-पूर्ण, सर्वशक्तिमान भगवान होता है। किन्तु वस्तुतः ब्रह्म और शक्ति अभेद हैं। जो सच्चिदानन्द हैं, वे ही हैं सच्चिदानन्दमयी। जैसे मणि की ज्योति और मणि। 'मणि की ज्योति' कहते ही मणि समझी जाती है, मणि कहते ही ज्योति समझी जाती है। मणि को बिना जाने मणि की ज्योति नहीं जानी जा सकती। मणि की ज्योति को न जानने से मणि को नहीं जाना जा सकता।

"एक सच्चिदानन्द ही शक्ति-भेद से उपाधि-भेद है , जभी नाना रूप हैं— वह तो तुम्हीं हो हे तारा! जहाँ पर कार्य (सृष्टि, स्थिति, प्रलय) है, वहीं पर ही शक्ति है। किन्तु जल स्थिर होने पर भी जल है, तरंग व बुलबुला होने पर भी जल है। वे सच्चिदानन्द ही आद्याशक्ति हैं, जो सृष्टि-स्थिति प्रलय करती हैं। जैसे कप्तान जब कोई कार्य नहीं करते, तब भी वे हैं और जब कप्तान पूजा करते हैं, तब भी वे ही हैं, कप्तान लाटसाहब के पास जाते हैं, तब भी वे ही हैं— केवल उपाधि विशेष है।"

कप्तान— जी हाँ, महाशय।

श्री रामकृष्ण— मैंने यही बात केशवसेन से कही थी। कप्तान- केशवसेन भ्रष्टाचारी, स्वेच्छाचारी हैं। वे बाबू हैं, साधु नहीं।

श्री रामकृष्ण *(भक्तों के प्रति)*— कप्तेन मुझे मना करता है, केशवसेन के घर जाने के लिए।

कप्तान— महाशय, आप जाएँगे, तो मैं और क्या करूँ?

श्री रामकृष्ण— *(विरक्त भाव से)* तुम रुपए के लिए लाटसाहब के पास जा सकते हो और मैं केशवसेन के पास नहीं जा सकता? वह ईश्वर-चिन्तन करता है, हरि-नाम करता है! फिर तुम्हीं तो कहते हो, 'ईश्वर-माया-जीव जगत्'— जो ईश्वर हैं, वे ही ये सब जीव-जगत् हुए हैं।

पंचम परिच्छेद

(नरेन्द्र के संग— ज्ञानयोग और भक्तियोग का समन्वय)

यह कहकर ठाकुर कमरे के बाहर उत्तर-पूर्व के बरामदे में चले गए। कप्तान और अन्यान्य भक्त कमरे में बैठे हुए ही उनके वापिस आने की प्रतीक्षा करते हैं। मास्टर उनके संग उसी बरामदे में आ गए। उत्तर पूर्व के बरामदे में नरेन्द्र हाजरा के साथ कथोपकथन कर रहे थे। ठाकुर श्री रामकृष्ण जानते हैं, हाजरा बड़ा शुष्क ज्ञान-विचार करते

हैं, कहते हैं— जगत् स्वप्नवत् है। पूजा-नैवेद्य— ये सब मन की भूल हैं, केवल स्व-स्वरूप का चिन्तन करना ही उद्देश्य है, और मैं ही 'वह' हूँ।

श्री रामकृष्ण *(सहास्य)*— क्यों जी, तुम लोगों की क्या-क्या बातें हो रही हैं?

नरेन्द्र *(सहास्य)*— हमारी कितनी ही बातें हो रही हैं, लम्बी-लम्बी बातें।

श्री रामकृष्ण *(सहास्य)*— किन्तु शुद्ध ज्ञान और शुद्धा भक्ति एक। शुद्ध ज्ञान जहाँ पर ले जाता है, शुद्धा भक्ति भी वहाँ पर ही ले जाती है। भक्ति-पथ विशेष सहज पथ है।

नरेन्द्र— 'आर काज नाइ ज्ञानविचारे, दे मा पागल कोरे' (ज्ञान विचार का और काम नहीं; माँ मुझे पागल कर दे अपनी भक्ति में)।

(मास्टर के प्रति)— देखिए, हमिल्टन में यह पढ़ा था— लिखते हैं, 'A learned ignorance is the end of Philosophy and the beginning of Religion.'

श्री रामकृष्ण— *(मास्टर के प्रति)*— इसका क्या अर्थ है,भई?

नरेन्द्र— फिलॉसफ़ी (दर्शन शास्त्र) का पढ़ना समाप्त होने के पश्चात् मनुष्य पण्डित-मूर्ख (अनपढ़) बन जाता है, तब धर्म-धर्म करता है। तब धर्म का आरम्भ होता है।

श्री रामकृष्ण *(सहास्य)*— Thank you! Thank you! (धन्यवाद! धन्यवाद!) *(हास्य)*।

षष्ठ परिच्छेद

(सन्ध्या-समागम पर हरि-ध्वनि— नरेन्द्र के कितने गुण)

कुछ समय के पश्चात् सन्ध्या प्रायः हो रही है, देखकर अधिकांश लोग घरों को चले गए। नरेन्द्र ने भी विदा ली। समय बढ़ने लगा।

सन्ध्या हुई कि हुई। ठाकुरबाड़ी के फराश (बत्ती आदि जलाने वाले सेवक) चारों ओर आलोक का आयोजन कर रहे हैं। कालीमन्दिर और विष्णुमन्दिर के दो पुजारी गंगा में अर्ध निमग्न होकर बाह्य और अन्तर्-शुचि कर रहे हैं। शीघ्र जाकर आरती और ठाकुरों को रात्रिकालीन शीतल देना होगा। दक्षिणेश्वर के ग्रामवासी युवकवृन्द— किसी के हाथ में छड़ी है, कोई-कोई मित्र के संग बाग में घूमने आए हैं। वे लोग पोश्ते के ऊपर टहल रहे हैं और कुसुम गन्धवाही निर्मल सान्ध्य-समीरण सेवन करते-करते श्रावण मास की तेज़ बहावमय हल्की लहरों से विकम्पित गंगा-प्रवाह देख रहे हैं। उनमें से कुछ शायद अधिक चिन्तनशील जन, पञ्चवटी की एकान्त भूमि में पाद-चारण कर रहे हैं। भगवान श्री रामकृष्ण भी पश्चिम के बरामदे से कुछ काल गंगा-दर्शन करने लगे।

सन्ध्या हो गई। फराश सब दीप जला गए हैं। परमहंसदेव के कमरे में आकर दासी ने प्रदीप जलाकर धूना दिया।

इधर द्वादश मन्दिरों में शिव की आरती हुई। तत्पश्चात् ही विष्णुमन्दिर और कालीमन्दिर में आरती आरम्भ हो गई। कांसर-घड़ि और घण्टे मधुर और गम्भीर निनाद करने लगे— मधुर और गम्भीर— क्योंकि मन्दिर के बगल में ही कल-कल निनादिनी गंगा है।

श्रावण की कृष्णा प्रतिपदा। कुछ क्षण पश्चात् ही चाँद निकल आया। बड़ा आँगन और बाग के वृक्षों की चोटियाँ चन्द्रकिरणों से प्लावित हुईं। इधर ज्योत्स्ना के स्पर्श से भागीरथी-जल कितना आनन्द करता-करता प्रवाहित हो रहा है!

सन्ध्या होते ही श्री रामकृष्ण जगन्माता को नमस्कार करके हाथ से ताली बजाकर हरि-ध्वनि कर रहे हैं। कमरे में बहुत से देवी-देवताओं की छवियाँ हैं— ध्रुव-प्रह्लाद की छवि, राजा राम की छवि, माँ काली की छवि, राधाकृष्ण की छवि। वे सब देवी-देवताओं को उद्देश्य करके और उनका नाम करके प्रणाम करते हैं और फिर बोल रहे हैं— ब्रह्म-आत्मा-भगवान, भागवत-भक्त-भगवान, ब्रह्म-शक्ति,

शक्ति-ब्रह्म, वेद-पुराण-तंत्र-गीता-गायत्री। शरणागत-शरणागत, नाहं-नाहं। तुहुं-तुहुं। मैं यन्त्र, तुम यन्त्री; इत्यादि।

नाम के बाद श्री रामकृष्ण हाथ जोड़कर जगन्माता का चिन्तन करते हैं। दो-चार भक्त सन्ध्या होने पर बाग में गंगा-तीर पर टहल रहे थे। वे देवताओं की आरती के कुछ क्षण पश्चात् परमहंसदेव के कमरे में क्रमशः आकर इकट्ठे हो गए। परमहंसदेव खाट पर बैठे हैं। मास्टर, अधर, किशोरी इत्यादि नीचे सम्मुख बैठे हैं।

श्री रामकृष्ण *(भक्तों के प्रति)*— नरेन्द्र, भवनाथ, राखाल— ये सब नित्य सिद्ध, ईश्वर-कोटि हैं। इनकी शिक्षा केवल लीला-वृद्धि के लिए है। देखो न, नरेन्द्र किसी की भी केयर (परवाह) नहीं करता। मेरे साथ कप्तान की गाड़ी में जा रहा था। कप्तान के अच्छी जगह बैठने के लिए कहने पर उसकी ओर देखा तक भी नहीं। मेरी ही परवाह नहीं करता। और जो जानता है, वह भी कहता नहीं, फिर पीछे मैं लोगों से कहता न फिरूँ कि नरेन्द्र इतना विद्वान् है। माया-मोह नहीं है। जैसे कोई बन्धन ही नहीं। खूब भला आधार है। एक आधार में अनेक गुण हैं— गाना-बजाना, लिखना-पढ़ना। इधर है जितेन्द्रिय। कहता है, विवाह नहीं करूँगा। नरेन्द्र और भवनाथ दोनों जनों में बड़ा भारी मेल है जैसे स्त्री-पुरुष हों। नरेन्द्र अधिक नहीं आता। यह अच्छा है। अधिक आने से मैं विह्वल हो जाता हूँ।

•

अष्टम खण्ड

ठाकुर श्री रामकृष्ण का सिंदुरियापटी-ब्राह्मसमाज में आगमन और श्रीयुक्त विजयकृष्ण गोस्वामी आदि के साथ कथोपकथन

प्रथम परिच्छेद

(समाधि मन्दिर में)

कार्तिक मास की कृष्णा एकादशी। 26 नवम्बर, 1883 ईसवी। श्रीयुक्त मणिलाल मल्लिक के घर में सिंदुरियापटी-ब्राह्मसमाज का अधिवेशन होता है। मकान चित्पुर रोड पर है, दक्षिणी किनारे हैरिसन रोड के कोने पर, जहाँ बेदाना, पिस्ता, सेब एवं अन्यान्य मेवों की दुकानें हैं, वहाँ से कई दुकानों के उत्तर में। समाज का अधिवेशन राज-पथ के बगल के दोतल के हॉल में होता है। आज समाज का सालाना जलसा है, इसीलिए मणिलाल ने महोत्सव किया है।

उपासना-गृह आज आनन्दपूर्ण है, बाहर और भीतर हरे-हरे पत्तों और नाना पुष्प तथा पुष्पमालाओं से सुशोभित है। हॉल में भक्तगण आसन ग्रहण किए हुए प्रतीक्षा कर रहे हैं कि कब उपासना होगी। कमरे में सब के लिए स्थान नहीं है, बहुत जन पश्चिम दिशा की छत पर टहल रहे हैं। अथवा यथास्थान रखे हुए सुन्दर विचित्र काष्ठासनों (बैंचों) पर बैठे हैं। बीच-बीच में गृहस्वामी और उनके सगे-सम्बन्धी आकर भक्तों का मधुर वाणी से स्वागत करते हैं। सन्ध्या के पहले से ही ब्राह्म भक्तों ने आना आरम्भ कर दिया है। वे आज एक विशेष

उत्साह से उत्साहान्वित हैं। आज श्री रामकृष्ण परमहंसदेव का शुभागमन होगा। ब्राह्मसमाज के नेतागण केशव, विजय, शिवनाथ आदि भक्तों को परमहंस बड़ा प्यार करते हैं, जभी वे ब्राह्म भक्तों को इतने प्रिय हैं। वे हरि-प्रेम में मतवाले हैं। उनका प्रेम, उनका ज्वलन्त विश्वास, उनका बालकवत् ईश्वर के संग कथोपकथन, भगवान के लिए व्याकुल-क्रन्दन, उनकी मातृ-ज्ञान में स्त्री जाति की पूजा, उनका विषय-कथा-वर्जन और तैल धारावत् निरवच्छिन्न ईश्वर कथा-प्रसंग, उनका सर्व-धर्मसमन्वय और अन्य धर्मों में विद्वेष-भावलेशशून्यता, उनका ईश्वर-भक्तों के लिए रोदन— इन सब व्यापारों ने ब्राह्म भक्तों का चित्ताकर्षण कर लिया है। इसलिए बहुत से जन बहुत दूर से उनके दर्शनों के लिए आए हैं।

(शिवनाथ और सत्य वाणी)

उपासना के पूर्व श्री रामकृष्ण श्रीयुक्त विजय कृष्ण गोस्वामी और अन्यान्य ब्राह्म भक्तों के साथ सहास्यवदन आलाप कर रहे हैं। समाजगृह में आलोक कर दिया गया है। अब जल्दी ही उपासना आरम्भ होगी। परमहंसदेव कहते हैं— "क्यों भाई, शिवनाथ नहीं आएँगे?" एक ब्राह्म भक्त बोले, "नहीं, आज उन्हें बहुत काम है, आ नहीं सकेंगे।" परमहंसदेव बोले, "शिवनाथ को देखकर मुझे बड़ा आनन्द होता हैं, मानो भक्तिरस में डूबे हुए हैं। और जिसको बहुत जन मानते हैं, उसमें निश्चय ही ईश्वर की कुछ शक्ति है। फिर भी शिवनाथ में एक बड़ा भारी दोष है— वाणी का पालन नहीं है। मुझ से कहा था कि एक बार वहाँ (दक्षिणेश्वर के कालीमन्दिर में) आऊँगा; किन्तु आया नहीं, और कोई सूचना भी नहीं भेजी। यह ठीक नहीं है। ऐसा कहा है कि सत्य वाणी ही कलियुग की तपस्या है। सत्य से चिपके रहने से भगवान-लाभ हो जाता है। सत्य से चिपका न रहे तो क्रमशः सब नष्ट हो जाता है। यदि कभी यह कह देता हूँ कि मैं बाह्य जाऊँगा

और बाह्य का दबाव न हो तो भी यही सोचकर एक बार लोटा साथ लेकर झाऊतले की ओर जाता हूँ। भय यही होता है कि कहीं पीछे सत्य वाणी न छूट जाए। अपनी इसी अवस्था के बाद मैंने फूल हाथ में लेकर माँ से कहा था— 'माँ! यह यह लो अपना ज्ञान, यह लो अपना अज्ञान, मुझे शुद्धा भक्ति दो माँ; यह लो अपनी शुचि, यह लो अपनी अशुचि, मुझे शुद्धा भक्ति दो माँ; यह लो अपना भला,यह लो अपना मन्दा, मुझे शुद्धा भक्ति दो माँ; यह लो अपना पुण्य, यह लो अपना पाप, मुझे शुद्धा भक्ति दो माँ।' जब ये सब बातें कही थीं तब यह बात नहीं कह सका— 'माँ, यह लो अपना सत्य, यह लो अपना असत्य।' सब माँ को दे सका, किन्तु 'सत्य' माँ को नहीं दे सका।"

ब्राह्मसमाज की पद्धति के अनुसार उपासना आरम्भ हो गई। वेदी के ऊपर आचार्य हैं, सम्मुख आलोकाधार है। 'उदबोधन' के बाद आचार्य परब्रह्म के उद्देश्य में वेदोक्त महामन्त्र-उच्चारण करने लगे। ब्राह्म भक्तगण समस्वर में वही पुरातन आर्य ऋषियों के श्रीमुख-निःसृत, अपनी उसी पवित्र रसना के द्वारा उच्चारित नाम गाने लगे। कहने लगे,

सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म, आनन्दरूपममृतम् यद्विभाति ,
शान्तं शिवमद्वैतम्, शुद्धमपापविद्धम्।

प्रणव (ॐ) से युक्त यह ध्वनि भक्तों के हृदयाकाश में प्रतिध्वनित हो गई। अनेकों के अन्तर् से वासना प्रायः शान्त हो गई। चित्त काफ़ी स्थिर और ध्यानप्रवण होने लगा। सबके चक्षु बन्द हैं। वे थोड़ी देर के लिए वेदोक्त सगुण ब्रह्म का चिन्तन करने लगे।

परमहंसदेव भाव में निमग्न हैं। स्पन्दनहीन, स्थिर दृष्टि, अवाक्, चित्रपुत्तलिकावत् बैठे हैं। आत्मा-पक्षी कहीं आनन्द में विचरण कर रहा है, और देह मात्र ही केवल शून्य मन्दिर में पड़ी हुई है।

समाधि के शीघ्र बाद ही आँखें खोलकर चारों ओर देखते हैं। देखा, सभास्थ सबके ही नेत्र बन्द हैं। तब 'ब्रह्म!-ब्रह्म!' कहकर हठात् खड़े हो गए। उपासना के अन्त में ब्राह्म भक्तगण खोल-करताल लेकर

संकीर्तन करते हैं। श्री रामकृष्ण परमहंस ने प्रेमानन्द में मस्त होकर उनके संग योगदान किया और नृत्य करने लगे। सब मुग्ध होकर वही मधुर नृत्य देखते हैं। श्रीयुक्त विजयकृष्ण और अन्य भक्त भी उनको घेर-घेर कर नाचते हैं। बहुजन ही यह अद्भुत दृश्य देखकर और कीर्तनानन्द-संभोग करके कुछ समय के लिए संसार भूल गए— क्षणकाल के लिए हरि-रस-मदिरा-पान करके विषय-रस भूल गए। विषय-सुख का रस तिक्त (कड़वा) बोध होने लगा।

कीर्तन के अन्त में सबने आसन ग्रहण किया। ठाकुर क्या कहते हैं, सुनने के लिए सब उनको घेर कर बैठ गए।

द्वितीय परिच्छेद

(गृहस्थ के प्रति उपदेश)

समवेत ब्राह्म भक्तों को सम्बोधन करके वे कहते हैं— "निर्लिप्त होकर गृहस्थ (संसार) करना बड़ा कठिन है। प्रताप कहते थे, 'महाशय, हमारा राजा जनक वाला मत है। जनक ने निर्लिप्त होकर संसार किया था, हम भी वैसा ही करेंगे।' मैंने कहा, 'सोचने से ही क्या राजा जनक बना जाता है? राजा जनक ने कितनी तपस्या करके ज्ञान-लाभ किया था! सिर नीचे पाँव ऊपर करके बहुत वर्ष घोरतर तपस्या करके फिर संसार में लौटे थे।'

"फिर भी क्या गृहियों के लिए उपाय नहीं है? हाँ, अवश्य है। कुछ दिन निर्जन में साधना करनी चाहिए। निर्जन में करने पर भक्ति प्राप्त होती है, ज्ञान-लाभ होता है; फिर जाकर गृहस्थ करो तो दोष नहीं। जब निर्जन में साधना करेगा, तब गृहस्थ बिल्कुल अलग रहेगा। तब जैसे भी हो, स्त्री-पुत्र-कन्या, माता-पिता, भाई-भगिनी, आत्मीय कुटुम्बी कोई भी पास न रहे। निर्जन में साधना के समय विचार करे,

'मेरा कोई नहीं है, ईश्वर ही मेरा सर्वस्व है।' और रो-रो कर उनके निकट ज्ञान-भक्ति के लिए प्रार्थना करे।

"यदि पूछो कितने दिन गृहस्थ छोड़कर निर्जन में रहूँगा? वह तो यदि कोई इस प्रकार एक दिन रहे, वह भी अच्छा है, तीन दिन रहे तो और भी भला है, अथवा बारह दिन, एक मास, तीन मास, एक वर्ष, जो जितना कर सके। ज्ञान-भक्ति प्राप्त करके संसार करने पर फिर अधिक भय नहीं है।

"हाथों पर तेल मलकर कटहल तोड़ने से हाथों पर लेस नहीं लगता। चोर-चोर का खेल खेलते हुए यदि धाई को छू लें तो फिर भय नहीं। एक बार पारसमणि को छू कर सोना बन जाओ, सोना होने पर यदि एक हज़ार वर्ष मिट्टी में दबा रहे, तो भी मिट्टी से निकालने के समय वह सोना ही रहेगा।

"यह मन तो दूध जैसा है। इस मन को यदि संसार रूपी जल में रखो, तो फिर दूध और जल मिल जाएगा। उसी दूध का दही जमा कर मक्खन निकाल लेना चाहिए। जब निर्जन में साधना करके मन रूप दूध से ज्ञान-भक्ति रूप मक्खन निकल गया, तब वही मक्खन अनायास ही संसार-जल में रखा जा सकता है। वह मक्खन कभी भी संसार रूपी जल के संग नहीं मिलेगा, संसार-जल के ऊपर निर्लिप्त होकर तैरेगा।"

तृतीय परिच्छेद

(श्रीयुक्त विजय गोस्वामी का निर्जन में साधन)

श्रीयुक्त विजय गोस्वामी हाल ही में गया से लौटे हैं। वहाँ पर काफ़ी दिन निर्जन में वास और साधुसंग हुआ है। अब उन्होंने गैरिक वसन पहन लिया है। अवस्था बड़ी सुन्दर है, मानो सर्वदा अन्तर्मुख

हों। परमहंसदेव के निकट मस्तक नीचा करके रहते हैं, मानो मग्न होकर चिन्तन कर रहे हैं। विजय को देखते हुए परमहंसदेव ने उनसे पूछा— विजय! तुमने क्या 'वासा' पकड़ लिया है?

"देखो, दो साधु भ्रमण करते-करते एक शहर में आ गए थे। एक साधु उत्सुकता पूर्वक शहर के बाज़ार, दुकान, घर देख रहा था। उस समय दूसरे से मेल हुआ। तब दूसरे साधु ने कहा, तुम 'हा' करके शहर देख रहे हो, तुम्हारा बोरिया-बिस्तर कहाँ है? प्रथम साधु ने कहा, मैं पहले 'वासा' पकड़ कर बोरिया-बिस्तर कमरे में, ताले में बन्द करके निश्चिन्त होकर निकला हूँ। अब शहर का रंग देखता हुआ टहल रहा हूँ। तभी तुमसे पूछ रहा हूँ , क्या तुमने 'वासा' पकड़ लिया है?"

(मास्टर इत्यादि के प्रति)— "देखो, विजय का इतने दिनों से फव्वारा दबा पड़ा था, अब खुल गया है।"

(विजय और शिवनाथ— निष्काम कर्म— संन्यासी का वासना-त्याग)

(विजय के प्रति)— "देखो, शिवनाथ को बड़ा झंझट है। समाचार-पत्र लिखना पड़ता है, और बहुत कार्य करने पड़ते हैं। विषय-कर्म करने से ही अशान्ति होती है। अनेक भावना, चिन्ता जमा हो जाती है।

श्रीमद्भागवत में है— अवधूत ने चौबीस गुरुओं[1] में से चील को एक गुरु बनाया था। एक स्थान पर मछवे मछलियाँ पकड़ रहे थे। एक चील आकर झपट्टा मार कर एक मछली ले गई। मछली देखकर उसके पीछे-पीछे प्रायः एक हज़ार कव्वे झुण्ड बनाकर पड़ गए और संग संग

---

[1] अवधूत दत्तात्रेय के चौबीस गुरु:—
पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य, हाथी, मछली, हिरन, चील, पिंगला, शहद बटोरने वाला, कबूतर, पतिंगा, समुद्र, अजगर, मधुमक्खी, बालक, कुंआरी कन्या, सर्प, मृगी, मकड़ी, बाण बनाने वाला।

काँओं-काँओं करके खूब गड़बड़ मचा दी। मछली को लेकर चील जिस तरफ़ जाती, कव्वे भी झुण्ड के झुण्ड उसी ओर जाते। दक्षिण की ओर वह चील गई, कव्वे भी उसी दिशा में चल दिए। फिर वह उत्तर को जब गई, वे भी उसी ओर गए। इस प्रकार पूर्व और पश्चिम में चील घूमने लगी। अन्त में घूमते-घूमते परेशान होने पर मछली उस से गिर गई। तब कव्वे चील को छोड़ कर मछली की ओर गए। चील तब निश्चिन्त होकर एक वृक्ष की डाली के ऊपर बैठ गई। बैठकर सोचने लगी— उसी मछली ने इतनी सब गड़बड़ मचा रखी थी। अब मेरे पास मछली नहीं है, मैं निश्चिन्त हो गई हूँ।

"अवधूत ने चील से यही शिक्षा ली कि जब तक मछली साथ रहती है अर्थात् वासना रहती है, तब तक कर्म रहता है और कर्म के कारण विचार, चिन्ता, अशान्ति रहती है। वासना-त्याग होते ही कर्म-क्षय हो जाता है और शान्ति होती है।

"इसलिए निष्काम कर्म अच्छा है। उसमें अशान्ति नहीं होती। किन्तु निष्काम कर्म करना बड़ा कठिन है। सोचता हूँ, निष्काम कार्म कर रहा हूँ किन्तु कहाँ से कामना आ जाती है, पता भी नहीं लगने देती। पहले यदि पर्याप्त साधना रहे, तो उस साधना के बल पर कोई-कोई निष्काम कर्म कर सकता है। ईश्वर-दर्शन के पश्चात् निष्काम कर्म अनायास ही किया जाता है। ईश्वर-दर्शन के बाद प्रायः कर्म त्याग हो जाता है, दो-एक जन (नारद आदि) लोक-शिक्षा के लिए कर्म करते हैं।"

(संन्यासी संचय नहीं करेगा— प्रेम होने पर कर्म-त्याग होता है)

"अवधूत का एक और गुरु था— मधुमक्खी! मधुमक्खी बहुत कष्ट कर-करके बहुत दिनों तक मधु-संचय करती है। किन्तु वह मधु उसके अपने भोग में नहीं लगता। अन्य एक व्यक्ति आकर छत्ता तोड़कर ले जाता है। मधुमक्खी से अवधूत ने यही शिक्षा ली कि संचय नहीं

करते। साधुगण ईश्वर के ऊपर सोलह आना ही निर्भर करेंगे। उन्हें संचय नहीं करना।

"यह गृहियों के लिये नहीं है। गृहियों को गृहस्थ-प्रतिपालन करना चाहिए। इसीलिए संचय आवश्यक है। पंछी (पक्षी) और दरवेश (साधु) संचय नहीं करते। किन्तु पक्षी चूजा होने पर संचय करता है— चूज़े के लिए अपनी चोंच में खाना लाता है।

"देखो विजय, साधुओं के साथ यदि पोटली-पाटली रहे, पन्द्रह गाँठों वाली यदि गठड़ी रहे, तो फिर उनका विश्वास न करो। मैंने बटतले उस प्रकार के साधु देखे थे। दो-तीन जन बैठे हुए थे। कोई दाल बीन रहा था, कोई धोती सी रहा था और बड़े व्यक्तियों के घर के भण्डारे की बातें कर रहे थे। कह रहे थे— अरे उस बाबू ने लाखों रुपया खरच किया, साधुओं को बहुत खिलाया— पूरी, जलेबी, पेड़ा, बरफ़ी, मालपुए— बहुत चीजें तैयार की थीं। *(सब का हास्य)*।

विजय— जी हाँ, गया जी में भी वैसे ही साधु देखे हैं। गया में लोटे वाले साधु हैं। *(सब का हास्य)*।

श्री रामकृष्ण *(विजय के प्रति)*— ईश्वर के प्रति प्रेम होने पर कर्म-त्याग अपने आप ही हो जाता है। जिनसे ईश्वर कर्म करवाते हैं, वे करें। तुम्हारा अब समय हो गया है। सब छोड़कर तुम कहो, 'हे मन, तू देख और मैं देखूँ , और कोई जैसे न देखे।'

यह कह कर भगवान श्री रामकृष्ण उसी अतुलनीय कण्ठ से माधुर्य-वर्षण करते-करते गाना गाने लगे:—

यतने हृदये रेखो आदरिणी श्यामा मा के,
मन तुई देख आर आमि देखि, आर जेनो केउ नाहि देखे।
कामादिरे दिये फांकि, आय मन विरले देखि,
रसना रे संगे राखि, शे जेनो मा बोले डाके।
(माझे माझे शे जेनो मा बोले डाके)
कुरुचि कुमंत्री जतो, निकट होते दिओ नाको,

ज्ञान नयने प्रहरी रेखो, शे जेनो सावधाने थाके।
(खूब जेनो सावधाने थाके)॥

[आदरिणी श्यामा माँ को बड़े यत्न से हृदय में रखो। हे मन, तू देख और मैं देखू और कोई उसे जैसे न देख पावे। काम-क्रोध आदि को चकमा देकर हे मन! आ चल, अकेले में देखूँ। रसना को संग में रखूगा, ताकि वह माँ-माँ कह कर पुकारती रहे। (बीच-बीच में वह जैसे माँ-माँ कहकर पुकारती रहे।) अरे मन, कुरुचि आदि जितने बुरे मन्त्री हैं, उन्हें निकट न आने देना। ज्ञान-नयनों को पहरेदार रखो ताकि वे सावधान रहें।]

(विजय के प्रति)— "भगवान के शरणागत हो गए हो, अब लज्जा, भय आदि सब त्याग करो। मैं यदि हरि-नाम में नाचता हूँ, तो लोग मुझे क्या कहेंगे?— ऐसा भाव त्याग करो।

(लज्जा, घृणा, भय)

"लज्जा, घृणा, भय— इन तीन के रहते नहीं होता। लज्जा, घृणा, भय, जाति-अभिमान, गोपन-इच्छा इत्यादि— ये सब पाश[1] हैं। इनके जाने पर जीव की मुक्ति होती है।

"पाश-बद्ध जीव, पाश-मुक्त शिव! भगवान का प्रेम दुर्लभ वस्तु है। शुरु-शुरु में स्त्री की पति में जैसी निष्ठा होती है, उसी प्रकार की निष्ठा यदि ईश्वर पर हो जाए, तब ही भक्ति होती है। शुद्धाभक्ति होना बड़ा कठिन है। भक्ति में प्राण-मन ईश्वर में लीन हो जाते हैं।

"उसके बाद भाव। भाव में मनुष्य अवाक् हो जाता है। वायु स्थिर हो जाती है। अपने आप कुम्भक हो जाता है; जैसे बन्दूक से गोली छोड़ने के समय। जो व्यक्ति गोली छोड़ता है, वह वाक्य-शून्य हो जाता है और उसकी वायु स्थिर हो जाती है।

[1] पाश = अष्टपाश— लज्जा, घृणा, भय, शंका, कुल, शील, मान, जुगुप्सा।

"प्रेम होना तो बहुत दूर की बात है। चैतन्यदेव को प्रेम हुआ था। ईश्वर में प्रेम होने पर बाहर की वस्तु भूल जाती है, जगत् भूल जाता है। अपनी देह, जो इतनी प्रिय वस्तु है, वह भी भूल जाती है।"

यह कह कर परमहंस देव फिर गाना गाने लगे—

से दिन कबे बा होबे
हरि बोलिते धारा बेये पड़बे (से दिन कबे बा हबे)।
संसार वासना जाबे (से दिन कबे बा हबे)।
अंगे पुलक होबे (से दिन कबे बा हबे)।

[वह दिन कब होगा, जब हरि बोलते हुए अश्रुधारा बहेगी। संसार-वासना चली जाएगी; अंग रोमांचित, पुलकित हो जाएगा, वह दिन कब होगा?]

चतुर्थ परिच्छेद

(भाव और कुम्भक— महावायु उठने पर भगवान्-दर्शन)

इसी प्रकार कथा-वार्त्ता चल रही थी, तब और भी कई निमन्त्रित ब्राह्म भक्त आ उपस्थित हुए। उनमें कई तो विद्वान् और उच्च पदस्थ राज कर्मचारी हैं। उनमें एक श्री रजनीनाथ राय हैं।

ठाकुर कहते हैं, भाव होने पर वायु स्थिर हो जाती है; और बता रहे हैं, अर्जुन ने जब लक्ष्य विद्ध किया था, तब केवल मछली के चक्षु की ओर दृष्टि थी और किसी ओर दृष्टि नहीं थी; यहाँ तक कि आँख के अतिरिक्त और किसी भी अंग को देख नहीं पाए थे। ऐसी अवस्था में वायु स्थिर होती है, कुम्भक हो जाता है।

"ईश्वर-दर्शन का एक लक्षण यह भी है— भीतर से महावायु गर-गर करके चढ़ती हुई मस्तिष्क की ओर जाती है। तब यदि समाधि हो, तो भगवान्-दर्शन होता है।"

(केवल पाण्डित्य मिथ्या— ऐश्वर्य, विभव, मान, पद, सब मिथ्या)

(अभ्यागत ब्राह्म भक्तों की ओर दृष्टि)— "जो केवल पण्डित हैं किन्तु जिनकी भगवान् में भक्ति नहीं है, उनकी बातें उलटी-पुलटी होती हैं। सामाध्यायी नामक एक पण्डित ने कहा था— 'ईश्वर नीरस हैं, तुम लोग अपनी प्रेम-भक्ति द्वारा सरस करो।' वेद में जिन्हें 'रसस्वरूप' कहा है, उन्हें ही देखो, 'नीरस' कहता है। और इससे यही बोध होता है कि वह व्यक्ति ज़रा भी नहीं जानता कि ईश्वर क्या वस्तु हैं। तभी तो ऐसी ऊटपटाँग बात कही।

"किसी ने कहा था, मेरे मामा के घर एक गौशाला-भर घोडे हैं। इस बात से समझना होगा कि घोड़ा एक भी नहीं है क्योंकि गौशाला में घोड़े नहीं रहते। *(सब का हास्य)*।

"कोई-कोई ऐश्वर्य का— विभव, धन-माल-जायदाद, मान-पद आदि का अहंकार करते हैं। ये सब तो दो दिन के लिए हैं। कुछ भी संग में नहीं जाएगा। एक गाने में है—

भेवे देखो मन केउ कारु नय, मिछे भ्रम भूमण्डले।
भुलोना दक्षिणा काली बद्ध हय मायाजाले॥
जार जन्य मरो भेवे, से कि तोमार संगे जाबे।
सेई प्रेयसी दिबे छड़ा, अमंगल हबे बले॥
दिन दुई-तिनेर जन्य भवे, कर्ता बोले सबाइ माने॥
सेई कर्ता रे देबे फेले, काला कालेर कर्ता एले॥

[अरे मन, विचार करके तो देख, कोई किसी का नहीं है। इस भूमण्डल में झूठा भ्रम ही है। शान्त भाव वाली दक्षिणा काली माँ को, उनके ही माया-जाल में बद्ध होकर मत भूलो। जिनके लिए तुम मर रहे हो, सोचकर तो देखो, क्या वे तुम्हारे संग में जाएँगे? वही प्रिया पत्नी तुम्हें बुरे-भले शब्द कहेगी, क्योंकि मरने के पश्चात् यदि कोई आता है, तो जीवित का अमंगल समझा जाता है। दो-तीन दिन के लिए सभी अपने को कर्त्ता मान

लेते हैं, पर जब काल-कर्त्ता (यमराज) आ जाएगा, तो वह सबके कर्त्तापन को फेंक देगा।]

(अहंकार की महौषध— उससे बढ़ कर है)

"फिर रुपये का अहंकार नहीं करते। यदि समझता है मैं धनी हूँ , तो धनी भी उससे बढ़कर और उससे भी बढ़कर है। सन्ध्या के बाद जब जुगनू निकलता है, वह सोचता है, मैं इस जगत् को प्रकाश देता हूँ। किन्तु तारे ज्योंहि निकल आते हैं, त्योंहि उसका अभिमान चला जाता है। तब तारे सोचने लगते हैं हम जगत् को आलोक दे रहे हैं। कुछ काल पश्चात् चन्द्र उदित हुए, तब नक्षत्र लज्जा से मलिन हो गए। चन्द्र मन ही मन सोचता है कि मेरी रोशनी से जगत् हँस रहा है, मैं जगत् को प्रकाश दे रहा हूँ। देखते ही देखते अरुण उदय हुआ, सूर्य निकल आए। चाँद मलिन हो गया-- थोड़ी देर बाद फिर दिखाई ही नहीं दिया।

"धनी लोग यदि इस प्रकार विचार करें, तब फिर धन का अहंकार नहीं होता।"

उत्सव के उपलक्ष्य में मणिलाल ने बहुत-सी उपादेय खाद्य सामग्री का आयोजन किया है। उन्होंने बड़े यत्न और प्यार से श्री रामकृष्ण और समवेत भक्तों को परितोष पूर्वक आहार करवाया। जब सब जन घरों को लौटने लगे, तब रात बहुत हो चुकी थी, किन्तु किसी को भी कोई कष्ट नहीं हुआ।

•

नवम खण्ड

श्रीयुक्त जयगोपाल सेन के घर शुभागमन

प्रथम परिच्छेद

(गृहस्थाश्रम और श्री रामकृष्ण)

अंग्रेज़ी 28 नवम्बर, 1883 ईसवी। आज 4-5 बजे दोपहर को श्री रामकृष्ण श्रीयुक्त केशवचन्द्र सेन के कमल कुटीर नामक घर में गए थे। केशव पीड़ित हैं, शीघ्र ही मर्त्यधाम त्याग कर जाएँगे। केशव को देखकर रात को 7 बजे के बाद माथाघसा गली में श्रीयुक्त जयगोपाल के घर कई-एक भक्तों के संग ठाकुर ने आगमन किया है।

भक्त कितना ही कुछ सोच रहे हैं। ठाकुर को हम निशि-दिन हरि-प्रेम में विह्वल देखते हैं। विवाह किया है, किन्तु धर्मपत्नी के साथ उस प्रकार का संसार (गृहस्थ) नहीं किया है। धर्मपत्नी की भक्ति करते हैं, पूजा करते हैं। उनके साथ केवल ईश्वरीय बातें करते हैं. ईश्वर की कथा करते हैं, ईश्वर की पूजा करते हैं, ध्यान करते हैं, मायिक कोई सम्बन्ध नहीं है। ठाकुर देखते हैं 'ईश्वर वस्तु और सब अवस्तु'। रुपया, धातु-द्रव्य, लोटा, कटोरी स्पर्श नहीं कर सकते। स्त्रियों को स्पर्श नहीं कर सकते। स्पर्श कर लेने पर वह स्थान सिंगी मछली का काँटा चुभने जैसा झन्-झन् , कन-कन् करता है। रुपया-सोना हाथ में देने पर हाथ टेढ़ा हो जाता है, विकृत अवस्था हो जाती है, निश्वास रुद्ध हो जाता है। अन्त में फेंक देने पर दुबारा फिर पूर्ववत् निश्वास आने लगता है।

भक्त कितना ही कुछ-कुछ विचार करते हैं। संसार का क्या त्याग करना होगा? पढ़ने-सुनने का अब और क्या प्रयोजन है? यदि विवाह न करें तो नौकरी फिर नहीं करनी पड़ेगी। माँ-बाप को क्या छोड़ना होगा? और मैंने विवाह किया है, सन्तान हुई है, स्त्री का प्रतिपालन करना होगा— मेरा क्या होगा? मेरी भी इच्छा होती है, निशि-दिन हरि-प्रेम में मग्न हुआ रहूँ, ठाकुर श्री रामकृष्ण को देखता हूँ और सोचता हूँ, क्या कर रहा हूँ! ये रात-दिन तैलधारावत् निरवच्छिन्न ईश्वर-चिन्तन करते हैं और मैं रात-दिन विषय-चिन्तन करता भाग रहा हूँ! एकमात्र इनका ही दर्शन ऐसा है, जैसे मेघाच्छन्न आकाश में एक स्थान पर थोड़ी-सी ज्योति। अब जीवन-समस्या किस प्रकार पूर्ण करनी होगी?

इन्होंने तो स्वयं करके दिखा दिया; तो भी अभी भी सन्देह है!

रेत का बाँध तोड़ कर मन की इच्छा पूर्ण करूँ! सचमुच ही क्या यह रेत का बाँध है? तो फिर ऐसा होने पर भी छोड़ क्यों नहीं सकता? समझ गया हूँ, शक्ति कम है। उनके ऊपर उस प्रकार का प्यार हो जाने पर फिर हिसाब नहीं आएगा। यदि ज्वार गंगा के जल में आती है तो उसे कौन रोकेगा? जिस प्रेम के उदय होने से श्री गौरांग ने कौपीन धारण किया था, जिस प्रेम में ईसा अनन्यचित्त होकर बनवासी हुए थे और प्रेममय पिता का मुख देखकर शरीर-त्याग किया था, जिस प्रेम में बुद्ध राज-भोग त्याग करके वैरागी हो गए थे, उसी प्रेम का एक बिन्दु यदि उदय हो जाए, तो यह अनित्य संसार कहीं और पड़ा रहता है।

अच्छा! जो दुर्बल हैं, जिनका वह प्रेम उदय नहीं हुआ, जो संसारी जीव हैं, जिनके पाँव में माया की बेड़ी है, उनका क्या उपाय है? इस प्रेमिक वैरागी महापुरुष का संग नहीं छोड़ूँगा! देखूँ, ये क्या कहते हैं।

भक्त इसी प्रकार सोच रहे हैं। ठाकुर जयगोपाल की बैठक में भक्तों के संग बैठे हुए हैं। सम्मुख जयगोपाल, उनके सगे सम्बन्धी और

पड़ोसी हैं। एक पड़ोसी विचार के लिए प्रस्तुत थे। उन्होंने ही आगे बढ़कर बातें आरम्भ की। जयगोपाल के भ्राता बैकुण्ठ भी हैं।

(गृहस्थाश्रम और श्री रामकृष्ण)

बैकुण्ठ— हम गृहस्थी लोग हैं, हमें कुछ बताइए।

श्री रामकृष्ण— उनको जानकर, एक हाथ ईश्वर के पादपद्मों में रखो और एक हाथ से संसार का कार्य करो।

बैकुण्ठ— महाशय, संसार क्या मिथ्या है?

श्री रामकृष्ण— जब तक उन्हें नहीं जाना जाता, तब तक मिथ्या है। तब उन्हें भूलकर मनुष्य मेरा-मेरा करता रहता है— माया में बद्ध होकर कामिनी-काञ्चन में मुग्ध होकर और भी डूबता जाता है। माया में तो वैसे ही मनुष्य बेहोश रहता है कि भागने का पथ रहते हुए भी भाग नहीं सकता। एक गाने में है—

एमनि महामायार माया रेखेछो कि कुहक करे।
ब्रह्मा विष्णु अचैतन्य जीवे कि जानित पारे।
बिल कोरे घुणी पाते मीन प्रवेश करे ताते।
गतायातेर पथ आछे तबु मीन पालाते नारे ॥
गुटीपोकाय गुटी करे पालालेओ पालाते पारे।
महामायाय बद्ध गुटी आपनार नाले आपनी मरे।

[माया ने जादू के द्वारा ऐसी महामाया कर रखी है कि ब्रह्मा, विष्णु भी बेहोश हो गए हैं। जीव तो क्या समझ सकता है? गड्ढा बनाकर मीन उसमें घुस जाती है और आने-जाने का रास्ता होते हुए भी वह मीन भागती नहीं। रेशम का कीड़ा कोया बनाकर उसमें से भाग सकता है किन्तु महामाया के चक्र से अपने कोये में आप ही बद्ध होकर मर जाता है।]

"तुम लोग तो अपने आप में देख ही रहे हो संसार अनित्य है। इसी घर को ही क्यों नहीं देखते? कितने जन आए गए! कितने जन्मे,

कितनों ने देह-त्याग किया! संसार अभी है, अभी नहीं— अनित्य! जिनको इतना 'मेरा-मेरा' करते हो, आँख बन्द करते ही नहीं हैं। कोई नहीं है, फिर भी पोते के लिए काशी जाना नहीं हो पाता। 'मेरे हारु का क्या होगा?' निकलने का पथ है तो भी मीन भागती नहीं। रेशम का कीड़ा अपनी लार में अपने आप मरता है। इस प्रकार संसार मिथ्या है, अनित्य है।"

पड़ौसी— महाराज, एक हाथ ईश्वर में और एक हाथ संसार में रखूँ कैसे? यदि संसार अनित्य है तो एक हाथ भी क्यों दूँ?

श्री रामकृष्ण— उनको जान कर संसार करने पर अनित्य नहीं रहता। गाना सुनो—

'मन रे कृषि काज जानो ना।
एमन मानव जमिन रइलो पतित, आबाद करले फलतो सोना॥
काली नामे दाओ रे बेड़ा, फसले तछरूप हबे ना॥
से जे मुक्त केशीर शक्त बेड़ा, तार काछेते यम घँसे ना॥
अद्य किम्बा शताब्दान्ते, बाजाप्त हबे जानो ना।
एखन आपन एकतारे (मन रे) चुटिये फसल केटे ने ना॥
गुरुदत्त बीज रोपण करे, भक्ति बारि सेंचे दे ना।
एका यदि ना पारिस मन, राम प्रसाद के संगे ने ना।

[हे मन, तुम किसानी का काम नहीं जानते। ऐसी सुन्दर मानव-ज़मीन पड़ी-की-पड़ी रह गई! यदि खेती करके आबाद करता तो सोना फलता। अरे भाई, काली-नाम की बाड़ लगाने से फसल खराब नहीं होगी। वह बाड़ तो मुक्तकेशी माँ की बड़ी सशक्त बाड़ है, उसके निकट यम नहीं आ सकता। आज या सौ वर्ष पश्चात् यह तुम से ज़रूर ले ली जाएगी। अब एक मन से लग कर फसल काट ले। गुरु द्वारा दिया गया बीज उसमें बो कर भक्ति-जल से सींच दे। ओ मन! अकेला नहीं कर सकता तो रामप्रसाद को संग में ले ले।]

द्वितीय परिच्छेद

(गृहस्थाश्रम में ईश्वरलाभ— उपाय)

श्री रामकृष्ण— गाना सुना? 'काली के नाम में फसल को घेरा लगाने पर चोरी नहीं होगी।' ईश्वर के शरणागत हो जाओ, सब कुछ मिलेगा। वह तो मुक्तकेशी (माँ) का सशक्त घेरा है, उस के निकट भय जा नहीं सकता। बड़ा मज़बूत घेरा है। उनको यदि प्राप्त कर सको तो संसार असार बोध नहीं होगा। जो उनको जानता है, वह देखता है कि जीव-जगत् आदि वे स्वयं ही बने हुए हैं। लड़के को खिलाओगे, जैसे गोपाल को खिला रहे हो। पिता-माता को ईश्वर-ईश्वरी देखोगे और सेवा करोगे। उनको जान कर गृहस्थ करने से विवाहिता स्त्री के संग प्रायः ऐहिक सम्बन्ध नहीं रहता। दोनों ही भक्त हैं— केवल ईश्वरीय बातें करते हैं, ईश्वर का प्रसंग लेकर रहते हैं। भक्तों की सेवा करते हैं। सर्वभूतों में वे हैं, उनकी सेवा दोनों जन करते हैं।

पड़ौसी— महाराज, ऐसे स्त्री-पुरुष तो दिखाई नहीं देते।

श्री रामकृष्ण— हैं, अति विरल। विषयी लोग उन्हें पहचान नहीं सकते। तो भी ऐसा होने के लिए दोनों जनों को ही भला होना चाहिए। दोनों जन ही यदि वैसा ही ईश्वरानन्द प्राप्त कर लें, तो ही ऐसा सम्भव होता है। भगवान की विशेष कृपा चाहिए। वह न हो तो सर्वदा अमेल रहता है। एक को दूर जाना पड़ता है। यदि मेल न हुआ, तो फिर बड़ी यन्त्रणा रहती है। हो सकता है स्त्री रात-दिन कहती रहती है, 'पिता जी, यहाँ पर क्यों विवाह दिया? न स्वयं खा पाई, न बच्चों को खिला पाई; न मैंने पहना, न बच्चों को पहना पाई; न एक गहना जुड़ा। तुमने मुझे किस सुख में रखा? वे तो नेत्र मूँद कर ईश्वर-ईश्वर करते रहते हैं।' वैसा पागलपन छोड़ो।

भक्त— ये सब प्रतिबन्धक तो हैं ही, और फिर शायद लड़के अवज्ञाकारी निकलें। तब फिर कितनी मुसीबत है। तो फिर महाराज, उपाय क्या है?

श्री रामकृष्ण— गृहस्थ में रहकर साधना करना बड़ा कठिन है। बहुत सी अड़चनें हैं। वे तो तुम्हें बतानी नहीं पड़ेंगी। रोग, शोक, दारिद्र्य और स्त्री के संग अमेल, लड़के अवज्ञाकारी, मूर्ख, गँवार।

"फिर भी उपाय है। बीच-बीच में निर्जन में जाकर उनसे प्रार्थना करनी चाहिए, उनको प्राप्त करने की चेष्टा करनी चाहिए।"

पड़ौसी— घर से निकल जाना होगा?

श्री रामकृष्ण— बिल्कुल ही नहीं। जब अवसर मिले, किसी निर्जन स्थान पर जाकर एक-दो दिन रहोगे जिससे कि गृहस्थी के साथ कोई सम्बन्ध न रहे, जहाँ किसी विषयी व्यक्ति के साथ सांसारिक विषय लेकर आलाप न करना पड़े। या तो निर्जन-वास, नहीं तो साधु-संग।

पड़ौसी— साधु कैसे पहचानूँगा?

श्री रामकृष्ण— जिनका मन-प्राण, अन्तरात्मा ईश्वर में चला गया है, वे ही साधु हैं। जो कामिनी-काञ्चन त्यागी हैं, वे ही साधु हैं। जो साधु हैं, वे स्त्रियों को ऐहिक चक्षु से नहीं देखते, सर्वदा ही वे अपने अन्तर् में रहते हैं। यदि स्त्रियों के निकट आते हैं, तो उनको मातृवत् देखते हैं और पूजा करते हैं। साधु सर्वदा ईश्वर-चिन्तन करते हैं। ईश्वरीय बात के अतिरिक्त और बात नहीं करते; और 'सर्वभूतों में ईश्वर रहते हैं ' जानकर उनकी सेवा करते हैं। मोटे हिसाब से साधु के ये ही लक्षण हैं।

पड़ौसी— निर्जन में सदा रहना होगा?

श्री रामकृष्ण— फुटपाथ का पेड़ देखते हो? जितने दिन पौधा रहता है, उतने दिन ही चारों ओर घेरा देना पड़ता है। घेरा न हो तो बकरी-गाय खा जाएँगी। वृक्ष का तना मोटा हो जाने पर फिर घेरे का

प्रयोजनं नहीं होता। तब हाथी बाँध देने पर भी वृक्ष नहीं टूटेगा। यदि तना बना सको तो फिर क्या चिन्ता, क्या भय? विवेक-लाभ करने की चेष्टा पहले करो। तेल मल कर कटहल तोड़ने से हाथ में उसका लेस नहीं चिपकेगा।

पड़ौसी— विवेक किसे कहते हैं?

श्री रामकृष्ण— ईश्वर सत् और सब असत्— यह विचार। सत् अर्थात् नित्य। असत्— अनित्य। जिसको विवेक हो गया है, वह जानता है ईश्वर ही वस्तु है और सब अवस्तु। विवेक उदय हो जाने पर ईश्वर को जानने की इच्छा होती है। असत् को चाहने पर देह-सुख, लोकमान्य, रुपया आदि— ये सब अच्छे लगते हैं। ईश्वर जो सत्-स्वरूप हैं, उनको जानने की इच्छा नहीं होती। सत्-असत्-विचार आने पर ही तब ईश्वर को खोजने की इच्छा होती है। एक गाना सुनो :

आय मन बेड़ाते जाबि।
काली-कल्पतरुमूले रे मन, चारि फल कुड़ाये पाबि।
प्रवृत्ति निवृत्ति जाया, निवृत्ति रे संगे लोबि।
विवेक नामे तार बेटा रे, तत्त्व कथा ताय शुधाबि।
प्रथम भार्यार सन्तानेरे दूर होते बुझाइबि।
यदि ना माने प्रबोध ज्ञान, सिन्धु माझे डुबाइबि॥
शुचि अशुचिरे लोये दिव्य घरे कबे शुबि।
तादेर दुइ सतीने पिरित होले तबे श्यामा माके पाबि।
धर्माधर्म दुटो अजा, तुच्छ खौँटाय बैँधे थूबि।
यदि न माने निषेध, तबे ज्ञान खड्गे बलि दिबि।
अहंकार अविद्या तोर पितामाताय ताड़िये दिबि।
यदि मोहगर्ते टेने लय, धैर्य खौँटा ध’रे रबि।
प्रसाद बोले एमन होले कालेर काछे जवाब दिबि।
तबे बापू बाछा बापेर ठाकुर मनेर मत मन होबि॥

[आ रे मन, टहलने चलें। काली-कल्पतरु के नीचे तुझे चारों फल— धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष मिलेंगे। प्रवृत्ति और निवृत्ति पत्नियाँ हैं। निवृत्ति को साथ लेना। उनका विवेक नामक पुत्र है।

उसे सार बात बताना। प्रथम पत्नी की सन्तान को दूर से समझाना, यदि न समझे तो ज्ञान-सिन्धु में डुबा देना। शुचि-अशुचि को संग लेकर दिव्य घर में कब सोएगा? जब उन दोनों सौतों में प्रेम हो जाएगा, तब श्यामा माँ मिलेंगी। धर्म, अधर्म दो बकरियाँ हैं, उन्हें एक छोटे खूँटे पर बाँध देना। यदि तुम्हारा निषेध न मानें, तो ज्ञान-खड्ग से बलि दे देना। अहंकार-अविद्या तेरे पिता-माता हैं, उन्हें मार कर भगा देना। यदि वे मोह-गर्त में खींचने लगें, तो धैर्य का खूँटा पकड़े रहना। प्रसाद कहता है, ऐसा हो तो काल के निकट जवाब दे देना। तभी तू भाई, बचेगा और भगवान पिता के मन की भान्ति तेरा मन हो जाएगा।]

"मन में निवृत्ति आने पर ही तब विवेक होता है। विवेक हो जाए तो फिर तत्त्व की बात उठती है। तब मन को काली-कल्पतरु के नीचे टहलने जाने की इच्छा होती है। उस वृक्ष के नीचे जाने से, ईश्वर के निकट जाने से, चारों फल बटोर कर मिल जाते हैं। अनायास मिल जाते हैं, बटोरने से मिलते हैं— धर्म,अर्थ, काम, मोक्ष। उनको (ईश्वर को) प्राप्त कर लेने पर धर्म, अर्थ, काम, जो कुछ गृहस्थी को आवश्यक होता है, वही हो जाता है; यदि कोई इच्छा करे।"

पड़ौसी— फिर संसार को माया क्यों कहते हैं?

(विशिष्टाद्वैतवाद और ठाकुर श्री रामकृष्ण)

श्री रामकृष्ण— जब तक ईश्वर प्राप्त नहीं होते, तब तक 'नेति-नेति' करके त्याग करना चाहिए। उनको जिन्होंने प्राप्त कर लिया है, वे जानते हैं कि वे ही सब बने हैं— ईश्वर, माया, जीव, जगत्। तब बोध होता है कि जीव जगत् केवल वे हैं। यदि एक बेल का छिलका, गूदा, बीज अलग-अलग किया जाए और कोई यदि कहे बेल का वज़न कितना है, देखो तो? तुम क्या छिलका, बीज फेंक कर केवल गूदा ही तोलोगे? अथवा वज़न करते समय छिलका, बीज समस्त ही रखने

होंगे? सब रखकर ही तो बता सकोगे कि उस बेल का इतना वज़न था। छिलका जैसे जगत् है, जीवगण जैसे बीज। विचार के समय जीव और जगत् को अनात्मा कहा था, अवस्तु कहा था। विचार करते समय गूदा ही सार और छिलका और बीज असार बोध होता है। विचार हो जाने पर समस्त मिलकर एक है, यह बोध होता है; और बोध हो जाता है कि जिस सत्ता से गूदा बना है, उसी सत्ता द्वारा ही बेल का छिलका और बीज बने हैं। बेल के समझने से सब समझ में आ जाएगा।

"अनुलोम-विलोम। छाछ का ही मक्खन है और मक्खन की ही छाछ। यदि छाछ बनी है, तो मक्खन भी बना है। यदि मक्खन बना है तो छाछ भी बनी है। आत्मा यदि है, तो अनात्मा भी है।

"जिनका नित्य है, उनकी ही लीला (Phenomenal world) है, जिनकी लीला है, उनका ही नित्य (Absolute) है। जो ईश्वर नाम से गोचर होते हैं, वे ही जीव-जगत् हुए हैं। जिसने जान लिया है, वह देखता है कि वे ही सब हुए हैं— बाप-माँ-पुत्र, पड़ौसी, जीव-जन्तु, भला-बुरा, शुचि-अशुचि, समस्त।"

(पाप-बोध— Sense of sin and responsibility)

पड़ौसी— तो फिर पाप-पुण्य नहीं है?

श्री रामकृष्ण— है; और फिर नहीं भी। वे यदि अहं तत्त्व (Ego) रहने देते हैं, तब तो फिर भेद-बुद्धि भी रहने देते हैं, पाप-पुण्य-ज्ञान भी रहने देते हैं। वे एक दो जन में से अहंकार एकदम ही पोंछ डालते हैं, वे पाप-पुण्य, भला-मन्दा के पार हो जाते हैं। ईश्वर-दर्शन जब तक नहीं होता, तब तक भेद-बुद्धि, भला-मन्दा-ज्ञान रहेगा ही रहेगा ही। तुम मुख से कह सकते हो कि मेरा तो पाप-पुण्य समान हो गया है, वे जैसा करवाते हैं, वैसा करता हूँ। किन्तु अन्तर् में समझते हो कि ये सब बातें ही बातें मात्र हैं। मन्द कार्य करने पर ही मन धक्-धक्

करेगा। ईश्वर-दर्शन हो जाने पर भी उनकी यदि इच्छा हो तो वे दास 'मैं' रहने देते हैं। उस अवस्था में भक्त कहता है— 'मैं दास, तुम प्रभु'। उस भक्त को ईश्वरीय वाणी, ईश्वरीय कार्य अच्छा लगता है। ईश्वर-विमुखी व्यक्ति अच्छा नहीं लगता, ईश्वर को छोड़ और कार्य अच्छा नहीं लगता। तब ही होता है। ऐसे भक्त में भी वे भेद-बुद्धि रख देते हैं।

पड़ौसी— महाशय, आप कहते हैं, ईश्वर को जानकर संसार करो। उनको क्या जाना जाता है?

(अज्ञात और अज्ञेय— The Unknown and Unknowable)

श्री रामकृष्ण— उनको इन्द्रियों द्वारा या इस मन के द्वारा नहीं जाना जाता। जिस मन में विषय वासना नहीं है, उसी शुद्ध मन के द्वारा उनको जाना जाता है।

पड़ौसी— ईश्वर को कौन जान सकता है?

श्री रामकृष्ण— ठीक कौन जानेगा? हमें जितना आवश्यक है, उतना ही होने से काफ़ी हो जाता है। हमें एक छोटा कुआँ जल का क्या प्रयोजन? एक लोटा ही होने पर बहुत हो जाता है। चीनी के पहाड़ के निकट एक चींटी गई। उसे सारा पहाड़ क्या करना? एक या दो दानों से ही लहर-पहर हो जाती है।

पड़ौसी— हमारा जो विकार है, उसका एक लोटे-जल से क्या होगा? इच्छा तो होती है कि ईश्वर को पूरी तरह से समझ लूँ।

(संसार— विकार-रोग और औषध— मामेकं शरणं व्रज)

श्री रामकृष्ण— हाँ, वह तो है। किन्तु विकार की भी औषध है।

पड़ौसी— महाशय, कौन सी औषध है?

श्री रामकृष्ण— साधुसंग, उनका नाम-गुण-गान, उनके निकट सर्वदा प्रार्थना। मैंने कहा था, 'माँ, मैं ज्ञान नहीं चाहता, यह लो अपना ज्ञान, यह लो अपना अज्ञान। माँ, मुझे अपने पादपद्मों में केवल शुद्धा भक्ति दो; और मैं कुछ भी नहीं चाहता।'

"जैसा रोग, उसकी वैसी ही औषध। गीता में उन्होंने कहा है, 'हे अर्जुन, तुम मेरी शरण लो, तुम्हें सब पापों से मैं मुक्त कर दूँगा।' उनकी शरणागत हो जाओ, वे सद्बुद्धि देंगे। वे सब भार लेंगे, तब सब प्रकार का विकार दूर हो जाएगा। इस बुद्धि से क्या उन्हें समझा जा सकता है? एक सेर लोटे में क्या चार सेर दूध समाता है? फिर वे ही न समझावें तो क्या समझ में आता है? तभी तो कहता हूँ— उनकी शरणागत हो जाओ। उनकी जैसी इच्छा हो, वे करें। वे इच्छामय हैं। मनुष्य की क्या शक्ति है?"

•

ठाकुर श्री रामकृष्ण भक्तों के संग

दशम खण्ड

श्रीयुक्त सुरेन्द्र के बाग में महोत्सव

प्रथम परिच्छेद

(भक्तों के संग ठाकुर का आनन्द)

आज ठाकुर सुरेन्द्र के बागान में आए हैं। रविवार, ज्येष्ठ मास की कृष्णा षष्ठी तिथि, 15 जून, 1884 ईसवी। ठाकुर प्रात: 9 बजे से भक्तों के संग आनन्द कर रहे हैं।

सुरेन्द्र का बाग कलकत्ता के निकटस्थ काँकुड़गाछि नामक मोहल्ले में है। निकट ही राम का बागान[1] है। इस बागान में ठाकुर ने प्रायः छह मास पूर्व शुभागमन किया था। आज सुरेन्द्र के बाग में महोत्सव है। सुबह से ही संकीर्तन आरम्भ हो गया है। कीर्तनिये 'मथुर'[2] गा रहे हैं। गोपियों का प्रेम, श्री कृष्ण-विरह में श्रीमती की शोचनीय अवस्था समस्त वर्णित हो गई। ठाकुर मुहुर्मुहुः भावाविष्ट हो रहे हैं। भक्तगण उद्यान-गृह के बीच चारों ओर कतार बनाकर खडे हुए हैं।

उद्यान-गृह में बड़े हाल में संकीर्तन हो रहा है। कमरे के फर्श पर सफ़ेद चादर बिछी हुई है और बीच-बीच में तकिये रखे हुए हैं। इस कमरे के पूर्व और पश्चिम में एक-एक कमरा है और उत्तर और दक्षिण में बरामदा है। उद्यान-गृह के सामने अर्थात् दक्षिण दिशा में एक विशेष

---

[1] अब यह योगोद्यान बना हुआ है।

[2] 'माथुर'— श्री कृष्ण की मथुरा-लीला।

पक्के घाट वाला सुन्दर सरोवर है। कमरे और सरोवर के घाट के बीच पूर्व-पश्चिम में उद्यान-पथ है। पथ के दोनों किनारों पर पुष्प-वृक्ष और क्रोटन आदि वृक्ष हैं, उद्यान-गृह के पूर्व-किनारे से उत्तर के फाटक तक और एक रास्ता गया है, लाल सुरखी का पथ। उसके भी दोनों ओर नाना प्रकार के पुष्प-वृक्ष और क्रोटन आदि वृक्ष हैं। फाटक के निकट और रास्ते के पूर्व-किनारे पर और एक पक्के बँधे घाट वाला सरोवर है। मोहल्ले वाले साधारण लोग यहाँ पर स्नानादि करते हैं और पीने का जल लेते हैं। उद्यान-गृह के पश्चिमी किनारे पर भी उद्यान-पथ है, इसी पथ के दक्षिण-पश्चिम में रन्धनशाला है। आज यहाँ पर खूब धूमधाम है, ठाकुर और भक्त-सेवा होगी। सुरेश और राम सर्वदा देख-रेख करते हैं।

उद्यान-गृह के बरामदे में भी भक्त जमा हुए हैं। कोई-कोई एकाकी वा मित्र के संग पहले कहे गए सरोवर के किनारे टहल रहे हैं। कोई-कोई पक्के घाट पर बीच-बीच में आकर विश्राम करते हैं।

संकीर्तन चल रहा है। संकीर्तन-गृह में भक्तों की भीड़ जमा हो गई है। भवनाथ, निरंजन, राखाल, सुरेन्द्र, राम, मास्टर, महिमाचरण और मणि मल्लिक इत्यादि बहुत से उपस्थित हैं। बहुत से ब्राह्म भक्त भी उपस्थित हैं।

'माथुर गान' हो रहा है। कीर्तनिये पहले गौर चन्द्रिका[1] गा रहे हैं। गौरांग ने संन्यास लिया है— कृष्ण-प्रेम में पागल हो गए हैं। उनके अदर्शन के कारण नवद्वीप के भक्त कातर होकर रो रहे हैं। वही कीर्तनिये गा रहे हैं— 'गौर एक बार चलो नदीयाय।' (गौर, एक बार नदीया में चलो।)

तत्पश्चात् श्रीमती की विरह-अवस्था-वर्णन करके गा रहे हैं। ठाकुर भावाविष्ट हैं। हठात् खड़े होकर अति करुण स्वर में कीर्तन में पद जोड़ रहे हैं— 'सखि! या तो प्राण-वल्लभ को मेरे पास ले आओ, नहीं तो मुझे वहाँ पर छोड़ आओ।' ठाकुर को श्री राधा का भाव हुआ है। बातें करते-

[1] गौर चन्द्रिका— कीर्तन के पहले गौरांग (श्री चैतन्यदेव जी) की वन्दना।

करते ही निर्वाक हो गए, देह स्पन्दनहीन, अर्धनिमीलित नेत्र— सम्पूर्ण बाह्यज्ञान शून्य ठाकुर समाधिस्थ हो गए हैं।

अनेक क्षणों के पश्चात् प्रकृतिस्थ हुए। फिर दुबारा वही करुण स्वर। कह रहे हैं, 'सखि, उनके पास ले जाकर तू मुझको खरीद ले। तुम लोगों की दासी बन जाऊँगी। तूने ही तो कृष्ण-प्रेम सिखाया था। प्राण-वल्लभ!'

कीर्तनियों का गाना चलने लगा। श्रीमती कह रही हैं— 'सखि! यमुना जी का जल लेने मैं नहीं जाऊँगी। कदम्बतले प्रिय सखा को देखा था, वहाँ जाते ही मैं विह्वल हो जाती हूँ।'

ठाकुर फिर और भावाविष्ट हो रहे हैं। दीर्घ निश्वास लेकर कातर होकर कहते हैं, 'आहा! आहा!' कीर्तन चल रहा है— श्रीमती की उक्ति—

शीतल तुम्हारे अंगों को मैं
सम्मुख की लालसा से देखती हूँ (हे)।

बीच-बीच में ठाकुर पद जोड़ रहे हैं—

(शायद तुम्हारे हो जाएँगे, मुझे एक बार दिखा दे री सखि।)
(भूषण का भूषण चला गया है और भूषणों का प्रयोजन नहीं)।
(मेरे अच्छे दिन जाकर फिर दुर्दिन आए हैं)
(दुर्दशा के दिन क्या देर नहीं होती?)

ठाकुर जोड़ रहे हैं—

(वह काल क्या आज तक नहीं हुआ)।

कीर्तनिये आखर दे रहे हैं—

(इतना काल चला गया है, वह काल क्या आज भी नहीं हुआ)।

गाना— मरिबो मरिबो सखि, निश्चय मरिबो,
(आमार) कानु हेनो गुणनिधि कारे दिये जाबो।
ना षोडाइओ राधा अंग, ना भासाइओ जले, (देखो जेनो अंग पोड़ाइयो नागो) (कृष्ण विलासेर अंग भासाइओ ना गो)
(कृष्ण विलासेर अंग जले ना डारबि, अनले ना दिबि)

मरिले तुलिया रेखो तमालेर डाले।
(बेंधे तमालेर डाले राखबि) (ताते परश होबे)
(कालो ते परश होबे) (कृष्ण कालो तमाल कालो)
(कालो बड़ो भालो बासि) (शिशु काल होइते)
(आमार कानु अनुगत तनु) (देखो येनो-कानु छाड़ा करो ना गो)।

[हे सखी, मैं निश्चय ही मरूँगी। मेरा कन्हाई गुणों की खान है, किसको देकर जाऊँगी। अरी सखी, राधा का शरीर जलाइयो मत और ना ही पानी में डालियो। यह कृष्ण के विलास का अंग है; जल में इसे मत डालना। मेरे मरने पर इसे तमाल के ऊपर उठाकर रख दियो। तमाल पर बाँध कर रखना ताकि स्पर्श होता रहे। कृष्ण काला है, तमाल भी काला है, काले से स्पर्श होता रहेगा। शिशुकाल से मुझे काला बहुत प्यारा है, मेरे कन्हाई का वैसा ही अंग है। देखना, यह मेरा शरीर कन्हाई से अलग न हो।]

श्रीमती की दशम दशा है— मूर्छित होकर गिर गई हैं।

गाना— धनि भेलो मूरछित, हरलो गेयान
(नाम करिते-करिते) (हाट कि भांगलि राई)
तखनई तो प्राणसखि मुदिलो नयान।
(धनि केन एमन होलो) (एइ जो कथा करतेछिलो)।
केहो-केहो चन्दन देय धनिर अंगे,
केहो-केहो रोउत विषाद तरंगे। (साधेर प्राण जाबे बोले)
केहो-केहो जल ढालि देय राइयेर बदने (यदि बाँचे)
(जे कृष्ण अनुरागे मरे, से कि जले बाँचे)।

[राधा बेहोश हो गई हैं। उनका ज्ञान चला गया है। नाम करते-करते यह आनन्द-हाट कैसे टूट गई? उसी समय प्राण प्यारी सखी के नयन बन्द हो गए। ये राधा क्यों ऐसे हो गई? अभी-अभी तो बातें कर रही थी। कोई-कोई राधा के अंग पर चंदन-लेप करती है, कोई-कोई दुःख में रोती है कि इतना प्यारा प्राण जा रहा है। कोई-कोई राधा के बदन पर जल डाल रही है, यदि किसी तरह बचे। जो कृष्ण-प्रेम में मरता है, वह क्या जल से बचता है?]

मूर्छित देखकर सखियाँ कृष्ण-नाम करती हैं। श्याम-नाम से उनको होश आ गया। तमाल को देखकर सोचती हैं कि शायद सम्मुख कृष्ण आ गए हैं:

श्याम नामे प्राण पेये, धनि इति उति चाय,
ना देखि से चाँदमुख कांदे उभराय।
(बोले कोइरे श्रीदाम) (तोरा जार नाम शुनाइलि कोई)
(एक बार एने देखागो)
सम्मुखे तमाल तरु देखिबार पाय।
(तखन) शेइ तमाल तरु करि निरीक्षण (बोले ओई जे चूड़ा)
(आमार कृष्णेर ओई जे चूड़ा) (चूड़ा देखा जाय)
(तमाल गाछे मयूर हेरे बोले ओई जे चूड़ा देखा जाय)।

[श्याम के नाम को सुनकर राधा जी इधर-उधर देखती हैं। कृष्ण का चन्द्रमुख न देखकर सिसकने लगती हैं। कहती हैं— ओ श्रीदाम, जिनका तूने नाम सुनाया है, वे कहाँ हैं? एक बार लाकर दिखा तो! सामने तमाल का वृक्ष देखती हैं। तब उसी तमाल का निरीक्षण करके कहती हैं— वही तो है मेरे कृष्ण का चूड़ा। तमाल वृक्ष पर मोर को देखकर कहती हैं— वही तो चूड़ा दिखाई दे रहा है।]

सखियों ने युक्ति करके मथुरा जी में दूती भेज दी। मथुरावासी एक स्त्री के साथ उन्होंने परिचय कर लिया।

गाना— एक रमणी समवयसिनी, निज परिचय पूछे।

श्रीमती की सखी-दूती कहती है— मुझे पुकारना नहीं पड़ेगा, वह अपने आप ही आ जाएँगे। दूती मथुरावासिनी के संग जहाँ पर कृष्ण हैं, वहीं जा रही है। तब फिर व्याकुल होकर रो-रोकर पुकारती है— "कहाँ पर हरि है रे, गोपीजन जीवन, प्राण वल्लभ, राधा-वल्लभ, लज्जा-निवारण हरि? एक बार दर्शन दो। मैंने बड़े गर्व से इन्हें कहा है कि तुम अपने आप दर्शन दोगे।

मथुरा वासिनी, हँसती हुई कहती फिरती है—

हे गोपकुँवारी (हाय रे) तू फिर कैसे जाएगी
ऐसे कंगालिनी के वेश में?
सप्तम द्वार के पार राजा बैठा है, वहाँ तू नारी कैसे जाएगी?
(तेरा साहस देख मैं लाज में मर रही हूँ,
बोलो तुम कैसे जाओगी?)

हा-हा नागर गोपीजन-जीवन
(तुम कहाँ हो? दर्शन देकर दासी के प्राण रखो।)
(कहाँ हो गोपीजन-जीवन,प्राण-वल्लभ!)
(हे मथुरानाथ, दर्शन देकर दासी के मन-प्राण रखो)।

(हरि, हा! हा! राधावल्लभ!)
(कहाँ पर हो हे हृदयनाथ! लज्जानिवारण! हरि, हे हरि!)
(दर्शन देकर दासी का मान रखो हरि)
हा! हा! नागर गोपीजन-जीवनधन!

दूती ऊँचे स्वर में पुकारती है—

कहाँ पर हो गोपीजन-जीवन! प्राणवल्लभ!

यह सुनकर ठाकुर समाधिस्थ हो गए। कीर्तन के अन्त में कीर्तनिये उच्च संकीर्तन करते हैं। प्रभु फिर खड़े हो गए। समाधिस्थ! कुछ होश पाकर अस्फुट स्वर में कहते हैं 'किटन्-किटन्' (कृष्ण-कृष्ण)। भाव में निमग्न हैं। नाम सम्पूर्ण उच्चारण नहीं हो रहा।

राधाकृष्ण का मिलन हो गया। कीर्तनिये उसी भाव का गाना गा रहे हैं। ठाकुर पद जोड़ रहे हैं—

धनि दांडालो रे। अंग हेलाइये धनि दांडालो रे।
श्यामेर बांये धनि, दांडालो रे। तमाल बेड़िबेड़ि धनि दांडालो रे।

[राधा खड़ी हो गई हैं। अंग फेर कर धनि खड़ी हो गईं। श्याम के बाएँ राधा खड़ी हो गई हैं रे। तमाल घेरती-घेरती राधा खड़ी हो गई हैं रे।

अब नाम-संकीर्तन होने लगा। वे खोल-करताल के संग गाने लगे, 'राधे गोबिन्द जय! राधे गोबिन्द जय!' भक्तगण सब ही उन्मत्त हो गए। ठाकुर नृत्य करते हैं। भक्त भी उन्हें घेर कर आनन्द में नाचते हैं। मुख में— 'राधे गोबिन्द जय, राधे गोबिन्द जय।'

द्वितीय परिच्छेद

(सरलता और ईश्वर लाभ— ईश्वर की सेवा और संसार की सेवा)

कीर्तन के बाद ठाकुर भक्तों के संग थोड़ा बैठे हैं। इस समय निरंजन ने आकर भूमिष्ठ होकर प्रणाम किया। ठाकुर उन्हें देखते ही खड़े हो गए। आनन्द से विस्फारित नेत्रों से मुस्कुराते हुए मुख से बोल उठे— "तू आ गया?"

(मास्टर के प्रति)— देखो, यह छोकरा बड़ा सरल है। सरलता पूर्वजन्म में बहुत तपस्या बिना किए नहीं होती। कपटता, पटवारीपन, इनके रहते ईश्वर को नहीं पाया जाता।

"देखते हो ना, भगवान जहाँ पर अवतार हुए हैं, वहाँ पर ही सरलता है। दशरथ कितने सरल हैं! नन्द, श्री कृष्ण के पिता कितने सरल हैं! लोकोक्ति है— आह, कैसा स्वभाव है, ठीक जैसे नन्द घोष।"

भक्तगण सरल हैं। क्या ठाकुर इंगित कर रहे हैं कि अब फिर भगवान अवतीर्ण हुए हैं?

श्री रामकृष्ण *(निरंजन के प्रति)*— देख, तेरे मुख पर जैसे एक काला आवरण पड़ गया है। तू ऑफ़िस में काम करता है न, जभी पड़ा है। ऑफ़िस का हिसाब आदि करना पड़ता है, और भी कितनी तरह के कार्य हैं, सर्वदा चिन्ता रहती है।

"गृही लोग, जैसे नौकरी करते हैं, तू भी तो नौकरी करता है। तथापि थोड़ा-सा अन्तर है। तूने माँ के लिए नौकरी स्वीकार की है।

"माँ गुरुजन हैं, ब्रह्ममयीस्वरूपा! यदि स्त्री-पुत्र के लिए नौकरी करता, तो फिर मैं कहता— धिक्कार, शत धिक्कार! एक सौ छिः!"

(मणिमल्लिक के प्रति)— "देख, छोकरा भारी सरल है। तब भी आजकल एकाध मिथ्या बात कहता है, यही जो दोष है। उस दिन बोल गया था कि आएगा किन्तु फिर आया नहीं। (निरंजन के प्रति) तभी राखाल बोला— तू एंड़ेदेय में आकर भी मिलता नहीं क्यों?"

निरंजन— मैं एंड़ेदेय में अब दो दिन हुए आया था।

श्री रामकृष्ण *(निरंजन के प्रति)*— ये हैडमास्टर हैं। तुझे मिलने के लिए गए थे। मैंने भेजा था। *(मास्टर के प्रति)* तुमने उस दिन बाबू राम को मेरे पास भेजा था?

तृतीय परिच्छेद

(श्री राधाकृष्ण और गोपी-प्रेम)

ठाकुर पश्चिम के कमरे में दो-चार भक्तों के साथ कथा-वार्त्ता कर रहे हैं। उसी कमरे में कई मेज़-कुर्सियाँ इकट्ठी रखी थीं। ठाकुर टेबल पर भार देकर अर्धेक खड़े हैं; अर्धेक बैठे हैं।

श्री रामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— आहा, गोपियों का कैसा अनुराग! तमाल देखकर एकदम से प्रेमोन्माद हो जाता। श्रीमती का ऐसा विरहानल है कि चक्षुओं का जल आग के तेज से सूख जाता— जल से वाष्प बनकर उड़ जाता। कभी-कभी उनके भाव का किसी को पता भी नहीं लग पाता था। बड़े सरोवर में हाथी उतरने पर किसी को पता भी नहीं लगता।

मास्टर— जी हाँ, गौरांग का भी उसी प्रकार हुआ था। वन को देखकर वृन्दावन समझा था, समुद्र देखकर यमुना समझा था।

श्री रामकृष्ण— आहा! उसी प्रेम का यदि एक बिन्दु भी किसी में हो जाए! कैसा अनुराग! कैसा प्यार! केवल सोलह आना अनुराग नहीं, पाँच चव्वनी पाँच आना। इसी का नाम है प्रेमोन्माद। बात तो यही है कि उनको प्यार करना होगा। उनके लिए व्याकुल होना होगा। तब फिर तुम जिस पथ पर ही रहो। साकार पर ही विश्वास करो अथवा निराकार पर ही विश्वास करो। भगवान मनुष्य बन कर अवतार लेते हैं, इस बात पर विश्वास करो चाहे न करो। उन पर प्यार रहने से ही हुआ। तब वे जो कैसे हैं, निज ही बता देंगे।

"यदि पागल ही होना है तो फिर संसार की वस्तु लेकर क्यों पागल होना? यदि पागल होना ही है, तो फिर ईश्वर के लिए पागल हो जाओ।"

चतुर्थ परिच्छेद

(भवनाथ, महिमा आदि भक्तों के संग हरि-कथा-प्रसंग)

ठाकुर फिर हाल कमरे में आ गए। उनके बैठने के आसन के निकट एक तकिया रख दिया गया। ठाकुर ने बैठते समय 'ॐ तत् सत्'— यह मन्त्र उच्चारण करके तकिये को स्पर्श किया। विषयी जन इस बागान में आते-जाते रहते हैं और सब इसी तकिये का व्यवहार करते हैं, इसीलिए शायद ठाकुर ने वह मन्त्र उच्चारण करके उस तकिये को शुद्ध कर लिया है। भवनाथ, मास्टर आदि निकट बैठ गए। समय बहुत हो गया, अभी तक भी आहार आदि का आयोजन नहीं हुआ। ठाकुर का बालक स्वभाव है। बोले, "क्यों जी, अभी तक भी नहीं दे रहे? नरेन्द्र कहाँ है?"

एक भक्त *(ठाकुर के प्रति सहास्य)*— महाशय! राम बाबू अध्यक्ष हैं। वे ही सब कुछ देख रहे हैं। *(सब का हास्य)*

श्री रामकृष्ण *(हँसते-हँसते)*— राम अध्यक्ष है। तभी तो ऐसा हुआ।

एक भक्त— जी, राम बाबू जहाँ पर अध्यक्ष होते हैं, वहाँ पर इसी प्रकार होता है। *(सब का हास्य)*

श्री रामकृष्ण *(भक्तों के प्रति)*— सुरेन्द्र कहाँ है?

"आहा! सुरेन्द्र का स्वभाव तो सुन्दर हो गया है। बड़ा स्पष्ट वक्ता है, किसी से डर कर बातें नहीं करता। और देखो, खूब मुक्त हस्त है। कोई उसके पास सहायता के लिए जाता है, तो खाली हाथ नहीं लौटता।

(मास्टर के प्रति)— तुम भगवान दास के पास गए थे, कैसा देखा?

मास्टर— जी कालना में गया था। भगवान दास बहुत बूढ़े हो गए हैं। रात को मिला था, काँथे के ऊपर लेटे हुए थे। प्रसाद लाकर एक व्यक्ति खिलाने लगा। ऊँचा बोलने पर सुनते हैं। आपका नाम सुनकर कहने लगे, तुम लोगों को अब और क्या चिन्ता? उसी कमरे में नामब्रह्म की पूजा होती है।

भवनाथ *(मास्टर के प्रति)*— आप काफ़ी दिन से दक्षिणेश्वर नहीं गए। ये मुझसे दक्षिणेश्वर में आपके विषय में पूछ रहे थे और कहा था कि मास्टर को अरुचि हो गई है।

यह कहकर भवनाथ हँसने लगे। ठाकुर दोनों का समस्त कथोपकथन सुन रहे थे। मास्टर के प्रति सस्नेह दृष्टि करके कहते हैं— "हाँ जी, हाँ! तुम इतने दिन से क्यों नहीं गए, ज़रा बताओ तो?' मास्टर 'तो-तो' करने लगे।

अब महिमाचरण आ गए। काशीपुरवासी महिमाचरण ठाकुर की खूब श्रद्धा-भक्ति करते हैं और सर्वदा दक्षिणेश्वर जाते हैं। ब्राह्मण-सन्तान हैं, कुछ पैतृक विषय है। स्वाधीन भाव में रहते हैं, किसी की भी नौकरी नहीं करते। सर्वदा शास्त्र-आलोचना और ईश्वर-चिन्तन करते हैं, और कुछ पाण्डित्य भी है। अंग्रेज़ी, संस्कृत के कई ग्रन्थ पढ़े हुए हैं।

श्री रामकृष्ण *(सहास्य, महिमा के प्रति)*— अरे यह क्या? यहाँ पर जहाज़ आ उपस्थित हुआ! *(सब का हास्य)*। ऐसी जगह तो डिंगी-टिंगी

(छोटी नाव) ही आ सकती है, यह तो एकदम जहाज़ है। *(सब का हास्य)*। फिर भी एक बात है, यह है आषाढ़ मास। *(सब का हास्य)*।

महिमाचरण के साथ बहुत-सी बातें होती हैं।

श्री रामकृष्ण *(महिमा के प्रति)*— अच्छा, लोगों को खिलाना भी तो एक प्रकार से उनकी ही सेवा करना है न, क्या कहते हो? सब जीवों के भीतर वे अग्निरूप में रहते हैं। खिलाना अर्थात् उनको आहुति देना।[1]

"किन्तु फिर भी असत् व्यक्ति को नहीं खिलाना चाहिए। ऐसे व्यक्ति, जिन्होंने व्यभिचार आदि महापातक किया है, घोर विषयासक्त व्यक्ति हैं, ये जहाँ बैठकर खाते हैं, उस स्थान की सात हाथ मिट्टी अपवित्र हो जाती है। हृदय ने सिओड़ में एक बार लोगों को खिलाया था। उनमें बहुत-ही खराब जन थे। मैंने कहा, 'देख हृदे, इन्हें तू खिलाता है, तो ले मैं तो तेरे घर से चला।' *(महिमा के प्रति)*— अच्छा, मैंने सुना है कि तुम लोगों को पहले खूब खिलाया करते थे। अब शायद खरचा बढ़ गया है?" *(सब का हास्य)*।

पंचम परिच्छेद

(ब्राह्म भक्तों के संग)

अब पत्तलें पड़ रही हैं, दक्षिण के बरामदे में। ठाकुर महिमाचरण से कहते हैं— "आप एक बार जाकर देखो कि वे सब लोग क्या कर रहे हैं। और आपको तो मैं कह नहीं सकता कि थोड़ा-बहुत परोसने का काम ही करो।"

महिमाचरण कहते हैं, "ले आएँ, फिर देखा जाएगा।"

यह कह कर 'हूँ-हूँ' करके (थके हुए-से) दालान की ओर तनिक गए, किन्तु कुछ क्षण में ही लौट आए।

---

[1] ॐ ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना ॥ — गीता 4 : 24

ठाकुर भक्तों के संग में परमानन्द से आहार करने बैठ गए। आहारान्ते कमरे में आकर विश्राम कर रहे हैं। भक्तगण दक्षिण के तालाब के पक्के घाट पर आचमन करके पान खाते-खाते फिर ठाकुर के निकट जमा हो गए। सब ने ही आसन ग्रहण किया। दो बजे के पश्चात् प्रताप आ गए। वे ब्राह्म भक्त हैं। आकर ठाकुर को अभिवादन किया। ठाकुर ने भी सिर झुका कर अभिवादन किया। प्रताप के संग बहुत-सी बातें हो रही हैं—

प्रताप— महाशय, मैं पहाड़ पर गया था। (दार्जिलिंग)।

श्री रामकृष्ण— किन्तु तुम्हारा शरीर तो वैसा ठीक नहीं हुआ। तुम क्या बीमार हो गए हो?

प्रताप— जी, उन्हें जो रोग था, मुझे भी वही रोग हो गया है।

केशव को भी वही रोग था। केशव की और-और बातें होने लगीं। प्रताप कहने लगे— "केशव का वैराग्य बाल्यकाल से ही दिखाई देने लगा था। उन्हें हँसी-खुशी मनाते प्रायः देखा ही नहीं जाता था। हिन्दु कॉलेज में पढ़ते थे, उसी समय सत्येन्द्र के साथ उनकी बहुत मित्रता हो गई थी और उसी सूत्र में श्रीयुक्त देवेन्द्रनाथ ठाकुर के साथ आलाप हुआ। केशव के दोनों ही थे; योग भी था, भक्ति भी थी। समय-समय पर भक्ति का इतना उच्छ्वास होता था कि बीच-बीच में मूर्छा आ जाती थी। गृहस्थ में धर्म लाना उनके जीवन का प्रधान उद्देश्य था।

(लोकमान्य और अहंकार— 'मैं कर्ता', 'मैं गुरु '— दर्शन का लक्षण)

एक महाराष्ट्रीय स्त्री के सम्बन्ध में बातें होने लगीं।

प्रताप— इस प्रदेश की कोई-कोई नारी विलायत गई है। एक महाराष्ट्रीय स्त्री खूब पण्डित थी। विलायत गई थी। वह किन्तु क्रिश्चियन हो गई है। महाशय, क्या आपने उनका नाम सुना है?

श्री रामकृष्ण— नहीं। किन्तु तुम्हारे मुख से जो सुना है, उससे लगता है कि उसे लोक-प्रसिद्धि की इच्छा है। ऐसा अहंकार ठीक नहीं। मैं करता हूँ, यह अज्ञान से होता है। हे ईश्वर, तुम करते हो; यही है ज्ञान। ईश्वर कर्त्ता और सब अकर्त्ता।

(ईश्वर ही कर्त्ता और सब अकर्त्ता)

"मैं-मैं करने पर जो दुर्गति होती है, बछड़ों की अवस्था का विचार करने से पता लग सकता है। बछड़ा, हाम्मा-हाम्मा (मैं-मैं) करता है। उसकी दुर्गति देखो। शायद सुबह से सन्ध्या तक हल ही चलाना पड़ता है, चाहे धूप हो चाहे वृष्टि। या फिर कसाई काट डालता है। लोग माँस खाएँगे। खाल का चमड़ा बनेगा। उसी चमड़े से जूता आदि तैयार होगा। लोग उसके ऊपर पाँव रखकर चलेंगे। उससे भी दुर्गति का अन्त नहीं होता। चमड़े से ढोल तैयार होता है। उस ढोल पर लकड़ी से अनवरत चमड़े के ऊपर पिटाई होती है। अन्त में पेट की आँतों से ताँत तैयार करते हैं। जब धुनिये की ताँत तैयार हो जाती है, तब धुनने के समय तुहुँ-तुहुँ कहता है, फिर हाम्मा-हाम्मा नहीं कहता। 'तुहुँ-तुहुँ' कहने से ही तब फिर निस्तार, तब ही उसकी मुक्ति। कर्मक्षेत्र में फिर और आना नहीं पड़ता।"

"जीव भी जब कहता है, 'हे ईश्वर, मैं कर्ता नहीं, तुम्ही कर्ता-धर्ता हो'; 'मैं यन्त्र हूँ, तुम यन्त्री हो' तभी जीव की संसार-यंत्रणा शेष हो जाती है। तब ही जीव की मुक्ति होती है और इस कर्मक्षेत्र में आना नहीं पड़ता।"

एक भक्त— जीव का अहंकार कैसे जाए?

श्री रामकृष्ण— ईश्वर का दर्शन बिना किए अहंकार नहीं जाता। यदि किसी का अहंकार चला गया है, तो उसे अवश्य ईश्वर-दर्शन हो गया है।

एक भक्त— महाशय,कैसे पता लगे कि ईश्वर-दर्शन हो गया है?

श्री रामकृष्ण— ईश्वर-दर्शन के लक्षण हैं। श्रीमद्भागवत में है— जिस व्यक्ति को ईश्वर-दर्शन हुआ है, उसके चार लक्षण होते हैं— (1) बालकवत् (2) पिशाचवत् (3) जड़वत् (4) उन्मादवत्। जिसे ईश्वर-दर्शन हो गया है, उसका बालक जैसा स्वभाव हो जाता है, किसी भी गुण का बन्धन नहीं— त्रिगुणातीत। और फिर शुचि, अशुचि उसके लिए दोनों ही समान होते है; तभी पिशाचवत्। और फिर पागलवत्; कभी हँसता है, कभी रोता है, कभी बाबूवत् सजता है, और तनिक बाद नंगा, बगल में धोती दबाकर घूमता है उन्मादवत्। और फिर कभी तो ठूँठवत् चुप किर बैठा रहता है, जड़वत्।"

एक भक्त— ईश्वर-दर्शन के पश्चात् क्या अहंकार बिल्कुल चला जाता है?

श्री रामकृष्ण— कभी-कभी वे अहंकार को एकदम पोंछ देते हैं— जैसे समाधि-अवस्था में। और फिर प्रायः अहंकार को तनिक-सा रहने देते हैं। किन्तु उस अहंकार में दोष नहीं। जैसे बालक का अहंकार। पाँच वर्ष का बालक 'मैं-मैं' करता है, किन्तु किसी का अनिष्ट करना नहीं जानता।

"पारस मणि छूने से लोहा सोना हो जाता है। लोहे की तलवार सोने की तलवार हो जाती है। तलवार का आकार रहता है, किसी का अनिष्ट नहीं करती। सोने की तलवार से मारा-काटा नहीं जाता।"

षष्ठ परिच्छेद

(विलायत में काञ्चन की पूजा— जीवन का उद्देश्य कर्म या ईश्वर-लाभ?)

श्री रामकृष्ण *(प्रताप के प्रति)*— तुम विलायत गए थे, क्या-क्या देखा, सब बताओ।

प्रताप— विलायत में लोग जिसे आप काञ्चन कहते हैं, उसकी ही पूजा करते हैं। फिर भी कोई-कोई भले व्यक्ति— अनासक्त व्यक्ति हैं। किन्तु साधारणतः शुरु से आखिर तक रजोगुण का ही काण्ड है। अमेरिका में भी वही देखा।

(विलायत और कर्मयोग— कलियुग में कर्मयोग या भक्तियोग)

श्री रामकृष्ण *(प्रताप से)*— विषय-कर्म में जो आसक्ति केवल विलायत ही में है, ऐसा नहीं है। सब जगह ही है। फिर भी क्या है, जानते हो? कर्मकाण्ड आदिकाण्ड होता है। सत्त्वगुण (भक्ति, विवेक, वैराग्य, दया इत्यादि) के बिना हुए ईश्वर को नहीं पाया जाता। रजोगुण में काम का आडम्बर होता है। इसीलिए रजोगुण से तमोगुण आ जाता है। अधिक काम में जुटना ईश्वर को भुला देता है और कामिनी-काञ्चन में आसक्ति बढ़ती जाती है।

"फिर भी कर्म एकदम नहीं छोड़ा जाता। तुम्हारी प्रकृति तुम से कर्म करवाएगी। उसकी तुम चाहे इच्छा करो या न करो। तभी तो कहा है— अनासक्त होकर कर्म करो। अनासक्त होकर कर्म करना अर्थात् कर्मफल की आकांक्षा न करना। जैसे पूजा-जप-तप करते हो किन्तु नाम-यश के लिए नहीं, अथवा पुण्य कमाने के लिए नहीं।

"इस प्रकार अनासक्त होकर कर्म करने का नाम है कर्मयोग। है बहुत कठिन। एक तो कलियुग है, सहज ही में आसक्ति आ जाती है। पता भी नहीं लगने देती। शायद पूजा-महोत्सव किया, या बहुत से गरीबों, कंगालों की सेवा की— मन में सोचा कि अनासक्त होकर कर रहा हूँ; किन्तु किधर से नाम-यश की इच्छा हो जाती है, पता भी नहीं लगता। इसलिए बिल्कुल अनासक्त होना केवल उनके लिए सम्भव है जिन्हें ईश्वर-दर्शन हो गया है।"

एक भक्त— जिन्होंने ईश्वर को नहीं पाया है, उनके लिए क्या उपाय है? वे क्या सब विषय-कर्म छोड़ दें?

श्री रामकृष्ण— कलि में भक्तियोग। नारदीय भक्ति। ईश्वर का नाम-गुण-गान करना और व्याकुल होकर प्रार्थना करना— 'हे ईश्वर, मुझे ज्ञान दो, भक्ति दो, दर्शन दो।' कर्मयोग बड़ा कठिन है। इसलिए प्रार्थना करनी चाहिए— 'हे ईश्वर, मेरा कर्म कम कर दो। और जितना कर्म रखा है, उसको भी जैसे तुम्हारी कृपा से अनासक्त होकर कर सकूँ और फिर जैसे अधिक कर्मों में जड़ित होने की इच्छा न हो।'

"कर्म छूटने वाला नहीं है। मैं सोचता हूँ, 'मैं ध्यान कर रहा हूँ'— यह भी कर्म है। भक्ति-लाभ हो जाने पर विषय-कर्म अपने आप ही कम हो जाते हैं; और फिर अच्छे भी नहीं लगते। मिश्री का शरबत पीने पर राब का शरबत कौन पीना चाहता है?"

एक भक्त— विलायत के लोग केवल 'कर्म करो, कर्म करो', कहते हैं। कर्म तो फिर जीवन का उद्देश्य नहीं?

श्री रामकृष्ण— जीवन का उद्देश्य है ईश्वर-लाभ। कर्म तो आदिकाण्ड है, जीवन का उद्देश्य नहीं हो सकता। फिर निष्काम कर्म भी एक उपाय ही है, उद्देश्य नहीं।

"शम्भु ने कहा, अब यही आशीर्वाद करो कि जो पैसा है, वह सद्व्यय में जाए, अस्पताल-डिस्पैन्सरी बनाने में, सड़क-मार्ग, कुएँ बनाने में। मैंने कहा, ये समस्त कर्म अनासक्त होकर कर सकना तो अच्छा है, किन्तु यह है बड़ा ही कठिन और जैसे भी हो, यह स्मरण रहे कि तुम्हारे मानव-जन्म का उद्देश्य है— ईश्वर-लाभ, हस्पताल-डिस्पैन्सरी बनाना नहीं। कल्पना करो ईश्वर तुम्हारे सामने आए हैं। आकर कहते हैं, तुम वर माँगो। तो फिर तुम क्या यही कहोगे कि मुझे कुछ हस्पताल-डिस्पैन्सरी बनवा दो, अथवा कहोगे, हे भगवान, जैसे भी हो, आपके पादपद्मों में शुद्धा भक्ति हो जाए, और जैसे आपको सर्वदा देखता रहूँ। हस्पताल-डिस्पैन्सरी आदि सब कुछ अनित्य वस्तु हैं। ईश्वर वस्तु और सब अवस्तु। उनके प्राप्त होने पर बोध होता है कि वे ही कर्ता हैं, हम अकर्ता। तब फिर क्यों उन्हें छोड़कर नाना कर्म बढ़ाकर मरूँ। उनकी प्राप्ति हो जाने पर, उनकी इच्छा से अनेक ही

हस्पताल-डिस्पैन्सरियाँ हो सकती हैं। इसीलिए कहता हूँ कर्म आदिकाण्ड है; कर्म जीवन का उद्देश्य नहीं। साधन करके और भी आगे बढ़ो। साधन करते-करते और भी आगे बढ़ने पर अन्त में जान सकोगे कि ईश्वर ही वस्तु है और सब अवस्तु; ईश्वर-लाभ ही जीवन का उद्देश्य है।

"एक लकड़हारा वन में लकड़ी काटने गया। हठात् एक ब्रह्मचारी के संग मेल हो गया। ब्रह्मचारी ने कहा, 'अरे भाई, आगे बढ़ो।' लकड़हारा घर लौट कर सोचने लगा कि ब्रह्मचारी ने आगे बढ़ने को क्यों कहा?

"इसी प्रकार कुछ दिन व्यतीत हो गए। एक दिन बैठे-बैठे उसे ब्रह्मचारी की बात स्मरण हो आई। तब वह मन-ही-मन में कहने लगा— आज मैं और आगे जाऊँगा। वन में आगे जाकर देखता है कि चन्दन के असंख्य वृक्ष हैं। तब आनन्द से भरपूर होकर वह चन्दन की लकड़ी ले आया और बाज़ार में बेचकर बहुत अमीर आदमी हो गया।

"इसी प्रकार कुछ दिन चले गए। एक दिन फिर ब्रह्मचारी की बात स्मरण हो आई, 'आगे बढ़ो'। तब फिर वन में आगे जाकर देखता है कि नदी के किनारे चाँदी की खान है। यह बात तो उसने स्वप्न में भी नहीं सोची थी। अब वह खान से केवल चाँदी ही ले जाकर बेचने लगा। इतना रुपया हो गया कि बहुत धनवान हो गया।

"फिर और कुछ दिन बीत गए। एक दिन बैठा-बैठा सोचने लगा, ब्रह्मचारी ने तो चाँदी की खान तक ही जाने को नहीं कहा था। उसने तो मुझे आगे जाने के लिए कहा था। अब नदी के पार जाकर देखता है— सोने की खान। तब वह सोचने लगा, 'अरे वाह, तभी तो ब्रह्मचारी ने कहा था, 'आगे बढ़ो'।

"फिर और कुछ दिनों पश्चात् आगे देखता है, ढेर-के-ढेर हीरे-मणियाँ पड़े हैं। तब उसका कुबेर की भाँति ऐश्वर्य हो गया।

"तभी तो कहता हूँ कि चाहे जो कुछ भी करो, आगे जाने पर और भी बढ़िया वस्तु मिलेगी। तनिक सी जय करके उद्दीपन हुआ है, तो यह

न समझो कि जो होना था, वह तो हो गया है। किन्तु कर्म जीवन का उद्देश्य नहीं है। और 'आगे बढ़ो', कर्म निष्काम भाव से कर सकोगे। तो भी, निष्काम कर्म बड़ा कठिन है। इसीलिए भक्ति करके व्याकुल होकर उनसे प्रार्थना करो, 'हे ईश्वर, अपने पादपद्मों में भक्ति दो, और कर्म कम कर दो; और जितना रखोगे, उतने कर्म को भी जैसे निष्काम होकर कर सकूँ।'

"और आगे जाने पर ईश्वर को पा लोगे। उनका दर्शन होगा। क्रमशः उनके संग परिचय होगा, बातचीत होगी।"

केशव के स्वर्ग-लाभ के पश्चात् मन्दिर की वेदी को लेकर जो विवाद हुआ था, अब उसकी बात उठी।

श्री रामकृष्ण *(प्रताप के प्रति)*— सुना है कि वेदी को लेकर तुम्हारे साथ झगड़ा हुआ है। जिन्होंने झगड़ा किया है, वे तो सब हरे, पेला, पंचा (छोटे आदमी) हैं! *(सब का हास्य)*।

(भक्तों के प्रति) देखो, प्रताप, अमृत, इत्यादि— ये सब शंख तो बजाते हैं। तथा और अन्य जो आप सुनते हैं, उनमें कोई ध्वनि नहीं है। *(सब का हास्य)*।

प्रताप— महाशय, बजने की बात ही यदि कहते हैं तो आम की गुठली भी तो बजती है।

सप्तम परिच्छेद

(ब्राह्मसमाज और श्री रामकृष्ण— प्रताप को शिक्षा)

श्री रामकृष्ण *(प्रताप के प्रति)*— देखो, तुम्हारे ब्राह्मसमाज में लैक्चर सुनने पर लोगों का भाव अच्छी तरह पता लग जाता है। एक हरि-सभा में मुझे ले गए थे। आचार्य, एक पण्डित बने थे। उनका नाम था सामाध्यायी। उन्होंने कहा कि ईश्वर नीरस हैं, हमें प्रेम-भक्ति द्वारा

उन्हें सरस बनाकर लेना होगा। यह बात सुनकर मैं तो अवाक्। तब एक कहानी याद आ गई। एक लड़के ने कहा था, मेरे मामा के घर में बहुत से घोड़े हैं, एक गौशाला भर घोड़े। गौशाला में तो कभी भी घोड़े नहीं रह सकते, गायें रहना सम्भव है। इस प्रकार की असम्बद्ध बातें सुनने से लोग क्या सोचते हैं? यही तो कि घोड़ा-वोड़ा कुछ भी नहीं है। *(सब का हास्य)।*

एक भक्त— घोड़ा तो है ही नहीं। गाय भी नहीं है। *(सब का हास्य)।*

श्री रामकृष्ण— देखो ना, जो रसस्वरूप हैं, उन्हें ही कहता है 'नीरस'! इससे यही पता लगता है कि ईश्वर क्या वस्तु है, यह कभी भी अनुभव नहीं किया है।

('मैं कर्त्ता', 'मेरा घर' अज्ञान— जीवन का उद्देश्य 'डुबकी लगाओ')

श्री रामकृष्ण *(प्रताप के प्रति)*— देखो, तुम्हें कहता हूँ, तुम लिखे-पढ़े, बुद्धिमान, गम्भीरात्मा हो। केशव और तुम थे, जैसे गौर-निताई दो भाई। लैक्चर देना, तर्क, झगड़ा, वाद-विसम्वाद (मत-विचार) इत्यादि तो बहुत हो लिया। और फिर अब यह समस्त क्या तुम्हें अच्छा लगता है? अब तो समस्त मन को समेट कर ईश्वर की ओर लगाओ। ईश्वर में अब छलाँग लगा दो।

प्रताप— जी हाँ, इसमें सन्देह नहीं है, यही करना ही कर्त्तव्य है। फिर भी यह समस्त ऐसे करना, जिससे उनका नाम रहे।

श्री रामकृष्ण *(हँसकर)*— तुम कहते तो हो, उनका नाम रखने के लिए सब कर रहे हो, किन्तु कुछ दिनों पश्चात् यह भाव भी नहीं रहेगा। एक कहानी सुनो :

"एक व्यक्ति का पहाड़ के ऊपर घर था— फूस का घर। बड़ी मेहनत से बनाया था। कुछ दिन पश्चात् बड़ा भारी तूफ़ान आया। फूस

का घर हिलने लगा। तब वह व्यक्ति घर की रक्षा के लिए बहुत चिन्तित हो गया। कहने लगा, हे पवन देव, देखो, घर को न तोड़ो बाबा! पवन देव किन्तु सुनते ही नहीं। घर मड़-मड़ करने लगा। तब उस व्यक्ति के मन में एक विचार आया, उसे याद आया कि हनुमान जी पवन के पुत्र हैं। ज्योंहि याद आया त्योंहि घबरा कर बोल उठा— बाबा, घर मत तोड़ो, 'हनुमान का घर' है। दुहाई है तुम्हारी! घर फिर भी मड़-मड़ करता है। उसकी बात फिर कौन सुने? कई बार 'हनुमान का घर', 'हनुमान का घर' कहने पर जब देखता है कि कुछ भी नहीं हुआ; तब कहने लगा, 'बाबा, लक्ष्मण का घर है, लक्ष्मण का घर'। इससे भी कुछ नहीं हुआ। तब कहने लगा, बाबा, 'राम का घर, 'राम का घर'। देखो बाबा, न तोड़ो, तुम्हारी दुहाई है!' उससे भी कुछ नहीं हुआ। घर मड़-मड़ करते हुए टूटना आरम्भ हो गया। तब प्राण बचाना होगा, वह व्यक्ति घर से बाहर आते समय कहता है— 'जा साले का घर।'

(प्रताप के प्रति)— "केशव के नाम की तुम्हें रक्षा नहीं करनी होगी। जो कुछ हुआ है, समझोगे— ईश्वर की इच्छा से हुआ है! उनकी इच्छा से हुआ और फिर उनकी इच्छा से ही जा रहा है। तुम क्या करोगे? तुम्हारा तो अब कर्त्तव्य है कि ईश्वर में समस्त मन दे दो— उनके प्रेम-सागर में छलाँग लगा दो।"

यह बात कह कर ठाकुर उसी अतुलनीय कण्ठ से मधुर गाना गाने लगे—

डुब् डुब् डुब् रूप सागरे आमार मन।
तलातल पाताल खुँजले पाबि रे प्रेम रत्न धन।
खुंज खुंज खुंज खुंजले पाबि हृदय माझे वृन्दाबन।
दीप दीप दीप ज्ञानेर बाति, ज्वलबे हृदे अनुक्षण॥
डयांग डयांग डयांग डयांगाय डिंगे चालाय आबार से कौन जन।
कुबीर बोले शोन् शोन् शोन् भाबो गुरुर श्रीचरण॥

[अरे मेरे मन, प्रभु के रूप-सागर में डूब जा। खूब तल में जाकर पाताल को खोज, तुझे प्रेम-धन मिलेगा। खोजते-खोजते तुझे हृदय

में ही वृन्दावन मिलेगा। ज्ञान की बत्ती एक बार जला तो सही, वह फिर तेरे हृदय में हर क्षण जलती ही रहेगी। चला तो नाव को, एक बार चला तो सही। पर, भला ऐसे फिर कौन चला सकता है? कुबीर कहते हैं, सुन ले मेरे भाई, तुम श्री गुरु हरि के चरणों का ध्यान करो।]

(प्रताप के प्रति)— गाना सुना? लैक्चर, झगड़ा इत्यादि तो बहुत हो चुका, अब डुबकी मारो। और इस समुद्र में डुबकी देने पर मरने का भय नहीं है। यह तो अमृत का सागर है। यह मत सोचो कि इससे मनुष्य का दिमाग खराब हो जाता है। यह भी मत सोचो कि अधिक ईश्वर-ईश्वर करने से मनुष्य पागल हो जाता है, मैंने नरेन्द्र से कहा था।

प्रताप— महाशय, नरेन्द्र कौन?

श्री रामकृष्ण— वह एक लड़का है। मैंने नरेन्द्र से कहा था, 'देखो, ईश्वर रस का सागर है। तेरी इच्छा नहीं होती कि इस रस के सागर में डुबकी लगा दूँ? अच्छा, कल्पना कर कि एक कसोरी रस है, तू मक्खी है, तू कहाँ पर बैठ कर रस पिएगा?' नरेन्द्र बोला, 'मैं कसोरी के किनारे पर बैठकर मुख बढ़ाकर पिऊँगा।' मैंने पूछा— 'क्यों? किनारे पर क्यों बैठेगा?' उसने कहा— 'अधिक दूर जाने से डूब जाऊँगा, और प्राण खो बैठूँगा।' तब मैं बोला, 'बाबा! सच्चिदानन्द-सागर में वैसा भय नहीं। यह तो अमृत का सागर है, इस सागर में डुबकी लगाने से मृत्यु नहीं होती। मनुष्य अमर हो जाता है। ईश्वर के लिए पागल होने पर मनुष्य का दिमाग खराब नहीं होता।'

(भक्तों के प्रति)— 'मैं' और 'मेरा' इसी का नाम ही तो है अज्ञान। 'रासमणि ने कालीमन्दिर बनवाया है', यह बात ही लोग कहते हैं। कोई नहीं कहता कि ईश्वर ने बनवाया है। 'ब्राह्मसमाज अमुक् मनुष्य बना गया है', यह बात ही कहते हैं। यह बात कोई नहीं कहता कि ईश्वर की इच्छा से ही यह बना है। मैं करता हूँ, इसी का नाम तो है अज्ञान। हे ईश्वर, तुम कर्त्ता और मैं अकर्त्ता, तुम यन्त्री और मैं यन्त्र— इसी का नाम है ज्ञान। हे ईश्वर, मेरा कुछ भी नहीं है, यह मन्दिर मेरा

नहीं, यह कालीबाड़ी मेरी नहीं, यह समाज मेरा नहीं, सब तुम्हारी वस्तुएँ हैं। यह स्त्री, पुत्र, परिवार यह सब कुछ भी मेरा नहीं है, सब तुम्हारी वस्तुएँ हैं— इसका नाम है ज्ञान।

"मेरी चीज़, मेरी वस्तु, कहते रहते हैं। इन सब वस्तुओं को प्यार करने का नाम है 'माया'। सब से प्यार करने का नाम है 'दया'। केवल ब्राह्मसमाज के लोगों को प्यार करता हूँ या केवल परिवार वालों को प्यार करता हूँ, इसका नाम है 'माया'। केवल देश के लोगों से प्यार का नाम है 'माया'। सब देशों के लोगों से प्यार, सब धर्म के लोगों से प्यार— यह दया से होता है, भक्ति से होता है।

"माया से मनुष्य बद्ध हो जाता है, भगवान से विमुख हो जाता है। दया से ईश्वर-प्राप्ति होती है। शुकदेव, नारद— इन्होंने दया रखी थी।"

अष्टम परिच्छेद

(प्रताप को शिक्षा— ब्राह्मसमाज और कामिनी-काञ्चन)

प्रताप— जो लोग महाशय के पास आते हैं, उनकी धीरे-धीरे उन्नति तो हो रही है?

श्री रामकृष्ण— मैं कहता हूँ कि गृहस्थ करने में दोष क्या? फिर भी संसार में दासी की भाँति रहो।

(गृहस्थ का साधन)

"दासी मालिक के घर की बात में कहती है— 'हमारा घर'। किन्तु उसका अपना घर शायद किसी गाँव में है। मालिक के घर को देखकर मुख से कहती है— 'हमारा घर'। मन में जानती है कि यह घर हमारा नहीं है, हमारा घर तो उस देहात में है। और फिर मालिक के लड़के को

खिलाती-पिलाती-पालती है और कहती है— 'मेरा हरि बहुत शैतान हो गया है', 'मेरा हरि मिठाई खाना पसन्द नहीं करता'। 'मेरा हरि' मुख से चाहे कहती है, किन्तु जानती है कि हरि मेरा नहीं, मालिक का बेटा है।

"तभी तो जो आते हैं, मैं उनसे कहता हूँ, गृहस्थी क्यों नहीं करते? उसमें दोष नहीं है। फिर भी 'ईश्वर में मन रख कर करो। समझो कि घर, मकान, परिवार मेरा नहीं है, यह समस्त ईश्वर का है। मेरा घर तो ईश्वर के पास है।' और कहता हूँ कि उनके पादपद्मों में भक्ति के लिए व्याकुल होकर सर्वदा प्रार्थना करो।"

विलायत की बातें फिर उठीं। एक भक्त ने कहा— "महाशय, आजकल विलायत के विद्वान् यह भी नहीं मानते कि ईश्वर है।"

प्रताप— मुख से तो जो चाहे कुछ भी कहें, किन्तु अन्तर् से कोई नास्तिक है, ऐसा मुझे नहीं लगता। इस जगत् के व्यापार के पीछे जो एक विशेष शक्ति है, यह बात तो बहुतों को ही माननी पड़ी है।

श्री रामकृष्ण— वह होने से ही हुआ। शक्ति तो मानते हैं; नास्तिक क्यों होंगे?

प्रताप— इसके अतिरिक्त यूरोप के विद्वान् moral government (भले कार्य के लिए पुरस्कार और बुरे कार्य के लिए दण्ड) इस जगत् में होता है— यह बात भी मानते हैं।

अनेक बातों के पश्चात् प्रताप विदा लेने के लिए उठे।

श्री रामकृष्ण *(प्रताप के प्रति)*— और क्या कहूँ तुम्हें? फिर भी यही कहता हूँ कि झगड़े-विवाद के भीतर और मत रहो। और एक बात है— कामिनी-काञ्चन ही ईश्वर से मनुष्य को विमुख करते हैं। उस ओर जाने नहीं देते। यही देखो न, सब ही अपनी स्त्री की बड़ाई करते हैं। *(सब का हास्य)*। वह चाहे भली हो चाहे बुरी हो। यदि पूछा जाए, तुम्हारी स्त्री कैसी है, तुरन्त ही कहता है 'जी बहुत अच्छी है'।

प्रताप— तो फिर मैं चलूँ?

प्रताप चले गए। ठाकुर की अमृतमयी कथा, कामिनी-काञ्चन-त्याग की बात पूरी नहीं हुई। सुरेन्द्र के बाग के वृक्षों के पत्ते दक्षिण-वायु के संघात से हिल रहे थे और मर्मर शब्द कर रहे थे। वे बातें सब उसी शब्द के संग मिल गईं। केवल एक बार भक्तों के हृदय पर आघात करके अन्त में अनन्त आकाश में लय हो गईं। किन्तु प्रताप के हृदय में क्या यह बात प्रतिध्वनित नहीं हुई?

कुछ समय पश्चात् श्रीयुक्त मणि लाल मल्लिक ने ठाकुर से कहा— महाशय, अब दक्षिणेश्वर की यात्रा करें। आज वहाँ पर केशवसेन की माँ और घर की स्त्रियाँ आपके दर्शन करने के लिए जाएँगी। वे लोग आप को वहाँ पर न देखकर दुःखित होकर कहीं लौट न आएँ।

कई मास हुए केशव ने स्वर्गारोहण किया है। इसीलिए उनकी वृद्धा पूज्या माता, पत्नी और घर की अन्य स्त्रियाँ ठाकुर के दर्शन करने जाएँगी।

श्री रामकृष्ण *(मणि मल्लिक के प्रति)*— ठहरो भई, एक तो मेरी निद्रा आदि नहीं हुई, मैं जल्दी-जल्दी नहीं कर सकता। वे गई हैं तो फिर क्या करूँ**?** वे तो वहाँ पर बाग में टहलेंगी— बड़ा आनन्द मिलेगा।

कुछ देर विश्राम करके ठाकुर चलने लगे, दक्षिणेश्वर जाएँगे। जाते समय सुरेन्द्र के लिए कल्याण-चिन्तन कर रहे हैं। सब कमरों में एक-एक बार जा रहे हैं और मृदु-मृदु नाम उच्चारण कर रहे हैं। कुछ बाकी नहीं रखेंगे, तभी खड़े-खड़े ही कह रहे हैं, “मैंने तब तो नुचि (लुचि, पूरी) नहीं खाई थी। थोड़ी सी नुचि ला दो।”

कणिका मात्र लेकर खा रहे हैं और कह रहे हैं— “इसके बहुत अर्थ हैं। पूरी नहीं खाई थी, याद आते ही आने की फिर इच्छा होगी।” *(सब का हास्य)*।

मणि मल्लिक *(सहास्य)*— अच्छा ही तो होता,हम लोग भी आते।

सब भक्त हँस रहे हैं।

●

एकादश खण्ड

ठाकुर श्री रामकृष्ण का पण्डित-दर्शन

प्रथम परिच्छेद

(ईशान के घर शुभागमन)

आज रथ-यात्रा; बुधवार, 25 जून, 1884 ईसवी; आषाढ़ शुक्ला द्वितीया। प्रातः ठाकुर श्री रामकृष्ण कलकत्ता में ईशान के घर में निमन्त्रित होकर आए हैं। ठनठनिया में ईशान का रहने का अपना घर है। वहाँ आकर ठाकुर ने सुना कि पण्डित शशधर निकट ही कॉलेज-स्ट्रीट में चैटर्जी के घर में रहते हैं। पण्डित को मिलने की बड़ी इच्छा है। शाम को पण्डित के घर जाना निश्चित हो गया।

समय प्रातः दस। श्री रामकृष्ण ईशान के नीचे वाली बैठक में भक्तों के संग बैठे हैं। ईशान के परिचित भाटपाड़ा के दो-एक ब्राह्मण हैं, उनमें एक भागवत-पण्डित हैं। ठाकुर के संग हाजरा और दो-एक भक्त आए हैं। श्रीश आदि ईशान के बेटे भी हैं। शक्ति के उपासक एक भक्त भी आए हैं। मस्तक पर सिन्दूर का तिलक है। ठाकुर तो आनन्दमय हैं। सिन्दूर का तिलक देखकर हँसते-हँसते कहते हैं— ये तो 'मार्कामारा' हैं।

कुछ क्षण पश्चात् नरेन्द्र और मास्टर अपने कलकत्ता के घर से आए। वे ठाकुर को प्रणाम करके उनके निकट बैठ गए। ठाकुर ने मास्टर से कहा था, मैं अमुक दिन ईशान के घर जा रहा हूँ, तुम भी आना और नरेन्द्र को साथ लेते आना।

ठाकुर मास्टर से कहते हैं— “उस दिन तुम्हारे घर जाना चाहता था, तुम्हारा निवास कहाँ पर है?”

मास्टर— जी, अब श्यामपुकुर तेलीपाड़ा में, स्कूल के निकट।

श्री रामकृष्ण— आज स्कूल नहीं गए?

मास्टर— जी, आज रथ की छुट्टी है।

नरेन्द्र के पिता के स्वर्गारोहण के पश्चात् घर में अत्यन्त कष्ट है। वे पिता के सबसे बड़े पुत्र हैं— छोटे-छोटे भाई-बहन हैं। पिता वकील थे, कुछ बचाकर नहीं रख सके। गृहस्थी के पालन के लिए नरेन्द्र कार्य खोज रहे हैं। ठाकुर ने नरेन्द्र के कर्म के लिए ईशान आदि भक्तों से कह रखा है। ईशान कम्पट्रोलर जनरल (महालेखा नियन्त्रक) के ऑफ़िस में कर्मचारियों के एक अध्यक्ष थे। नरेन्द्र के घर का कष्ट सुनकर ठाकुर सर्वदा चिन्तित रहते हैं।

श्री रामकृष्ण *(नरेन्द्र के प्रति)*— मैंने ईशान से तेरी बात कही है। ईशान वहाँ (दक्षिणेश्वर-कालीमन्दिर में) एक दिन था कि न, तभी कहा था। उसका तो बहुतों के संग परिचय है।

ईशान ठाकुर को निमन्त्रण करके लाए हैं। उसी उपलक्ष्य में कई बन्धुओं को निमन्त्रण दिया है। गाना होगा। पखावज, बायाँ तबला, और तानपूरे का आयोजन हुआ है। घर में से एक जन ने एक बर्तन में पखावज के लिए मैदा ला दिया। समय 11 का होगा। ईशान की इच्छा है कि नरेन्द्र गाएँ।

श्री रामकृष्ण *(ईशान के प्रति)*— अभी भी मैदा! तब तो लगता है खाने में काफ़ी देरी है।

ईशान *(सहास्य)*— जी नहीं, उतनी देरी नहीं है।

भक्तों में से कोई-कोई हँस रहे हैं। भागवत के पण्डित भी हँसते हुए एक उद्भट श्लोक[1] बोल रहे हैं। श्लोक की आवृत्ति के पश्चात् पण्डित व्याख्या करते हैं— "दर्शनादि शास्त्रों की अपेक्षा काव्य मनोहर होता है अर्थात् जब काव्य-पाठ होता है या लोग सुनते हैं, तब वेदान्त, सांख्य, न्याय, पातंजल— ये सब दर्शन शुष्क लगते हैं। काव्य की अपेक्षा गीत मनोहर होता है। संगीत से पाषाण-हृदय मनुष्य भी पिघल जाता है; किन्तु गीत का इतना आकर्षण होते हुए भी यदि सुन्दरी नारी निकट से चली जाती है, तो काव्य भी पड़ा रहता है, गीत तक भी अच्छा नहीं लगता। सम्पूर्ण मन उसी नारी की ओर चला जाता है। और जब फिर भूख लगती है, तब तो काव्य, गीत, नारी कुछ भी अच्छा नहीं लगता। अन्न चिन्ता चमत्कारा!" (अन्न–चिन्ता अद्भुत है)।

श्री रामकृष्ण *(सहास्य)*— ये तो बड़े रसिक हैं।

पखावज के कसने के बाद नरेन्द्र गाना गाने लगे। गाना आरम्भ होते ही ठाकुर ऊपर बैठक में विश्राम करने के लिए चले आए। साथ मास्टर और श्रीश हैं। बैठक सड़क के किनारे के ऊपर है। ईशान के श्वसुर श्री क्षेत्रनाथ चैटर्जी महाशय ने इस बैठक को बनवाया था।

मास्टर ने श्रीश का परिचय दिया। कहा— ये विद्वान् और अतिशय शान्त प्रकृति के हैं। शिशुकाल से ही ये मेरे साथ पढ़ते रहे हैं। ये वकील हैं।

श्री रामकृष्ण— ऐसे व्यक्ति का वकील होना!

मास्टर— भूल से इस पथ पर जाना पड़ा है।

श्री रामकृष्ण— मैंने गणेश वकील को देखा है। वहाँ दक्षिणेश्वर कालीबाड़ी में, बाबुओं के संग कभी-कभी जाता है। पान्ना भी जाता है। सुन्दर तो नहीं है, किन्तु गाता अच्छा है। वह मुझे खूब मानता है, सरल है। *(श्रीश के प्रति)*— आपने क्या सार जान लिया है?

---

[1] काव्येन दर्शनं हन्ति, काव्यं गीतेन हन्यते।
गीतञ्च स्त्रीविलासेन, सर्वं हन्ति बुभुक्षुता॥

श्रीश— ईश्वर हैं और वे ही सब कुछ कर रहे हैं। तो भी उनके गुणों (attributes) की हम जो धारणा करते हैं, वह ठीक नहीं है। मनुष्य उनके विषय में क्या धारणा करेगा? अनन्त काण्ड हैं वे!

श्री रामकृष्ण— बाग में कितने वृक्ष हैं, वृक्ष पर कितनी डालियाँ हैं— ऐसे हिसाब से तुम्हें क्या काम? तुम बाग में आम खाने आए हो, आम खाकर जाओ। उन पर प्रेम-भक्ति होने के लिए ही मनुष्य-जन्म हुआ है। तुम आम खाकर चले जाओ।

"तुम शराब पीने आए हो। कलवार की दुकान पर कितने मन मद है, इस बात की खबर से तुम्हें क्या मतलब? एक गिलास से ही तुम्हारा हो जाता है।

"तुम्हें अनन्त काण्ड जानने का क्या प्रयोजन? उनके गुणों को करोड़ों वर्ष विचार करने पर भी, तनिक भी नहीं जान पाओगे।"

ठाकुर तनिक चुप रहे। फिर बातें करते हैं। भाटपाड़ा के एक ब्राह्मण भी बैठे हैं।

श्री रामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— गृहस्थ में कुछ भी नहीं है। इसका (ईशान का) गृहस्थ फिर भी अच्छा है। यदि ऐसा न होता और यदि लड़के परस्त्री-गामी, वेश्यागामी, गांजाखोर, शराबी, अवज्ञाकारी आदि होते तो कष्ट का अन्त न होता। सबका ही ईश्वर की ओर मन है, विद्या की गृहस्थी है, ऐसा तो प्रायः दिखाई नहीं देता। ऐसे तो केवल दो-चार घर ही देखे हैं, नहीं तो केवल झगड़ा, फ़साद, हिंसा, फिर रोग, शोक, दारिद्रय ही देखकर कहा था— माँ, इसी समय मोड़ फिरा दो। देखो न, नरेन्द्र कैसी मुश्किल में पड़ गया है! पिता मर गए हैं, घर वाले खाने को नहीं पाते। कर्म की इतनी कमी है, चेष्टा करता है, मिलता नहीं; अब क्या करता फिर रहा है, देखो।

"मास्टर, तुम पहले तो इतना वहाँ (दक्षिणेश्वर)जाया करते थे, अब उतना क्यों नहीं जाते? लगता है, स्त्री के साथ अधिक भाव हो गया है। फिर दोष भी क्या? चारों ओर ही कामिनी-काञ्चन है। तभी तो

कहता हूँ— माँ, यदि कभी भी शरीर धारण करना पड़े, जैसे भी हो, गृहस्थी न बनाना।"

भाटपाड़ा का ब्राह्मण— जी, गृहस्थ-धर्म की तो प्रशंसा लिखी है।

श्री रामकृष्ण— हाँ, किन्तु बड़ा कठिन है।

ठाकुर ने अन्य विषय चला दिया।

श्री रामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— क्या मैंने भूल की है? वे गा रहे हैं— नरेन्द्र गा रहा है— और हम सब भाग आए।

द्वितीय परिच्छेद

(कलि में भक्तियोग— कर्मयोग नहीं)

प्रायः चार बजे के समय ठाकुर गाड़ी पर चढ़े। अति कोमलांग हैं, अति सावधानी से उनकी देह की रक्षा होती है। तभी पैदल जाने से कष्ट होता है। गाड़ी बिना प्रायः थोड़ी दूर भी नहीं जा सकते। गाड़ी में चढ़ कर भाव-समाधि में मग्न हो गए। तब टप-टप करके वर्षा हो रही थी। वर्षाकाल, आकाश में मेघ, सड़क पर कीचड़। भक्तगण गाड़ी के पीछे पैदल चल रहे हैं। उन्होंने देखा, रथयात्रा के उपलक्ष्य में लड़के ताड़-पत्तों के भोंपू बजा रहे हैं।

गाड़ी घर के सामने खड़ी हो गई। दरवाज़े पर गृहस्वामी और उनके सम्बन्धियों ने स्वागत किया।

ऊपर जाने की सीढ़ी। फिर बैठकखाना। ऊपर चढ़ते ही श्री रामकृष्ण ने देखा कि शशधर उनका स्वागत करने के लिए आ रहे हैं। पण्डित को देखकर लगा कि वे यौवन पार करके प्रौढ़ावस्था में हैं। रंग उज्ज्वल, गौर कहा जा सकता है। गले में रुद्राक्ष की माला। उन्होंने ठाकुर को अति विनीत भाव में भक्ति-भरा प्रणाम किया। तत्पश्चात् साथ ले जाकर बिठाया। भक्तों ने पीछे-पीछे जाकर आसन ग्रहण किए।

सब ही उत्सुक हैं कि उनके निकट बैठें और उनके श्रीमुख से निकले कथामृत का पान करें। नरेन्द्र, राखाल, राम, मास्टर और अन्य बहुत-से भक्तगण उपस्थित हैं। हाजरा भी श्री रामकृष्ण के संग दक्षिणेश्वर की कालीबाड़ी से आए हुए हैं।

ठाकुर पण्डित को देखते-देखते भावाविष्ट हो गए। कुछ क्षण पश्चात् उसी अवस्था में हँसते-हँसते पण्डित की ओर देखकर कहते हैं— "वाह! वाह!" फिर कहते हैं "अच्छा, तुम किस प्रकार लैक्चर देते हो?"

शशधर— महाशय, मैं शास्त्र की वाणी समझाने की चेष्टा करता हूँ।

श्री रामकृष्ण— कलियुग के लिए है नारदीय भक्ति। शास्त्र में जो समस्त कर्म करने की बातें हैं, उनका समय ही कहाँ? आजकल ज्वर में दशमूल का काढ़ा नहीं चलता। दशमूल-पाचन देते-देते रोगी की तो बस हो जाती है। आजकल फीवर-मिक्सचर है। कर्म करने के लिए कहो तो नेजामुड़ा (अन्त, आदि) हटाकर कहना। मैं लोगों से कहता हूँ, तुम लोगों को 'आपोधन्यन्या' (संध्या-आसन आदि) और इतना कुछ नहीं करना पड़ेगा। तुम्हारा गायत्री जपने से ही होगा। कर्म की बात यदि कहनी ही है, तो ईशान जैसे दो-एक जन से ही कह सकते हो।

(विषयी लोग और लैक्चर)

"हज़ार लैक्चर दो, विषयी लोगों का कुछ भी नहीं कर सकोगे। पत्थर की दीवार में क्या कील गाड़ी जा सकती है? कील ही फिर मुड़ जाएगी, किन्तु दीवार का कुछ नहीं होगा। तलवार के वार से मगरमच्छ का क्या होगा? साधु का कमण्डल (तुम्बा) चार धाम कर आता है, किन्तु जैसा कड़वा होता है, वैसा ही कड़वा रहता है। तुम्हारे लैक्चर से विषयी लोगों का विशेष कुछ नहीं होगा। फिर भी तुम्हें धीरे-धीरे पता लग जाएगा। बछड़ा एकदम खड़ा नहीं हो सकता। कभी गिर जाता है और फिर खड़ा हो जाता है, तभी तो खड़ा होना और चलना सीखता है।

(नव अनुराग और विचार— ईश्वर-लाभ होने पर कर्म-त्याग— योग और समाधि)

"कौन भक्त है, कौन विषयी, तुम पहचान नहीं सकते। वह तो तुम्हारा दोष नहीं है। तूफ़ान में कौन-सा इमली का पेड़ है, कौन-सा आम का पेड़ है, यह पहले तो पहचाना नहीं जाता।

"ईश्वर-लाभ हुए बिना एकदम कोई कर्म-त्याग नहीं कर सकता। सन्ध्या आदि कर्म कब तक हैं? जब तक ईश्वर के नाम पर अश्रु और पुलक नहीं होता। एक बार 'ॐ राम' बोलते ही यदि आँखों में जल आ जाता है, तो निश्चय जानो, तुम्हारा कर्म शेष हो गया है। अब सन्ध्या आदि कर्म और नहीं करने होंगे।

"फल के हो जाने पर ही फूल झड़ जाता है। भक्ति है फल, कर्म है फूल। गृहस्थी की बहू के पेट में बच्चा होने पर वह अधिक काम नहीं कर सकती। सास दिन-दिन उसका कर्म कम कर देती है। दसवें महीने में सास काम करने ही नहीं देती। बच्चा हो जाने पर वह उसी को लेकर व्यस्त रहती है, अन्य कर्म नहीं करने पड़ते। सन्ध्या गायत्री में लीन हो जाती है। गायत्री प्रणव में लय हो जाती है। प्रणव समाधि में लय हो जाता है; जैसे घण्टे का शब्द— टं-ट-अ-म्। योगी नाद-भेद करके परब्रह्म में लय होते हैं। समाधि में सन्ध्या आदि कर्म लय हो जाते हैं। इस प्रकार ज्ञानी जनों का कर्म-त्याग होता है।

तृतीय परिच्छेद

(केवल पाण्डित्य मिथ्या— साधना और विवेक-वैराग्य)

समाधि की बातें करते-करते ठाकुर का भावान्तर हो गया। उनके चन्द्रमुख से स्वर्गीय ज्योति निकलने लगी। अब बाह्यज्ञान नहीं है। मुख में एक भी बात नहीं। नेत्र स्थिर। निश्चय ही जगत् के नाथ के दर्शन कर

रहे हैं। अनेक क्षण पश्चात् प्रकृतिस्थ होकर बालक की न्यायीं कहते हैं, 'आमि जोल खाबो' (मैं पानी पीऊँगा)। समाधि के पश्चात् जब जल पीने के लिए माँगते थे, तब भक्तों को पता लग जाता था कि अब क्रमशः इन्हें होश आ जाएगा।

ठाकुर भाव में कहने लगे— "माँ, उस दिन ईश्वर विद्यासागर को दिखाया था। उसके पश्चात् मैंने फिर कहा था, माँ, मैं और एक पण्डित को देखूँगा, इसीलिए तुम मुझे यहाँ लाई हो।" फिर शशधर की ओर ताक कर बोले— "बाबा! और थोड़ा-सा बल बढ़ाओ। और कुछ दिन साधन-भजन करो। पेड़ पर बिना चढ़े फल का गुच्छा! फिर तुम तो लोगों के भले के लिए ही यह सब-कुछ कर रहे हो।"

यह कहकर ठाकुर शशधर को मस्तक झुकाकर नमस्कार करते हैं। और भी कहते हैं— "जब पहले पहल तुम्हारी बात सुनी तो, पूछा था कि यह पण्डित क्या कोरा पण्डित ही है या विवेक-वैराग्य भी है?

(आदेश बिना पाए आचार्य नहीं बनता)

"जिस पण्डित का विवेक नहीं है, वह पण्डित ही नहीं है। यदि आदेश हो जाए तो लोक-शिक्षा में दोष नहीं है। आदेश पाकर यदि कोई लोक-शिक्षा दे, तो उसे कोई हरा नहीं सकता।

"वाग्वादिनी के पास से यदि एक भी किरण आ जाती है, तो फिर ऐसी शक्ति होती है कि बड़े-बड़े पण्डितगण भी केंचुए की भाँति हो जाते हैं।

"दीपक जलाने पर बरसाती कीड़े ढेर के ढेर अपने आप ही आ जाते हैं, पुकारना नहीं पड़ता। वैसे ही जिसने आदेश पाया है, उसे लोगों को पुकारना नहीं पड़ता— 'अमुक समय लेक्चर होगा' कह कर खबर भेजनी नहीं पड़ती। उसकी ऐसी खेंच होती है कि लोग उसके पास आपने आप आते हैं। तब राजा, बाबू, दल-के-दल आते हैं और पूछते रहते हैं, आप क्या लेंगे— आम, सन्देश, रुपया, पैसा, शाल

इत्यादि लाया हूँ; आप क्या लेंगे? मैं उन सब लोगों से कहता हूँ, 'दूर रखो, मुझे यह सब अच्छा नहीं लगता। मैं कुछ नहीं चाहता।'

"चुम्बक क्या लोहे से कहता है, तुम मेरे निकट आओ? 'आओ' कहना नहीं पड़ता। लोहा अपने आप ही चुम्बक पत्थर के आकर्षण से दौड़ा आता है।

"ऐसा मनुष्य, पण्डित (विद्वान्) चाहे नहीं होता, इस कारण यह मत सोचो कि उसको ज्ञान की कुछ कमी है। पुस्तक पढ़ने से क्या ज्ञान हो जाता है? जिसने आदेश प्राप्त कर लिया है, उसके ज्ञान का शेष नहीं होता। वह ज्ञान ईश्वर के पास से आता है— खत्म नहीं होता।

"उस देश में धान मापने के समय एक व्यक्ति मापता है, तथा और एक जन 'राश' (ढेर) ठेल देता है। वैसे ही जिसने आदेश पा लिया है, वह जितनी चाहे लोक-शिक्षा देता रहता है। माँ उसके पीछे से ज्ञान की राश ठेल देती हैं। वह ज्ञान कभी भी समाप्त नहीं होता।

"माँ का यदि एक बार कटाक्ष हो जाता है, तो फिर ज्ञान का क्या अभाव रहता है? तभी तो पूछता हूँ कि कोई आदेश पाया है कि नहीं?"

हाजरा— हाँ, अवश्य ही आदेश प्राप्त किए हुए हैं। क्यों महाशय?

पण्डित— नहीं। 'आदेश'— ऐसा तो कुछ नहीं मिला।

गृहस्वामी— आदेश तो चाहे नहीं प्राप्त किया, किन्तु कर्त्तव्य-बोध से लैक्चर देते हैं।

श्री रामकृष्ण— जिसे आदेश नहीं मिला, उसके लैक्चर से क्या होगा?

"एक जन (ब्राह्म) ने लैक्चर देते हुए कहा था, 'भाई रे, मैं कितनी शराब पिया करता, यह करता था, वह करता था।', यह बात सुनकर लोग शोर करने लगे— साला, क्या कह रहा है रे? शराब पिया करता था, यह बात कहते ही उल्टी गड़बड़ हो गई। इसीलिये भला व्यक्ति बने बिना लैक्चर से कोई उपकार नहीं होता।

"बरिशाल वाले एक सब-जज ने कहा था, 'महाशय, आप प्रचार आरम्भ करें। तो फिर मैं भी कमर कसता हूँ।' मैंने कहा, अरे भाई! एक कहानी सुनो— उस देश (कामारपुकुर) में हलदार पुकुर नामक तालाब है। बहुत जन उसके किनारे पर बाह्य कर दिया करते थे। प्रातः के समय जो लोग तालाब पर आते, गाली-गलौच में उनके भूत भाग जाते। किन्तु गाली-गलौच से कुछ काम नहीं होता था; फिर दूसरे दिन भी प्रात: किनारे पर पाखाना किया हुआ लोग देखते। कुछ दिन बाद कम्पनी (म्यूनिसिपैलिटी) के एक चपरासी ने तालाब के निकट एक हुक्म लगा दिया। कैसा आश्चर्य! एकदम ही वहाँ पर बाह्य जाना बन्द।

"तभी कहता हूँ, तुच्छ व्यक्ति के लैक्चर देने से कुछ काम नहीं होता। 'चपरास' रहने पर ही लोग मानेंगे। ईश्वर का आदेश बिना हुए लोक-शिक्षा नहीं होती। जो व्यक्ति शिक्षा देगा, उसमें बहुत शक्ति चाहिए। कलकत्ता में अनेक हनुमान-पुरियाँ हैं— उनके संग तुम्हें लड़ना होगा। ये लोग तो (जो चारों ओर सभाओं में बैठे हुए हैं) 'पाठा' हैं— बलि के पशु (भैंसा-बकरे) हैं।

"चैतन्यदेव अवतार हैं। वे जो कर गए हैं, उसका ही क्या रह गया है, बताओ तो ज़रा? और जिसने आदेश नहीं पाया है, उसके लैक्चर से क्या उपकार होगा?"

(आदेश किस प्रकार प्राप्त होता है)

श्री रामकृष्ण— तभी तो कहता हूँ, ईश्वर के पादपद्मों में मग्न हो जाओ। यह बात कहकर ठाकुर प्रेम में मतवाले होकर गाना गाते हैं—

डुब् डुब् डुब् रूप-सागरे आमार मन।
तलातल पाताल खुंजले पाबि रे प्रेम रत्नधन॥

"इस सागर में डूबने से मरता नहीं, यह तो अमृत-सागर है।"

(नरेन्द्र को शिक्षा— ईश्वर अमृत का सागर)

"मैंने नरेन्द्र से कहा था— ईश्वर रस का समुद्र है, तू इस समुद्र में डुबकी लगाएगा कि नहीं, बता? अच्छा, कल्पना कर, एक कसोरी में रस भरा हुआ है और तू मक्खी हो गया है। कहाँ पर बैठकर, मुख बढ़ाकर रस पिएगा? नरेन्द्र ने कहा— मैं कसोरी के किनारे पर बैठकर मुख बढ़ाकर पीऊँगा क्योंकि अधिक दूर जाने पर डूब जाऊँगा। तब मैं बोला— बेटा, यह सच्चिदानन्द-सागर है, इसमें मरण का भय नहीं; यह सागर अमृत-सागर है। जो अज्ञानी हैं, वे ही कहते हैं कि भक्ति-प्रेम की बढ़ाबढ़ी (अति) नहीं करनी चाहिए। क्या ईश्वर-प्रेम की अति होती है? तभी तुम्हें कहता हूँ, सच्चिदानन्द-सागर में मग्न हो जाओ।

"ईश्वर-लाभ होने पर क्या चिन्ता? तब आदेश भी होगा, लोक-शिक्षा भी होगी।"

चतुर्थ परिच्छेद

(ईश्वर-लाभ के अनन्त पथ— भक्तियोग ही युग-धर्म)

श्री रामकृष्ण— देख, अमृत-सागर पर जाने के अनन्त पथ हैं। जिस किसी भी प्रकार से क्यों न हो, इस सागर में गिरने से ही हो जाता है। कल्पना करो, अमृत का एक कुण्ड है। किसी भी प्रकार से मुख में तनिक-सा यह अमृत पड़ने से ही अमर हो जाओगे। तुम चाहे स्वयं छलाँग मार कर गिर पड़ो, या सीढ़ी द्वारा धीरे-धीरे उतर कर तनिक-सा खाओ अथवा कोई तुम्हें धक्का मार कर ही गिरा दे। फल एक ही है। तनिक-सा भी अमृत का आस्वादन करने से ही अमर हो जाओगे।

"अनन्त पथ हैं— उनमें ज्ञान, कर्म, भक्ति, जिस पथ द्वारा ही चाहे जाओ, आन्तरिक होने पर ईश्वर मिलेंगे।

"योग तीन प्रकार के हैं— ज्ञानयोग, कर्मयोग, और भक्तियोग। **ज्ञानयोग**— ज्ञानी ब्रह्म को जानना चाहता है। 'नेति-नेति' विचार करता है। ब्रह्म सत्, जगत् मिथ्या, यह विचार करता है। सत्-असत् विचार करता है। विचार का शेष जहाँ पर होता है, वहाँ पर समाधि होती है, और ब्रह्मज्ञान-लाभ होता है।

कर्मयोग— कर्म द्वारा ईश्वर में मन रखना, जो तुम सिखाते हो। अनासक्त होकर करने से प्राणायाम, ध्यान-धारणादि कर्मयोग हैं। गृहस्थी लोग यदि अनासक्त होकर ईश्वर में फल समर्पण करके, उनमें भक्ति करके गृहकार्य करें, तो वह भी कर्मयोग है। ईश्वर में फल समर्पण करके पूजा, जप आदि कर्म करने का नाम भी कर्मयोग है। ईश्वर-लाभ ही कर्मयोग का उद्देश्य है।

भक्तियोग— ईश्वर का नाम-गुण-कीर्तन इत्यादि करके मन उनमें रखना। कलियुग के लिए भक्तियोग सहज पथ है। भक्तियोग ही है युग-धर्म।

"**कर्मयोग बड़ा कठिन।** प्रथमतः, पहले भी बताया था, समय ही कहाँ है? शास्त्र में जो-जो कर्म करने के लिए कहा है, उसका समय कहाँ? कलि में आयु कम है। फिर अनासक्त होकर, फल की कामना न करके कर्म करना बड़ा भारी कठिन है। ईश्वर-प्राप्ति बिना हुए ठीक-ठीक अनासक्त नहीं हुआ जाता। न जाने कहाँ से आसक्ति आ पड़ती है, तुम्हें पता भी नहीं लगने पाता।

"**ज्ञानयोग** भी इस युग में भारी कठिन है। एक तो है जीव का अन्नगत प्राण, उस पर आयु कम; और फिर देह-बुद्धि किसी तरह से भी जाती नहीं। इधर देह-बुद्धि जाए बिना ज्ञान तो बिल्कुल भी नहीं होगा। ज्ञानी कहता है, मैं वही ब्रह्म हूँ; मैं शरीर नहीं, मैं क्षुधा, तृष्णा, रोग, शोक, जन्म, मृत्यु, सुख, दुःख आदि से पार हूँ। यदि रोग, शोक, सुख, दुःख इत्यादि का बोध रहता है, तो तुम ज्ञानी कैसे होओगे? इधर काँटों से हाथ कट रहा है, धड़ाधड़ खून बह रहा है, खूब दर्द है— अथच कहता है, कहाँ? हाथ तो नहीं कट रहा। मुझे क्या हुआ है?"

(ज्ञानयोग अथवा कर्मयोग युग-धर्म नहीं)

"तभी तो इस युग के लिए है भक्तियोग। इससे अन्य पथों की अपेक्षा सहज में ईश्वर के निकट जाया जाता है। ज्ञानयोग अथवा कर्मयोग और अन्य पथों द्वारा भी ईश्वर के निकट जा सकता है, किन्तु ये सब पथ बड़े भारी कठिन हैं।

"भक्तियोग युग-धर्म है— इसका यह मतलब नहीं है कि भक्त एक जगह जाएगा, ज्ञानी अथवा कर्मी और एक जगह जाएगा। इसका अर्थ है जो ब्रह्म-ज्ञान चाहते हैं, वे यदि भक्ति-पथ को पकड़ कर जाते है, तो भी ज्ञान-लाभ करेंगे। भक्तवत्सल यदि चाहें तो वे चाहने से ही ब्रह्मज्ञान दे सकते हैं।"

(भक्त का क्या ब्रह्मज्ञान होता है? भक्त किस प्रकार कर्म और प्रार्थना करता है?)

"भक्त ईश्वर का साकार रूप देखना चाहता है और उनके संग में आलाप करना चाहता है— प्रायः ब्रह्मज्ञान नहीं चाहता। तब भी ईश्वर तो इच्छामय हैं, उनकी यदि खुशी हो तो वे भक्त को समस्त ऐश्वर्य का अधिकारी कर देते हैं। भक्ति भी देते हैं, ज्ञान भी देते हैं। कलकत्ता में कोई यदि एक बार आकर रह सके, तो गढ़ का मैदान, सोसाइटी, (Asiatic Society's Museum), सब ही देख सकता है।

"बात तो यही है कि अब कलकत्ता कैसे आना हो?

"जगत् की माँ को पा लेने पर भक्ति भी मिलेगी, ज्ञान भी मिलेगा। भाव-समाधि में रूप-दर्शन, निर्विकल्प समाधि में अखण्ड सच्चिदानन्द दर्शन होता है; तब अहं, नाम, रूप नहीं रहता।

"भक्त कहता है, माँ, सकाम कर्म में मुझे बड़ा भय होता है। उस कर्म में तो कामना है। वह कर्म करने से फल मिलेगा। और फिर अनासक्त होकर कर्म करना कठिन है। सकाम कर्म करने से तुम्हें भूल

जाऊँगा। इसलिए ऐसे कर्म का प्रयोजन नहीं है। जब तक तुम्हें न पा लूँ, तब तक के लिए कर्म कम हो जाएँ। जितना-सा भी कर्म रहे, उसे भी जैसे अनासक्त होकर कर सकूँ और संग-संग जैसे खूब भक्ति हो जाए और जब तक तुम्हें पा न सकूँ, तब तक किसी नूतन कर्म में मन न जड़ित हो। तब फिर जब तुम आदेश करोगी, तब तुम्हारा कर्म करूँगा, नचेत् नहीं।"

पंचम परिच्छेद

(तीर्थ यात्रा और ठाकुर श्री रामकृष्ण— आचार्य की तीन श्रेणी)

पण्डित— महाशय, आपकी कितनी दूर तक तीर्थ-यात्रा हुई थी?

श्री रामकृष्ण— हाँ, कुछ जगह देखी हैं। *(सहास्य)* हाजरा दूर गया था और खूब ऊँचे चढ़ा था। ऋषिकेश गया था। *(सब का हास्य)* मैं इतनी दूर नहीं गया, इतने ऊँचे भी नहीं चढ़ा। चील, गिद्ध खूब ऊँचाई पर चढते हैं किन्तु नज़र मरघट पर रहती है। *(सब का हास्य)*। मरघट क्या है, जानते हो? कामिनी और काञ्चन।

"यदि यहाँ पर बैठकर भक्ति-लाभ कर सको, तो फिर तीर्थ जाने का क्या प्रयोजन? काशी में जाकर देखा, वैसे ही वृक्ष हैं; वैसे ही इमली के पत्ते!

"तीर्थ पर जाकर यदि भक्ति-लाभ न हुआ, तब तो फिर तीर्थ जाने का फल नहीं मिला। भक्ति ही सार है, एकमात्र प्रयोजन! चील, गिद्ध क्या हैं, जानते हो? अनेक लोग आते हैं, वे बड़ी-बड़ी बातें करते हैं और कहते हैं कि शास्त्र में जो-जो कर्म करने के लिए कहा है, हमने अनेक कर लिए हैं। इधर उनका मन खूब विषयासक्त रहता है। रुपया, पैसा, मान, इज्ज़त, देह-सुख इत्यादि लेकर ही व्यस्त हैं।"

पण्डित— जी हाँ। महाशय, तीर्थ पर जाना तो वैसे ही है, जैसे कौस्तुभ मणि को फेंक कर अन्य हीरे-मणियों की खोज में घूमना।

श्री रामकृष्ण— और तुम यह भी जान रखो कि हज़ार शिक्षा दो, समय बिना हुए फल नहीं होगा। बच्चे ने बिस्तर पर लेटते समय माँ से कहा, 'माँ, मुझे जब पाखाना आएगा, तब मुझे उठा देना।' माँ बोली , 'बेटा, पाखाना ही तुम्हें जगा देगा, इसके लिए तुम चिन्ता मत करो।' *(हास्य)*। उसी प्रकार भगवान के लिए व्याकुल होना, ठीक समय होने पर ही होता है।

(पात्र-अपात्र देखकर उपदेश— ईश्वर क्या दयामय?)

"तीन प्रकार के वैद्य होते हैं:—

- "एक प्रकार के वे हैं जो नाड़ी देखकर, औषध लिखकर चले जाते हैं। रोगी को केवल कह जाते हैं, औषध खा लेना भाई। ये अधम श्रेणी के वैद्य हैं। उसी प्रकार कुछ आचार्य उपदेश दे जाते हैं, किन्तु उपदेश से व्यक्ति का भला हुआ कि बुरा हुआ, यह नहीं देखते। उसके लिए चिन्ता नहीं करते।
- "कुछ वैद्य हैं, वे औषध की व्यवस्था करके, रोगी को औषध खाने के लिए कहते हैं। रोगी यदि खाना नहीं चाहता, तो अनेक तरह से समझाते हैं। ये मध्यम श्रेणी के वैद्य हैं। इसी प्रकार मध्यम श्रेणी के आचार्य भी हैं। वे उपदेश देते हैं, और फिर अनेक प्रकार से लोगों को समझाते हैं ताकि लोग उपदेश के अनुसार चलें।
- "और फिर उत्तम श्रेणी के वैद्य हैं। मीठी-मीठी बातों से यदि रोगी न समझे, वे ज़बरदस्ती तक करते हैं। प्रयोजन होने पर, रोगी की छाती पर घुटने रखकर रोगी को औषध खिला देते हैं। उसी प्रकार उत्तम श्रेणी के आचार्य हैं। वे ईश्वर के रास्ते पर लाने के लिए शिष्यों के ऊपर ज़ोर-ज़बरदस्ती तक करते हैं।"

पण्डित— महाशय, यदि उत्तम श्रेणी के आचार्य होते हैं, तो फिर 'समय हुए बिना ज्ञान नहीं होता', यह बात आप कैसे कहते हैं?

श्री रामकृष्ण— यह ठीक तो है। किन्तु सोचो, औषध यदि पेट में न जाए, यदि मुख से ही बाहर निकल जाए, तो फिर वैद्य क्या करेगा? उत्तम वैद्य भी कुछ कर नहीं सकता।

"पात्र देखकर उपदेश देना चाहिए। तुम लोग पात्र देखकर उपदेश नहीं देते। मेरे पास कोई लड़का आता है तो मैं पूछता हूँ , तेरा कौन-कौन है?' ज़रा सोचो, बाप नहीं है; शायद बाप का ऋण है— वह कैसे ईश्वर में मन देगा? सुन रहे हो न भाई?"

पण्डित— जी हाँ, मैं सब सुन रहा हूँ।

श्री रामकृष्ण— एक बार ठाकुरबाड़ी में कई सिख सिपाही आए थे। माँ काली के मन्दिर के सामने उनसे मिला। एक व्यक्ति ने कहा, 'ईश्वर दयामय हैं।' मैंने कहा, 'निश्चय ही। कैसे पता लगा कि यह सच है?' वे बोले, 'क्यों महाराज, ईश्वर हमें खिलाते हैं; इतना सब यत्न करते हैं!' मैंने कहा, 'उसमें क्या आश्चर्य है? ईश्वर तो सबके बाप हैं। बाप बेटे को नहीं देखेगा, तो कौन देखेगा? क्या मोहल्ले के लोग आकर देखेंगे?'

नरेन्द्र— तो फिर ईश्वर को दयामय न कहूँ?

श्री रामकृष्ण—उनको दयामय कहने के लिए क्या मैं मना कर रहा हूँ? मेरे कहने का मतलब तो यही है कि ईश्वर हमारा अपना जन है, पराया नहीं।

पण्डित— बात अमूल्य है।

श्री रामकृष्ण— तेरा गाना सुन रहा था, किन्तु अच्छा नहीं लगा। तभी उठकर चला गया। कहा, खुशामदी (कार्य-प्रार्थी) अवस्था है। गाना 'आलुनि' (नीरस) बोध हुआ।

नरेन्द्र लज्जित हो गए, मुख ईषत् लाल हो गया; वे चुप रहे।

षष्ठ परिच्छेद

(विदा)

ठाकुर ने पीने के लिए पानी माँगा। उनके पास एक गिलास जल रखा हुआ था, उस पानी को पी नहीं सके; और एक गिलास जल लाने के लिए कहा। पीछे सुना गया कि किसी घोर इन्द्रियासक्त व्यक्ति ने उस जल को स्पर्श कर दिया था।

पण्डित *(हाजरा के प्रति)*— आप इनके पास रात-दिन रहते हैं, आप लोग महानन्द में हैं।

श्री रामकृष्ण *(हँसते-हँसते)*— आज मेरा बड़ा दिन है, मैंने द्वितीया का चाँद देखा। *(सब का हास्य)*। द्वितीया का चाँद क्यों कहा है, जानते हो? सीता ने रावण से कहा था, 'रावण, तू पूर्ण चन्द्र है और मेरा रामचन्द्र द्वितीया का चाँद है।' रावण अर्थ समझ नहीं सका, तभी बहुत खुश हुआ। सीता के कहने का उद्देश्य यही था कि रावण की सम्पदा जितनी होनी थी, हो चुकी है; अब दिन-दिन पूर्ण चन्द्र की न्यायीं ह्रास होता जाएगा। रामचन्द्र द्वितीया का चाँद हैं, उनकी दिन-दिन वृद्धि होगी!

ठाकुर उठ खड़े हुए। बन्धुबान्धवों सहित पण्डित ने भक्ति-भाव से प्रणाम किया। ठाकुर ने भक्तों के संग विदा ली।

सप्तम परिच्छेद

(ईशान के घर पुनरागमन)

ठाकुर भक्तों के साथ ईशान के घर लौट आए। सन्ध्या नहीं हुई। आकर ईशान की नीचे की बैठक में बैठ गए। भक्तों में से कोई-कोई है।

भागवत के पण्डित, ईशान, ईशान के लड़के उपस्थित हैं।

श्री रामकृष्ण *(सहास्य)*— शशधर से कहा, 'वृक्ष पर चढ़ने से पहले ही एक गुच्छा फल! और भी कुछ साधन-भजन करो, तब फिर लोक-शिक्षा देना।'

ईशान— सब ही सोचते हैं कि मैं लोक-शिक्षा देता हूँ। जुगनू सोचता है कि मैं जगत् को आलोकित कर रहा हूँ। उससे एक व्यक्ति ने कहा था, 'हे जुगनू, तुम आलोक क्या दोगे? अरे, तुम तो अन्धकार को और भी प्रकाशित कर रहे हो।'

श्री रामकृष्ण *(ईषत् हास्य करके)*— किन्तु कोरा पण्डित नहीं है, थोड़ा विवेक-वैराग्य है।

भाटपाड़ा के भागवत-पण्डित जी भी अभी बैठे हैं। वयस् 70-75 होगी। वे ठाकुर को एकटक देख रहे थे।

भागवत-पण्डित *(श्री रामकृष्ण के प्रति)*— आप महात्मा हैं।

श्री रामकृष्ण— यह बात नारद, प्रह्लाद,शुकदेव के लिए कह सकते हैं, मैं आपकी सन्तान जैसा हूँ।

"फिर एक हिसाब से कह सकते हैं। ऐसा कहा है कि भगवान से भक्त बड़ा है— क्योंकि भक्त भगवान को हृदय में उठाए लिए फिरता है। *(सब का आनन्द)*। 'भक्त मोरे देखे हीन, आपनाके देखे बड़ो।' (भक्त मुझे 'हीन' देखता है और अपने को बड़ा।) यशोदा कृष्ण को बाँधने आई थी। यशोदा का विश्वास था, मैं कृष्ण को नहीं देखूँ तो उसको कौन देखेगा? कभी-कभी भगवान चुम्बक होते हैं, भक्त सूई। भगवान आकर्षण-शक्ति से भक्त को खींच लेते हैं। और फिर कभी-कभी भक्त चुम्बक बन जाता है, भगवान सूई होते हैं। भक्त का इतना आकर्षण होता है कि उसके प्रेम से मुग्ध होकर भगवान उसके निकट जाकर छोटे पड़ जाते हैं।"

ठाकुर दक्षिणेश्वर लौटेंगे। नीचे की बैठक से दक्षिण की ओर के बरामदे में आकर खड़े हो गए। ईशान आदि भक्तगण भी खड़े हैं। ईशान को बातों-ही-बातों में बहुत से उपदेश दे रहे हैं:—

श्री रामकृष्ण *(ईशान के प्रति)*— जो भक्त गृहस्थी में रहकर उनको पुकारता है, वह वीर भक्त है। भगवान कहते हैं, जिसने गृहस्थ छोड़ दिया है, वह तो मुझे पुकारेगा ही; मेरी सेवा करेगा ही। उसमें फिर बहादुरी भी क्या? वह यदि मुझे न पुकारे तो सब छी: करेंगे! और जो गृहस्थ में रहकर मुझे पुकारता है— बीस मन का पत्थर ठेल कर जो मुझे देखता है, वह ही धन्य है! वही बहादुर! वही वीर पुरुष है।

भागवत पण्डित— शास्त्र में यही बात ही है। धर्मव्याध की और पतिव्रता की कहानी है।

"तपस्वी ने सोच लिया कि मैंने कव्वे और बगुले को भस्म कर दिया है, अत एव मैं बहुत ऊँचा हो गया हूँ। वह एक पतिव्रता के घर गया। उसकी अपने पति के ऊपर इतनी भक्ति थी कि दिन-रात पति की सेवा किया करती थी। पति के घर आने पर पैर धोने को जल देती, यहाँ तक कि सिर के बालों से उसके पाँव पोंछ दिया करती। तपस्वी अतिथि थे। भिक्षा देने में देर होते देखकर, चिल्ला कर बोले कि तुम्हारा भला नहीं होगा। पतिव्रता ने झट दूर से कहा, 'यह तो काकी-बकी भस्म करना नहीं है। तनिक ठहरो महाराज, मैं पति की सेवा करके तुम्हारी पूजा करती हूँ।'

"(वही तपस्वी) धर्मव्याध के पास ब्रह्म-ज्ञान के लिए गया था। व्याध पशु का माँस बेचा करता था, किन्तु रात-दिन ईश्वर-ज्ञान में बाप-माँ की सेवा किया करता। तपस्वी ब्रह्म-ज्ञान के लिए उसके पास गया था, वह यह सब देखकर अवाक् रह गया। सोचने लगा— यह व्याध माँस बेचता है और संसारी व्यक्ति है। यह फिर मुझे क्या ब्रह्म-ज्ञान देगा? किन्तु वह व्याध था पूर्ण ज्ञानी।"

ठाकुर अब गाड़ी पर चढ़े। पास के घर (ईशान के ससुराल वाले) के दरवाजे पर खड़े हैं। ईशान और भक्तगण निकट खड़े हैं, उन्हें गाड़ी

पर चढ़ाने के लिए। ठाकुर फिर बातों ही बातों में ईशान को उपदेश दे रहे हैं, "च्यूटी की भाँति संसार में रहो। इस संसार में नित्य-अनित्य मिला हुआ है, रेत-चीनी मिले हुए हैं— च्यूँटी बनकर केवल चीनी ही लोगे।

"दूध-जल एक संग हैं, चिदानन्द-रस और विषय-रस। हंस की भाँति केवल दूध-दूध लेकर जल छोड़ दोगे।

"और पनडुब्बी (चिड़िया) की तरह। शरीर पर जल लग जाने पर झाड़ फेंकती है। और कीच-मछलीवत्। कीचड़ में रहती है किन्तु शरीर को देखो, स्वच्छ उज्ज्वल।

"गोलमाल में माल है— गोल छोड़कर माल लोगे।"

ठाकुर गाड़ी पर बैठकर दक्षिणेश्वर जा रहे हैं।

•

द्वादश खण्ड

सींती-ब्राह्मसमाज पुनर्वार दर्शन और विजयकृष्णादि ब्राह्मभक्तों को उपदेश और उनके साथ आनन्द

प्रथम परिच्छेद

(श्री रामकृष्ण समाधि-मन्दिर में)

अब फिर ब्राह्म भक्त दुबारा सींती-ब्राह्मसमाज में सम्मिलित हुए हैं। श्री काली-पूजा से अगला दिन, कार्त्तिक मास की शुक्ला प्रतिपदा तिथि, 19 अक्तूबर, 1884 ईसवी। इस समय शरत्-महोत्सव है। श्रीयुक्त वेणीमाधव पाल की मनोहर उद्यान-वाटिका में अब फिर ब्राह्मसमाज का अधिवेशन हुआ। प्रातःकाल की उपासना हो चुकी है। श्री परमहंसदेव साढ़े चार बजे के समय पहुँचे। उनकी गाड़ी आकर बाग के मध्य में खड़ी हुई। उसी समय दल-के-दल भक्त आकर उन्हें मण्डलाकर घेरने लगे। पहले कमरे में समाज की वेदी बनाई गई है। सामने दालान है। उसी दालान में ठाकुर बैठ गए। झटपट भक्तगण उन्हें चारों ओर से घेर कर बैठ गए। विजय, त्रैलोक्य और अनेक ब्राह्मभक्त उपस्थित हैं। उनमें ब्राह्मसमाज का भूतपूर्व सदस्य एक सब-जज भी है।

समाजगृह ने महोत्सव के उपलक्ष्य में विचित्र शोभा धारण की हुई है। कहीं-कहीं नाना रंगों की झण्डियाँ हैं; बीच-बीच में इमारत के ऊपर या रोशनदानों, झरोखों में नयनरंजन, सुन्दर पादक-विभ्रमकारी वृक्षों के पल्लव हैं। सामने पूर्वपरिचित उसी सरोवर के स्वच्छ जल में शरत् सुनील नभमण्डल प्रतिबिम्बित हो रहा है। बाग के सुरखी वाले

लाल-लाल पथ के दोनों ओर वही पूर्व परिचित फल-फूलों की वृक्ष-पंक्तियाँ हैं। आज ठाकुर के श्रीमुख-निःसृत वही वेद-ध्वनि भक्तगण फिर सुनेंगे— जो ध्वनि आर्य ऋषियों के मुख से वेद के रूप में एक समय निकली थी; जो ध्वनि और एक बार नररूपधारी परम संन्यासी, ब्रह्मगतप्राण, जीव के दुख से कातर, भक्तवत्सल, भक्तावतार, हरिप्रेमविह्वल ईसा के मुख से उनके बारह शिष्यों, निरक्षर मछियारों ने सुनी थी; जो ध्वनि पुण्यक्षेत्र करुक्षेत्र में भगवान श्री कृष्ण के मुख से श्रीमद्भगवत् गीता के रूप में एक समय निकली थी; सारथी वेशधारी मानव-रूप सच्चिदानन्द गुरु के मुख से मेघ-गम्भीर ध्वनि के बीच विनयनम्र व्याकुल गुडाकेश कौन्तेय ने जिस कथामृत का पान किया था—

कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः।
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्॥
प्रयाण-काले मनसाऽचलेन भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव।
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक् स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम॥
यदक्षरं वेदविदो वदन्ति विशन्ति यद् यतयो वीतरागाः।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत् ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये॥

— गीता 8,9-11

ठाकुर श्री रामकृष्ण ने आसन ग्रहण करके समाज की सुन्दर बनी हुई वेदी को देखते ही नतशिर होकर प्रणाम किया। वेदी से श्री भगवान की बात होती है, तभी वे देख रहे हैं कि वेदी-क्षेत्र पुण्य-क्षेत्र है। देख रहे हैं यहाँ पर अच्युत की बात होती है। तभी सर्व तीर्थों का समागम हुआ है। अदालत-गृह को देखने से जैसे मुकद्दमे की याद आती है और जज का स्मरण हो आता है, इसी प्रकार इस हरि-कथा के स्थान को देखकर उस भगवान का उद्दीपन हुआ है। श्रीयुक्त त्रैलोक्य गाना गाते हैं। श्री रामकृष्ण ने कहा— हाँ जी, तुम्हारा वह गाना बहुत सुन्दर है 'दे माँ, पागल करे', उसी को गाओ ना! वे गाते हैं—

आमाय दे मा पागल करे (ब्रह्ममयी)।
आर काज नाई ज्ञान विचारे॥

तोमार प्रेमेर सुरा, पाने करो मातोयारा।
ओ मा भक्त चित्तहरा डुबाओ प्रेमसागरे।
तोमार ए पागला गारदे, केहो हासे केहो कांदे,
केहो नाचे आनन्द भरे।
ईसा मूसा श्री चैतन्य, ओ मा प्रेमेर भरे अचैतन्य,
हाय कबे होबो मा धन्य, (ओ मा) मिशे तार भितरे॥
स्वर्गेते पागलेर मेला, जेमन गुरु तेमनि चेला,
प्रेमेरखेला के बुझते पारे।
तुई प्रेमे उन्मादिनी, ओ मा पागलेर शिरोमणि,
प्रेमधने करो मा धनी, कांगाल प्रेमदासेरे॥

[ब्रह्ममयी माँ, मुझे पागल कर दो। ज्ञान-विचार का अब और काम नहीं। अपने प्रेम की सुरा में मतवाला बना दो। अरी माँ, भक्त के चित्त को हरने वाली माँ, मुझे प्रेम-सागर में डुबो दो। तुम्हारे इस पागलों के जेलखाने में कोई हँसता है, कोई रोता है, कोई आनन्द से गद्गद् होकर नाचता है। श्री ईसा, श्री मूसा, श्री चैतन्य, ओ माँ, प्रेम से भरकर अचैतन्य हैं। हाय, तुम्हारे में मिलकर मैं कब धन्य होऊँगा? स्वर्ग में पागलों का मेला लगा हुआ है। जैसा गुरु है, वैसे ही चेले हैं। प्रेम का खेल कौन समझ सकता है? ओ माता! तुम प्रेम में उन्मादिनी हो, पागलों की शिरोमणि हो। हे माँ! मुझ कंगाल प्रेमदास को प्रेमधन से धनवान बना दो।]

गाना सुनते-सुनते श्री रामकृष्ण को भावान्तर हो गया। एकदम समाधिस्थ हो गए— 'उपेक्षिया महत्तत्त्व, त्यजि चतुर्विंश तत्त्व, सर्वतत्त्वातीत तत्त्व देखि आपनी आपने।' (महत्तत्त्व की उपेक्षा करके, चतुर्विंश तत्त्व छोड़कर, सर्वतत्त्वातीत तत्त्व को अपने आप में देखकर।) कर्मेन्द्रियाँ, ज्ञानेन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, अहंकार सब ही मानो पुँछ गए हैं। चित्रपुतलीवत् मात्र देह विद्यमान है। एक दिन भगवान पाण्डव-नाथ की ऐसी अवस्था देखकर श्रीकृष्णगत अन्तरात्मा युधिष्ठिर सहित सभी पाण्डवगण रो पड़े थे। तब आर्यकुल गौरव भीष्मदेव शरशैया पर लेटे हुए अन्तिम समय में भगवान के ध्यान में निरत थे। उस समय कुरुक्षेत्र-

युद्ध समाप्त हुआ ही था। सहज ही क्रन्दन का दिन था। श्री कृष्ण की ऐसी समाधिप्राप्त अवस्था को समझ न सकने से पाण्डव क्रन्दन कर उठे थे; समझे थे शायद वे देह-त्याग कर गए हैं।

द्वितीय परिच्छेद

(हरिकथा-प्रसंग में— ब्राह्मसमाज में निराकारवाद)

कुछ देर के पश्चात् ठाकुर श्री रामकृष्ण कुछ प्रकृतिस्थ होकर भावावस्था में ब्राह्म भक्तों को उपदेश देते हैं। यह ईश्वरीय भाव खूब घना है जैसे वक्ता मस्त होकर कुछ-कुछ बोल रहे हैं। भाव धीरे-धीरे कम हो रहा है। अन्त में पहले वाली ठीक सहज अवस्था हो गई।

('मैं सिद्धि खाऊँगा— गीता और अष्टसिद्धि— ईश्वर प्राप्ति क्या है?)

श्री रामकृष्ण *(भावस्थ)*— माँ, कारणानन्द नहीं चाहिए। सिद्धि खाऊँगा। सिद्धि अर्थात् वस्तु-लाभ। 'अष्टसिद्धियों' वाली सिद्धि नहीं। उस सिद्धि की बात कृष्ण ने अर्जुन से कही थी— भाई देख, यदि अष्टसिद्धियों में से एक भी सिद्धि किसी को आती है, तो फिर समझो कि व्यक्ति मुझको नहीं पाएगा, क्योंकि सिद्धि के रहने से अहंकार रहेगा और अहंकार का लेश भी रहने पर भगवान को नहीं पाया जा सकता। और एक है प्रवर्तक, साधक, सिद्ध और सिद्ध का सिद्ध:—

- जो व्यक्ति अभी-अभी ईश्वर की आराधना में प्रवृत्त हुआ है, वह प्रवर्तक की श्रेणी का है। प्रवर्तक शरीर पर चन्दनादि का चिह्न लगाता है, तिलक माला धारण करता है, बाहर खूब आचार करता है।

- साधक और भी आगे बढ़ा हुआ है। उसका जगत्-दिखावा-भाव कम हो जाता है। साधक ईश्वर को पाने के लिए व्याकुल होता है, आन्तरिक उनको पुकारता है, उनका नाम जपता है, उनके निकट सरल अन्तःकरण से प्रार्थना करता है।
- सिद्ध कौन है? जिसकी बुद्धि निश्चयात्मिका हो गई है कि ईश्वर हैं, और वे ही सब कर रहे हैं; जिसने ईश्वर का दर्शन कर लिया है।
- 'सिद्धों का सिद्ध' कौन है? जिसने केवल दर्शन ही नहीं, उनके संग आलाप किया है— किसी ने पितृभाव में, किसी ने वात्सल्य भाव में, किसी ने सख्य भाव में, किसी ने मधुर भाव में उनके संग बातचीत की है।

"लकड़ी में आग निश्चित है, ऐसा विश्वास; और लकड़ी से आग बाहर निकालकर भात पकाना, उसे खाकर शान्ति और तृप्ति प्राप्त करना, ये दोनों भिन्न वस्तुएँ हैं।

"ईश्वरीय अवस्था की इति नहीं की जाती। यह तो उससे बढ़कर, उससे फिर और बढ़कर है।"

(विषयी का ईश्वर— व्याकुलता और ईश्वर-लाभ— दृढ़ हो जाओ)

(भावस्थ हुए)— ये लोग ब्रह्मज्ञानी, निराकारवादी हैं। यह तो बहुत बढ़िया है।

(ब्राह्म भक्तों के प्रति)— "एक पर ही दृढ़ हो जाओ, चाहे साकार पर या निराकार पर। तभी ईश्वर-लाभ होता है, नचेत् नहीं होता। दृढ़ होने पर साकारवादी भी ईश्वर-लाभ करेगा, निराकारवादी भी करेगा। मिश्री की रोटी सीधी करके खाओ या टेढ़ी करके ही खाओ, मीठी लगेगी। *(सब का हास्य)*।

"किन्तु दृढ़ होना होगा, व्याकुल होकर उन्हें पुकारना होगा। विषयी का ईश्वर कैसा है, जानते हो? जैसे चाची-ताई के झगड़े में

सुनकर लड़के खेल करते समय परस्पर कहते हैं, 'मुझे भगवान की कसम।' और भी जैसे कोई फिट बाबू पान चबाते-चबाते, छड़ी हाथ में लिए बाग में टहलते-टहलते एक विशेष फूल तोड़कर साथी से कहता है— ईश्वर ने कैसा ब्यूटिफुल (सुन्दर) फूल बनाया है। किन्तु ऐसे विषयी का भाव क्षणिक है, जैसे गर्म लोहे के ऊपर जल का छींटा।

"एक के ऊपर दृढ़ होना होगा। डुबकी लगाओ। डुबकी बिना दिए समुद्र के भीतर का रत्न नहीं मिलता। जल के ऊपर केवल तैरते रहने से नहीं मिलता।"

ऐसा कहकर ठाकुर श्री रामकृष्ण वही गाना उसी मधुर कण्ठ से गाने लगे जिस गाने ने केशव आदि भक्तों के मन को मुग्ध कर लिया था। सब को बोध हो रहा है कि वे जैसे स्वर्गधाम अथवा वैकुण्ठ में बैठे हैं—

"डुब् डुब् डुब् रूप सागरे आमार मन।
तलातल पाताल खुंजले पाबि रे प्रेम रत्नधन।
खुँज खुँज खुँजले पाबि हृदय माझे वृन्दावन।
दीप दीप दीप ज्ञानेर बाति, ज्वलबे हृदे अनुक्षण॥
ड्यांग ड्यांग ड्यांग ड्यांगाय डिंगे चालाय आबार से कौन जन।
कुबीर बोले शोन् शोन् शोन् भाबो गुरुर श्रीचरण॥

[अरे मेरे मन, प्रभु के रूपसागर में डूब जा। खूब तल में जाकर पाताल को खोज, तो तुझे प्रेम-धन मिलेगा। खोज तो, खोजने पर तुझे हृदय में ही वृन्दावन मिलेगा। ज्ञान की बत्ती जला तो सही, वह फिर तेरे हृदय में हर क्षण जलती ही रहेगी। चला तो, नाव को सूखे में ही चला ले, ऐसे भला फिर कौन चला सकता है? कुबीर कहते हैं, सुन ले मेरे भाई सुन, श्री गुरु-हरि के चरण का ध्यान करो।]

तृतीय परिच्छेद

(ब्राह्म भक्त-संग— ब्राह्मसमाज और ईश्वर का ऐश्वर्य-वर्णन)

श्री रामकृष्ण— डुबकी लगाओ। ईश्वर को प्यार करना सीखो। उनके प्रेम में मग्न हो जाओ। देखो, तुम्हारी उपासना सुनी है। किन्तु तुम्हारे ब्राह्मसमाज में ईश्वर के ऐश्वर्य का इतना वर्णन क्यों करते हैं? 'हे ईश्वर, तुम ने आकाश बनाया है, बड़े-बड़े समुद्र बनाए हैं, चन्द्रलोक, सूर्यलोक, नक्षत्रलोक, इत्यादि बनाए हैं', ऐसी बातों का हमें इतना क्या प्रयोजन?

"सब लोग बाबू के बाग को देखकर ही चकित हो जाते हैं। कैसे-कैसे पेड़, कैसे-कैसे फूल, कैसी झील, कैसी बैठक, कैसी-कैसी उसमें छवियाँ इत्यादि देखकर ही अवाक् रहते हैं। उनकी खोज कितने जन करते हैं? बाबू को तो एक-दो जन खोजते हैं, ईश्वर को व्याकुल होकर खोजने से उनका दर्शन होता है। उनके साथ परिचय होता है, बात-चीत होती है, जैसे मैं तुम्हारे साथ बातें कर रहा हूँ। सच कहता हूँ, दर्शन होता है। यह बात किसके लिए कहता हूँ— विश्वास ही फिर कौन करता है?"

(शास्त्र व प्रत्यक्ष— The Law of Revelation)

"ईश्वर क्या शास्त्र से प्राप्त होता है? शास्त्र को पढ़कर हद है 'अस्ति' मात्र का बोध होता है। किन्तु बिना स्वयं डुबकी लगाए ईश्वर दिखाई नहीं देते। डुबकी लगाने के पश्चात् उनके स्वयं पहचनवा देने पर ही तब सन्देह दूर होता है। पुस्तक हज़ार पढ़ो, मुख से हज़ार श्लोक बोलो, व्याकुल होकर उनमें डुबकी लगाए बिना उनको पकड़ नहीं सकोगे। कोरा पाण्डित्य मनुष्य को भुला तो देगा, किन्तु उनको पकड़वा नहीं सकेगा।

"शास्त्र अथवा केवल पुस्तक आदि से क्या होगा? उनकी कृपा बिना हुए कुछ नहीं होगा, व्याकुल होकर उनके लिए चेष्टा करो; कृपा होने पर उनका दर्शन होगा। वे तुम्हारे संग बातें करेंगे।"

(ब्राह्मसमाज और साम्य— ईश्वर का वैषम्य दोष)

सब-जज— महाशय! उनकी कृपा क्या एक जन के ऊपर अधिक और दूसरे पर कम होती है? वैसा हो तो ईश्वर में वैषम्य दोष हो जाता है।

श्री रामकृष्ण— यह कैसी बात! घोड़ाटा' भी 'टा' और 'सराटा' भी 'टा'[1]। तुम जैसे कहते हो, ईश्वर चन्द्र विद्यासागर ने भी वैसी ही बात कही थी। कहा था 'महाशय, उन्होंने क्या किसी को अधिक शक्ति दी है और किसी को कम शक्ति दी है?' मैंने कहा, 'विभु-रूप में वे सब के भीतर हैं— मेरे भीतर जैसे हैं , वैसे ही च्युँटी के भीतर भी हैं। किन्तु शक्ति विशेष होती है। यदि सब ही समान होते तो फिर ईश्वर विद्यासागर नाम सुनकर हम तुम्हें क्यों देखने आए हैं? तुम्हारे क्या दो सींग निकले हुए हैं, जो हम देखने आए हैं? वैसा तो नहीं है। तुम दयालु हो, पण्डित हो, ये सब गुण तुम्हारे में औरों से अधिक हैं, तभी तुम्हारा इतना नाम है। देखो, ऐसे-ऐसे लोग हैं जो अकेले एक सौ लोगों को हरा सकते हैं, और ऐसे हैं जो एक व्यक्ति के भय से भाग खड़े होते हैं।

"यदि शक्ति विशेष न होती तो लोग केशव को इतना क्यों मानते?

"गीता में है, जिसे अनेक जन गण्य-मान्य समझते हैं, वह विद्या के लिए ही हो अथवा गाने-बजाने के लिए ही हो; या लैक्चर देने के लिए

---

[1] टा'- 'टा' प्रत्यय तो घोड़े में भी वही लगा है और 'सरा' (मिट्टी की प्लेट) में भी वही लगा है। किन्तु घोड़े की शक्ति और है, और 'सरा' की शक्ति और है। केवल 'टा' के कारण दोनों एक नहीं हो सकते। घोड़े की शक्ति विशेष है।

ही हो, किंवा और कुछ के लिए ही हो— निश्चय जानो कि उसमें ईश्वर की विशेष शक्ति है।"

ब्राह्म भक्त *(सब-जज के प्रति)*— जो कहते हैं, मान लीजिए ना!

श्री रामकृष्ण *(ब्राह्म भक्त के प्रति)*— तुम कैसे व्यक्ति हो! बात पर विश्वास न करके केवल मान लेना कपटता है! तुम्हें तो एक बनावटी शीशा देख रहा हूँ।

ब्राह्म भक्त अतिशय लज्जित हुए।

चतुर्थ परिच्छेद

(ब्राह्मसमाज— केशव और निर्लिप्त संसार— संसार-त्याग)
(पूर्व कथा— केशव को शिक्षा, निर्जन में साधन, ज्ञान का लक्षण)

सब-जज— महाशय, क्या गृहस्थ का त्याग करना होगा?

श्री रामकृष्ण— नहीं, तुम लोगों को त्याग क्यों करना पड़ेगा? गृहस्थ में रहते हुए ही हो सकता है। तो भी पहले कुछ दिन निर्जन में रहना चाहिए। निर्जन में रहकर ईश्वर की साधना करनी चाहिए। घर के निकट ऐसा एक स्थान बनाना चाहिए, जहाँ पर रह कर घर से एक बार (भोजन) खाकर जा सको। केशवसेन, प्रताप आदि ने कहा था, 'महाशय, हमारा जनक राजा का मत है।' मैंने कहा, 'केवल मुख से कहने से जनक राजा नहीं बना जाता। जनक राजा ने 'हेट मुण्ड' (सिर नीचे) करके पहले निर्जन में कितनी तपस्या की थी! तुम लोग कुछ करो तभी तो 'जनक राजा' बनोगे। अमुक् खूब फर्राटे से अंग्रेज़ी लिख सकता है, वह क्या एकदम लिख सका था? वह ग़रीब का लड़का था, पहले एक के घर रहकर उनका खाना बना देता था और थोड़ा-बहुत खा लेता था, बहुत कष्ट से लिखना-पढ़ना सीखा था, तभी तो अब फर-फर करके लिख सकता है।'

"केशवसेन से और भी कहा था, निर्जन में बिना जाए कठिन रोग कैसे हटेगा? रोग तो है विकार। और फिर जिस कमरे में विकार का रोगी है, उसी कमरे में ही अचार, इमली और पानी का मटका है। तब रोग कैसे हटेगा? अचार, इमली; यही देखो बोलते-बोलते मेरे मुख में पानी आ गया है। *(सब का हास्य)*। सामने रहने से क्या होता है, तुम सब ही तो जानते हो। स्त्रियाँ पुरुषों के लिए यही अचार, इमली हैं। भोगवासना जल का मटका है।

"विषय-तृष्णा का अन्त नहीं है और यही विषय-रोगी के कमरे में है। इस से क्या विकार-रोग हटता है? कुछेक दिन स्थान बदली करके रहना चाहिए, जहाँ पर अचार, इमली न हो, जल का मटका न हो। उसके पश्चात् नीरोग होकर फिर दुबारा उसी घर में आने पर फिर भय नहीं रहता। उनको पाकर गृहस्थ में आकर रहने पर फिर कामिनी-काञ्चन कुछ नहीं कर सकते। तब जनक की भाँति निर्लिप्त हो सकोगे। किन्तु प्रथमावस्था में सावधान होना चाहिए। खूब निर्जन में रहकर साधना करनी चाहिए। अश्वत्थ (पीपल) का वृक्ष जब पौधा होता है, तब चारों ओर से घेरा लगाते हैं, ताकि बैल-बकरी नष्ट न करें। किन्तु तना मोटा हो जाने पर घेरे का प्रयोजन नहीं रहता। हाथी बाँध देने पर भी वह वृक्ष का कुछ नहीं कर सकता। यदि निर्जन में साधन करके, ईश्वर के पादपद्मों में भक्ति-लाभ करके, बल बढ़ाकर, घर जाकर गृहस्थ करो, तो फिर कामिनी-काञ्चन तुम्हारा कुछ नहीं कर सकेंगे।

"निर्जन में दही जमा कर मक्खन निकालना चाहिए। ज्ञान-भक्ति रूपी मक्खन यदि एक बार मन रूपी दूध में से निकाल लिया जाता है,फिर उसे गृहस्थ रूपी जल के ऊपर रखने पर वह निर्लिप्त अवस्था में तैरता रहेगा। किन्तु यदि मन को कच्ची अवस्था में, दूध की अवस्था में, गृहस्थ रूपी जल के ऊपर रखो तब तो तैर नहीं सकेगा।

"ईश्वर-लाभ के लिए संसार में रहकर एक हाथ से ईश्वर के पादपद्मों को पकड़े रहोगे और दूसरे हाथ से कार्य करोगे। जब कार्य से अवसर होगा, तब दोनों हाथों से ही ईश्वर के पादपद्मों को पकड़े

रहोगे, तब निर्जन में वास करोगे, केवल उनका चिन्तन और सेवा करोगे।"

सब-जज *(आनन्दित होकर)*— महाशय, यह अति सुन्दर बात है। इसके बिना कुछ नहीं है। निर्जन में साधन बिना और क्या चाहिए? किन्तु इसी को ही तो हम भूल जाते हैं। सोचते हैं एकदम ही जनक राजा बन गए हैं। (श्री रामकृष्ण और सबका हास्य)। गृहस्थ-त्याग का प्रयोजन नहीं है, घर में रहकर भी ईश्वर मिलते हैं— यह बात सुनते ही मुझे शान्ति और आनन्द हुआ है।

श्री रामकृष्ण— त्याग, तुम लोगों को क्यों करना होगा? जब युद्ध करना ही पड़ेगा तो किले में रह कर ही युद्ध अच्छा है। इन्द्रियों के संग युद्ध, भूख-प्यास इत्यादि सब के साथ युद्ध करना होगा। यह युद्ध गृहस्थ में रहकर ही अच्छा है। फिर कलि में अन्नगत प्राण हैं, हो सकता है खाने को ही न मिले। तब तो ईश्वर फीश्वर सब चक्कर खा जाएगा। एक व्यक्ति ने अपनी स्त्री से कहा था, 'मैं गृहस्थ-त्याग करके जा रहा हूँ'। पत्नी कुछ ज्ञानी थी। वह बोली— 'तुम क्यों चक्कर काटते फिरोगे? यदि पेट की रोटी के लिए दस घरों में जाना न पड़े, तब जाओ। वैसा ही यदि करना है, तो फिर यही एक घर ठीक है'।

"तुम लोग त्याग क्यों करोगे? घर में तो फिर सुविधा है। आहार के लिए चिन्ता नहीं होगी। स्वदारा के संग सहवास— इसमें दोष नहीं है। शरीर को जब जो आवश्यक है, तब सब निकट ही मिलेगा। रोग होने पर सेवा करने वाले लोग निकट ही मिलेंगे।

"जनक, व्यास, वशिष्ठ ज्ञान-लाभ करके गृहस्थ में थे। वे दोनों तलवारें चलाते थे। एक ज्ञान की, एक कर्म की।"

सब-जज— महाशय! ज्ञान हो गया है, यह कैसे पता लगेगा?

श्री रामकृष्ण— ज्ञान होने पर वे फिर दूर नहीं दिखते। वे फिर 'वे' नहीं बोध होते। तब 'ये' हो जाते हैं। हृदय के बीच में वे दिखाई देते हैं। वे सबके भीतर हैं। जो खोजता है, वही पाता है।

सब-जज— महाशय! मैं पापी हूँ, कैसे कहूँ कि वे मेरे भीतर हैं?

(ब्राह्मसमाज— ईसाई धर्म और पापवाद)

श्री रामकृष्ण— तुम लोगों का वही एक पाप और पाप! शायद यह ईसाई मत है। मुझे किसी ने एक पुस्तक (बाईबल) दी थी। थोड़ा सा पढ़वा कर सुना तो उसमें फिर वही केवल एक बात ही थी— पाप और पाप। मैंने उनका नाम लिया है— ईश्वर, या राम, या हरि कहा है; मुझे फिर अब पाप कहाँ? ऐसा विश्वास रहना चाहिए। नाम-माहात्म्य में विश्वास रहना चाहिए।

सब-जज— महाशय! ऐसा विश्वास कैसे होता है?

श्री रामकृष्ण— उनमें अनुराग करो। तुम लोगों के ही गाने में है, प्रभु! बिना अनुराग के, यज्ञ-याग करके तुम्हें क्या जाना जाता है? जिस प्रकार ऐसा अनुराग, ऐसा ईश्वर में प्यार हो जाए, उसके लिए उनके निकट गोपन में व्याकुल होकर प्रार्थना करो, और रोओ, क्रन्दन करो। स्त्री को रोग हो जाने पर, रुपया नुकसान होने पर या कर्म के लिए लोग घड़ों-घड़ों रोते हैं। ईश्वर के लिए कौन क्रन्दन करता है देखूँ तो, ज़रा बताओ?

पंचम परिच्छेद

(आममुखत्यारी दे दो— गृहस्थ का कर्त्तव्य कब तक?)

त्रैलोक्य— महाशय, उन्हें समय कहाँ; अंग्रेज़ों का कर्म करना पड़ता है।

श्री रामकृष्ण *(सब-जज के प्रति)*— अच्छा, उनको आममुखत्यारी दे दो। भले मनुष्य के ऊपर यदि कोई भार दे देता है, वह व्यक्ति क्या

उसका बुरा करता है? उनके ऊपर आन्तरिक सब भार देकर, तुम निश्चिन्त होकर बैठे रहो। उन्होंने जो कार्य करने के लिए दिया है, वही करते रहो।

“बिल्ली के बच्चे की पटवारी बुद्धि नहीं होती। माँ-माँ करता है। माँ यदि रसोई घर में रखती है, वहीं पर पड़ा रहता है। केवल म्यूँ-म्यूँ करके माँ को पुकारता है। माँ जब गृहस्थ के बिछौने पर रखती है, तब वही भाव। माँ-माँ करता है।”

सब-जज— हम गृहस्थ हैं, कब तक ये कर्त्तव्य करने होंगे?

श्री रामकृष्ण— तुम लोगों का कर्त्तव्य के अतिरिक्त और है भी क्या? लड़कों को बड़ा करना; स्त्री का भरण-पोषण करना, अपने न रहने पर पत्नी के भरण-पोषण के लिए जमा करके रखना होगा। वह यदि न करो तो तुम निर्दयी हो। शुकदेव आदि ने दया रखी थी। जिस में दया नहीं है, वह मनुष्य ही नहीं है।

सब-जज— सन्तान-प्रतिपालन कितने दिन?

श्री रामकृष्ण— बालिग होने तक। पक्षी बड़ा होकर जब अपना भार ले सकता है, तब उसको माँ ठूँग (चोंच) मारती है, निकट आने नहीं देती। *(सब का हास्य)*।

सब-जज— स्त्री के प्रति क्या कर्त्तव्य है?

श्री रामकृष्ण— तुम अपने जीते जी धर्म-उपदेश दोगे, भरण-पोषण करोगे। यदि सती (स्त्री) हो तो अपने न रहने के समय के लिए उसके खाने की व्यवस्था करके रखनी होगी।

“परन्तु ज्ञान-उन्माद हो जाने पर फिर कर्त्तव्य नहीं रहता। तब कल के लिए तुम्हारे चिन्ता न करने पर ईश्वर ही चिन्ता करते हैं। जब ज़मींदार नाबालिग लड़का छोड़कर मर जाता है, तब वली उसी नाबालिग का भार ले लेता है। यह तो कानून का व्यापार है, तुम तो सब जानते ही हो।”

सब-जज— जी हाँ।

विजय गोस्वामी— आहा! क्या बात है! जो अनन्य मन होकर उनका चिन्तन करते हैं, जो उनके प्रेम में पागल हैं, उनका भार भगवान स्वयं वहन करते हैं। नाबालिग को 'वली' तुरन्त मिल जाता है। आहा, कब ऐसी अवस्था होगी? जिनकी हो जाती है, वे कैसे भाग्यवान हैं!

त्रैलोक्य— महाशय, गृहस्थ में क्या यथार्थ ज्ञान होता है, ईश्वर-लाभ होता है?

श्री रामकृष्ण *(हँसते-हँसते)*— क्यों जी, तुम तो पूरी तरह लीन हो गए हो। *(सब का हास्य)*। तुम तो ईश्वर में मन देकर गृहस्थ में हो ही। गृहस्थ में क्यों नहीं होगा? अवश्य होगा।

(गृहस्थ में ज्ञानी का लक्षण— ईश्वर-लाभ का लक्षण— जीवन्मुक्त)

त्रैलोक्य— गृहस्थी में ज्ञान प्राप्त हो गया है, इसका क्या लक्षण है?

श्री रामकृष्ण— हरिनाम में धारा और पुलक। उनका मधुर नाम सुनते ही शरीर में रोमाञ्च हो जाएगा, चक्षुओं से धारा बह पड़ेगी।

"जब तक विषयासक्ति रहती है, कामिनी-काञ्चन में प्यार रहता है, तब तक देहबुद्धि नहीं जाती। विषयासक्ति जितनी कम होगी, उतना ही आत्मज्ञान की ओर चला जा सकता है, और फिर देहबुद्धि कम हो जाती है। विषयासक्ति बिल्कुल चले जाने पर आत्मज्ञान होता है। तब आत्मा अलग है और देह अलग है , बोध हो जाता है। नारियल का जल सूखे बिना दाओ से काटने पर गूदा अलग और खौली अलग करना कठिन होता है। जल यदि सूख जाता है, तब फिर झकोर कर हिलाने से गूदा पृथक् हो जाता है। इसको कहते हैं, सूखा नारियल।

"ईश्वर-लाभ हो जाने का लक्षण यही है कि व्यक्ति सूखे नारियलवत् हो जाता है— देहात्मबुद्धि चली जाती है। देह का सुख-

दुःख अपना सुख-दुःख बोध नहीं होता, वह व्यक्ति देह का सुख नहीं चाहता। वह जीवन्मुक्त होकर घूमता है।

"काली का भक्त जीवन्मुक्त, नित्यानन्दमय!

"जब देखेगा ईश्वर का नाम करते ही अश्रु और पुलक होता है, तब समझेगा, कामिनी- काञ्चन में से आसक्ति चली गई है, ईश्वर-लाभ हुआ है। दियासलाई यदि सूखी हो, तो एक बार घिसने से ही जल उठती है। और यदि गीली हो, तो पचास बार भी क्यों न घिसो, कुछ भी नहीं होगा, केवल तिनके फेंक दिये जाते हैं। विषय-रस में डूबे रहने से, कामिनी-काञ्चन-रस में मन भीगा रहने से, ईश्वरीय उद्दीपन नहीं होगा। हज़ार चेष्टा करो, केवल वृथा श्रम होता है। विषय-रस सूखने पर तत्क्षण उद्दीपन होता है।"

(उपाय व्याकुलता— वे तो अपनी माँ)

त्रैलोक्य— विषय-रस सुखाने का क्या उपाय है?

श्री रामकृष्ण— माँ के निकट व्याकुल होकर पुकारो। उनका दर्शन हो जाने पर विषय-रस सूख जाएगा; कामिनी-काञ्चन में आसक्ति सब दूर चली जाएगी। 'मेरी माँ' यह बोध रहने से इसी क्षण हो जाता है। वे तो धर्म-माँ (सौतेली माँ) नहीं हैं। अपनी ही माँ हैं! व्याकुल होकर माँ के निकट ज़िद्द करो! लड़का पतंग उड़ाने के लिए माँ का आंचल पकड़ कर पैसा माँगता है। माँ शायद और स्त्रियों से बातें करती है। पहले तो माँ किसी तरह से देना नहीं चाहती। कहती है, 'नहीं, वे मना कर गए हैं। वे आएँगे, तब कह दूँगी, अभी कोई घटना करेगा।' जब लड़के ने रोना शुरु कर दिया, किसी तरह भी नहीं छोड़ता; माँ इधर औरतों से कहती है— ठहरो बहनो, इस लड़के को एक बार शान्त करके आती हूँ। यह बात कह कर, चाबियाँ लेकर कड़-कड़ करके बक्सा खोलकर एक पैसा फेंक देती है। तुम लोग भी माँ के पास ज़िद्द करो, वे अवश्य दर्शन देंगी। मैंने सिक्खों से यही बात ही कही थी। वे दक्षिणेश्वर-कालीबाड़ी

में आए थे, माँ काली के मन्दिर के सम्मुख बैठकर बातें हुई थीं। उन्होंने कहा था— ईश्वर दयामय हैं। मैंने पूछा, कैसे हैं दयामय? वे बोले, "क्योंकि महाराज, वे सर्वदा हमें देख रहे हैं। हमें धर्म, अर्थ इत्यादि सब कुछ दे रहे हैं। आहार देते हैं।" मैंने कहा, "किसी के बाल-बच्चे होते हैं, उनके खिलाने का भार बाप नहीं लेगा, तो क्या ब्राह्मण मुहल्ले के लोग आकर लेंगे?"

सब-जज— महाशय! फिर वे क्या दयामय नहीं हैं?

श्री रामकृष्ण— वैसे क्यों होंगे जी? वह एक बात बता दी थी; वह बहुत अपना जन है! उनके ऊपर हमारा ज़ोर चलता है। अपने जन को ऐसी बात तक कही जाती है, ' देगा नहीं रे, साले?'

षष्ठ परिच्छेद

(अहंकार और सब-जज)

श्री रामकृष्ण *(सब-जज के प्रति)*— अच्छा, अभिमान-अहंकार ज्ञान से होता है या अज्ञान से होता है?

"अहंकार तमोगुण है, अज्ञान से उत्पन्न होता है। क्योंकि इस अहंकार की ओट है, इसलिए ईश्वर नहीं दिखाई देते। 'आमि मले घुचिबे जंजाल।' ('मैं' के मरने पर सब जंजाल खतम)। अहंकार करना वृथा है। यह शरीर, यह ऐश्वर्य कुछ भी नहीं रहेगा। एक पगले ने दुर्गा-प्रतिमा देखी थी। प्रतिमा की साज-सज्जा देखकर कहने लगा, 'माँ, कितना ही सजो सँवरो, दो-तीन दिन बाद तुम्हें खींच कर गंगा में फेंक दूँगा। *(सब का हास्य)*। तभी तो सब से कहता हूँ, जज ही हो या जो कोई भी हो, सब दो दिन के लिए हैं। तभी अभिमान, अहंकार त्याग करना चाहिए।"

(ब्राह्मसमाज और साम्य— लोग भिन्न-प्रकृति)

"सत्त्व, रज और तमोगुण का स्वभाव भिन्न है। तमोगुण के लक्षण अहंकार, निद्रा, अधिक भोजन, काम, क्रोध इत्यादि हैं। रजोगुणी अधिक कार्य बढ़ाता है। कपड़े, पोषाक, फिट-फाट, घर साफ़ सुथरा, बैठक में रानी की छवि। जब ईश्वर-चिन्तन करने लगता है, तब सुच्चे रेशम का कपड़ा पहनता है, गले में रुद्राक्ष की माला, उसके बीच-बीच में एक-एक सोने का रुद्राक्ष। यदि कोई ठाकुर-मन्दिर देखने आता है, तब साथ ले जाकर दिखाता है और कहता है, इधर आओ और भी है, श्वेत पत्थर का, संगमरमर का फर्श है, सोलह द्वारों का नाटमन्दिर है। और फिर लोगों को दिखा-दिखाकर दान करता है। सत्त्वगुणी व्यक्ति अति शिष्ट-शान्त, कपड़ा जो-सो, कमाई पेट भरने तक, कभी भी लोगों की खुशामद करके धन नहीं लेता। घर की मरम्मत नहीं, लड़कों-बच्चों के कपड़ों की चिन्ता नहीं करता, मान-इज़्ज़त के लिए प्रयत्न नहीं, ईश्वर-चिन्तन, दान-ध्यान, सब गोपन में— लोगों को पता न लगे। मसहरी में ध्यान करता है। लोग समझते हैं, बाबू रात को सो नहीं सके हैं, तभी देर तक सो रहे हैं। सत्त्वगुण सीढ़ियों का अन्तिम पद (स्टैप) है, उसके पश्चात् ही छत है। सत्त्वगुण के आते ही ईश्वर-लाभ में फिर देर नहीं होती; और थोड़ा-सा बढ़ते ही उनको पा लेगा। (सब-जज के प्रति) तुमने कहा था, सब व्यक्ति समान होते हैं। यही देखो ना, कितनी भिन्न प्रकृति है!

"और भी कितने ही प्रकार की श्रेणियाँ हैं— नित्य जीव, मुक्त जीव, मुमुक्षु जीव, बद्ध जीव— नाना प्रकार के मनुष्य हैं। नारद, शुकदेव ये नित्य जीव हैं जैसे स्टीमबोट (वाष्प यान)। अपने आप भी पार जा सकता है, और भी बड़े-बड़े जीव-जन्तुओं, हाथी तक को, पार ले जा सकता है। नित्य जीव तहसीलदार जैसे होते हैं। एक ताल्लुके का शासन करता है और अन्य एक ताल्लुके पर शासन करने जाता है। और फिर मुमुक्षु जीव हैं, जो संसार-जाल से मुक्त होने के लिए व्याकुल होकर प्राण-पण से चेष्टा करते हैं। इनमें से दो-एक जन जाल में से भाग

सकते हैं, वे मुक्तजीव हैं। नित्यजीव चतुर मछली जैसे हैं। कभी भी जाल में नहीं पड़ते।

"किन्तु बद्ध जीव, संसारी जीव— उन्हें होश नहीं। वे जाल में पड़े ही हुए हैं, अथच जाल में बद्ध हुए-हुए हैं, यह भी ज्ञान नहीं। ये लोग सामने हरि-कथा हो रही है, देखकर भी वहाँ से चले जाते हैं। कहते हैं, 'हरि-नाम मरने के समय होगा; अभी क्यों?' और फिर मृत्यु शैय्या पर लेटा हुआ है, स्त्री अथवा लड़कों-बच्चों से कहता है, 'प्रदीप की इतनी बत्ती क्यों है, थोड़ी कम करो, नहीं तो तेल जल जाएगा।' तथा स्त्री और बच्चों की याद करके रोता है और कहता है, हाय! मेरे मर जाने पर इनका क्या होगा? बद्ध जीव जिससे इतना दुःख भोगता है, वही फिर करता है। जैसे ऊँट के मुख से कँटीला घास खाते-खाते धड़-धड़ खून बहता है, तब भी कँटीला घास छोड़ता नहीं। इधर लड़का मर गया,शोक में कातर है, तो भी साल-साल बच्चा होगा। लड़की की शादी में सब लग गया, फिर भी साल-साल लड़की होगी। कहता है क्या करूँ, भाग्य में था। यदि तीर्थ करने जाता है, स्वयं ईश्वर-चिन्तन करने का अवसर नहीं पाता। केवल स्त्री, बच्चों की पोटली ढोते-ढोते ही प्राण थक जाता है। भगवान के मन्दिर में लड़के को चरणामृत पिलाने और प्रणाम आदि करवाने में ही व्यस्त रहता है। बद्ध जीव अपने और बीवी-बच्चों के पेट के लिए दासत्व करता है और मिथ्या बातों, धोखे, खुशामद से धन कमाता है। जो ईश्वर-चिन्तन करते हैं, ईश्वर के ध्यान में मग्न होते हैं, बद्धजीव उन्हें पागल कहकर उड़ा देता है। (सब-जज के प्रति) मनुष्य कितनी तरह के हैं; देखा? तुमने सब को एक कहा था! कितनी भिन्न प्रकृति! किसी में अधिक शक्ति, किसी में कम।"

(बद्ध जीव मृत्यु के समय में ईश्वर का नाम नहीं करता)

"संसारासक्त बद्ध जीव मृत्यु के समय संसार की बातें ही करता है। बाहर से माला जपने, गांगास्नान करने, तीर्थों पर जाने से क्या होगा?

संसार की आसक्ति भीतर रहने पर मृत्यु-काल में वही दिखाई देती है। कितना अण्ड-बण्ड बकता है; शायद विकार के ख्याल में हल्दी, पाँच फोड़न[1], तेजपात चिल्ला उठता है। तोता सहज अवस्था में तो राधाकृष्ण बोलता रहता है, बिल्ली के पकड़ने पर अपनी ही बोली निकलती है, 'टें-टें' करता है। गीता में है, मृत्यु -काल में जिसे याद करेगा, परजन्म में वही होगा। भरत राजा ने हरिण-हरिण करते देह-त्याग कर दिया था। तभी हरिण-जन्म हुआ। ईश्वर-चिन्तन करते हुए देहत्याग करने से ईश्वर-लाभ होता है, फिर इस संसार में आना नहीं पड़ता।"

ब्राह्म भक्त— महाशय, अन्य समय ईश्वर-चिन्तन किया, किन्तु मृत्युसमय नहीं किया, क्या इसलिए फिर दुबारा इसी सुख-दुःखमय संसार में आना पड़ेगा? क्योंकि, पहले तो ईश्वर-चिन्तन किया था।

श्री रामकृष्ण— जीव ईश्वर-चिन्तन तो करता है, ईश्वर में विश्वास नहीं होता, फिर-फिर भूल जाता है, संसार में आसक्त हो जाता है। जैसे अभी हाथी को स्नान करवाया, फिर दुबारा धूल-कीचड़ मल लेता है। मनमत्त करी। परन्तु हाथी को नहलाते ही यदि पीलखाने में प्रवेश करवा दे सको तो फिर और मिट्टी कीचड़ मल नहीं सकेगा। यदि जीव मृत्युकाल में ईश्वर-चिन्तन करता है, तो उससे मन शुद्ध हो जाता है, वह मन कामिनी-काञ्चन में फिर दुबारा आसक्त होने का अवसर नहीं पाता।

"ईश्वर में विश्वास नहीं होता, तभी तो इतना कर्मभोग है। लोग कहते हैं कि गंगा-स्नान के समय तुम्हारे पाप तुम्हें छोड़कर गंगा-तीर के वृक्ष के ऊपर बैठे रहते हैं। ज्योंहि गंगा-स्नान करके तट पर जाते हो, त्योंहि पाप सब तुम्हारे कंधों पर चिपक कर बैठ जाते हैं। (सब का हास्य)। देहत्याग के समय जैसे भी हो, ईश्वर-चिन्तन हो जाए, उसका

---

[1] पाँच फोड़न— जीरा, राँधुनी (अजवायन की तरह की वस्तु), मेथी, सौंफ, राई— इन पाँच का छौंक।

पहले से ही उपाय करना चाहिए। उपाय है— अभ्यास योग। ईश्वर-चिन्तन का अभ्यास करने से अन्त के दिन भी उनकी याद आएगी।"

ब्राह्म भक्त— अच्छी बातें हुईं। अति सुन्दर बातें।

श्री रामकृष्ण— क्या उलट-पुलट बक दिया है। परन्तु मेरा भाव क्या है, जानते हो? मैं यन्त्र हूँ, वे यन्त्री; मैं घर, वे घरणी; मैं गाड़ी, वे इन्जीनियर; मैं रथ, वे रथी; जैसे चलाते हैं, वैसे चलता हूँ; जैसा करवाते हैं, वैसा करता हूँ।"

सप्तम परिच्छेद

(श्री रामकृष्ण संकीर्तनानन्द में)

त्रैलोक्य फिर गाना गा रहे हैं। संग में खोल-करताल बज रहे हैं। श्री रामकृष्ण प्रेम में मस्त होकर नृत्य कर रहे हैं। नृत्य करते-करते कितनी ही बार समाधिस्थ हुए हैं। समाधिस्थ अवस्था में खड़े हैं। स्पन्दन-हीन देह, स्थिर नेत्र, सहास्य वदन, किसी प्रिय भक्त के कन्धे पर हाथ रखा हुआ है। और फिर भाव के अन्त में मस्त मतंग (हाथी) की भाँति नृत्य। बाह्य दशा लौटने पर गाने में नया पद जोड़ रहे हैं—

नाचो माँ, भक्तवृन्द बेड़े-बेड़े;
आपनि नेचे नाचाओ गो माँ;
(आबार बोलि) हृदिपद्मे एक बार नाचो माँ;
नाचो गो ब्रह्ममयी सेई भुवनमोहनरूपे।

[माँ, भक्तों को घेर कर नाचो, आप नाच-नाचकर भक्तों को नचाओ! हे माता रानी, और कहता हूँ , माँ! हृदय-पद्म पर एक बार नाचो, हे ब्रह्ममयी, अपने उसी भुवन-मोहन रूप में नाचो।]

यह अपूर्व दृश्य है। मातृगतप्राण, प्रेम में मतवाले इस स्वर्गीय बालक का नृत्य! ब्राह्म भक्त उन्हें घेर कर नृत्य करते हैं। जैसे चुम्बक ने

लोहे को पकड़ लिया है। सब ही उन्मत्त होकर ब्रह्म-नाम कर रहे हैं, फिर दुबारा उसी ब्रह्म का मधुर नाम— माँ का नाम कर रहे हैं। बहुत से लोग ही बालकवत् 'माँ-माँ' कहते-कहते रो रहे हैं।

कीर्तन के अन्त में सब ने आसन ग्रहण किया। अभी तक समाज की सन्ध्याकालीन उपासना नहीं हुई। हठात् इस कीर्तनानन्द में समस्त नियम जाने कहाँ बह गए! श्रीयुक्त विजयकृष्ण गोस्वामी रात को वेदी पर बैठेंगे, ऐसी व्यवस्था हुई। अब रात के प्रायः आठ।

सब ने आसन ग्रहण कर लिए हैं। श्री रामकृष्ण भी आसीन हैं। सामने विजय हैं। विजय की वृद्धा सास और अन्य दूसरी भक्त स्त्रियाँ उनके दर्शन करेंगी और उनके संग बातें करेंगी, इस सन्देश के आने पर ठाकुर एक कमरे में चले गए, उनको मिलने के लिए।

कुछ देर में लौट कर विजय से कहते हैं— देखो, तुम्हारी सास की कैसी भक्ति है! कहती हैं, संसार की बातें अब नहीं करेंगी। एक तरंग जाती है और फिर एक और तरंग आ जाती है। मैंने कहा— अजी, तुम्हें फिर इससे क्या? तुम्हें तो ज्ञान हो गया है। तुम्हारी सास ने उस पर कहा— 'मेरा फिर ज्ञान ही क्या हुआ है! अभी तक विद्यामाया और अविद्यामाया के पार तो हुई नहीं, केवल अविद्या पार होने से तो नहीं होगा। विद्या के पार होना होगा, तभी तो ज्ञान होगा, आप ही तो यह बात कहते हैं।"

यह बात हो रही है, तब श्रीयुक्त वेणी पाल आ गए।

वेणीपाल *(विजय के प्रति)*— महाशय, तो उठिए, बहुत देर हो गई है, उपासना आरम्भ करें।

विजय— महाशय, अब फिर उपासना का क्या प्रयोजन? आप के लिए पहले पायस (खीर) की व्यवस्था है, तब फिर पीछे उड़द की दाल तथा और अन्य व्यवस्था है।

श्री रामकृष्ण *(हँसकर)*— जो जैसा भक्त होता है , वह उसी प्रकार का आयोजन करता है। सत्त्वगुणी भक्त पायस देता है, रजोगुणी भक्त

पचास व्यंजनों द्वारा भोग देता है। तमोगुणी भक्त बकरा आदि बलि देता है।

विजय उपासना करने के लिए वेदी पर बैठें कि नहीं, सोच रहे हैं।

अष्टम परिच्छेद

(ब्राह्मसमाज में लैक्चर— आचार्य का कार्य— ईश्वर ही गुरु)

(विजय के प्रति उपदेश)

विजय— आप अनुग्रह करें, तब मैं वेदी पर से बोलूँ।

श्री रामकृष्ण— अभिमान जाने से ही हुआ। 'मैं लैक्चर दे रहा हूँ, तुम सुनो'— यह अभिमान न रहने से ही हो जाता है। अहंकार ज्ञान से होता है कि अज्ञान से? जो निरहंकार है, उसको ही ज्ञान होता है। नीची जगह पर वर्षा का जल खड़ा हो जाता है, ऊँची जगह से बह जाता है।

"जब तक अहंकार रहता है, तब तक ज्ञान नहीं होता, और फिर भक्ति भी नहीं होती। इस संसार में लौट-लौट कर आना पड़ता है। बछड़ा हम्बा-हम्बा ('मैं-मैं') करता है, तभी इतनी यन्त्रणा होती है। कसाई काटता है, चमड़े का जूता बनता है। और फिर ढोल-ढाक (बड़े ढोल) का चमड़ा बनता है। वह ढाक कितना पिटता है! कष्ट का शेष नहीं। अन्त में नाड़ी से ताँत बनती है, उसी ताँत से जब धुनिये का यन्त्र तैयार हो जाता है और धुनिये की ताँत से जब तुंहुं-तुंहुं बोलता है, तब निस्तार होता है। तब फिर और हम्बा-हम्बा (मैं-मैं) नहीं करता। कहता है तुंहुं-तुंहुं (तुम-तुम) अर्थात् हे ईश्वर, तुम कर्ता हो, मैं अकर्ता हूँ; तुम यन्त्री, मैं यन्त्र; तुम ही सब कुछ हो।"

(ठाकुर श्री रामकृष्ण और गुरुवाद)

"गुरु, पिता और कर्त्ता, इन तीन बातों से मेरे शरीर पर काँटे से चुभ जाते हैं। मैं उनका लड़का, मैं चिरकाल बालक, मैं फिर 'पिता' कैसे? ईश्वर कर्त्ता, मैं अकर्त्ता; वे यन्त्री, मैं यन्त्र।

"यदि कोई मुझे गुरु कहता है, मैं कहता हूँ, 'हट साले।' गुरु कैसे? एक सच्चिदानन्द को छोड़ और गुरु नहीं है। उनके बिना और कोई उपाय नहीं है। वे ही एकमात्र भवसागर के कर्णधार हैं।"

(विजय के प्रति)— 'आचार्यगिरि' करना बड़ा कठिन है। उससे अपनी हानि होती है। दस जन मानते हैं, देखकर, पैर पर पैर रखकर कहता है, 'मैं कहता हूँ और तुम लोग सुनो।' यह भाव ही बड़ा खराब है। उसका यहाँ तक ही! बस यही तनिक सा मान। लोग ज्यादा से ज्यादा कहेंगे, आहा, विजय बाबू बड़ा अच्छा बोलते हैं, व्यक्ति बड़ा ज्ञानी है। मैं कहता हूँ, यह बात मत सोचो। मैं माँ से कहता हूँ, 'माँ तुम यन्त्री, मैं यन्त्र; जैसे करवाती हो, वैसे ही करता हूँ; जैसे बुलवाती हो, वैसे ही बोलता हूँ।'

विजय *(विनीत भाव से)*— आप कहिए, तब ही मैं जाकर बैठूँगा।

श्री रामकृष्ण *(हँसते-हँसते)*— मैं क्या कहूँ? चन्दा मामा सब का ही मामा है। तुम ही उनसे कहो। यदि आन्तरिक हो, तो कोई भय नहीं।

विजय के फिर बार-बार अनुनय करने पर श्री रामकृष्ण बोले, "जाओ, जैसी पद्धति है, वैसा ही करो। उनके ऊपर आन्तरिक भक्ति रहने से ही हो गया।"

विजय वेदी पर आसीन होकर ब्राह्मसमाज की पद्धति के अनुसार उपासना करते हैं। विजय प्रार्थना के समय माँ-माँ कह कर पुकारते हैं। सबका ही मन द्रवीभूत हो गया।

उपासना के बाद भक्तों की सेवा के लिए भोजन का आयोजन हो रहा है। दरियाँ, गलीचे सब उठाए गए और पत्तलें पड़ गईं। भक्तगण

सब ही बैठ गए। ठाकुर श्री रामकृष्ण का भी आसन लग गया। वे बैठकर श्रीयुक्त वेणीपाल की दी हुई बढ़िया पूरी, कचौरी, पापड़, नानाविध मिठाइयाँ, दही, खीर इत्यादि समस्त भगवान को निवेदन करके आनन्द से प्रसाद ग्रहण करने लगे।

नवम परिच्छेद

(माँ— काली ब्रह्म— पूर्ण ज्ञान के पश्चात् अभेद)

आहारान्ते सब पान खाते-खाते घर लौटने की तैयारी करते हैं। जाने से पहले श्री रामकृष्ण विजय के साथ एकान्त में बैठकर बातें करते हैं। वहाँ पर मास्टर भी हैं।

(ब्राह्मसमाज और ईश्वर का मातृभाव— Motherhood of God)

श्री रामकृष्ण— तुमने उनकी 'माँ-माँ' कहकर प्रार्थना की थी। यह बहुत अच्छा है। कहावत है, माँ की खेंच बाप की अपेक्षा अधिक होती है। माँ के ऊपर ज़ोर चलता है, बाप के ऊपर नहीं चलता। त्रैलोक्य की माँ की ज़मींदारी से गड्डे भर-भर कर धन आ रहा था। साथ ही में कितने लाल पगड़ी वाले लाठी हाथ में लिए दरबान थे। त्रैलोक्य लोगों को साथ लिए उस मार्ग में खड़ा हुआ था, ज़बरदस्ती सब धन निकाल लिया। माँ के धन के ऊपर खूब ज़ोर चलता है। कहते भी हैं कि ना, लड़के के नाम पर नालिश भी तो नहीं चलती।

विजय— ब्रह्म यदि माँ है, तो फिर वे साकार हैं कि निराकार?

श्री रामकृष्ण— जो ब्रह्म हैं, वे ही काली हैं (माँ आद्याशक्ति)। जब निष्क्रिय हैं, उनको ब्रह्म नाम से कहता हूँ। जब सृष्टि, स्थिति, प्रलय आदि कार्य करती हैं, उनको शक्ति नाम से कहता हूँ। स्थिर जल ब्रह्म

की उपमा है। जल हिलता-डुलता है, तब शक्ति अथवा काली की उपमा है। काली अथवा जो महाकाल (ब्रह्म) के साथ रमण करती हैं। काली 'साकार, आकार, निराकारा।' तुम लोगों को यदि निराकार बोलकर विश्वास है तो काली का उसी रूप में चिन्तन करोगे। एक पर ही दृढ़ निश्चय कर लो। फिर उसका चिन्तन करने से वे ही समझा देंगी कि वे कैसी हैं। श्यामपुकुर पहुँच जाने पर तेलीपाड़ा को भी जान सकोगे। तब पता लग जाएगा कि वे केवल 'अस्ति'मात्र ही नहीं हैं; वे तुम्हारे पास आकर बातें करते हैं— मैं जैसे तुम्हारे साथ बातें कर रहा हूँ। विश्वास करो, सब हो जाएगा। एक बात और भी है। तुम्हारा यदि निराकार पर विश्वास है, तो दृढ़ता से वही विश्वास करो; किन्तु कट्टर बुद्धि (dogmatism) न रखो। उनके सम्बन्ध में ज़ोर से बात मत करो कि वे ऐसे ही हो सकते हैं और ऐसे नहीं हो सकते। कहो, मेरा विश्वास है कि वे निराकार हैं, वे और कितना कुछ हो सकते हैं, वे ही जानते हैं। मैं नहीं जानता, समझ भी नहीं सकता। मनुष्य की एक छटाँक बुद्धि से क्या ईश्वर का स्वरूप जाना जाता है? एक सेर लोटे में क्या चार सेर दूध समाता है? वे यदि कृपा करके कभी दर्शन दें और समझा दें, तभी समझ में आता है, नहीं तो नहीं। 'जो ब्रह्म, वे ही शक्ति, वे ही माँ।'

'प्रसाद बोले मातृभावे आमि तत्त्व करि जाँरे।
सेटा चातरे कि भांगबो हाँड़ि, बोझोना रे मन ठारे ठोरे।'

[रामप्रसाद कहता है कि जिन ब्रह्म का मैं मातृभाव में विचार करता हूँ , उसको हे मन! तुम इशारे से समझ लो, नहीं तो क्या उसके भेद की हाण्डी सब के सामने चौंतरे पर फोड़ूँ?]

"मैं जिसका विचार करता हूँ अर्थात् मैं जिस ब्रह्म का विचार करता हूँ , उनको ही माँ-माँ कहकर पुकारता हूँ। और फिर रामप्रसाद वही बात ही फिर कहते हैं—

'आमि कालीब्रह्म जेने मर्म, धर्माधर्म सब छेड़ेछि।'

[मैंने काली ब्रह्म का मर्म जानकर धर्म, अधर्म सब छोड़ दिया है।]

"अधर्म अर्थात् असत् कर्म। धर्म अर्थात् वैधी कर्म— इतना दान करना होगा, इतना ब्राह्मण-भोजन करवाना होगा, ये ही सब धर्म हैं।

विजय— धर्म-अधर्म त्याग कर देने पर शेष क्या रहता है?

श्री रामकृष्ण— शुद्धा भक्ति। मैंने माँ से कहा था— माँ! यह लो अपना धर्म, यह लो अपना अधर्म, मुझे शुद्धा भक्ति दो। यह लो अपना पुण्य, यह लो अपना पाप, मुझे शुद्धा भक्ति दो। यह लो अपना ज्ञान, यह लो अपना अज्ञान, मुझे शुद्धा भक्ति दो।' देखो, ज्ञान तक भी मैंने नहीं माँगा। मैंने लोकमान्य भी नहीं माँगा। धर्म-अधर्म छोड़ देने पर शुद्धा भक्ति— अमला, निष्काम, अहेतुकी भक्ति शेष रहती है।

(ब्राह्मसमाज और वेदान्त-प्रतिपाद्य ब्रह्म— आद्याशक्ति)

ब्राह्म भक्त— वे और उनकी शक्ति क्या भिन्न हैं?

श्री रामकृष्ण— पूर्ण ज्ञान के पश्चात् अभेद हैं। जैसे मणि की ज्योति और मणि अभेद हैं। मणि की ज्योति का सोचते ही मणि का ख्याल आता है। दूध और दूध की सफ़ेदी जैसे अभेद हैं। एक का ख्याल करने से ही दूसरे का ख्याल आ जाता है। किन्तु यह अभेद-ज्ञान पूर्ण ज्ञान हुए बिना नहीं होता। पूर्ण ज्ञान से समाधि होती है। चौबीस के चौबीस तत्त्व छोड़ कर चले जाते हैं। तब फिर यह अहं तत्त्व नहीं रहता। समाधि में क्या बोध होता हैं, मुख से नहीं बोला जाता। नीचे उतर कर तनिक आभास जैसा बोला जाता है। जब समाधि-भंग के पश्चात् 'ॐ, ॐ' कहता हूँ , तब मैं एक सौ हाथ नीचे आ जाता हूँ। ब्रह्म वेद-विधि के पार हैं, मुख से नहीं बोला जाता। वहाँ पर 'मैं', 'तुम' नहीं।

"जब तक 'मैं,' 'तुम' है, जब तक 'मैं प्रार्थना या ध्यान करता हूँ'— यह ज्ञान है, तब तक 'तुम' (ईश्वर) प्रार्थना सुनते हो— यह ज्ञान भी है, ईश्वर को व्यक्ति जान कर बोध रहता है। तुम प्रभु, मैं दास; तुम पूर्ण, मैं अंश; तुम माँ, मैं बेटा; यह बोध रहेगा। यही भेद-बोध है; मैं एक, तुम एक। यह भेद-बोध वे ही करवाते हैं। इसीलिए तो पुरुष-स्त्री, प्रकाश-

अन्धकार इत्यादि बोध होता है। जब तक यह भेद-बोध है, तब तक शक्ति (Personal God) मानना होगा। उन्होंने ही हमारे अन्दर 'मैं' रख दिया है। हज़ार विचार करो, फिर भी 'मैं' नहीं जाता। और फिर वे व्यक्ति बन कर दिखाई देते हैं।

"जभी तो जब तक 'मैं' है, भेद बुद्धि है, तब तक ब्रह्म निर्गुण है— नहीं कहना चाहिए। तब तक सगुण ब्रह्म मानना होगा। इसी सगुण ब्रह्म को वेद, पुराण, तन्त्र में काली अथवा आद्याशक्ति कहा गया है।"

विजय— इस आद्याशक्ति का दर्शन और वह ब्रह्मज्ञान किस उपाय से हो सकता है?

श्री रामकृष्ण— व्याकुल हृदय से उनसे प्रार्थना करो और रोओ। इस प्रकार चित्त-शुद्धि हो जाएगी। निर्मल जल में सूर्य का प्रतिबिम्ब देख सकोगे। भक्त के 'मैं' रूप दर्पण में उसी सगुण ब्रह्म, आद्याशक्ति का दर्शन करोगे। किन्तु आरसी खूब पोंछी हुई होनी चाहिए। मैल रहने से ठीक प्रतिबिम्ब नहीं पड़ेगा।

"जब तक 'मैं' है, तब तक 'मैं' रूप जल में सूर्य को देखना चाहिए, सूर्य को देखने के लिए और किसी भी प्रकार का उपाय नहीं बना। और जब तक प्रतिबिम्ब-सूर्य के अतिरिक्त सत्य-सूर्य को देखने का उपाय नहीं हैं, तब तक प्रतिबिम्ब-सूर्य ही सोलह आना सत्य है। जब तक 'मैं' सत्य है तब तक प्रतिबिम्ब-सूर्य भी सत्य है, सोलह आना सत्य है। वही प्रतिबिम्ब-सूर्य ही आद्याशक्ति है।

"ब्रह्म-ज्ञान यदि चाहते हो तो उसी प्रतिबिम्ब को पकड़ कर सत्य-सूर्य की ओर जाओ। वही सगुण ब्रह्म, जो प्रार्थना सुनते हैं, उन्हें ही कहो, वे ही वह ब्रह्म-ज्ञान देंगे। क्योंकि जो सगुण ब्रह्म हैं, वे ही निर्गुण ब्रह्म हैं। जो शक्ति हैं, वे ही ब्रह्म हैं। पूर्ण ज्ञान के पश्चात् अभेद।

"माँ ब्रह्म-ज्ञान भी देती हैं। किन्तु शुद्ध भक्त प्रायः ब्रह्म-ज्ञान नहीं चाहता।

"और एक पथ है— ज्ञानयोग, बड़ा कठिन पथ। ब्राह्मसमाज के तुम लोग ज्ञानी नहीं हो, भक्त हो। जो ज्ञानी हैं, उनका विश्वास है— ब्रह्म सत्य, जगत् मिथ्या— स्वप्नवत्। मैं, तुम— सब स्वप्नवत् हैं।"

(ब्राह्मसमाज में विद्वेष-भाव)

"वे अन्तर्यामी हैं। उनसे सरल मन से, शुद्ध मन से प्रार्थना करो, वे सब समझा देंगी। अहंकार-त्याग करके उनकी शरणागत हो जाओ। सब पाओगे—

आपनाते आपनि थेको मन जेओ नाको कारू घरे।
जा चाबि ता बोसे पाबि, खोँजो निज अन्तःपुरे।
परम धन ओई परशमणि, जा चाबि ता दिते पारे।
कतो मणि पड़े आछे, चिन्तामणिर नाच दुयारे।

[अरे मन, तुम अपने में आप स्वयं रहो, किसी के घर में मत जाओ। अपना अन्तःपुर (भीतर) खोजो। जो चाहोगे, सब वहाँ पर ही मिल जाएगा। अरे भाई, परम धन तो वही स्वयं पारस मणि हैं। जो चाहोगे, वही वे दे सकते हैं। उन चिन्तामणि के द्वार पर तो ढेरों ही मणि पड़े हुए हैं।]

"जब बाहर लोगों के संग मिलोगे, तब सब को प्यार करोगे। मिलकर जैसे एक हो जाओगे— विद्वेष भाव फिर और नहीं रखोगे। वह व्यक्ति साकार मानता है, निराकार नहीं मानता। वह निराकार मानता है, साकार नहीं मानता। यह हिन्दू , वह मुसलमान, वह क्रिश्चियन— ऐसा कहकर नाक सिकोड़ कर घृणा मत करो। उन्होंने जिसको जैसा समझा दिया है। सब की भिन्न-भिन्न प्रकृति समझोगे, समझकर जितना तक हो सके, उनके संग मिलोगे और प्यार करोगे। तत्पश्चात् अपने घर जाकर शान्ति, आनन्द भोग करोगे। घर में ज्ञान-दीप जलाकर ब्रह्ममयी का मुख देखो ना। अपने घर में स्व-स्वरूप को देख सकोगे। राखाल (चरवाहे) जब गायें चराने जाते हैं, मैदान में जाकर सब गायें मिलकर

एक हो जाती हैं। एक समूह की गायें। जब सन्ध्या के समय अपने घर जाती हैं, फिर दुबारा पृथक् हो जाती हैं— अपने घर में 'आपनाते आपनि थाके'— अपने आप में आप ही रहती हैं।"

(संन्यास में संचय नहीं करते— श्रीयुक्त वेणीपाल के धन का सद्व्यवहार)

रात को दस बजे के बाद श्री रामकृष्ण दक्षिणेश्वर की कालीबाड़ी में लौटने के लिए गाड़ी पर चढ़े। साथ में दो-एक सेवक-भक्त हैं। घना अन्धकार, वृक्ष के नीचे गाड़ी खड़ी है। वेणीपाल रामलाल के लिए पूरी, मिठाई आदि गाड़ी में रखने के लिए आए।

वेणीपाल— महाशय! रामलाल आ नहीं सके, उनके लिए कुछ खाना इनके साथ भेजने की इच्छा है। आप अनुमति दें।

श्री रामकृष्ण *(घबरा कर)*— अरे बाबू वेणीपाल! तुम मेरे साथ यह सब मत देना! उससे मुझे दोष लगता है। मुझे अपने संग कोई भी वस्तु संचय करके ले जानी नहीं चाहिए। तुम कुछ बुरा मत मानना।

वेणीपाल— जो आज्ञा, आप आशीर्वाद कीजिए।

श्री रामकृष्ण— आज खूब आनन्द हुआ। देखो, अर्थ जिसका दास है, वही मनुष्य है। जो अर्थ का व्यवहार नहीं जानते, वे मनुष्य होकर भी मनुष्य नहीं हैं। आकृति मनुष्य की, किन्तु व्यवहार पशु का। धन्य तुम! इतने जन भक्तों को आनन्द दिया!

•

त्रयोदश खण्ड

दक्षिणेश्वर में भक्तों के संग

प्रथम परिच्छेद

(दक्षिणेश्वर में मनोमोहन, महिमा आदि भक्तों के संग)

चलो भाई, अब फिर उनके दर्शन करने चलें। उसी महापुरुष को, उसी बालक को देखें जो माँ के अतिरिक्त और कुछ नहीं जानते; जो हमारे लिए देह धारण करके आए हैं। वे बतला देंगे, किस प्रकार यह कठिन जीवन-समस्या पूरण करनी होगी। संन्यासी को बता देंगे, गृही को बतला देंगे! द्वार खुला है। दक्षिणेश्वर की कालीबाडी में हमारे लिए प्रतीक्षा कर रहे हैं। चलो, चलो, उन्हें देखेंगे:—

अनन्त गुणाधार प्रसन्न मूरति, श्रवणे जाँर कथा आँखि झरे!

[वे हैं अनन्त गुणों के आधार, प्रसन्न मूर्त्ति; जिनकी कथा सुनकर आँखों से अश्रु बहने लगते हैं।]

चलो भाई, अहेतुक कृपासिन्धु, प्रियदर्शन, ईश्वर-प्रेम में रात-दिन मतवाले, हँसमुख श्री रामकृष्ण-दर्शन करके मानव-जीवन सार्थक करें।

आज रविवार, 26 अक्तूबर, 1884 ईसवी। हेमन्तकाल। कार्त्तिक की शुक्ला सप्तमी तिथि, दोपहर का समय। ठाकुर के उसी पहले वाले कमरे में भक्त इकट्ठे हुए हैं। उस कमरे के पश्चिम की ओर अर्ध चन्द्राकार बरामदा है। बरामदे के पश्चिम में बाग का पथ उत्तर-दक्षिण को जा रहा है। पथ के पश्चिम में माँ काली का फूलों का बाग है, उसके पश्चात् ही पुश्ता, फिर पवित्र सलिला दक्षिण को बहती हुई गंगा जी हैं।

अनेक भक्त ही उपस्थित हैं। आज आनन्द-हाट। आनन्दमय ठाकुर श्री रामकृष्ण का ईश्वर-प्रेम भक्त-मुख-दर्पण में मुकुरित हो रहा है। कैसा आश्चर्य! आनन्द केवल भक्त-मुख-दर्पण में ही क्यों? बाहर बाग में, वृक्ष-पत्रों में, नाना प्रकार के खिले फूलों में, विशाल भागीरथी के वक्ष पर, सूर्य-किरण-प्रदीप्त नील नभोमण्डल में, मुरारि-चरण-च्युत गंगा-वारिकण-वाही शीतल समीरण में यही आनन्द प्रतिभासित हो रहा है। कैसा आश्चर्य! सत्य-सत्य ही 'मधुमत् पार्थिवं रजः'— उद्यान की धूलि तक मधुमय! इच्छा हो रही है, गोपन में अथवा भक्तों के संग इस धूलि के ऊपर लोट लगाऊँ! इच्छा हो रही है, इस उद्यान के एक तरफ़ खड़े होकर सारा दिन यही मनोहारी गंगा-वारि-दर्शन करूँ। इच्छा हो रही है, इस उद्यान के वृक्ष-लता-गुल्म (bush, shrub) और पत्र-पुष्प-शोभित, स्निग्ध, उज्ज्वल वृक्षों को आत्मीय ज्ञान में सादर संभाषण और प्रेमालिंगन दान करूँ। इसी धूलि के ऊपर क्या ठाकुर श्री रामकृष्ण टहलते हैं? इन्हीं वृक्ष-लता-गुल्मों के मध्य से क्या वे रात-दिन यातायात करते हैं? इच्छा हो रही है, ज्योतिर्मय गगन-पान में एकदृष्टि होकर ताकता रहूँ! क्या देख नहीं रहा, भूलोक-द्युलोक सब ही प्रेमानन्द में तैर रहे हैं।

ठाकुरबाड़ी के पुजारी, द्वारपाल, परिचारक सबके सब ही क्यों परम आत्मीय जैसे बोध हो रहे हैं? क्यों यह स्थान बहुत दिनों बाद देखी जन्मभूमिवत् मधुर लग रहा है? आकाश, गंगा, देवमन्दिर, उद्यान-पथ, वृक्ष, लता, गुल्म, सेवकगण, आसनों पर बैठे भक्तगण, सब ही मानो एक वस्तु की तैयारी प्रतीत हो रही है। जिस वस्तु से श्री रामकृष्ण निर्मित हैं, ये भी मानो उसी वस्तु के हो जाएँगे। मानो एक मोम का बाग है— वृक्ष, पौधे, फल, पत्ते, सब मोम के हैं। बाग का पथ, बाग का माली, बाग के निवासीगण, बाग के बीच का घर— सब ही मोम के हैं। यहाँ का सब कुछ ही आनन्द द्वारा गढ़ा गया है!

श्री मनोमोहन, श्रीयुक्त महिमाचरण, मास्टर उपस्थित थे। क्रमशः ईशान, हृदय और हाजरा आए। इनके अतिरिक्त और भी अनेक भक्त

थे। बलराम, राखाल— ये श्री वृन्दावन धाम में हैं। इस समय नूतन भक्त आते-जाते हैं। नारायण, पल्टू, छोटे नरेन्द्र, तेजचन्द्र, विनोद, हरिपद, बाबूराम आकर कभी-कभी रहते हैं। राम, सुरेश, केदार और देवेन्द्र आदि भक्तगण प्रायः आते हैं। कोई-कोई सप्ताह के बाद, कोई दो सप्ताह के पश्चात्। लाटु रहते हैं। योगिन का घर निकट है। वे प्रायः प्रतिदिन यातायात करते हैं। नरेन्द्र कभी-कभी आते हैं। आते ही आनन्द की हाट लग जाती है। नरेन्द्र अपने देव-दुर्लभ कण्ठ से भगवान का नाम-गुण-गान करते हैं। तुरन्त ठाकुर को नानाविध भाव और समाधि होती रहती है। जैसे एक विशेष उत्सव हो जाता है! ठाकुर की बड़ी इच्छा है कि कोई-कोई लड़के उनके पास रात-दिन रहें क्योंकि वे शुद्धात्मा हैं, संसार में विवाह आदि सूत्र अथवा विषय-कर्म में आबद्ध नहीं हुए हैं। बाबूराम को रहने के लिए कहते हैं; वे बीच-बीच में रहते हैं। श्रीयुक्त अधरसेन प्रायः आते हैं।

कमरे में भक्तगण बैठे हैं। ठाकुर श्री रामकृष्ण बालकवत् खड़े हुए सोच रहे हैं; भक्तगण देख रहे हैं।

अव्यक्त और व्यक्त

The Undifferentiated and the Differentiated

श्री रामकृष्ण *(मनोमोहन के प्रति)*— सब राममय देख रहा हूँ! तुम लोग सब बैठे हो; देख रहा हूँ सब में राम ही अलग-अलग बना हुआ है।

मनोमोहन— राम ही सब बने हुए हैं; परन्तु आप जैसे कहते हैं, 'अपो नारायण', जल ही नारायण है; किन्तु कोई जल पिया जाता है, किसी जल से मुख धोया जाता है, किसी जल से बर्तन माँजे जाते हैं।

श्री रामकृष्ण— हाँ, किन्तु देख रहा हूँ, वे ही सब हैं। जीव, जगत् सब वे बने हुए हैं।

यह बात बोलते-बोलते ठाकुर छोटी खाट पर बैठ गए।

(श्री रामकृष्ण की सत्य पर दृढ़ता और संचय में विघ्न)

श्री रामकृष्ण *(महिमाचरण के प्रति)*— हाँ जी, सत्य बात कहनी होगी, क्या इसके लिए मुझे शुचिबाई तो नहीं हो गई? यदि हठात् कह देता हूँ कि नहीं खाऊँगा तो फिर भूख लगने पर भी खाया नहीं जाता। यदि कहूँ कि झाउतले मेरा गाडु लेकर अमुक व्यक्ति को जाना होगा, और फिर किसी दूसरे के ले जाने पर उस व्यक्ति को वापिस जाने के लिए कहना पड़ता है। यह क्या हो गया है भाई? इसका क्या उपाय नहीं? और फिर साथ में कुछ ला नहीं पाता; पान अथवा कोई खाद्य वस्तु साथ ला नहीं पाता। तो फिर संचय हुआ कि नहीं? हाथ में मिट्टी लेकर आ नहीं पाता।

इसी समय एक व्यक्ति ने आकर कहा, "महाशय, हृदय[1] यदु मल्लिक के बाग में आए हैं, फाटक के पास खड़े हुए हैं, आपसे मिलना चाहते हैं।"

श्री रामकृष्ण भक्तों से कहते हैं— हृदय के साथ एक बार मिलकर आता हूँ। तुम लोग बैठो।

यह कहकर काला वार्निश किया हुआ स्लीपर पहन कर पूर्व की ओर के फाटक की तरफ़ चलने लगे। साथ में केवल मास्टर हैं। लाल सुरखी का उद्यान-पथ। उसी पथ पर ठाकुर पूर्वास्य हुए जा रहे हैं। पथ पर खजांची खड़े हुए थे। उन्होंने ठाकुर को प्रणाम किया। दक्षिण में आँगन का फाटक, वहाँ पर विशेष दाढ़ी वाला द्वारपाल बैठा था। बाएँ हाथ कोठी थी— बाबुओं की बैठक, पहले यहाँ पर नीलकोठी थी, तभी इसे कोठी कहते हैं। इसके बाद पथ के दोनों ओर कुसुम-वृक्ष हैं। अदूर पथ के ठीक दक्षिण दिशा में गाजीतला और माँ काली के तालाब की

---

[1] हृदय मुखोपाध्याय ने दक्षिणेश्वर के मन्दिर में माँ काली की पूजा और ठाकुर की सेवा की थी। वे बाग के मालिक के असन्तोष-भाजन हो गए थे। इससे उनको बाग में प्रवेश करने का हुकुम नहीं था। पृष्ठ ---- का foot-note भी द्रष्टव्य।

सोपानावली-शोभित घाट है। क्रमशः पूर्व-द्वार, बाईं ओर दरबानों के घर और दक्षिण में तुलसी मंच है। उद्यान के बाहर आकर देखते हैं, यदु मल्लिक के बाग के फाटक के पास हृदय खड़े हैं।

द्वितीय परिच्छेद

(सेवक सन्निकट दण्डायमान)

हृदय हाथ जोड़े खड़े हैं। दर्शन-मात्र ही से राजपथ पर दण्डवत् गिर गए। ठाकुर ने उठने के लिए कहा। हृदय फिर हाथ जोड़ कर बालकवत् रोने लगे।

कैसा आश्चर्य! ठाकुर श्री रामकृष्ण भी रोने लगे! नेत्रों के कोनों में कई बूंद जल दिखाई दिया। उन्होंने अश्रुजल को हाथ द्वारा पोंछ दिया, जैसे आँखों में जल आया ही नहीं। यह क्या! जिस हृदय ने उनको इतनी यन्त्रणा दी थी, उसके लिए भागे आए हैं और रो रहे हैं!

श्री रामकृष्ण— अब क्यों आया?

हृदय *(रोते-रोते)*— तुमसे मिलने आ गया। अपना दुःख मैं किसके आगे कहूँ?

श्री रामकृष्ण *(सान्त्वना के लिये, सहास्य)*— गृहस्थ में इसी प्रकार दुःख है। गृहस्थ करने में ही सुख-दुःख है। (मास्टर को दिखलाकर) ये लोग भी कभी-कभी इसीलिए आते हैं। आकर ईश्वरीय दो-चार बातें सुनने से मन में शाँति होती है। तुझे किसका दुःख है?

हृदय *(रोते-रोते)*— आपका संग छूट गया, यही दुःख है।

श्री रामकृष्ण— तूने ही तो कहा था, तुम्हारा भाव तुम्हारे पास रहे, मेरा भाव मेरे पास है।

हृदय— हाँ, यह तो कहा था, मैं क्या जानता हूँ?

श्री रामकृष्ण— आज अब तो जा, फिर किसी दिन बैठकर बातें करेंगे। आज रविवार है। अनेक लोग आए हुए हैं। वे बैठे हुए हैं। अब की बार देश में धान-वान कैसा हुआ?

हृदय— हाँ, वह तो एक प्रकार से बुरा नहीं हुआ।

श्री रामकृष्ण— आज तो फिर जा, फिर और एक दिन आइयो।

हृदय ने फिर दुबारा साष्टांग होकर प्रणाम किया। ठाकुर उसी पथ से वापिस आने लगे। संग मास्टर हैं।

श्री रामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— मेरी सेवा भी जितनी की थी, यन्त्रणा भी वैसी ही दी थी! मैं जब पेट के रोग से कुछ हड्डियाँ ही रह गया था, कुछ खा नहीं सकता था, तब मुझ से कहता था, 'यह देख, मैं कैसे खाता हूँ। तुम अपने मन के भाव के कारण नहीं खा सकते।' और फिर कहता, 'मूर्ख, मैं न होता तो तुम्हारी साधुगिरी निकल जाती।' एक दिन तो इस प्रकार कष्ट दिया कि मैं पुश्ता के ऊपर खड़ा होकर ज्वार के जल में देह-त्याग करने के लिए चला गया था।

मास्टर सुनकर अवाक्! शायद सोच रहे हैं, कैसा आश्चर्य! ऐसे व्यक्ति के लिए ये अश्रु-वारि विसर्जन कर रहे थे!

श्री रामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— अच्छा, इतनी सेवा किया करता था, फिर भी उसका ऐसा क्यों हुआ? बच्चे का जिस प्रकार पालन-पोषण करते हैं, उसी प्रकार मुझे देखा है। मैं तो रात-दिन बेहोश रहता, उस पर फिर बहुत दिन तक बीमारी भोगी। वह जिस प्रकार मुझे रखता था, उसी प्रकार मैं रहता था।

मास्टर क्या कहते, चुप रहे। शायद सोच रहे थे हृदय ने सम्भवतः निष्काम होकर ठाकुर की सेवा नहीं की थी। बातें करते-करते ठाकुर अपने कमरे में पहुँच गए। भक्तगण प्रतीक्षा कर रहे थे। ठाकुर फिर उसी छोटी खाट पर बैठ गए।

तृतीय परिच्छेद

(भक्तों के संग— नाना प्रसंग— भाव, महाभाव का गूढ़ तत्त्व)

श्रीयुक्त महिमाचरण आदि के अतिरिक्त कोन्नगर के कई भक्त आए हैं। एक व्यक्ति ने श्री रामकृष्ण के साथ काफ़ी देर विचार किया था।

कोन्नगर का भक्त— महाशय, सुना था कि आपको भाव होता है, समाधि होती है। क्यों होती है, किस प्रकार से होती है, हमें समझा दीजिये।

श्री रामकृष्ण— श्रीमती को महाभाव हुआ करता था। किसी सखी के छूने के लिए जाने पर अन्य सखी कहती है, 'कृष्णविलास का अंग है, मत छू— इनकी देह के मध्य अब कृष्ण विलास कर रहे हैं।'

"ईश्वर-अनुभव हुए बिना भाव या महाभाव नहीं होता। गहरे जल में से मछली के आने पर वह जल हिलता है। खूब बड़ी मछली हो, तो जल उथल-पुथल करता है। जभी तो भाव में हँसता है, रोता है, नाचता है, गाता है।

"भाव में अधिक देर नहीं रहा जाता। दर्पण के पास बैठकर केवल मुख देखने से लोग पागल समझेंगे।"

कोन्नगर का भक्त— सुना है महाशय, आप ईश्वर-दर्शन करते रहते हैं, तो फिर हमें दिखला दें।

(कर्म व साधन बिना किए ईश्वर-दर्शन नहीं होता)

श्री रामकृष्ण— सब ही ईश्वराधीन है, मनुष्य क्या करेगा? उनका नाम करते-करते कभी अश्रु-धारा पड़ती है, कभी नहीं पड़ती। उनका ध्यान करते हुए किसी-किसी दिन सुन्दर उद्दीपन होता है और फिर किसी दिन कुछ भी नहीं होता।

“कर्म चाहिए। तभी दर्शन होता है। एक दिन भाव में हलदार पुकुर[1] देखा था। देखा, एक छोटी जाति का व्यक्ति पाना' (जल-पौधा) हटाकर जल ले रहा है, और हाथ में जल उठाकर बार-बार देखता है। मानो मुझे दिखाया, कि जल-पौधा बिना ठेले जल दिखाई नहीं देता— कर्म बिना किए भक्ति-लाभ नहीं होता, ईश्वर-दर्शन नहीं होता। ध्यान-जप— ये सब कर्म हैं; उनका नाम-गुण-कीर्तन भी कर्म है। और फिर दान, यज्ञ इत्यादि भी कर्म हैं।

“मक्खन यदि चाहते हो, तो दूध का दही जमाना चाहिए , फिर निर्जन में रखना चाहिए। तब फिर दही के जम जाने पर परिश्रम करके मन्थन करना चाहिए, फिर मक्खन निकालना चाहिए।”

महिमाचरण— जी हाँ, कर्म चाहिए ही, कर्म के बिना क्या! बहुत परिश्रम करना पड़ता है! तब फिर लाभ होता है। पढ़ना ही कितना होता है! अनन्त शास्त्र!

(पहले विद्या (ज्ञान-विचार)— या पहले ईश्वर-लाभ)

श्री रामकृष्ण *(महिमा के प्रति)*— शास्त्र कितना पढ़ोगे? कोरे विचार करने से क्या होगा? पहले उनको पाने की चेष्टा करो, गुरु-वाक्य में विश्वास करके कुछ कर्म करो। गुरु न रहे तो उनके पास (प्रभु के पास) व्याकुल होकर प्रार्थना करो। वे कैसे हैं, वे ही जनवा देंगे।

“पुस्तक पढ़कर क्या जानोगे? जब तक हाट में नहीं पहुँच पाता, तब तक दूर से ही केवल ही-ही, हो-हो शब्द होता है। हाट में पहुँचने पर और एक प्रकार का होता है। तब स्पष्ट देख सकोगे, स्पष्ट सुन सकोगे 'आलू लो, पैसे दो।'

---

[1] हलदार पुकुर— हुगली जिले के कामारपुकुर ग्राम में श्री रामकृष्ण का घर है। उस घर के सामने हलदार पुकुर नाम का एक बड़ा तालाब है।

"समुद्र दूर से 'हो-हो' शब्द करता है। निकट आने पर कितने जहाज़ जा रहे हैं, पक्षी उड़ रहे हैं, लहरें उठ रही हैं— देख पाओगे।

"बड़े बाबू के साथ परिचय आवश्यक है। उनके कितने घर, कितने बाग, कितने कम्पनी के कागज़ (शेयर), यह पहले जानने के लिये इतने व्यग्र क्यों हो? नौकरों के पास जाने पर वे खड़ा होने तक भी नहीं देंगे। वे कम्पनी के शेयरों की क्या सूचना देंगे? किन्तु जिस किसी प्रकार से भी हो, बड़े बाबू के साथ एक बार आलाप करो, वह चाहे धक्के खाकर ही हो, या घेरा लाँघ कर ही हो। तब कितने घर, कितने बाग, कितने शेयर हैं, वे ही बता देंगे। बाबू के साथ आलाप हो जाने पर फिर नौकर-चाकर, दरबान सब सलाम करेंगे।"[1] *(सब का हास्य)*।

भक्त— अब बड़े बाबू के साथ आलाप कैसे हो? *(सब का हास्य)*।

श्री रामकृष्ण— इसीलिए तो कर्म चाहिए। ईश्वर है, यह कह कर बैठे रहने से नहीं होगा। जिस किसी तरह से भी हो, उनके पास जाना होगा। निर्जन में उन्हें पुकारो, प्रार्थना करो— 'दर्शन दो, दर्शन दो' कहकर व्याकुल होकर रोओ। कामिनी-काञ्चन के लिए पागल होकर घूम सकते हो, तो फिर उनके लिए थोड़ा-सा पागल हो जाओ। लोग कहें कि ईश्वर के लिए अमुक पागल हो गया है। कुछ दिन के लिए सब त्याग करके उनको अकेले में पुकारो।

"केवल 'वे हैं', यह कहकर बैठे रहने से क्या होगा? हलदार पुकुर में बड़ी-बड़ी मछलियाँ हैं। तालाब के किनारे केवल बैठे रहने से क्या मछली मिलती है? उन्हें आकृष्ट करने के लिए मसाला तैयार करो और उनका आहार (चारा) डालो। धीरे-धीरे गहरे जल में से मछली आएगी और जल हिलेगा। तब आनन्द होगा। सम्भवतः कभी मछली तनिक-सी एक बार दिख जाए— मछली धपांग करके उछली। जब दिख गई तब और भी आनन्द।

---

[1] Seek ye first the kingdom of Heaven and all other things shall be added unto you. पहले भगवान को पा लो, फिर अन्य सब कुछ मिल जाएगा।

"दूध का दही बनाकर मन्थन कर लेने पर ही तो मक्खन मिलेगा।

(महिमा के प्रति)— "यह तो अच्छी बला हुई! ईश्वर को दिखला दो और वे चुप बैठे रहेंगे। मक्खन निकाल कर मुख के पास रखो। (सब का हास्य) अच्छी बला पड़ी— मछली पकड़ कर हाथ में दो।

"एक व्यक्ति राजा को देखना चाहता है। राजा सात ड्योढ़ियों के पार है। प्रथम ड्योढ़ी पार होने से पहले ही पूछता है, 'राजा कहाँ है?' जैसा तरीका है, एक-एक ड्योढ़ी करके तो पार होना पड़ेगा।"

(ईश्वर-लाभ का उपाय— व्याकुलता)

महिमाचरण— किस कर्म के द्वारा उन्हें पाया जा सकता है?

श्री रामकृष्ण— इस कर्म के द्वारा उनको प्राप्त किया जाएगा और इस कर्म के द्वारा नहीं— ऐसी बात नहीं। उनकी कृपा के ऊपर निर्भर है। परन्तु व्याकुल होकर कुछ कर्म तो करते ही जाना है। व्याकुल रहने से उनकी कृपा होती है।

"कोई एक सुयोग होना चाहिए— साधुसंग, विवेक, सद्गुरु-लाभ। हो सकता है, किसी बड़े भाई ने गृहस्थ का भार ले लिया; या स्त्री ही विद्याशक्ति, बड़ी धार्मिक है; या विवाह हुआ ही नहीं, गृहस्थ में बद्ध ही नहीं हुआ; ऐसे सुयोग होने पर हो जाता है।

"किसी व्यक्ति के घर में कोई सख्त बीमार था। जाय-जाय अवस्था। किसी ने कहा , स्वाति-नक्षत्र में वर्षा हो, उस वर्षा का जल एक खोपड़ी में पड़े, और एक साँप मेंढक का पीछा करता हुआ मेंढक पर झपट्टा मारने के समय ज्योंहि छलाँग मारकर कूदे, उस समय उस साँप का विष उस खोपड़ी में गिर जाए। तब विष की दवा तैयार करके यदि रोगी को खिला सको तो रोगी बच सकता है। अब जिसके घर बीमारी थी, वह व्यक्ति दिन-क्षण-नक्षत्र देखकर घर से निकला और व्याकुल होकर ये सब खोजने लगा। मन-ही-मन ईश्वर को पुकारने

लगा, 'ठाकुर! तुम यदि इन चीज़ों को प्राप्त करवा दोगे, तब तो हो जाएगा।' इस प्रकार सोचते-सोचते जाते हुए सचमुच ही उसने देखा, एक लाश के मस्तक की खोपड़ी पड़ी हुई है। देखते-देखते एक बौछार वर्षा भी पड़ गई। तब वह व्यक्ति कहता है, 'हे गुरुदेव! मरे हुए के मस्तक की खोपड़ी भी मिल गई, और फिर स्वाति-नक्षत्र में वर्षा भी हो गई, इसी वर्षा का जल भी उस खोपड़ी में गिर गया है। अब कृपा करके और जो कुछ चीज़ें हैं, उनको भी जुटा दो।' वह व्यक्ति व्याकुल होकर सोचने लगा। उसी समय देखता है एक विषधर साँप आ रहा है। तब उस व्यक्ति को बड़ा भारी आनन्द हुआ और वह इतना व्याकुल हुआ कि छाती धक्-धक् करने लगी, और कहने लगा— 'हे गुरुदेव, अब तो साँप भी आ गया है, बहुत सी वस्तुएँ तो जुट गई हैं; और जो बाकी हैं, कृपा करके जुटा दीजिए।' प्रार्थना करते-करते मेंढक भी आ गया; साँप मेंढक का पीछा करता हुआ भागने लगा; खोपड़ी के निकट आकर ज्योंहि झपट्टा मारने के लिए बढ़ा, मेंढक छलाँग मार कर दूसरी ओर जा गिरा और साँप का विष झट उसी खोपड़ी के भीतर गिर गया। तब वह व्यक्ति आनन्द में तालियाँ बजा-बजा कर नाचने लगा।

"इसीलिए कहता हूँ व्याकुलता होने पर सब हो जाता है।"

चतुर्थ परिच्छेद

संन्यास और गृहस्थाश्रम— ईश्वरलाभ और त्याग— यथार्थ संन्यासी कौन?

श्री रामकृष्ण— मन से सम्पूर्ण त्याग हुए बिना ईश्वर-लाभ नहीं होता। साधु संचय कर नहीं सकता। संचय न करे 'पक्षी और दरवेश'— पक्षी और साधु संचय नहीं करता। यहाँ का भाव है— मिट्टी से हाथ धोने के लिए मिट्टी लेकर जा नहीं सकता। बटुए में पान नहीं ले जा सकता। हृदय जब बड़ी यन्त्रणा दे रहा था, तब यहाँ से काशी चले

जाने की नियत हुई। सोचा, धोती तो ले लूँगा, किन्तु रुपया कैसे ले जाऊँगा? फिर काशी जाना नहीं हुआ। *(सब का हास्य)*।

(महिमा के प्रति)— तुम लोग गृही हो; तुम लोग यह भी रखो, वह भी रखो। संसार भी रखो, धर्म भी रखो।

महिमा— 'यह' और 'वह' क्या फिर रखे जाते हैं?

श्री रामकृष्ण— मैंने पञ्चवटी के निकट गंगा के किनारे 'रुपया मिट्टी, मिट्टी रुपया, रुपया ही मिट्टी', यह विचार कर रुपया गंगा जी के जल में फेंक दिया था। तब एक विशेष भय हुआ। सोचने लगा, मैं क्या लक्ष्मीछाड़ा[1] हो गया हूँ! माँ लक्ष्मी यदि आहार बन्द कर दें, तो फिर क्या होगा? तब हाजरा की भाँति पटवारीपन किया। कहा, 'माँ, तुम जैसे हृदय में रहो!' एक व्यक्ति के तपस्या करने से भगवती ने सन्तुष्ट होकर कहा, 'तुम वर लो!' वह बोला, 'माँ, यदि वर दोगी ही, तो यही दो कि मैं पोते के साथ सोने की थाली में भोजन खाऊँ।' एक वर में पोता, ऐश्वर्य, सोने का थाल सब हो गया! *(सब का हास्य)*।

"मन से कामिनी-काञ्चन त्याग होने पर मन ईश्वर में जाता है। वहाँ जाकर लिप्त हो जाता है। जो बद्ध हैं, वे भी मुक्ति पाते हैं। ईश्वर के विमुख होने से ही बद्ध होता है। निक्ति[2] के नीचे के काँटे में ऊपर के काँटे से अन्तर कब होता है? जब निक्ति की कटोरी में कामिनी-काञ्चन का भार पड़ता है।

"बच्चा भूमिष्ठ होकर क्यों रोता है? 'गर्भ में था, योग में था।' भूमिष्ठ होकर यह कह कर क्रन्दन करता है- 'काँहा हूँ, काँहा हूँ, मैं कहाँ आ गया हूँ? ईश्वर के पादपद्मों का चिन्तन कर रहा था, यह फिर कहाँ आ गया हूँ!'

---

[1] लक्ष्मीछाड़ा— जिसे लक्ष्मी छोड़ गई हो, अभागा, बदनसीब, आवारा, खर्चीला— bereft of grace and prosperity, a wicked, a scoundrel.

[2] निक्ति— छोटी तराजू , सोना आदि तोलने वाली काँटी।

"तुम लोगों के लिए है मन में त्याग— अनासक्त होकर गृहस्थ करो।"

(संसार-त्याग क्या आवश्यक?)

महिमा— उनके ऊपर मन के चले जाने पर क्या मन फिर और गृहस्थ में रहता है?

श्री रामकृष्ण— यह कैसी बात? संसार (गृहस्थ) में नहीं रहेगा तो फिर कहाँ पर जाएगा? मैं तो देख रहा हूँ, जहाँ पर भी रहता हूँ, राम की अयोध्या में ही हूँ। यह जगत् गृहस्थ राम की अयोध्या है। रामचन्द्र गुरु से ज्ञान-लाभ करने पर बोले— मैं संसार-त्याग करूँगा। दशरथ जी ने उनको समझाने के लिए वशिष्ठ जी को बुलाया। वशिष्ठ जी ने देखा राम को तीव्र वैराग्य हुआ है। तब बोले, 'राम, पहले मेरे साथ विचार करो, तब फिर संसार-त्याग करना। अच्छा बताओ, संसार क्या ईश्वर के बिना है? यदि ऐसा है, तो तुम त्याग कर दो।' राम ने देखा, ईश्वर ही जीव-जगत् सब कुछ बने हैं। उनकी सत्ता से समस्त सत्य प्रतीत होता है। तब रामचन्द्र चुप हो गए।

"संसार में काम, क्रोध इत्यादि के साथ युद्ध करना होता है। नाना वासनाओं के संग युद्ध करना होता है, आसक्ति के साथ युद्ध करना होता है। युद्ध किले में से ही हो तो सुविधा है। गृह में रहकर ही युद्ध अच्छा है। खाना मिलता है, धर्मपत्नी बहुत प्रकार से सहायता करती है। कलि में अन्नगत प्राण हैं। अन्न के लिए सात जगहों पर घूमने की अपेक्षा तो एक जगह ही अच्छी है। गृह रूपी किले के भीतर रहकर मानो युद्ध करना है।

"और संसार में, तूफ़ान में जूठी पत्तल की तरह होकर रहो। तूफ़ान जूठी पत्तल को कभी घर के भीतर ले जाता है, कभी बटोर कर ढेर पर ले जाता है। हवा जिस ओर जाती है, पत्तल भी उसी ओर जाती है। कभी अच्छी जगह पर और कभी बुरी जगह पर। तुमको तो अब संसार

में डाल दिया है। अच्छा है, अब उसी स्थान पर ही रहो। और फिर जब उस स्थान से उठाकर उससे अच्छी जगह ले जाकर फेंकेंगे, तब जो होना है, होगा।"

(संसार में आत्म-समर्पण— Resignation— राम की इच्छा)

"संसार में रखा हुआ है, तो फिर क्या करोगे? समस्त उनको समर्पण करो। तब फिर और कोई भी गड़बड़ नहीं रहेगी। तब देखोगे, वे ही सब कर रहे हैं। सब ही राम की इच्छा है।"

एक भक्त— 'राम की इच्छा' कहानी क्या है?

श्री रामकृष्ण— किसी ग्राम में एक जुलाहा रहता था। बड़ा धार्मिक था, सब लोग ही उसका विश्वास करते और उसको प्यार करते थे। जुलाहा दुकान पर जाकर धोती बेचता। खरीदार दाम पूछता तो कहता, 'राम की इच्छा, सूत का दाम एक रुपया; राम की इच्छा, मेहनत का दाम चार आना; राम की इच्छा से मुनाफ़ा दो आना। धोती का दाम राम की इच्छा से एक रुपया छः आना।' लोगों का इतना विश्वास था कि तत्क्षण दाम देकर कपड़ा ले लेते। व्यक्ति बड़ा भक्त था। रात को खाने-पीने के बाद देर तक चण्डी-मण्डप में बैठकर ईश्वर-चिन्तन किया करता, उनका नाम-गुण-कीर्तन करता। एक दिन बहुत रात हो गई थी। व्यक्ति को निद्रा नहीं आ रही थी। बीच-बीच में तम्बाकू पी रहा था। उस समय उसी पथ से डाकुओं का एक दल डकैती करने जा रहा था। उनके पास कुली का अभाव होने से उसी जुलाहे से आकर बोले, 'आ हमारे साथ'— यह कहकर हाथ पकड़कर खींच कर ले चले। तत्पश्चात् एक गृही के घर जाकर डकैती की। कितनी ही चीज़ें जुलाहे के सिर पर लाद दीं। उसी वक्त पुलिस आ गई। डाकू तो भाग गए, केवल जुलाहे के सिर पर का बोझा पकड़ लिया। उस रात उसे हिरासत में रखा गया। अगले दिन मैजिस्ट्रेट के पास विचार हुआ। ग्राम के लोगों को पता लगने पर सब आ गए। वे सब बोले, 'हुज़ूर! यह

व्यक्ति कभी भी डकैती नहीं कर सकता।' साहब ने तब जुलाहे से पूछा, 'क्यों भाई, तुम्हारे साथ यह कैसे हुआ, बताओ?' जुलाहा बोला, 'हुजूर! राम की इच्छा, मैंने रात को भात खाया। फिर राम की इच्छा, मैं चण्डी-मण्डप में बैठा था। राम की इच्छा, बहुत रात हो गई। मैं राम की इच्छा से उनका चिन्तन कर ही रहा था और उनका नाम-गुण-गान कर रहा था, उस समय राम की इच्छा, डाकुओं का एक दल उसी पथ से जा रहा था। राम की इच्छा, वे मुझे खींचकर ले गए। राम-इच्छा, उन्होंने एक गृही के घर डकैती डाली। राम की इच्छा, मेरे सिर पर बोझा रखा। उस समय राम की इच्छा से मैं पकड़ा गया। तब राम की इच्छा, पुलिस वालों ने हिरासत में दे दिया। आज सुबह राम की इच्छा, हुजूर के पास ले आए हैं।'

"ऐसा धार्मिक आदमी देखकर साहब ने जुलाहे को छोड़ दिया। जुलाहा रास्ते में बन्धुओं से कहता है, राम की इच्छा, मुझे छोड़ दिया।' "संसार में रहना, संन्यास लेना, सब ही राम की इच्छा। तभी उनके ऊपर सब छोड़ कर संसार का काम करो।

"वह न हो तो फिर करोगे ही क्या?

"एक मुंशी जेल में गया था। जेल की सज़ा समाप्त हो गई। वह जेल से आ गया। अब वह क्या केवल धेई-धेई करके नाचेगा अथवा मुंशीगिरी करेगा?

"संसारी यदि जीवन्मुक्त हो जाता है, वह इच्छा मात्र से ही संसार में रह सकता है। जिसे ज्ञान-लाभ हो गया है, उसके लिये यहाँ-वहाँ नहीं है; उसके लिए सब समान हैं। जिसका वहाँ पर है, उसका यहाँ पर भी है।"

(पूर्वकथा— केशवसेन के संग बातें— संसार में जीवन्मुक्त)

"जब केशवसेन को बागान में प्रथम देखा था तो कहा था, 'इसकी पूँछ झड़ गयी है।' सारी सभा के लोग हँस पड़े। केशव ने कहा, 'तुम

लोग हँसो मत, इसका कुछ मतलब है। इनसे पूछता हूँ।' मैंने बताया, मेंढक की पूँछ जब तक नहीं झड़ती, तब तक केवल उसे जल में रहना पड़ता है। मेंढ़ पर चढ़कर स्थल पर टहल नहीं सकता। ज्योंहि पूँछ झड़ जाती है, त्योंहि छलाँग मार कर स्थल पर आ जाता है। तब जल में भी रहता है और स्थल पर भी रहता है। वैसे ही मनुष्य की जब तक अविद्या की पूँछ नहीं झड़ती, तब तक संसार रूपी जल में पड़ा रहता है। अविद्या की पूँछ झड़ जाने पर , ज्ञान हो जाने पर, तब मुक्त होकर घूम सकता है, और फिर इच्छा हो तो गृहस्थ में भी रह सकता है।"

पंचम परिच्छेद

(गृहस्थाश्रम कथा-प्रसंग में— निर्लिप्त गृहस्थी)

श्रीयुक्त महिमाचरण आदि भक्तगण बैठे हुए श्री रामकृष्ण की हरि-कथा का अमृत-पान कर रहे हैं। बातें मानो विविध रंगों में रत्न हैं, जो जितना बटोर सकते हैं, बटोर रहे हैं। किन्तु धोती की झोली भर गई है। इतना भारी लग रहा है कि उठाया नहीं जाता। छोटा-छोटा आधार है, अधिक धारण नहीं होता। सृष्टि के आरम्भ से अब तक जितने विषयों की मनुष्य के हृदय में जितनी उलझनें, समस्याएँ उदय हुई हैं, सब समस्याएँ पूरण हो रही हैं। पद्मलोचन, नारायण शास्त्री, गौरी पण्डित, दयानन्द सरस्वती इत्यादि शास्त्रविद् पण्डितगण अवाक् हो गए हैं। दयानन्द ने श्री रामकृष्ण के जब दर्शन किए और उनकी समाधि-अवस्था देखी, तब आक्षेप करके बोले थे, 'हम लोगों ने इतना वेद-वेदान्त केवल पढ़ा है, किन्तु इस महापुरुष में उसका फल देख रहा हूँ। इनको देख कर प्रमाणित हो गया है कि पण्डित-जन तो शास्त्र-मन्थन करके केवल छाछ पीते हैं। ऐसे महापुरुष केवल समस्त मक्खन खाते हैं।' और फिर अंग्रेजी पढ़े हुए केशवचन्द्र सेन आदि पण्डितगण भी ठाकुर को देखकर अवाक् हो गए हैं। सोचते हैं, कैसा आश्चर्य! निरक्षर

व्यक्ति ऐसी बातें किस प्रकार समझाते हैं। यह तो बिल्कुल ईसा मसीह जैसी बात है। ग्राम्य भाषा! वे ही कहानियाँ कह-कह कर समझाते हैं— जिससे पुरुष, स्त्री, लड़के, सब ही अनायास में समझ सकते हैं। ईसा फ़ादर-फ़ादर (पिता-पिता) करके पागल हो गए थे। ये माँ-माँ करके पागल हैं। केवल ज्ञान का ही अक्षय भण्डार नहीं, ईश्वर-प्रेम कलसी-कलसी भर-भर उँडेलें, तब भी नहीं समाप्त होता। ये भी ईसा की भाँति त्यागी हैं, उनकी भाँति ही इनका भी ज्वलन्त विश्वास है। तभी तो बातों में इतना ज़ोर है। संसारी लोग बोलें तो इतना ज़ोर नहीं होता, क्योंकि वे त्यागी नहीं होते। उनका ज्वलन्त विश्वास कहाँ? केशवसेन आदि पण्डितगण और भी सोचते हैं— इस प्रकार निरक्षर व्यक्ति का इतना उदार भाव क्योंकर हुआ? कैसा आश्चर्य! किसी भी प्रकार का विद्वेष-भाव नहीं है। सब धर्मावलम्बियों का आदर करते हैं; किसी के साथ भी झगड़ा नहीं।

आज महिमाचरण के साथ ठाकुर की कथा-वार्त्ता सुनकर कोई भक्त सोच रहे हैं, ठाकुर ने गृहस्थ-त्याग करने के लिए तो नहीं कहा। बल्कि कहा, गृहस्थ किले जैसा है। इस किले में रहकर काम-क्रोध इत्यादि के साथ युद्ध किया जा सकता है। और भी कहते हैं, गृहस्थ में नहीं रहोगे तो जाओगे कहाँ? मुंशी जेल से बाहर आकर मुंशीगिरी का ही तो काम करता है। अतः एक तरह से कहा कि जीवन्मुक्त गृहस्थ में भी रह सकता है। आदर्श— केशवसेन। उनसे कहा था, तुम्हारी ही पूँछ झड़ी है और किसी की नहीं। किन्तु एक बात विशेष ठाकुर ने कही है, 'कभी-कभी निर्जन में रहना होगा। वृक्ष के छोटे पौधे को घेरा लगाना होगा। नहीं तो बकरी-गाय खा लेंगी। वृक्ष का तना मोटा होने पर घेरा तोड़ो या न तोड़ो। यहाँ तक कि हाथी बाँध देने पर भी वृक्ष का कुछ नहीं होगा। निर्जन में रहकर ज्ञान-लाभ करके, ईश्वर-भक्ति-लाभ करके गृहस्थ में आकर रहने पर कुछ भय नहीं। इसीलिए तो निर्जन वास की बात ही केवल कहते।

भक्त इसी प्रकार का चिन्तन कर रहे हैं। श्री रामकृष्ण केशव की बातों के पश्चात् और एक-दो गृहस्थ भक्तों की बातें करते हैं।

(श्री देवेन्द्रनाथ ठाकुर— योग और भोग)

श्री रामकृष्ण *(महिमाचरण आदि के प्रति)*— और फिर सेजोबाबू[1] के साथ देवेन्द्र ठाकुर को देखने गया था। सेजोबाबू से कहा था, 'मैंने सुना है, देवेन्द्र ठाकुर ईश्वर-चिन्तन करते हैं, मेरी उन्हें मिलने की इच्छा होती है।' सेजोबाबू ने कहा, 'अच्छा बाबा (पिता), मैं तुम्हें ले जाऊँगा। हम हिन्दू कॉलेज में एक क्लास में पढ़ा करते थे, मेरे साथ विशेष प्रीति है।' सेजोबाबू के साथ जाकर अनेक दिन पश्चात् मिलना हुआ। देख कर देवेन्द्र बोले, 'तुम थोड़ा बदल गए हो, तुम्हारी तोंद निकल आई है।' सेजोबाबू ने मेरी बात बताई, 'ये तुम्हें मिलने आए हैं— ये ईश्वर-ईश्वर करके पागल हैं।' मैंने लक्षण देखने के लिए देवेन्द्र से कहा, 'देखूँ जी, तुम्हारा शरीर।' देवेन्द्र ने शरीर से कुरता उतार लिया। देखा, गौर-वर्ण मानो उस पर सिंदूर छिड़का हुआ है। तब देवेन्द्र के बाल पके नहीं थे।

"जाकर प्रथम थोड़ा अभिमान देखा। वह क्यों नहीं होगा? इतना ऐश्वर्य, विद्या, मान, इज़्ज़त। अभिमान देख कर सेजोबाबू से कहा, 'अच्छा, अभिमान ज्ञान से होता है या अज्ञान से होता है? जिसे ब्रह्म-ज्ञान हुआ है, उसका 'मैं पण्डित', 'मैं ज्ञानी', 'मैं धनी' यह अभिमान रह सकता है?'

"देवेन्द्र के साथ बातें करते-करते मेरी हठात् वही अवस्था हो गई। उस विशेष अवस्था के हो जाने पर मैं लोगों को देख सकता हूँ कि कौन

---

[1] सेजोबाबू— राणी रासमणि का दामाद, श्रीयुक्त मथुरानाथ विश्वास। ठाकुर की आरम्भ से ही अतिशय भक्ति के साथ शिष्यवत् सेवा किया करते।

किस प्रकार का मनुष्य है। मेरे अन्दर से ही-ही करके विशेष हँसी उठी। जब ऐसी अवस्था हो जाती है, तब पण्डित तृणवत् बोध होते हैं। यदि देखता हूँ कि पण्डित में विवेक- वैराग्य नहीं है, तब वह घास-फूस जैसा बोध होता है। तब देखता हूँ कि गीध (शकुनि) जैसे खूब ऊँचाई पर उड़ रहा है, किन्तु उसकी दृष्टि मरघट पर है।

"देखो, योग-भोग दोनों ही हैं। अनेक बाल बच्चे हैं छोटे-छोटे; डॉक्टर आया है। इसी कारण ऐसा हुआ है। इतना ज्ञानी होकर भी गृहस्थी लेकर सर्वदा रहना पड़ रहा है। कहा, तुम कलियुग के जनक हो। जनक ने जगत् और ज्ञान दोनों रखकर दूध का कटोरा पिया था। 'तुमने गृहस्थ में रहकर ईश्वर में मन रखा हुआ है', सुनकर, तुम्हें देखने के लिए आया हूँ। मुझे कुछ ईश्वरीय कथा सुनाओ।

"तब वेद में से कुछ-कुछ सुनाया। कहा, यह जगत् मानो एक झाड़फानूस जैसा बना है और जीव बना है झाड़फानूस का एक-एक दीपक। 'मैंने यहाँ पर पञ्चवटी में जब ध्यान किया था, ठीक वैसा ही देखा था। देवेन्द्र की वाणी के साथ मेल देख कर सोचा, तब तो यह बहुत बड़ा मनुष्य है। व्याख्या करने के लिए कहा, तब बोला, 'इस जगत् को कौन जानता था? ईश्वर ने मनुष्य बनाए हैं, उनकी महिमा प्रकाशित करने के लिए। झाड़ का प्रकाश न होता तो सब अन्धकार ही अन्धकार होता, झाड़ तक भी नहीं दिखाई देता'।"

(ब्राह्मसमाज में असभ्यता— काप्तेन, भक्त गृहस्थ)

"बहुत-सी बातों के पश्चात् देवेन्द्र खुश होकर बोले, 'आपको उत्सव में आना होगा।' मैंने कहा, 'वह ईश्वर की इच्छा है, मेरी तो ऐसी अवस्था है, देख ही रहे हो— कब किस भाव में वे रखती हैं।' देवेन्द्र कहने लगे, 'नहीं जी, आना ही होगा, फिर भी धोती और चादर पहन कर आना। तुम्हें अव्यवस्थित (उल्टा-पुल्टा) देखकर किसी के कुछ कह

देने पर मुझे कष्ट होगा।' मैंने कहा, 'वैसा नहीं कर सकूँगा, मैं बाबू बन नहीं सकूँगा।' देवेन्द्र, सेजोबाबू (मथुर बाबू) सब हँसने लगे।

"उसके दूसरे दिन ही सेजोबाबू के पास देवेन्द्र की चिट्ठी आई— मुझे उत्सव देखने के लिए जाने को मना किया था। कारण— शरीर पर यदि चादर नहीं ठहरेगी तो असभ्यता होगी। *(सब का हास्य)*।

(महिमा के प्रति)— और एक हैं , काप्तेन[1]। गृहस्थी तो चाहे वे हैं, किन्तु बड़े भारी भक्त हैं, तुम उनके साथ आलाप करना।

"काप्तेन को वेद, वेदान्त, श्रीमद्भागवत, गीता, अध्यात्म इत्यादि सब कण्ठस्थ हैं। तुम आलाप करके देखो।

"भक्ति खूब है! मैं बराहनगर में सड़क पर जा रहा था, तो उसने मेरे ऊपर छतरी पकड़ ली। अपने घर ले जाकर कितनी सेवा करता है। पंखा झलता है, पाँव दबा देता है और तरह-तरह की तरकारी बना कर खिलाता है। मैं एक दिन उसके घर में पाखाने में बेहोश हो गया था। वह इतना आचारी है, तो भी पाखाने के भीतर मेरे पास जाकर पाँव खोलकर बिठा दिया। इतना आचारी है किन्तु घृणा नहीं की।

"काप्तेन का बहुत खरचा है। काशी में भाई रहते हैं, उन्हें देना पड़ता है। स्त्री पहले ही कृपण थी। अब इतनी परेशान हो गई है कि हर प्रकार के खरच कर नहीं सकती। काप्तेन की स्त्री ने मुझे बताया था कि उसे गृहस्थ अच्छा नहीं लगता। जभी कभी कहा था, गृहस्थ छोड़ दूँगी। बीच-बीच में 'छोड़ दूँगी-छोड़ दूँगी' कहा करती। उनका वंश ही भक्त है। बाप लड़ाई में जाते थे। सुना है लड़ाई के समय एक हाथ में शिव-पूजा और दूसरे हाथ में नंगी तलवार लेकर युद्ध किया करते थे।

---

[1] काप्तेन— ठाकुर कप्तान को 'काप्तेन' कहा करते थे। श्री विश्वनाथ उपाध्याय, नेपाल निवासी, नेपाल के राजा के वकील, राज-प्रतिनिधि, कलकत्ता में रहा करते। अति सदाचारनिष्ठ ब्राह्मण और परम भक्त थे।

"यह व्यक्ति बड़ा आचारी है। मैं केशवसेन के पास जाया करता था, इसलिये यहाँ पर एक महीना नहीं आया। कारण, केशव सेन भ्रष्टाचारी है— अंग्रेज़ों के संग खाता है, भिन्न जाति में लड़की की शादी कर दी है, जाति-पाँति नहीं है। मैंने कहा था, 'मुझे इन सब बातों से क्या प्रयोजन? केशव हरि-नाम करता है, देखने जाता हूँ। ईश्वरीय कथा सुनने जाता हूँ। मैं बेर खाता हूँ, काँटों से मेरा क्या काम?' फिर भी मुझे नहीं छोड़ा। बोला, 'तुम केशवसेन के यहाँ क्यों जाते हो?' तब मैंने कुछ विरक्त हो कर कहा, 'मैं तो रुपये के लिए नहीं जाता— मैं हरि-नाम सुनने जाता हूँ, और तुम लॉट साहिब के घर कैसे जाते हो? वे तो म्लेच्छ हैं, उनके संग कैसे ठहरते हो?' इतना कुछ कहने पर तब फिर कुछ थमा। किन्तु भक्ति खूब है। जब पूजा करता है, कर्पूर की आरती करता है और पूजा करते-करते आसन पर बैठ कर स्तव करता है। तब एक और ही मनुष्य होता है; मानो तन्मय हो जाता है!"

षष्ठ परिच्छेद

(वेदान्त विचार— मायावाद और श्री रामकृष्ण)

श्री रामकृष्ण *(महिमाचरण के प्रति)*— वेदान्त-विचार में संसार मायामय, स्वप्नवत्— सब मिथ्या। जो परमात्मा हैं, वे साक्षी स्वरूप हैं— जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति तीनों अवस्थाओं में ही साक्षी स्वरूप हैं। ये समस्त तुम्हारे भाव की बातें हैं। स्वप्न भी जितना सत्य है, जागरण भी उतना ही सत्य है। एक कहानी सुनो। तुम्हारे भाव की है—

"एक गाँव में एक किसान रहता था। बड़ा ज्ञानी था। खेती-बाड़ी. करता था। स्त्री थी। बहुत दिन बाद एक बेटा हुआ। नाम रखा हारु। लड़के पर माता-पिता दोनों का ही प्यार था। क्यों न होता? सबका धन नीलमणि। किसान धार्मिक था। गाँव के सब लोग ही उसे चाहते थे। एक दिन खेत में काम कर रहा था, तब किसी ने आकर खबर दी कि

हारु को कालरा (हैज़ा) हो गया है। किसान ने घर जाकर बहुत इलाज किया, किन्तु लड़का मर गया। घर के सब दुःखी हुए। किन्तु किसान को जैसे कुछ भी नहीं हुआ। उलटा सबको समझाता था कि शोक में दुःखी होकर क्या होगा? उसके पश्चात् फिर खेती-बाड़ी करने चला गया। लौटकर घर आकर देखा कि स्त्री और भी रो रही है। स्त्री ने कहा, 'तुम कैसे निष्ठुर हो! लड़के के लिए एक बार रोए भी तो नहीं।' किसान ने तब स्थिर होकर कहा, 'क्यों नहीं रोता, बतलाता हूँ। मैंने कल एक बड़ा बढ़िया स्वप्न देखा था। देखा कि मैं राजा बन गया हूँ, और आठ लड़कों का पिता बन गया हूँ। बड़े सुख में हूँ, फिर नींद टूट गई। अब बड़ी चिन्ता में पड़ गया हूँ। मैं अपने उन आठ बेटों के लिए शोक करूँ या तुम्हारे एक लड़के के लिए शोक करूँ?'

"किसान ज्ञानी था। तभी देख रहा था, स्वप्न की अवस्था भी जिस प्रकार मिथ्या है, जागरण-अवस्था भी वैसी ही मिथ्या है। एक नित्यवस्तु वही आत्मा है।

"मैं सब ही लेता हूँ। तुरीय और फिर जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति। मैं तीनों अवस्थाएँ ही लेता हूँ। ब्रह्म और फिर माया, जीव, जगत्— मैं सब ही लेता हूँ। समस्त न लेने पर वज़न कम हो जाता है।"

एक भक्त— वज़न क्यों कम हो जाता है? *(सब का हास्य)*।

श्री रामकृष्ण— ब्रह्म-जीव-जगत्-विशिष्ट। प्रथम नेति-नेति करने के समय जीव-जगत् को छोड़ देना चाहिए। अहं बुद्धि जब तक है, तब तक ये ही बने हुए हैं, यह बोध होता है— वे ही चौबीस तत्त्व बने हैं।

"बेल का सार कहने पर गूदा ही समझ में आता है, तब बीज और छिलका फेंक देना चाहिए। किन्तु बेल कितने वज़न का था, बताने के लिए केवल गूदा तोलने से नहीं चलता। वज़न के समय गूदा, बीज, छिलका सब लेना होगा। जिसका गूदा है, उसका ही बीज है, उसका ही छिलका है।"

(जिनका नित्य है— उनकी ही लीला है)

"जभी तो मैं नित्य, लीला सब ही लेता हूँ। माया कहकर जगत्, संसार को उड़ा नहीं देता। वैसा होने पर वज़न में कम हो जाएगा।"

(मायावाद और विशिष्टाद्वैतवाद— ज्ञानयोग और भक्तियोग)

महिमाचरण— यह सुन्दर सामंजस्य है , नित्य से ही लीला और फिर लीला से ही नित्य है।

श्री रामकृष्ण— ज्ञानी लोग सब स्वप्नवत् देखते हैं। भक्तगण सारी अवस्थाएँ लेते हैं। ज्ञानी बून्द-बून्द (छिडिक् छिडिक्) करके दूध देता है। (सब का हास्य)। कोई-कोई गाय खूब छाँट-छाँट कर खाती है और तभी छिडिक् छिडिक् दूध देती है। जो इतना छाँटती नहीं (मीनमेख नहीं करती), और सब कुछ खा लेती है , वह 'हुड़-हुड़' दूध देती है। उत्तम भक्त नित्य और लीला दोनों ही लेता है। इसीलिये नित्य से मन के नीचे उतर जाने पर भी उनका सम्भोग कर सकता है। उत्तम भक्त[1] हुड़-हुड़ करके (तेज़ी से धारमधार) दूध देता है। *(सब का हास्य)*।

महिमा— इसलिए उस दूध में एक विशेष गन्ध होती है। *(सब का हास्य)*।

श्री रामकृष्ण *(सहास्य)*— हाँ, होती है। किन्तु थोड़ा ओटाना पड़ता है। आग पर ओटा लेना चाहिए। ज्ञानाग्नि पर दूध को थोड़ा चढ़ा देना चाहिए, तब फिर वह गन्ध नहीं रहेगी *(सब का हास्य)*।

---

[1] उत्तम भक्त—

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥ —गीता 6:30

(ओंकार और नित्यलीलायोग)

श्री रामकृष्ण *(महिमा के प्रति)*— ओंकार की व्याख्या तुम लोग केवल 'अकार, उकार, मकार' से करते हो।

महिमाचरण— अकार, उकार, मकार अर्थात् सृष्टि, स्थिति, प्रलय।

श्री रामकृष्ण— मैं घण्टे के 'टं' शब्द से उपमा देता हूँ। ट-अ-अ-म्। लीला से नित्य में लय— स्थूल, सूक्ष्म, कारण से महाकारण में लय। जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति से तुरीय में लय। और फिर घण्टा बजा, मानो समुद्र में एक बड़ी वस्तु गिरी और तरंग आरम्भ हो गई। नित्य से लीला आरम्भ हो गई, महाकारण से स्थूल, सूक्ष्म, कारण शरीर दिखाई दिया— उसी तुरीय से ही जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति सब अवस्थाएँ आ गईं। और फिर महासमुद्र की तरंग महासमुद्र में लय हो गई। नित्य को पकड़-पकड़ कर लीला, और फिर लीला को पकड-पकड कर नित्य मुझे दिखला दिया है।[1] मैं 'टं' शब्द की उपमा देता हूँ। मैंने बिल्कुल यही समस्त देखा है। मुझे दिखला दिया है— चित्समुद्र, अन्त नहीं। उसमें से यह समस्त लीला उठी, और उसी में ही लय हो गई। चिदाकाश में कोटि ब्रह्माण्डों की उत्पत्ति, और फिर उसमें ही लय हो जाता है। तुम लोगों की पुस्तक में क्या है, इतना नहीं जानता।

महिमा— जिन्होंने देखा है, उन्होंने तो शास्त्र नहीं लिखा। वे तो अपने भाव में ही विभोर रहे। लिखेंगे कब? लिखने के लिए तो कुछ हिसाबी बुद्धि का प्रयोजन है। उनसे सुनकर अन्य लोगों ने लिखा है।

---

[1] From the Absolute to the relative, from the Infinite to the finite-from the Undifferentiated to the differentiated — from the Unconditioned to the conditioned and again from the relative to the Absolute.

(संसार-आसक्ति कब तक— ब्रह्मानन्द पर्यन्त)

श्री रामकृष्ण— संसारी जन पूछते हैं, कामिनी-काञ्चन से आसक्ति क्यों नहीं जाती? उनको पा लेने पर आसक्ति चली जाती है।[1] यदि एक बार ब्रह्मानन्द पा लिया जाए, तो फिर इन्द्रिय-सुख-भोग करने के लिए या अर्थ, मान, इज़्ज़त के लिए मन फिर नहीं दौड़ता। बरसाती कीड़ा (पतंगा) यदि एक बार प्रकाश देख लेता है, तो अन्धकार में फिर नहीं जाता।

"रावण से कहा था, 'तुम सीता के लिए माया द्वारा नाना रूपों को धारण करते हो। एक बार राम-रूप धारण करके सीता के पास क्यों नहीं जाते?' रावण ने कहा, 'तुच्छं ब्रह्मपदं परवधूसंगः कुतः'— जब राम का चिन्तन करता हूँ, तब ब्रह्मपद ही तुच्छ हो जाता है, परस्त्री की तो सामान्य बात है। उस राम-रूप को कैसे धारण करूँगा?'

(जितनी भक्ति बढ़ती है, संसार-आसक्ति कम हो जाती है— श्री चैतन्य भक्त निर्लिप्त)

"उसी के लिए ही साधन-भजन है। उनका जितना ही चिन्तन करेगा, उतनी ही संसार की सामान्य भोग की वस्तुओं पर आसक्ति कम होगी। उनके पादपद्मों में जितनी भक्ति होगी, उतनी ही विषय-वासना कम हो जाएगी, उतनी ही देहसुख की ओर नज़र कम हो जाएगी, परस्त्री मातृवत् बोध होगी, अपनी स्त्री धर्म की सहायक-बन्धु बोध होगी। पशु-भाव चला जाएगा। देव-भाव आएगा। संसार में एकदम अनासक्त हो जाएगा। तब संसार में यद्यपि रहता है, तो भी जीवन्मुक्त होकर फिरेगा। चैतन्यदेव के भक्त अनासक्त होकर संसार में थे।"

---

[1] रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते।

(ज्ञानी और भक्त का गूढ़ रहस्य)

(महिमा के प्रति)— जो ठीक भक्त है, उसके पास हज़ार वेदान्त विचार करो, और 'स्वप्नवत्' ही कहो, उसकी भक्ति जाने वाली नहीं होती। घूम फिर कर थोड़ी बहुत रहेगी ही। एक मूसल बेंत के बन में पड़ा हुआ था, उससे ही हुआ 'मूसलं कुलनाशनम्'।

"शिव-अंश में जन्म लेने पर ज्ञानी होता है। ब्रह्म सत्य, जगत् मिथ्या— इसी ज्ञान की ओर मन सर्वदा जाता है। विष्णु-अंश में जन्म लेने पर प्रेम-भक्ति होती है। वह प्रेम-भक्ति जाने वाली नहीं होती। ज्ञान-विचार के पश्चात् यही प्रेम-भक्ति यदि कम हो भी जाती है, तो फिर और एक समय हू-हू करके बढ़ जाती है; यदु वंश ध्वंस कर दिया था मूसल ने, उसकी ही भाँति।"

सप्तम परिच्छेद

(मातृसेवा और श्री रामकृष्ण— हाजरा महाशय[1])

ठाकुर श्री रामकृष्ण के कमरे के पूर्व वाले बरामदे में बैठकर हाजरा महाशय जप करते हैं। वयस् 46/47 होगी। ठाकुर के देश का व्यक्ति है। अनेक दिनों से वैराग्य हुआ है। बाहर-बाहर घूमते रहते हैं। कभी-कभी घर पर जाकर रहते हैं। घर पर कुछ ज़मीन आदि है। उससे स्त्री, पुत्र, कन्या आदि का भरण-पोषण करते हैं। फिर भी प्रायः हज़ार

---

[1] हाजरा महाशय— ठाकुर श्री रामकृष्ण की जन्मभूमि कामारपुकुर ग्राम के निकट मड़ागोड़ ग्राम इनकी जन्म-भूमि है। 1306 (बं०) साल, 1900 ईसवी, चैत्र मास में अपने देश में रहते हुए इन्हें परलोक प्राप्त हुआ। मृत्यु के समय ठाकुर के लिए इनके अद्भुत विश्वास और भक्ति का परिचय मिलता है। इनकी आयु 63-64 वर्ष की हो गई थी।

रुपया देना है। उसके लिए हाजरा महाशय सर्वदा चिन्तित रहते हैं। और किस प्रकार ऋण उतारा जाए; सर्वदा यही चिन्ता करते रहते हैं। कलकत्ता में सर्वदा यातायात है। वहाँ पर ठनठने निवासी श्रीयुक्त ईशानचन्द्र मुखोपाध्याय महाशय उनका खूब आदर करते हैं और साधुकी न्यायीं सेवा करते हैं। ठाकुर श्री रामकृष्ण ने उनको यत्न से रखा हुआ है। धोती आदि फट जाने पर धोती आदि दिलवा देते हैं। सर्वदा हाल पूछते हैं और ईश्वरीय कथा उनके साथ सर्वदा होती रहती है। हाजरा महाशय बड़े तार्किक हैं, प्रायः बातें करते-करते तर्क की तरंग में एक ओर को बह जाते हैं। बरामदे में आसन लगा कर सर्वदा जप की माला लेकर जप करते रहते हैं।

हाजरा महाशय की माताजी के असुख का संवाद आया है। रामलाल के देश से आते समय उन्होंने उनका हाथ पकड़ कर बहुत-बहुत कहा था, अपने चाचा जी से मेरी विनती बताकर कहना, वे जिस प्रकार से हो, प्रताप से कहकर देश भेज दें; एक बार जैसे मेरे साथ मेल हो जाए। ठाकुर ने वही बात हाजरा से कही थी, 'एक बार घर जाकर माँ के साथ मिलकर आ जाओ; उन्होंने रामलाल से बहुत-बहुत करके कह दिया है। माँ को कष्ट देकर क्या कभी ईश्वर को पुकारा जाता है? एक बार मिलकर फिर चले आओ।'

भक्तों की सभा भंग हो जाने पर महिमाचरण हाजरा को साथ लेकर ठाकुर के निकट आए। मास्टर भी हैं।

महिमाचरण *(श्री रामकृष्ण के प्रति, सहास्य)*— महाशय! आप से कुछ कहना है। आपने क्यों हाजरा से घर जाने को कहा है, जबकि उसकी गृहस्थ में जाने की इच्छा नहीं है?

श्री रामकृष्ण— उसकी माँ ने रामलाल के पास बहुत दुःख किया है, तभी कहा था— तीन दिन के लिए ही चाहे जाओ, एक बार मिलकर आ जाओ, माँ को कष्ट देकर क्या ईश्वर-साधना होती है? मैं वृन्दावन में रहने जा रहा था, तब माँ की याद आ गई। सोचा माँ तो रोएँगी, तब फिर सेजोबाबू के साथ यहाँ पर चला आया।

"फिर संसार में जाते हुए ज्ञानी को भय क्या?"

महिमाचरण *(सहास्य)*— महाशय, ज्ञान हो जाए तभी तो!

श्री रामकृष्ण *(सहास्य)*— हाजरा का सब कुछ हो गया, तनिक-सा मन गृहस्थ में है— लड़के हैं, कुछ रुपया उधार चढ़ा हुआ है। मामी का सब रोग हट गया है, थोड़ा-सा कसूर (शेष) है! *(सब का हास्य)*।

महिमा— ज्ञान कहाँ हुआ है, महाशय?

श्री रामकृष्ण *(हँसते हुए)*— नहीं भाई, तुम नहीं जानते। सब ही कहते हैं, हाजरा ही एक भक्त ऐसा है जो रासमणि के मन्दिर में रहता है। हाजरा का ही नाम करते हैं, यहाँ का नाम कहाँ करते हैं? *(सब का हास्य)*।

हाजरा— आप निरुपम हैं, आपकी उपमा नहीं है। इसीलिए आपको कोई समझ नहीं सकता।

श्री रामकृष्ण— तभी तो निरुपम के साथ कोई कार्य नहीं होता, तो फिर यहाँ का नाम कोई क्यों करेगा?

महिमाचरण— महाशय! वह क्या जानता है? आप जिस प्रकार उपदेश देंगे, वह वही करेगा।

श्री रामकृष्ण— क्यों, तुम उससे पूछो तो। वह मुझ से कहता है, 'तुम्हारे संग मेरा कुछ लेना-देना नहीं है।'

महिमा— बड़ा तर्क करता है।

श्री रामकृष्ण— और फिर वह बीच-बीच में मुझे शिक्षा देता है। *(सब का हास्य)*। तर्क जब करता है, मुझसे शायद गाली-गलौच हो गया। मैं तर्क के पश्चात् मसहरी में लेट गया। और तब क्या-क्या कहा है, याद आ गया। हाजरा को प्रणाम करने गया। तब शान्ति हुई।

(वेदान्त और शुद्ध आत्मा)

(हाजरा के प्रति)— "तुम शुद्ध आत्मा को ईश्वर क्यों कहते हो? शुद्धात्मा निष्क्रिय होती है, तीनों अवस्थाओं में साक्षी स्वरूप है। जब सृष्टि, स्थिति, प्रलय-कार्य को सोचता हूँ तब उनको ईश्वर कहता हूँ। शुद्धात्मा कैसी है, जैसे चुम्बक पत्थर बहुत दूरी पर है, किन्तु सूई हिलती है, चुम्बक पत्थर चुप रहता है— निष्क्रिय।"

अष्टम परिच्छेद

(सन्ध्या-संगीत और ईशान-संवाद)

सन्ध्या आगत प्रायः। ठाकुर टहल रहे हैं। मणि को अकेले बैठे हुए और चिन्तन करते हुए देखकर, ठाकुर हठात् उनको सम्बोधन करके सस्नेह कहते हैं— "देखना, दो एक मार्किन के कुर्ते देना, सब का कुर्ता पहन नहीं सकता। सोचा था, काप्तेन को कहूँगा, वह अब तुम ही देना।"

मणि खड़े हो गए; बोले, "जो आज्ञा।"

सन्ध्या हो गयी। श्री रामकृष्ण के कमरे में धूना दिया गया। वे देवताओं को प्रणाम करके, बीजमन्त्र-जप करके नाम गा रहे हैं। कमरे के बाहर अपूर्व शोभा है। कार्त्तिक मास की शुक्ल पक्ष की सप्तमी तिथि। विमल चन्द्रकिरणों से एक ओर ठाकुर-बाड़ी हँस रही है और एक ओर भागीरथी वक्ष सोये हुए शिशु की छाती की भाँति हल्का-हल्का हिल रहा है। ज्वार खत्म हो गई। आरती-शब्द गंगा के स्निग्ध उज्ज्वल प्रवाह से उत्पन्न हुए कलकल-नाद के संग मिलकर बहुत दूर तक जाकर लय को प्राप्त हो रहा है। ठाकुरबाड़ी में एक समय में तीन मन्दिरों में आरती हो रही है— कालीमन्दिर में, विष्णुमन्दिर में और शिवमन्दिर में। बारह शिवमन्दिरों में एक-एक करके शिवलिंगों की आरती! पुरोहित शिव के एक मन्दिर से दूसरे एक मन्दिर में जा रहे हैं।

बायें हाथ में घण्टा, दायें हाथ में पंचप्रदीप, साथ में परिचारक, उसके हाथ में कांसर है। आरती हो रही है। उसके संग-संग ठाकुरबाड़ी के दक्षिण-पश्चिम कोने से रौशन चौकी का सुमधुर निनाद सुनाई दे रहा है। वहाँ पर नहबतखाना है। सन्ध्याकालीन राग-रागिणी बज रही है। आनन्दमयी का नित्य उत्सव मानो जीव को स्मरण करवा रहा है, कोई निरानन्द मत होना— जगत् का सुख-दु:ख तो है ही, रहता है, रहे। जगदम्बा है, हमारी माँ है; आनन्द मनाओ। दासी-पुत्र अच्छा खाने को नहीं पाता, अच्छा पहन नहीं पाता, मकान नहीं, घर नहीं, तब भी छाती में ज़ोर है, उसकी माँ जो है। माँ की गोद में निर्भय है। सौतेली माँ नहीं, सच्ची माँ। मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ, मेरा क्या होगा, मैं कहाँ जाऊँगा— सब माँ जानती हैं। सोचे कौन इतना? मेरी माँ जानती हैं— मेरी माँ, जिन्होंने देह, मन, प्राण, आत्मा द्वारा मुझे गढ़ा है। मैं जानना भी नहीं चाहता। यदि जानना आवश्यक हुआ, तो वे जनवा देंगी। इतना कौन सोचे? माँ के बच्चो, सब आनन्द मनाओ।

बाहर कौमुदीप्लावित जगत् हँस रहा है। कमरे में श्री रामकृष्ण हरि प्रेमानन्द में बैठे हैं। ईशान कलकत्ता से आए हैं। फिर और ईश्वरीय बातें होती हैं। ईशान को बड़ा विश्वास है। कहते हैं, 'एक बार जो दुर्गा-नाम लेकर घर से यात्रा करते हैं, उनके संग शूलपाणि शूल हाथ में लेकर जाते हैं। विपद् का भय क्या? शिव स्वयं रक्षा करते हैं।'

(विश्वास से ईश्वर लाभ— ईशान को कर्मयोग-उपदेश)

श्री रामकृष्ण *(ईशान के प्रति)*— तुम्हारा खूब विश्वास है, किन्तु हमारा इतना नहीं है। *(सब का हास्य)।* विश्वास से ही उन्हें पाया जाता है।

ईशान— जी हाँ।

श्री रामकृष्ण— तुम जप, आह्निक[1], उपवास, पुरश्चरण[2], इत्यादि कर्म करते हो, यह बड़ा अच्छा है। जिसका ईश्वर के ऊपर आन्तरिक आकर्षण रहता है, उसके द्वारा वे ऐसे समस्त कर्म करवा लेते हैं। फल-कामना बिना किए ये समस्त कर्म कर सकने पर निश्चय ही उनकी प्राप्ति होती है।

(वैधी-भक्ति और राग-भक्ति— कर्म-त्याग कब?)

"शास्त्र में अनेक कर्म करने के लिए कहा गया है , इसीलिये कर रहा हूँ— ऐसी भक्ति को वैधी-भक्ति कहते हैं। और एक है, राग-भक्ति। वह तो विशेष अनुराग से होती है, ईश्वर में प्यार रहने से होती है, जैसे प्रह्लाद की। वह भक्ति यदि आ जाती है, तो फिर वैधी कर्मों का प्रयोजन नहीं होता।"

नवम परिच्छेद

(सेवक के हृदय में)

सन्ध्या के पूर्व मणि टहल रहे हैं और सोच रहे हैं, 'राम की इच्छा'— यह तो बड़ी सुन्दर बात है। इससे तो predestination (भाग्य) और free will (स्वतन्त्र इच्छा), liberty (स्वाधीनता) और necessity (आवश्यकता)— यह सब झगड़े ही मिट जाते हैं। मुझे डाकू पकड़ कर ले गए , 'राम की इच्छा से'; और फिर मैं तम्बाकू पी रहा था, 'राम की इच्छा से'; मैंने डकैती की, 'राम की इच्छा से'; मुझे पुलिस ने पकड़ लिया, 'राम की इच्छा से'। मैं साधु बना हूँ , 'राम की

---

[1] आह्निक— दैनिक, नित्य सन्ध्या-पूजा।

[2] पुरश्चरण— अभीष्ट कार्य-सिद्धि के लिए नियमानुसार मंत्र-जप, स्तोत्र-पाठ।

इच्छा से'; मैं प्रार्थना करता हूँ, 'हे प्रभु, मुझे असद्बुद्धि मत देना, मुझ से डकैती मत करवाना'— यह भी 'राम की इच्छा'। सत् इच्छा और असत् इच्छा उन्होंने दी है। फिर भी एक विशेष बात है, असत् इच्छा वे क्यों देंगे? डकैती करने की इच्छा वे क्यों देंगे?' इसके उत्तर में ठाकुर बोले कि उन्होंने जानवरों के भीतर जैसे बाघ, सिंह, साँप बनाए हैं; वृक्षों में जैसे विषवृक्ष बनाया है, उसी प्रकार मनुष्यों के भीतर चोर, डाकू भी बनाए हैं। क्यों बनाए हैं, यह कौन बताएगा? ईश्वर को कौन समझेगा?

किन्तु यदि उन्होंने सब कुछ बनाया है, तब तो sense of responsibility (दायित्व बोध) खत्म हो जाता है। यह क्यों खत्म होगा? ईश्वर को बिना जाने, उनका दर्शन बिना हुए, 'राम की इच्छा', इसका सोलह आना बोध ही नहीं होगा। जब तक पूर्ण विश्वास नहीं होता, तब तक पाप-पुण्य-बोध और responsibility (उत्तरदायित्व-बोध) रहेगा ही रहेगा। ठाकुर ने 'राम की इच्छा' समझाई है। तोते की भाँति 'राम की इच्छा' मुख से बोलने से नहीं होता। जब तक ईश्वर को जानना नहीं होता, उनकी इच्छा में मेरी इच्छा एक नहीं हो जाती, जब तक 'मैं यन्त्र' हूँ, यह ठीक-ठीक बोध नहीं होता, तब तक पाप-पुण्य-बोध, सुख-दुःख-बोध, शुचि-अशुचि-बोध; भला-मन्दा-बोध रख देते हैं; sense of responsibility रख देते हैं; वैसा न हो, तो उनकी माया का संसार कैसे चलेगा?

ठाकुर की भक्ति की बात जितनी ही सोचता हूँ, उतना ही अधिक अवाक् हो जाता हूँ। केशवसेन हरि-नाम करते हैं, ईश्वर-चिन्तन करते हैं; झट उनको देखने के लिए भागे, केशव तुरन्त अपना जन हो गए। तब काप्तेन की बातें फिर नहीं सुनीं। वे विलायत गए हैं, साहबों के साथ खाया है, कन्या को भिन्न जाति में विवाह दिया है— ऐसी बातें सब बह गईं! 'बेर ही केवल खाता हूँ, काँटों से मेरा क्या काम?' भक्तिसूत्र में साकारवादी-निराकारवादी एक हो जाते हैं; हिन्दू मुसलमान-ईसाई एक हो जाते हैं; चारों वर्ण एक हो जाते हैं। भक्ति की

ही जय! धन्य श्री रामकृष्ण, तुम्हारी ही जय हो! तुमने ही सनातन धर्म का यह विश्वजनीन भाव फिर मूर्त्तिमान कर दिया है। तभी शायद तुम्हारा इतना आकर्षण है! सब ही धर्मावलम्बियों को तुम परम आत्मीय की भाँति बिना अन्तर किए, आलिंगन करते हो। तुम्हारी एक ही कसौटी है, भक्ति। तुम केवल देखते हो, अन्तर् में ईश्वर का प्यार और भक्ति है या नहीं। यदि वह हो, तो वह शीघ्र ही तुम्हारा परम आत्मीय है। हिन्दू में यदि भक्ति देखते हो, तो वह तुरन्त तुम्हारा अपना आत्मीय है; मुसलमानों में यदि अल्लाह के ऊपर भक्ति रहे, तो वह भी तुम्हारा आत्मीय जन है। ईसाई में यदि यीशु के ऊपर भक्ति रहे, तो वह भी तुम्हारा परम आत्मीय है। तुम कहते हो कि सब नदियाँ ही भिन्न-भिन्न दिशाओं के देशों से आकर समुद्र में गिरती हैं।

ठाकुर इस जगत् को स्वप्नवत् नहीं कहते। वैसा होने से 'वज़न में कम हो जाता है।' मायावाद नहीं; विशिष्टाद्वैतवाद; क्योंकि जीव जगत् को अलीक (कल्पित, झूठा) नहीं कहते, मन की भूल नहीं कहते। ईश्वर सत्य और फिर मनुष्य सत्य, जगत् सत्य। जीव-जगत्-विशिष्ट ब्रह्म। बीज-छिलका निकाल देने पर सम्पूर्ण बेल नहीं मिलती।

सुना है यह जगत्-ब्रह्माण्ड, महाचिदाकाश में आविर्भूत होता है, और फिर काल में लय होता है। महासमुद्र में तरंग उठती है और फिर काल में लय हो जाती है। आनन्दसिन्धु-नीर में अनन्त लीला लहरी! इस लीला का आदि कहाँ है? अन्त कहाँ है? वह मुख से नहीं कहा जा सकता, मन में चिन्तन नहीं किया जा सकता। मनुष्य ही कितना? उसकी बुद्धि ही अथवा कितनी? सुना है महापुरुषों ने समाधिस्थ होकर उसी नित्य परम पुरुष का दर्शन किया है, नित्य लीलामय हरि का साक्षात्कार किया है। अवश्य किया है, क्योंकि ठाकुर श्री रामकृष्ण भी कहते हैं। किन्तु इन चर्म-चक्षुओं से नहीं— शायद जिसे दिव्य चक्षु कहते हैं, उसके द्वारा। जिस दिव्य चक्षु को पाकर अर्जुन ने विश्वरूप-दर्शन किया था, जिस चक्षु द्वारा ऋषियों ने आत्मा का साक्षात्कार किया था, जिस दिव्य चक्षु द्वारा ईसा अपने स्वर्ग-स्थित पिता के रात-

दिन दर्शन किया करते। वह चक्षु कैसे बनता है? ठाकुर के मुख से सुना है व्याकुलता के द्वारा होता है। अब वह व्याकुलता कैसे हो? क्या संसार-त्याग करना होगा? कहाँ? वह तो आज भी नहीं कहा।

•

चतुर्दश खण्ड

श्री रामकृष्ण का भक्तगृहे आगमन व उनके साथ नरेन्द्र, गिरीश, बलराम, चुनीलाल, लाटु, मास्टर, नारायण आदि भक्तों का कथोपकथन और आनन्द

प्रथम परिच्छेद

(भक्त-गृह में— भक्तों के संग में)

फाल्गुन की कृष्णा दशमी तिथि, पूर्व आषाढ़-नक्षत्र, 29 फाल्गुन, बुधवार, अंग्रेज़ी 11 मार्च, 1885 ईसवी। आज अनुमानतः दस बजे श्री रामकृष्ण ने दक्षिणेश्वर से आकर भक्त के घर बसु बलराम-मन्दिर में श्री जगन्नाथ का प्रसाद पाया है। साथ लाटु आदि भक्तगण हैं।

धन्य बलराम! तुम्हारा ही घर आज ठाकुर का प्रधान कर्म-क्षेत्र बन गया है। नूतन-नूतन भक्तों को आकर्षित करके प्रेम-डोर में बाँध लिया है। भक्तों के साथ कितना नाचे हैं, गाए हैं, मानो श्री गौरांग श्रीवास-मन्दिर में प्रेम की हाट लगा रहे हैं।

दक्षिणेश्वर की कालीबाड़ी में बैठे-बैठे रोते हैं, अपने अन्तरंग देखने के लिए व्याकुल हैं। रात को निद्रा नहीं। माँ से कहते हैं, 'माँ, उसकी बड़ी भक्ति है, उसको खींच लाओ। माँ, उसको यहाँ ला दो, यदि वह नहीं आ सकता तो फिर माँ, मुझे वहीं ले चलो, मैं देख आऊँ।' इसीलिए बलराम के घर भागे-भागे जाते हैं। लोगों से केवल कहते हैं, 'बलराम के घर श्री जगन्नाथ की सेवा है। बड़ा शुद्ध अन्न है।' जब आते हैं, तो तुरन्त

निमन्त्रण करने के लिए बलराम को भेजते हैं। कहते हैं, 'जाओ— नरेन्द्र, भवनाथ, राखाल को निमन्त्रित कर आओ। इनको खिलाने से नारायण को खिलाना हो जाता है। ये सामान्य नहीं हैं। ये ईश्वरांश में जन्मे हैं, इनको खिलाने से तुम्हारा खूब भला होगा।'

बलराम के घर में बैठकर ही श्रीयुक्त गिरीश घोष के साथ प्रथम आलाप हुआ। इसी स्थान पर ही रथ के समय कीर्त्तनानन्द हुआ। इसी स्थान पर ही कितनी बार 'प्रेम दरबार में आनन्द का मेला' लगा है।

('पश्यति तव पन्थानम्'— छोटे नरेन)

मास्टर पास के एक विद्यालय में पढ़ाते हैं। उन्होंने सुन लिया था कि आज दस के समय श्री रामकृष्ण बलराम के मकान में आएँगे। पढ़ाने के बीच कुछ अवसर पाकर दोपहर के समय वहाँ पर आ गए। आकर दर्शन और प्रणाम किया। ठाकुर आहार के पश्चात् बैठक में थोड़ा विश्राम कर रहे हैं। बीच-बीच में थैली में से कुछ मसाला व कबाबचीनी खा रहे हैं। छोटी उम्र के भक्तगण चारों ओर से घेर कर बैठे हुए हैं।

श्री रामकृष्ण *(सस्नेह)*— तुम आ गए? स्कूल नहीं है?

मास्टर— स्कूल से आ रहा हूँ, अब वहाँ पर विशेष कार्य नहीं है।

भक्त— नहीं जी। ये स्कूल से भाग आए हैं। *(सब का हास्य)*।

मास्टर *(स्वगत)*— हाय! कोई मानो खींच कर ले आया है।

ठाकुर जैसे कुछ चिन्तित हो गए। फिर मास्टर को निकट बिठा कर कितनी ही बातें करने लगे। और बोले "अजी, जरा मेरा वह अंगोछा तो निचोड़ दो, और कुरता सूखने के लिए डाल दो, और पाँव थोड़ा झन-झन कर रहा है, तनिक हाथ फेर सकते हो?"

मास्टर सेवा करना नहीं जानते, तभी ठाकुर सेवा करना सिखा रहे हैं। मास्टर बहुत घबराए हुए से एक-एक करके समस्त कार्य करते

हैं। वे पाँव हाथ से सहला रहे हैं। श्री रामकृष्ण बातों ही बातों में कितने उपदेश देने लगे।

(श्री रामकृष्ण और ऐश्वर्य-त्याग की पराकाष्ठा— ठीक संन्यासी)

श्री रामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— हाँ जी, यह जो मुझे कितने दिनों से हो रहा है, क्यों? बताओ तो सही। धातु की किसी भी वस्तु को हाथ नहीं लगा सकता। एक बार एक कटोरी में हाथ दिया था, तो हाथ में सिंगी मछली के काँटे के डंक की तरह हुआ। हाथ झन्-झन् , कन्-कन् करने लगा। गाड़ू को बिना छुए तो चलता नहीं, जभी सोचा— अंगोछा ढक कर देखता हूँ, उठा सकता हूँ कि नहीं। ज्योंहि हाथ लगाया, त्योंहि हाथ तो झन्-झन् , कन्-कन् , करने लगा। बड़ी वेदना हुई। अन्त में माँ से प्रार्थना की— 'माँ फिर ऐसा कार्य नहीं करूँगा, माँ अब की बार माफ़ करो।'

"हाँ जी, छोटा नरेन आता-जाता है, घर में कुछ कहेंगे? खूब शुद्ध है, लड़की-संग कभी भी नहीं हुआ।"

मास्टर— और बर्तन बड़ा है।

श्री रामकृष्ण— हाँ, और फिर कहता है कि ईश्वरीय बात एक बार सुन लेने पर मुझे स्मरण रहती है। कहता है, बचपन में मैं रोया करता था। कारण, ईश्वर दिखाई जो नहीं देते।

मास्टर के साथ छोटे नरेन के सम्बन्ध में ऐसी अनेक बातें हुईं। इस समय उपस्थित भक्तों में से एक भक्त बोल उठे— "मास्टर महाशय! आप स्कूल नहीं जाएँगे?"

श्री रामकृष्ण— कितने बजे हैं?

एक भक्त— एक बजने में दस मिनट।

श्री रामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— तुम चलो, तुम्हें देर हो रही है। एक तो कार्य छोड़कर आए हो।

(लाटु के प्रति)— राखाल कहाँ पर है?

लाटु— चला गया, घर।

श्री रामकृष्ण— मुझे बिना मिले ही!

द्वितीय परिच्छेद

(अपराह्ण को भक्तों के संग— अवतारवाद और श्री रामकृष्ण)

स्कूल की छुट्टी के पश्चात् मास्टर आकर देखते हैं— ठाकुर बलराम की बैठक में भक्तों की मजलिस किए बैठे हैं। ठाकुर के मुख पर मधुर हँसी है, वही हँसी भक्तों के मुख पर प्रतिबिम्बित हो रही है। मास्टर को वापिस आता देखकर और उनके प्रणाम कर लेने पर, ठाकुर ने उनको अपने निकट आकर बैठने का इशारा किया। श्रीयुक्त गिरीश घोष, सुरेश मित्र, बलराम, लाटु, चुनीलाल इत्यादि भक्त उपस्थित हैं।

श्री रामकृष्ण *(गिरीश के प्रति)*— तुम एक बार नरेन्द्र के साथ विचार करके देखो, वह क्या कहता है।

गिरीश *(सहास्य)*— नरेन्द्र कहता है, ईश्वर अनन्त हैं। जो कुछ हम देखते हैं, सुनते हैं, वस्तु या व्यक्ति सब उनका अंश है, जहाँ तक कि हम कह भी नहीं सकते। Infinity (अनन्त आकाश); उसका फिर अंश क्या? अंश होता नहीं।

श्री रामकृष्ण— ईश्वर अनन्त हों और जितने भी बड़े हों, वे इच्छा करें तो उनके भीतर की सार वस्तु मनुष्य के भीतर से आ सकती है और आती है। वे अवतार होकर रहते हैं, इस बात को तो उपमा द्वारा समझाया नहीं जाता। अनुभव होना चाहिए। प्रत्यक्ष होना चाहिए। उपमा द्वारा कुछ-कुछ आभास मिल जाता है। गाय के शरीर में से सींग को ही यदि छुएँ, तो गाय को ही छूना हो गया, पाँव अथवा पूँछ छूने से

भी गाय को ही छूना हो गया। किन्तु हमारे लिए गाय के भीतर का सार पदार्थ तो दूध है। वह दूध थनों द्वारा आता है।

"उसी प्रकार प्रेम-भक्ति सिखाने के लिए ईश्वर मनुष्य-देह धारण करके समय-समय पर अवतीर्ण होते हैं।"

गिरीश— नरेन्द्र कहता है, उनकी क्या समस्त धारणा की जाती है? वे अनन्त हैं।

(Perception of the Infinite)[1]

श्री रामकृष्ण *(गिरीश के प्रति)*— ईश्वर की सम्पूर्ण धारणा कौन कर सकता है? वह तो उनका बड़ा भाव भी नहीं कर सकता और छोटा भाव भी नहीं कर सकता। और फिर सम्पूर्ण धारणा करने का प्रयोजन भी क्या है? उनको सामने देख सकने पर ही हो गया। उनके अवतार को देख लेने पर ही उनको देखना हो गया। यदि कोई गंगा के पास जाकर जल-स्पर्श करके कहता है कि गंगा-दर्शन-स्पर्शन करके आया हूँ तो सारी गंगा जी को हरिद्वार से गंगा सागर तक हाथ द्वारा छूना नहीं पड़ता। *(सब का हास्य)*।

"तुम्हारा पाँव यदि छूता हूँ तो तुम्हें ही छूना हुआ। *(हास्य)*।

"यदि सागर के निकट जाकर थोड़ा-सा जल स्पर्श करो, तो फिर सागर- स्पर्श करना ही हुआ। अग्नि-तत्त्व सब स्थानों पर ही है, किन्तु लकड़ी में अधिक है।"

गिरीश *(हँसते-हँसते)*— जहाँ पर आग पाऊँगा, वही स्थान ही मुझे चाहिए।

---

[1] Compare discussion about the order of perception of the Infinite and of the Finite in Max-Muller's Hibbert's Lectures and Gifford's Lectures.

श्री रामकृष्ण *(हँसते-हँसते)*— अग्नि-तत्त्व काठ में अधिक है। ईश्वर तत्त्व यदि खोजना है, तो मनुष्य में खोजोगे। मनुष्य में वे अधिक प्रकाशित होते हैं। जिस मनुष्य में ऊर्जिता भक्ति देखोगे— प्रेम-भक्ति उथली पड़ रही है, ईश्वर के लिए पागल है, उनके प्रेम में मतवाला है, उसी मनुष्य में निश्चित जानो कि वे अवतीर्ण हुए हैं।

(मास्टर की ओर देखकर)— "वे तो हैं ही, तब भी उनकी शक्ति कहीं पर अधिक प्रकाशित होती है, कहीं पर कम प्रकाशित होती है। अवतार के भीतर उनकी शक्ति का अधिक प्रकाश होता है; वही शक्ति कभी-कभी पूर्ण भाव में रहती है। शक्ति का ही अवतार।"

गिरीश— नरेन्द्र कहता है, वे अवाङ्मनसगोचरम् हैं।

श्री रामकृष्ण— नहीं, इस मन के गोचर तो चाहे वे नहीं हैं, शुद्ध मन के गोचर हैं। इस बुद्धि के गोचर नहीं, किन्तु शुद्ध बुद्धि के गोचर हैं। कामिनी, काञ्चन से आसक्ति जाते ही, शुद्ध मन और शुद्ध बुद्धि हो जाती है। तब शुद्ध मन और शुद्ध बुद्धि एक हैं। वे शुद्ध मन के गोचर हैं। ऋषि, मुनियों ने क्या देखा नहीं? उन्होंने चैतन्य के द्वारा चैतन्य का साक्षात्कार किया था।

गिरीश *(सहास्य)*— नरेन्द्र मेरे निकट तर्क में हार गया है।

श्री रामकृष्ण— नहीं; मुझ से कहा था, 'गिरीश घोष का मनुष्य में अवतार होने का इतना विश्वास है, अब मैं क्या कहूँ? ऐसे विश्वास के ऊपर कुछ भी नहीं कहते।'

गिरीश *(सहास्य)*— महाशय, हम सब तो बड़े ज़ोर-ज़ोर से बातें कर रहे हैं, किन्तु मास्टर होंठ बन्द किए बैठे हैं। ये किस विचार में हैं? महाशय! आप क्या कहते हैं?

श्री रामकृष्ण *(हँसते-हँसते)*— 'मुखहलसा भेतरबूंदे , कानतुलसे, दीघल घोमटा नारी, पाना पुकुरेर शीतल जल बड़ा मन्द कारी।' *(सब का हास्य)*। *(सहास्य)*— किन्तु ये वैसे नहीं हैं— ये तो गंभीरात्मा हैं। *(सब का हास्य)*।

गिरीश— महाशय, यह श्लोक कैसा है?

श्री रामकृष्ण— इन कई प्रकार के लोगों से सावधान रहना चाहिए— प्रथम, मुखहलसा— बेलगाम ज़बान वाले से, फिर भेतर बूंदे— अन्तस्थ मन वाले से अर्थात् जिसके मन की थाह नहीं पाई जाती; फिर कानतुलसे से— कान में तुलसी अटकाने वाले से अर्थात् जो भक्ति का दिखावा करता है; और दीघल धोमटा नारी से— लम्बे घूँघट वाली स्त्री से, जिसे देखकर लोग समझते हैं, यह बड़ी भारी सती स्त्री है, किन्तु वैसी नहीं होती; और फिर पानापुकुर के जल से (जल-पौधे वाले तालाब के जल में) नहाने पर सन्निपात रोग (सरसाम, वात, कफ, पित्त) हो जाता है। *(हास्य)*।

चुनीलाल— इन (मास्टर) के नाम पर बातें होती हैं। छोटे नरेन, बाबूराम इनके छात्र हैं। बातें हो रही हैं कि ये उन्हें यहाँ पर लाए हैं, और उनका लिखना-पढ़ना खराब हो रहा है। इनके नाम पर दोष लग रहा है।

श्री रामकृष्ण— उनकी बातों पर कौन विश्वास करेगा?

ऐसी ही बातें हो रही हैं। अब नारायण ने आकर ठाकुर को प्रणाम किया। नारायण गौर वर्ण, 17/18 वर्ष उम्र, स्कूल में पढ़ता है, ठाकुर श्री रामकृष्ण उसे बहुत प्यार करते हैं। उसको देखने के लिए , उसको खिलाने के लिए व्याकुल रहते हैं। उसके लिए दक्षिणेश्वर में बैठे क्रन्दन करते हैं। 'नाराण' को वे साक्षात् नारायण देखते हैं।

गिरीश *(नारायण को देखकर)*— किसने खबर दी? देख रहा हूँ मास्टर ने ही तीर लगाया है *(सब का हास्य)*!

श्री रामकृष्ण *(हँसते-हँसते)*— ठहरो! चुप रहो! इनका (मास्टर का) नाम तो पहले ही बदनाम हो रहा है।

(अन्नचिन्ता चमत्कारा— ब्राह्मण के प्रतिग्रह करने का फल)

अब फिर नरेन्द्र की बात चली।

एक भक्त— अब उतने क्यों नहीं आते वे?

श्री रामकृष्ण— अन्न-चिन्ता चमत्कारा। कालिदास होय बुद्धि हारा। *(सब का हास्य)*।

[अन्नचिन्ता अद्भुत है। कालिदास तक की बुद्धि इसने हर ली थी।]

बलराम— शिव गुह के घर के लड़के अन्नदा गुह के पास खूब आना-जाना है।

श्री रामकृष्ण— हाँ, एक ऑफ़िस वाले के घर नरेन्द्र , अन्नदा ये सब जाते हैं। वहाँ पर ब्राह्मसमाज करते हैं।

एक भक्त— उस (आफ़िस वाले) का नाम तारापद है।

बलराम *(हँसते-हँसते)*— बामन कहते हैं कि अन्नदा गुह बड़ा अहंकारी है।

श्री रामकृष्ण— बामनों की ऐसी बातें मत सुनो। उनको तुम लोग तो जानते ही हो; न दें तो बुरा आदमी, दे दिया तो अच्छा आदमी। *(सब का हास्य)*। अन्नदा को मैं जानता हूँ, भला व्यक्ति है।

तृतीय परिच्छेद

(भक्तों के संग में भजनानन्द में)

ठाकुर गाना सुनेंगे, इच्छा प्रकट की। बलराम की बैठक लोगों से भरी हुई है। सब ही उनकी ओर देख रहे हैं, वे क्या कहते हैं, और क्या करते हैं, देखें। श्रीयुक्त तारापद गाते हैं—

केशव कुरु करुणा दीने, कुंजकाननचारी।
माधव मनोमोहन, मोहन मुरलीधारी॥

(हरिबोल, हरिबोल, हरिबोल, मन आमार)।
व्रज किशोर कालीयहर, कातर-भय-भंजन,
नयन बाँका, बाँका शिखिपाखा, राधिका-हृदिरंजन
गोबर्धनधारण, बनकुसुम भूषण, दामोदर, कंस-दर्पहारी।
श्याम रासरस विहारी।
(हरिबोल, हरिबोल, हरिबोल मन आमार)।

श्री रामकृष्ण *(गिरीश के प्रति)*— आहा, सुन्दर गाना! तुमने ही क्या ये सब गाने रचे हैं?

एक भक्त— हाँ, इन्होंने ही चैतन्य-लीला के सब गाने रचे हैं।

श्री रामकृष्ण *(गिरीश के प्रति)*— यह गाना तो खूब ही उतरा है।

(गायक के प्रति) — 'निताई का गाना गा सकते हो?'

फिर निताई का गाया हुआ गाना हुआ—

किशोरीर प्रेम निबि आय, प्रेमेर जुआर बये जाय।
बइछे रे प्रेम शतधारे, जे जत चाय तत पाय॥
प्रेमेर किशोरी, प्रेम बिलाय साध करि, राधार प्रेमे बोल रे हरि;
प्रेमे प्राण मत्त करे, प्रेम तरंगे प्राण नाचाय।
राधार प्रेमे हरि बोलि, आय आय आय आय॥

[किशोरी का प्रेम लेना चाहता है तो आ जा, प्रेम का ज्वार बह रहा है। अरे, प्रेम शतधाराओं में बह रहा है। जो जितना चाहता है, उतना पा रहा है। प्रेम की किशोरी प्रेम अपनी इच्छा से बाँट रही है। राधा के प्रेम में बोलो 'हरि , हरि , हरि' प्रेम प्राणों को मतवाला करके प्रेम-तरंग में प्राणों को नचाता है। आओ, आओ, आओ; राधा के प्रेम में सब हरि, हरि बोलें, आओ।]

श्री गौरांग का गाना हुआ—

कार भावे गौर वेशे जुड़ाले हे प्राण।
प्रेम सागरे उठलो तूफान, थाकबे ना आर कुल मान॥
(मन मजाले गौर हे)।
ब्रज माझे, राखाल साजे, चराले गोधन;

ध'रले करे मोहन बाँशी, मजलो गोपीर मन;
ध'रे गोवर्धन, राखले वृन्दावन;
मानेर दाये, ध'रे गोपीर पाय, भेसे गेलो चाँद बयान॥
(मन मजाले गौर हे)।

[किसी के भाव में, गौर के वेश में, हे प्राण! तू शान्ति पा ले। प्रेम-सागर में तूफ़ान उठा है, अब कुल-मान नहीं रहेगा। (मन को गौर में डुबा दे)। ब्रज में राखाल बनकर गौवें चराई थीं, हाथ में मोहन ने बंसी पकड़कर गोपियों का मन डुबो दिया था। गोवर्धन धारण करके वृन्दावन की रक्षा की थी। मान की रक्षा के लिए गोपियों के पाँव पकड़ लिए थे, तब चाँद-सा चेहरा भी डूब गया था। (हे जीव, मन को गौर में डुबा दे)।]

मास्टर को सब ने अनुरोध किया कि तुम भी एक गाना तो गाओ। मास्टर थोड़े लजीले हैं, धीरे-धीरे क्षमा चाहते हैं।

गिरीश *(ठाकुर के प्रति, सहास्य)*– महाशय, मास्टर किसी तरह भी नहीं गाते।

श्री रामकृष्ण *(विरक्त होकर)*– यह स्कूल में दाँत निकालेगा; गाना गाने में इतनी सब लज्जा कर रहा है।

मास्टर लज्जित हुए मुख से कुछ क्षण बैठे रहे।

श्रीयुक्त सुरेश मित्र कुछ दूर बैठे थे। ठाकुर श्री रामकृष्ण उनकी ओर सस्नेह देखकर श्रीयुक्त गिरीश घोष को दिखलाकर सहास्य वदन बातें करते हैं।

श्री रामकृष्ण *(सहास्य)*– तुम क्या हो? तुम्हारा और इनका (गिरीश का) क्या मुकाबला?

सुरेश *(हँसते हुए)*– जी हाँ, मेरे बड़े भाई हैं। *(सब का हास्य)*।

गिरीश *(ठाकुर के प्रति)*– अच्छा महाशय! मैंने बचपन में तो कुछ लिखना-पढ़ना सीखा नहीं, फिर भी लोग विद्वान् कहते हैं।

श्री रामकृष्ण— महिम चक्रवर्ती ने अनेक शास्त्र आदि पढ़े, देखे, सुने हैं— बढ़िया आधार है!

(मास्टर के प्रति)— क्या कहते हो जी?

मास्टर— जी हाँ।

गिरीश— क्या? विद्या! वह तो बहुत-सी देखी है, उससे अब भुलावे में नहीं आऊँगा।

श्री रामकृष्ण *(हँसते-हँसते)*— यहाँ का भाव क्या है, जानते हो? पुस्तकें, शास्त्र इत्यादि तो केवल ईश्वर के पास पहुँचने का पथ बता देते हैं। पथ, उपाय को जान लेने पर फिर पुस्तक व शास्त्र का क्या प्रयोजन? तब स्वयं कार्य करना चाहिए।

"एक व्यक्ति को सम्बन्धियों के घर सामान भेजने के लिए एक पत्र मिला था, उसमें क्या-क्या वस्तुएँ भेजनी हैं, लिखा था। वस्तुएँ खरीद कर देने के समय, पत्र खोजने पर भी नहीं मिल रहा था। मालिक ने तब खूब परेशान होकर चिट्ठी की खोज आरम्भ कर दी। बड़ी देर तक कई जनों ने मिलकर खोजा। अन्त में चिट्ठी मिल गई। तब फिर आनन्द की सीमा नहीं। मालिक ने परेशान होकर अति सावधानी से हाथ में चिट्ठी ली और देखने लगा, क्या लिखा है। लिखा था— पाँच सेर सन्देश भेजोगे, और एक धोती और भी कितना कुछ था। तब फिर पत्र का प्रयोजन नहीं रहा, चिट्ठी रखकर सन्देश और धोती तथा और-और वस्तुओं को प्राप्त करने के लिए चेष्टा करने लगा। पत्र की आवश्यकता कब तक? जब तक सन्देश, धोती, आदि विषयों का पता नहीं लगता। तत्पश्चात् ही फिर चेष्टा।

"शास्त्र में उनको प्राप्त करने के उपाय की बातें भी मिलेंगी। किन्तु सब खबर जानकर कार्य आरम्भ करना चाहिए! तभी तो वस्तु-लाभ!

"केवल पाण्डित्य से क्या होगा? अनेक श्लोक, अनेक शास्त्र पण्डितों को पता हो सकते हैं, किन्तु जिसकी गृहस्थ में आसक्ति है, और जिसका कामिनी-काञ्चन पर मन-ही-मन प्यार है, उसे शास्त्र की

धारणा नहीं होती— पढ़ना व्यर्थ है। जन्त्री (पंजिका) में लिखा है, बीस आड़ा जल, किन्तु जन्त्री दबाने पर एक बूंद भी नहीं गिरती। एक बूंद ही गिरे! किन्तु एक बूंद भी तो नहीं गिरती।" *(सब का हास्य)*।

गिरीश *(सहास्य)*— महाशय, जन्त्री दबाने से एक बूंद भी नहीं गिरती? *(सब का हास्य)*।

श्री रामकृष्ण *(सहास्य)*— पण्डित खूब लम्बी-लम्बी बातें कहते हैं, किन्तु नज़र कहाँ? कामिनी और काञ्चन पर, देह-सुख और रुपये पर।

"गिद्ध बहुत ऊँचे उड़ता है, किन्तु नज़र मरघट पर। *(सब का हास्य)*। केवल खोजता है कहाँ पर मरा हुआ जानवर है, कहाँ पर मरघट है, कहाँ पर मुर्दा है।"

(गिरीश के प्रति)— नरेन्द्र बहुत अच्छा है गाने-बजाने में, पढ़ाई-लिखाई में, विद्या में। इधर जितेन्द्रिय है, विवेक-वैराग्य है, सत्यवादी है। अनेक गुण हैं।

(मास्टर के प्रति)— क्यों भाई, कैसा? क्यों, बहुत अच्छा नहीं?

मास्टर— जी हाँ, बहुत अच्छा है।

श्री रामकृष्ण *(जनान्तिक से, मास्टर के प्रति)*— देखो, उसका (गिरीश का) खूब अनुराग और विश्वास है।

मास्टर अवाक् होकर गिरीश को एक दृष्टि से देखते हैं। गिरीश ठाकुर के पास कुछ दिनों से ही आने लगे हैं। किन्तु मास्टर ने देखा जैसे पूर्व-परिचित हैं; अनेक दिनों से आलाप है— परम आत्मीय हैं जैसे एक सूत्र में गुंथी हुई मणियों में से एक विशेष मणि।

नाराण— महाशय! आपका गाना नहीं होगा? .

श्री रामकृष्ण उसी मधुर कण्ठ से माँ का नाम-गुणगान करते हैं—

> जतने हृदये रेखो आदरिणी श्यामा मा के।
> मा के तुमि देखो आर आमि देखि, आर जेनो केउ नाहि देखे॥
> कामादिरे दिये फाँकि, आय मन बिरले देखि,

रसनारे संगे राखि, से जेनो मा बोले डाके (माझे-माझे)॥
कुरुचि कुमंत्री जतो, निकट होते दिओ नाको,
ज्ञान नयने प्रहरी रेखो, से जेनो सावधाने थाके॥

[आदरिणी श्यामा माँ को यत्न से हृदय में रखो। माँ को तुम देखो और मैं देखूँ; और जैसे कोई भी न देख पावे। कामादि को चकमा देकर अरे मन! आ अकेले में देखें। रसना को साथ में रखें, वह जैसे बीच-बीच में 'माँ-माँ' कहकर पुकारे। कुरुचि रूप जितने कुमन्त्री हैं, उन्हें निकट न आने देना। ज्ञान को नयनों में प्रहरी रखो, वह जिससे सावधान रहे।]

ठाकुर त्रिताप से तापित होकर संसारी जीवों का भाव आरोप करके माँ के निकट अभिमान करके गाते हैं—

गो आनन्दमयी होये मा आमाय निरानन्द कोरो ना।
ओ मा ओ दूटि चरण बिने आमार मन, अन्य किछु आर जाने ना॥
तपन-तनय आमाय मन्द कय कि बोलिबो ताय बोलो ना।
भवानी बोलिये भवे जाबो चले, मने छिलो एई बासना।
अकूल पाथारे डुबाबि आमारे (ओ मा) स्वपनेओ तातो जानि ना॥
आमि अहर्निशि श्री दुर्गा नामे भासि तबु दुःख राशि गेलो ना।
एक बार यदि मरि ओ हरसुन्दरी तोर दुर्गानाम आर केउ लबे ना॥

[ओ माँ! आनन्दमयी होकर आप मुझे निरानन्द मत करो। तुम्हारे दो चरणों के बिना मेरा मन और कुछ नहीं जानता। तपन-तनय (यमराज) मुझे बुरा कहता है, मैं उसे क्या कहूँ, आप बता दो। मन में मेरे तो यही वासना थी कि भवानी कहते हुए मैं संसार, भव-सागर में चलता चलूँगा। आप मुझे अकूल में, अथाह समुद्र में डुबो देंगी, ऐसा तो माँ स्वप्न में भी नहीं जानता था। मैं रात-दिन श्री दुर्गा-नाम में तैर रहा हूँ , तब भी दुःख-राशि नहीं गई। अब की बार यदि मैं मरता हूँ, तो हे हरसुन्दरि, तेरा दुर्गा-नाम फिर कोई नहीं लेगा।]

फिर नित्यानन्दमयी ब्रह्मानन्द की कथा गाते हैं—

शिव संगे सदा रंगे आनन्दे मगना,
सुधा पाने ढल ढल टले किन्तु पड़े ना (मा)।
विपरीत रतातुरा, पदभरे काँपे धरा,
उभये पागलेर पारा, लज्जा भय आर माने ना (मा)।

[माँ शिव के संग सदा आनन्द में मस्त हैं। अमृत रूपी सुधा पीकर डगमगा तो रही हैं, परन्तु गिरती नहीं। प्रेम में आतुर हुई के पद उठाने से धरती काँपती है। दोनों पागलों-से हैं। लज्जा और भय कोई नहीं मानता।]

भक्तगण निस्तब्ध होकर गाना सुन रहे हैं। वे लोग एकटक ठाकुर का अद्‌भुत, स्वयं को भुलाने वाला, मतवाला भाव देख रहे हैं।

गाना समाप्त हो गया। कुछ काल पश्चात् ठाकुर श्री रामकृष्ण कहते हैं, 'मेरा आज गाना अच्छा नहीं हुआ— सर्दी हो गई है।'

चतुर्थ परिच्छेद

(सन्ध्या समागम पर)

धीरे-धीरे सन्ध्या हो गई। सिन्धु-वक्ष पर जैसे अनन्त की नीली छाया पड़ी हुई है। घने जंगल के मध्य, आकाश-स्पर्शी पर्वत-शिखर पर, वायु विकम्पित नदी के तीर पर, दिग्दिगन्तव्यापी मैदान में क्षुद्र मानव को सहज ही में भावान्तर हो गया। यह सूर्य चराचर विश्व को आलोकित कर रहे थे। कहाँ गए?— बालक सोच रहा है और फिर सोच रहे हैं बालक स्वभावापन्न महापुरुष। सन्ध्या हो गई। कैसा आश्चर्य! किसने ऐसा किया है? पक्षीगण पादप-शाखा का आश्रय करके रव करते हैं। मनुष्यों में, जिन्हें चैतन्य हुआ है, वे भी उसी आदिकवि, कारण के कारण, पुरुषोत्तम का नाम कर रहे हैं।

बातें करते-करते सन्ध्या हो गई। लोग जो-जो जिस-जिस आसन पर बैठे हैं, उन्हीं आसनों पर बैठे रहे। श्री रामकृष्ण मधुर नाम करते हैं। सब ही उद्ग्रीव और उत्कर्ण होकर सुन रहे हैं। ऐसा मिष्ट नाम तो उन्होंने कभी भी सुना नहीं, मानो सुधा-वर्षण हो रहा है। ऐसा प्रेम भरे बालक का 'माँ-माँ' बोलकर पुकारना उन्होंने कभी सुना नहीं, देखा नहीं! आकाश, पर्वत, महासागर, प्रान्तर, वन— अब और देखने का क्या प्रयोजन? गाय के सींग, पाँव आदि शरीर के दूसरे-दूसरे अंग अब फिर देखने का क्या प्रयोजन? दयामय गुरुदेव ने जिस गाय के थनों की बात बतलाई है, इस घर में क्या उन्हें ही देख रहा हूँ? सबका अशान्त मन कैसे शान्ति पा गया? निरानन्द धरा (वसुधा) कैसे आनन्द में उतराने लगी! भक्तों को शान्त और आनन्दमय क्यों देख रहा हूँ? ये ही प्रेमिक संन्यासी क्या सुन्दर रूपधारी अनन्त ईश्वर हैं? इसी स्थान पर ही क्या दुग्धपान-पिपासु की प्यास शान्त होगी? अवतार हों अथवा न हों— इनके ही चरण-प्रान्त में मन बिक गया है, अब जा नहीं सकता। इन्हें बना लिया है जीवन का ध्रुवतारा। देखूँ , इनके हृदय-सरोवर में ही आदिपुरुष किस प्रकार प्रतिबिम्बित हुए हैं!

भक्तों में से कोई-कोई इस प्रकार चिन्तन करते हैं और श्री रामकृष्ण के श्रीमुख-विगलित हरि-नाम और माँ का नाम श्रवण करके कृतकृतार्थ बोध करते हैं। नाम-गुण-कीर्तन के अन्त में ठाकुर प्रार्थना कर रहे हैं जैसे साक्षात् भगवान प्रेम की देह धारण करके जीव को शिक्षा दे रहे हैं। किस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिए, बोलने लगे— माँ, मैं तुम्हारी शरणागत, शरणागत! मैंने तुम्हारे श्रीपादपद्मों में शरण ली है। देह-सुख चाहता नहीं माँ! लोकमान्य चाहता नहीं, (अणिमादि) अष्टसिद्धि चाहता नहीं, केवल यही करो जैसे तुम्हारे श्रीपादपद्मों में शुद्धा भक्ति हो जाए— निष्काम, अमला, अहेतुकी भक्ति हो जाए। और जैसे माँ, तुम्हारी भुवनमोहिनी माया में मुग्ध न होऊँ। तम्हारी माया के संसार में कामिनी-काञ्चन के ऊपर प्यार जैसे कभी न हो! माँ,

तुम्हारे बिना मेरा और कोई नहीं। मैं भजनहीन, साधनहीन, ज्ञानहीन, भक्तिहीन— कृपा करके अपने श्रीपादपद्मों में मुझे भक्ति दो।

मणि सोच रहे हैं— 'त्रिसन्ध्या जो उनका नाम करते हैं, जिनके श्रीमुख-विनिःसृत नामगंगा तैलधारावत् निरवच्छिन्न है, उनके लिए फिर और सन्ध्या ही क्या है?' मणि पीछे समझ गए, लोक-शिक्षा के लिए ठाकुर ने मानव-देह धारण की है—

हरि आपनि ऐशे, योगिवेशे, करिले नाम-संकीर्तन।

[हरि ने योगी के वेश में स्वयं आकर नाम संकीर्तन किया।]

गिरीश ने ठाकुर को निमन्त्रण दिया है। उसी शाम को ही जाना होगा।

श्री रामकृष्ण— रात तो नहीं हो जाएगी?

गिरीश— नहीं, जब इच्छा हो, आप आएँ। मुझे आज थियेटर में जाना पड़ेगा। उनका झगड़ा मिटाना होगा।

पंचम परिच्छेद

(राजपथ पर श्री रामकृष्ण का अद्भुत ईश्वरावेश)

गिरीश का निमन्त्रण। रात को ही जाना होगा। अब रात के 9 बजे हैं। ठाकुर ने खाना खाना है। इसलिए रात्रि-भोजन बलराम ने भी तैयार किया है। पीछे बलराम अपने मन में कष्ट पाएँ, तभी लगता है, गिरीश के घर जाते समय ठाकुर कह रहे हैं, 'बलराम, तुम भी खाना भिजवा देना।'

दोतल से नीचे उतरते-उतरते भगवद्-भाव में विभोर हो गए , मानो मतवाला। संग में नारायण और मास्टर हैं। पीछे राम, चुनी इत्यादि अनेक हैं। एक भक्त ने कहा, संग में कौन जाएगा? ठाकुर बोले, एक जन हो तो बस ठीक है। उतरते-उतरते ही विभोर। नारायण हाथ

पकड़ने गए कि कहीं गिर ही न जावें। ठाकुर ने विरक्ति प्रकाश की। कुछ क्षण पश्चात् नारायण से सस्नेह कहते हैं— "हाथ पकडने से लोग मतवाला समझेंगे। मैं अपने आप चला जाऊँगा।"।

बोसपाड़ा का तिराहा पार हो रहे हैं। कुछ दूरी पर ही श्रीयुक्त गिरीश का घर है। इतनी तेज़ क्यों चल रहे हैं? भक्त पीछे रहे जा रहे हैं। न जाने हृदय के मध्य कैसा देव-भाव हो गया है। वेद में जिनको वाक्य-मन के अतीत कहते हैं, उनका चिन्तन करके क्या ठाकुर पागलवत् कदम उठा रहे हैं? अभी-अभी बलराम के घर में कहा था कि वे पुरुष वाक्य-मन के अतीत नहीं हैं, वे शुद्ध मन के, शुद्ध बुद्धि के, शुद्ध आत्मा के गोचर हैं। तभी लगता है, उसी पुरुष का साक्षात्कार कर रहे हैं। क्या यही देख रहे हैं— 'जो कुछ है, सो तूही है।'

लो, नरेन्द्र आ रहे हैं। 'नरेन्द्र, नरेन्द्र' कहकर पागल हो जाते हैं। अरे, नरेन्द्र सामने आ गए हैं। ठाकुर तो बात भी नहीं कर रहे। लोग कहते हैं, इसी का नाम भाव है। ऐसा ही क्या श्री गौरांग को हुआ करता था? कौन इस भाव को समझेगा?

गिरीश के मकान में प्रवेश करने वाली गली के सम्मुख ठाकुर आ गए हैं। साथ में भक्तगण हैं। अब नरेन्द्र के साथ बात-चीत करते हैं। नरेन्द्र से कहते हैं, "ठीक हो बाबा? मैं तब बात नहीं कर सका था।" वाणी का प्रति अक्षर करुणा से भरा है। तब तक भी द्वार के निकट पहुँचे नहीं। अब हठात् खड़े हो गए। नरेन्द्र की ओर देखकर बोल उठे "बात तो एक यही है— यह एक (देही), वह एक (जगत्)।"

जीव-जगत्! क्या भाव में ये समस्त देख रहे थे? वे ही जानते हैं, अवाक् होकर वे क्या देख रहे हैं? दो-एक वाणी उच्चारित हुईं, जैसे वेद-वाक्य , जैसे देव-वाणी, अथवा जैसे अनन्त समुद्र के तीर पर गए हैं और अवाक् होकर खड़े हुए हैं, और जैसे अनन्त तरंग-मालाओं से उठे हुए अनाहत शब्द की एक-दो ध्वनियाँ कर्ण-कुहरों में प्रविष्ट हुई हैं।

षष्ठ परिच्छेद

(ठाकुर भक्त-मन्दिर में— संवाद-पत्र— नित्यगोपाल)

द्वार पर के मार्ग पर गिरीश, ठाकुर श्री रामकृष्ण को घर में ले जाने के लिए आए हैं। ठाकुर भक्तों के संग निकट आए , झट गिरीश दण्डवत् सामने पड़ गए। आज्ञा पाकर उठे, ठाकुर की पद-धूलि ग्रहण की और साथ ले जाकर दोतल के बैठक खाने में बिठाया। भक्तों ने जल्दी-जल्दी करके आसन ग्रहण किए— सब की इच्छा है कि उनके निकट बैठें और मधुर कथामृत पान करें।

आसन ग्रहण करते समय ठाकुर ने देखा, एक समाचार-पत्र पड़ा है। समाचार-पत्र में विषयियों की बातें होती हैं। विषय-वाणी, पर-चर्चा, पर-निन्दा होती है। तभी उनके लिए अपवित्र है। उन्होंने इशारा किया, ताकि उसे स्थानान्तरित कर दिया जाए। समाचार-पत्र हटा देने पर आसन ग्रहण किया। नित्यगोपाल ने प्रणाम किया।

श्री रामकृष्ण *(नित्यगोपाल के प्रति)*— वहाँ पर?

नित्य— जी हाँ, दक्षिणेश्वर नहीं गया। शरीर खराब है, दर्द है।

श्री रामकृष्ण— कैसा है?

नित्य— ठीक नहीं।

श्री रामकृष्ण— दो-एक ग्राम नीचे रह।

नित्य— लोग अच्छे नहीं लगते। कितना कुछ कहते हैं, भय लगता है। कभी-कभी खूब साहस आता है।

श्री रामकृष्ण— वैसा होगा नहीं क्या? तेरे साथ कौन रहता है?

नित्य— तारक[1]। वह सर्वदा हमारे साथ रहता है। वह भी समय-समय पर अच्छा नहीं लगता॥

श्री रामकृष्ण— 'नागा' कहता था, उसके मठ में एक सिद्ध व्यक्ति था। वह आकाश की ओर ताकता हुआ चला जाया करता था; गणेश गर्जी— संगी के जाने से बड़ा दुःखी, अधीर हो जाता।

कहते-कहते श्री रामकृष्ण को भावान्तर हो गया। किस भाव में अवाक् हुए रहे। कुछ पश्चात् बोल रहे हैं, "तुई एशेछिस्। आमिओ ऐशेछि।" (तू आया है, मैं भी आया हूँ।)

यह बात कौन समझेगा? यही क्या देव-भाषा है?

सप्तम परिच्छेद

(पार्षद के संग में— अवतार के सम्बन्ध में विचार)

अनेक भक्त ही उपस्थित हैं, श्री रामकृष्ण के पास बैठे हैं। नरेन्द्र, गिरीश, राम, हरिपद , चुनी, बलराम, मास्टर— अनेक हैं।

नरेन्द्र नहीं मानते कि मनुष्य-देह लेकर ईश्वर अवतार होते हैं। इधर गिरीश का ज्वलन्त विश्वास है— युग-युग में अवतार होते हैं, और मानव-देह धारण करके मर्त्यलोक में आते हैं। ठाकुर की बड़ी इच्छा है इस सम्बन्ध में दोनों जनों का विचार हो। श्री रामकृष्ण गिरीश से कहते हैं "दोनों जन थोड़ा अंग्रेज़ी में विचार करो, मैं देखूँगा।"

विचार आरम्भ हो गया। अंग्रेज़ी में न होकर, बंगाली में ही हुआ— बीच-बीच में दो-एक बातें अंग्रेज़ी में हुईं।

---

[1] तारक— तारक नाथ घोषाल, परवर्त्ती स्वामी शिवानन्द जी (महापुरुष महाराज), श्री रामकृष्ण मठ और मिशन के द्वितीय अध्यक्ष और 'श्री म दर्शन' के लेखक स्वामी नित्यात्मानन्द जी के संन्यास गुरु।

नरेन्द्र बोले— "ईश्वर अनन्त हैं। उनकी धारणा करने की हम लोगों की सामर्थ्य कहाँ? वे सबके भीतर ही हैं। केवल एक जन के भीतर आए हैं, ऐसा नहीं।"

श्री रामकृष्ण *(सस्नेह)*— उसका जो मत है, मेरा भी यही मत है। वे सर्वत्र हैं। परन्तु एक बात है— शक्ति विशेष। वे कहीं पर अविद्या शक्ति के प्रकाश में हैं, कहीं पर विद्याशक्ति के प्रकाश में। किसी आधार में शक्ति अधिक है, किसी आधार में शक्ति कम है। इसीलिए सब मनुष्य समान नहीं हैं।

राम— इस समस्त व्यर्थ तर्क से क्या होगा?

श्री रामकृष्ण *(विरक्ति के भाव में)*— नहीं, नहीं। उसका एक विशेष मतलब है।

गिरीश *(नरेन्द्र के प्रति)*— तुमने कैसे जाना, वे देह धारण करके नहीं आते।

नरेन्द्र— वे हैं अवाङ्मनसगोचरम्।

श्री रामकृष्ण— ना, वे शुद्ध बुद्धि के गोचर हैं। शुद्ध बुद्धि, शुद्ध आत्मा एक ही है। सखियों ने शुद्ध बुद्धि, शुद्ध आत्मा द्वारा शुद्धात्मा का साक्षात्कार किया था।

गिरीश *(नरेन्द्र के प्रति)*— मनुष्य-अवतार में न आएँ तो कौन समझाएगा? मनुष्य को ज्ञान-भक्ति देने के लिए देह-धारण करके आते हैं। न हो, तो कौन शिक्षा देगा?

नरेन्द्र— क्यों? वे अन्तर् से समझा देंगे।

श्री रामकृष्ण *(सस्नेह)*— हाँ, हाँ। अन्तर्यामी रूप में वे समझाएँगे।

तत्पश्चात् घोरतर तर्क। इनफिनिट— उनका क्या अन्त होता है? और फिर मिलटन क्या कहते हैं? हर्बर्ट स्पैन्सर क्या कहते हैं? टिन्डेल या हक्सले क्या कह गए हैं, ऐसी बातें होने लगीं।

श्री रामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— देखो, ऐसी बातें मुझे अच्छी नहीं लगतीं। मैं समस्त वही देख रहा हूँ। विचार फिर क्या करूँ? देख रहा हूँ, वे ही सब कुछ हैं। वे ही सब कुछ बने हुए हैं। यह भी है चाहे, और फिर वह भी है। एक अवस्था में अखण्ड में मन-बुद्धि खो जाते हैं। नरेन्द्र को देखकर मेरा मन अखण्ड में लीन हो जाता है।

(गिरीश के प्रति) — "उसका क्या किया, बताओ तो ज़रा।"

गिरीश *(हँसते-हँसते)*— उसे छोड़ और तो प्रायः सब समझ गया हूँ। *(सब का हास्य)*।

(रामानुज और विशिष्टाद्वैतवाद)

श्री रामकृष्ण— और फिर दो सीढ़ियाँ नीचे उतरे बिना बात नहीं कर सकता। वेदान्त में शंकर ने जो समझा है, वह भी है, और फिर रामानुज का विशिष्टाद्वैतवाद भी है।

नरेन्द्र— विशिष्टाद्वैतवाद क्या है?

श्री रामकृष्ण *(नरेन्द्र के प्रति)*— विशिष्टाद्वैतवाद रामानुज का मत है— जीव-जगत्-विशिष्ट-ब्रह्म। सब कुछ मिलाकर एक ही।

"जैसे एक बेल। एक जन ने छिलका अलग, बीज अलग, गूदा अलग कर लिया था। बेल का वज़न जानने का प्रयोजन हुआ। अब क्या केवल गूदा तोल लेने से बेल का वज़न मिलेगा? छिलका, बीज और गूदा एक साथ वज़न करने होंगे। पहले-पहले तो छिलका नहीं, बीज नहीं, गूदा ही गूदा, सार पदार्थ बोध होता है। फिर विचार करके देखता है, जिस वस्तु का गूदा है, उसी वस्तु का ही तो छिलका और बीज है। पहले 'नेति नेति' करके जानना पड़ता है। जीव नेति, जगत् नेति— इसी प्रकार विचार किया जाना चाहिए। ब्रह्म ही वस्तु और सब अवस्तु। तत्पश्चात् अनुभव होता है, जिसका गूदा है, उसका ही छिलका व बीज है। जिसे ब्रह्म कहते हैं, उसी से जीव-जगत् है। जिसका नित्य है,

उसकी ही लीला है। तभी तो रामानुज कहते हैं— जीव-जगत्-विशिष्ट ब्रह्म। इसका ही नाम है विशिष्टाद्वैतवाद।"

अष्टम परिच्छेद

[ईश्वर-दर्शन (God-vision)— अवतार प्रत्यक्ष सिद्ध]

श्री रामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— मैं उसे ही समस्त देख रहा हूँ। फिर और क्या विचार करूँ? मैं देख रहा हूँ , वे ही सब कुछ बने हुए हैं। वे ही जीव और जगत् बने हैं।

"परन्तु चैतन्य प्राप्त किए बिना चैतन्य नहीं जाना जाता। विचार कब तक? जब तक उनको प्राप्त नहीं कर लिया जाता। केवल मुख से बोलने से नहीं होगा। यही मैं देख रहा हूँ, वे ही सब बने हुए हैं। उनकी कृपा से चैतन्य प्राप्त करना चाहिए। चैतन्य-प्राप्ति कर लेने पर समाधि होती है। कभी-कभी देह भूल जाती है, कामिनी-काञ्चन के ऊपर आसक्ति नहीं रहती, ईश्वरीय बात बिना कुछ भी अच्छा नहीं लगता, विषय की बातें सुनकर कष्ट होता है।"

(प्रत्यक्ष (Revelation)— नरेन्द्र को शिक्षा— काली ही ब्रह्म)

"चैतन्य प्राप्त कर लेने पर ही तब चैतन्य को जाना जा सकता है।"

विचार के अन्त में ठाकुर श्री रामकृष्ण मास्टर से कहते हैं— "देखा, विचार करके एक प्रकार से जाना जाता है। उनका ध्यान करके अन्य एक प्रकार से जाना जाता है। और फिर जब वे दिखा देते हैं— वह एक। वे यदि दिखला देते हैं— इसका नाम अवतार है; वे यदि अपनी मनुष्य-लीला दिखा देते हैं , तो फिर और विचार नहीं करना पड़ता, किसी को समझाना नहीं पड़ता। कैसे होता है, जानते हो? जैसे

अन्धकार के भीतर दियासलाई घिसते-घिसते दप् करके आलोक हो जाता है। उसी प्रकार दप् करके यदि वे आलोक दे दें, तब फिर सब सन्देह मिट जाते हैं। विचार करके क्या उन्हें जाना जाता है?"

ठाकुर नरेन्द्र को बुलाकर अपने निकट बिठा कर कुशल-प्रश्न और कितना आदर-प्यार कर रहे हैं!

नरेन्द्र *(श्री रामकृष्ण के प्रति)*— कहाँ! काली का ध्यान तीन-चार दिन किया, कुछ भी तो नहीं हुआ।

श्री रामकृष्ण— धीरे-धीरे होगा— क्रमे हबे। काली और कोई नहीं हैं, जो ब्रह्म हैं, वे ही काली हैं। काली आद्याशक्ति हैं। जब निष्क्रिय हैं, तब ब्रह्म नाम से कहता हूँ। जब सृष्टि-स्थिति-प्रलय करती हैं, तब शक्ति नाम से कहता हूँ, काली कहता हूँ। जिनको तुम ब्रह्म[1] कहते हो, उनको ही काली[2] कहता हूँ।

"ब्रह्म और काली अभेद। जैसे अग्नि और दाहिका शक्ति। अग्नि का सोचते ही दाहिका शक्ति का ख्याल आता है। काली को मानने से ही ब्रह्म मानना पड़ता है; और फिर ब्रह्म को मानने से ही काली को मानना पड़ता है।

"ब्रह्म और शक्ति अभेद। उसको ही शक्ति, उसको ही मैं काली कहता हूँ।"

इधर रात हो गई है। गिरीश हरिपद से कह रहे हैं— "भाई, एक गाड़ी यदि बुला दो, थियेटर जाना है।"

श्री रामकृष्ण *(सहास्य)*— देखियो, कर ही आइयो। *(सब का हास्य)*।

हरिपद *(सहास्य)*— मैं लेने जा रहा हूँ , लाऊँगा क्यों नहीं?

---

[1] ब्रह्म— The Unconditioned, the Absolute

[2] काली— God in His relations to the conditioned

(ईश्वर-लाभ और कर्म— राम और काम)

गिरीश *(श्री रामकृष्ण के प्रति)*— आपको छोड़ कर मुझे फिर थियेटर जाना पड़ रहा है।

श्री रामकृष्ण— नहीं, यह-वह दोनों ही रखने होंगे। जनक राजा एदिक ओदिक-दुदिक रेखे, खेयेछिलो दूधेर बाटि। (राजा जनक संसार और ईश्वर की रक्षा करते हुए दूध का कटोरा पिया करते थे।) *(सब का हास्य)*।

गिरीश— सोच रहा हूँ थियेटर आदि सब लड़कों पर ही छोड़ दूँ।

श्री रामकृष्ण— ना, ना। यह बहुत अच्छा है। अनेकों का उपकार हो रहा है।

नरेन्द्र *(मृदु स्वर में)*— अभी-अभी तो ईश्वर-ईश्वर कर रहा था, अवतार-अवतार कर रहा था। और अभी थियेटर खींच रहा है।

नवम परिच्छेद

(समाधि मन्दिर में— गर्गर मतवाले श्री रामकृष्ण)

श्री रामकृष्ण नरेन्द्र को निकट बिठाकर एक दृष्टि से देख रहे हैं, हठात् उनके सन्निकट और भी सरक कर बैठ गए। नरेन्द्र अवतार नहीं मानते, उससे क्या आता-जाता है? ठाकुर का प्यार मानो और भी उथला पड़ रहा है। देह पर हाथ लगाते हुए नरेन्द्र से कहते हैं, "तुमने मान किया है तो करो, हम भी मान में हैं (राधा)।"

(विचार ईश्वर-लाभ पर्यन्त)

(नरेन्द्र के प्रति)— जब तक विचार है, तब तक उन्हें पाया नहीं जाता। तुम लोग विचार कर रहे थे, मुझे अच्छा नहीं लगा।

"न्योते वाले घर में शब्द कब तक सुना जाता है? जब तक लोग खाने के लिए नहीं बैठते। ज्योंहि पूरी-तरकारी परोसी गई, त्योंहि बारह आना शब्द कम हो गया। *(सब का हास्य)*। और-और वस्तुएँ पड़ने पर और भी कम-कम होता जाता है। दही पत्तलों में परोसी जाने पर केवल सप्-सप् रहता है। फिर आहार समाप्त होते ही नींद।

"ईश्वर जितना प्राप्त होगा, उतना ही विचार कम हो जाएगा। उनकी प्राप्ति हो जाने पर फिर शब्द, विचार नहीं रहता। तब निद्रा-समाधि।"

यह कहकर नरेन्द्र की देह पर हाथ फेर कर, मुख पर हाथ फेर कर स्नेह करते हैं और कहते हैं, 'हरि ॐ! हरि ॐ! हरि ॐ!'

क्यों ऐसा कर रहे हैं और कह रहे हैं? क्या श्री रामकृष्ण नरेन्द्र में साक्षात् नारायण-दर्शन कर रहे हैं? क्या इसी का ही नाम मनुष्य में ईश्वर-दर्शन है? कैसा आश्चर्य, देखते ही देखते ठाकुर का होश जा रहा है! यही देखो, बहिर्जगत् का होश चला जा रहा है! इसी का नाम लगता है, अर्धबाह्य-दशा है, जो श्री गौरांग की हुई थी। अब भी नरेन्द्र के पाँव के ऊपर हाथ है, मानो छल करके नारायण के पाँव दबा रहे हैं; और फिर देह पर हाथ फेरते हैं। इतना शरीर सहलाना; पाँव दबाना; क्यों? यह क्या नारायण की सेवा कर रहे हैं या शक्ति-संचार कर रहे हैं?

देखते ही देखते और भी भावान्तर हो रहा है। यह फिर और नरेन्द्र के निकट हाथ जोड़ कर क्या कहते हैं? कहते हैं— "एक गाना गा तो, फिर ठीक हो जाऊँगा— 'उठते पारबो केमन करे? गोराप्रेमे गर्गर मातोयारा' (निताई आमार)।" (कैसे उठ सकूँगा? गौरांग के प्रेम में एकदम मतवाला हो रहा है, (मेरा नित्यानन्द)।)

फिर कुछ क्षण और अवाक् , चित्र में पुतली की भाँति चुप बैठे रहे। फिर और भाव में मतवाले होकर कहते हैं— "देखियो राधा, यमुना में कहीं गिर न जाइओ— कृष्ण-प्रेम में उन्मादिनी!"

फिर अधिक भाव में विभोर हैं। कहते हैं— 'सखि, वह वन कितनी दूर है, जिस वन में मेरा श्याम सुन्दर है।' (यहीं तो कृष्ण-गन्ध मिल रही है) (मैं तो चल नहीं सकती)।

अब लो, जगत् भूल गया है! किसी की भी याद नहीं— नरेन्द्र सामने हैं, किन्तु नरेन्द्र की याद नहीं कहाँ बैठे हैं। कुछ भी होश नहीं, अब मानो मन-प्राण ईश्वर में चले गए हैं। 'मद्गत-अन्तरात्मा।'

'गोराप्रेमे गर्गर मातोयारा', यह बात कहते-कहते हठात् हुंकार करके खड़े हो गए। और फिर बैठ रहे हैं, बैठ कर कह रहे हैं— "वह एक आलोक आ रहा है, देख रहा हूँ। किन्तु किस दिशा से वह आलोक आ रहा है, अभी तक भी समझ नहीं पा रहा।"

अब नरेन्द्र गाना गा रहे हैं—

सब दुःख दूर करिले दर्शन दिये— मोहिले प्राण।
सप्त लोक भूले शोक, तोमार पाईये,
कोथाय आमि अति दीन-हीन॥

[आपने दर्शन देकर सब दुःख दूर कर दिए हैं और प्राणों को मोह लिया है। तुम्हें प्राप्त करके सातों लोकों के शोक भूल जाते हैं। अति दीन-हीन बेचारा मैं कहाँ हूँ?]

गाना सुनते-सुनते श्री रामकृष्ण को बाहर का जगत् भूला जा रहा है और फिर निमीलित नेत्र, स्पन्दनहीन देह। समाधिस्थ।

बालक साथी को न देखकर जैसे अन्धकार देखता है, वैसे ही समाधि भंग होने पर कह रहे हैं— "मुझे कौन ले जाएगा?"

रात काफ़ी हो गई है। फाल्गुन कृष्णा दशमी, अन्धेरी रात। ठाकुर दक्षिणेश्वर-कालीबाड़ी जाएँगे। गाड़ी में चढ़ेंगे। भक्तगण गाड़ी के पास

खड़े हैं। वे चढ़ रहे हैं। बड़ी सावधानी से उन्हें चढ़ाया जा रहा है। वे अभी तक भी हैं 'गर्गर मतवाले।'

गाड़ी चली गई। भक्तगण अपने-अपने घर जा रहे हैं।

दशम परिच्छेद

(सेवक-हृदय में)

मस्तक के ऊपर तारका-मण्डित नैश गगन, हृदयपट पर अद्भुत श्री रामकृष्ण-छवि, स्मृति में भक्तों की मजलिस, सुखस्वप्नवत् नयनों में वह प्रेम की हाट लिए कलकत्ता के राज-पथ पर घर की ओर भक्तगण जा रहे हैं! कोई-कोई सरस वसन्त अनिल सेवन करते-करते वही गाना ही फिर गाते-गाते जा रहे हैं— 'सब दुःख दूर करिले दरशन दिए, मोहिले प्राण।'

मणि सोचते-सोचते जा रहे हैं, 'सचमुच ही क्या ईश्वर मनुष्य-देह धारण करके आते हैं? तो फिर क्या अवतार सत्य है? अनन्त ईश्वर 'चौदह पोया' (साढ़े तीन हाथ का) मनुष्य कैसे बनते हैं? अनन्त क्या सान्त होता है? विचार तो बहुत हो चुका। समझा ही क्या हूँ? विचार के द्वारा कुछ भी नहीं समझा।'

ठाकुर श्री रामकृष्ण ने तो सुन्दर कहा— "जब तक विचार है, तब तक वस्तु-लाभ नहीं होता, तब तक ईश्वर-लाभ नहीं होता।" वह भी सत्य है। यह तो एक छटाँक बुद्धि है, इसके द्वारा फिर ईश्वर की बात के बारे में क्या समझूँगा? एक सेर की बाटी में क्या चार सेर दूध समाता है? किन्तु अवतार-विश्वास किस तरह होता है? ठाकुर ने कहा— 'ईश्वर यदि दया करके दिखला दें, तब तो फिर, एक क्षण में ही समझ में आ जाता है।' गेटे (Goethe) मृत्यु-शय्या पर बोले थे, 'Light! More Light!' (प्रकाश और प्रकाश)। वे यदि दया करके आलोक जला कर दिखला दें, तब तो 'छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।'

जैसे पैलेस्टाइन के मूर्ख धीवरों ने यीसु (Jesus) को अथवा जैसे श्रीवास आदि भक्तों ने श्री गौरांग को पूर्ण अवतार देख लिया था। यदि दया करके वे न दिखलावें , तब फिर उपाय क्या? क्यों, जब ठाकुर श्री रामकृष्ण ने यह बात कही है, तब तो अवतार का विश्वास करूँगा। उन्होंने ही सिखाया है— विश्वास, विश्वास, विश्वास! गुरु-वाक्य पर विश्वास। और

"तोमारेइ करियाछि जीवनेर ध्रुवतारा।
ए समुद्रे आर कभु हबो नाको पथहारा॥"
जेथाआमि जाइनाको, तुमि प्रकाशित थाको।
आकुल नयन जले ढालो गो किरण धारा॥
तव मुख सदा मने, जागितेदे संगोपने।
तिलेक अन्तर होले ना हेरि कूल किनारा॥
कखनओ विपथे यदि, भ्रमिते चाहे एहृदि,
अमनि ओ मुख हेरि सरमेते होय सारा॥'

[तुम्हें ही जीवन का ध्रुव तारा बनाया है , इस समुद्र में फिर कभी भी नहीं भटकना। जहाँ मैं जाता हूँ , तुम वहाँ पर ही प्रकाशित होते रहते हो। व्याकुल नयनों के जल में तुम किरण-धारा ढालते रहते हो। तुम्हारा मुख सर्वदा मन में, गोपन में जगा रहता है। यदि तनिक भी वह छिप जाता है, तो कूल-किनारा नज़र नहीं आता। यदि यह हृदय कभी घूमते-घूमते गलत रास्ते पर चला भी जाता है तो आपका मुख देखकर मैं लज्जित हो जाता हूँ।]

मुझे उनकी वाणी पर ईश्वर-कृपा से विश्वास हो गया है। मैं विश्वास करूँगा। अन्य जो करते हैं, करें। मैं ऐसा देव-दुर्लभ विश्वास क्यों छोड़ूँ? विचार पड़ा रहे। 'ज्ञान-चच्चरि' (ज्ञान-चर्चा) करके क्या मुझे एक और फॉस्ट (Faust) बनना होगा और क्या फिर गम्भीर रजनी में खिड़की के रास्ते से चन्द्र-किरण आएगी और फॉस्ट की तरह अकेला कमरे में 'हाय! कुछ भी जान नहीं सका, सायन्स-फिलासफी वृथा पढ़े; हमारे जीवन को धिक्कार है!' यह कहकर विष की शीशी

लेकर आत्महत्या करने बैठूँगा? या और एक व्यक्ति एलास्टर 'Alastor' की भाँति अज्ञान का बोझा न ढो सकने पर शिलाखण्ड के ऊपर सिर रखकर मृत्यु की इन्तज़ार करनी होगी? नहीं, मुझे इन समस्त भयानक विद्वानों की भाँति एक छटाँक ज्ञान द्वारा यह रहस्य-भेद करने की ज़रूरत नहीं है। और एक सेर के बर्तन में चार सेर दूध नहीं समा रहा है, इस कारण मरने जाने का प्रयोजन नहीं है। बड़ी अच्छी वाणी है— 'गुरु-वाक्य पर विश्वास।' हे भगवन्! मुझे वही विश्वास दो, और निरर्थक भटकवाना मत, जो होना ही नहीं है, उसे खोजने के लिए ले जाइयो ही मत। और ठाकुर ने जो सिखाया है, 'जैसे तुम्हारे पाद-पद्मों में शुद्धा भक्ति हो जाए— अमला, अहेतुकी भक्ति', और 'जैसे तुम्हारी भुवन-मोहिनी माया में मुग्ध न होऊँ,' कृपा करके यही आशीर्वाद करो।

श्री रामकृष्ण की ये अदृष्टपूर्व प्रेम की बातें सोचते-सोचते मणि उसी अन्धेरी रात में राजपथ से घर लौट रहे हैं और विचार कर रहे हैं, 'गिरीश से कैसा प्यार! गिरीश थियेटर चले जाएँगे, तो भी उनके घर में जाना ही होगा। केवल वैसा ही नहीं। यहाँ तक भी नहीं कहते कि त्याग कर; मेरे लिए घर, रिश्तेदार, विषय-कर्म सब त्याग करके संन्यास ले ले। समझ गया; इसका अर्थ यही है, समय बिना हुए, तीव्र वैराग्य बिना हुए छोड़ने से कष्ट होगा। ठाकुर जैसे स्वयं ही कहते हैं, घाव की पपड़ी घाव के बिना पूरा सूखे उतारने से रक्त निकलकर कष्ट होगा। किन्तु घाव सूख जाने पर पपड़ी अपने आप झड़ कर गिर जाती है।' सामान्य व्यक्ति, जिनकी अन्तर्दृष्टि नहीं होती है, वे कहते हैं, इसी क्षण संसार छोड़ दो। ये हैं सद्गुरु, अहेतुक कृपासिन्धु, प्रेम समुद्र। जीव का कैसे मंगल हो, यही चेष्टा दिन-रात करते हैं।

"फिर गिरीश का कैसा विश्वास! दो दिन दर्शन के पश्चात् ही कहा था, 'प्रभु! तुम ही ईश्वर हो; मनुष्य-देह धारण करके आए हो मेरे परित्राण के लिए।' गिरीश ठीक ही तो कहते हैं, 'ईश्वर मनुष्य-देह धारण बिना किए घर के व्यक्ति की भाँति कैसे शिक्षा देंगे? कौन जनवाएगा, ईश्वर ही वस्तु और सब अवस्तु। धरती पर गिरी हुई दुर्बल

सन्तान को हाथ से पकड़कर कौन उठाएगा? कौन कामिनी- काञ्चन-आसक्त पशु-स्वभाव वाले मनुष्य को फिर दुबारा पहले की भाँति अमृत का अधिकारी बनाएगा? और वे मनुष्य-रूप में संग-संग न फिरें, तो जो 'तद्गत अन्तरात्मा' हैं, जिनको ईश्वर के बिना और कुछ भी अच्छा नहीं लगता, वे किस प्रकार जीवन काटेंगे? इसीलिए—

'परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥' (गीता 4:8)

"कैसा प्यार!— नरेन्द्र के लिए पागल, नारायण के लिए क्रन्दन! कहते हैं 'ये तथा दूसरे लड़के— राखाल, भवनाथ, पूर्ण, बाबूराम, इत्यादि— साक्षात् नारायण हैं। मेरे लिए देह-धारण करके आए हैं।' अरे, यह प्रेम तो मनुष्य-ज्ञान से नहीं है। यह प्रेम तो देख रहा हूँ, ईश्वर-प्रेम है। लड़के शुद्ध आत्मा हैं, स्त्रियों को दूसरे भाव से स्पर्श भी नहीं किया है। विषय-कर्म करके इन में लोभ, अहंकार , हिंसा, इत्यादि विकसित नहीं हुए हैं। तभी तो लड़कों में ईश्वर का अधिक प्रकाश है। किन्तु ऐसी दृष्टि किसकी है? ठाकुर की अन्तर्दृष्टि है, समस्त देख रहे हैं, कौन विषयासक्त, कौन सरल, उदार, ईश्वरभक्त हैं। इसीलिए तो ऐसे भक्त देखने पर साक्षात् नारायण जानकर उनकी सेवा करते हैं। उन्हें नहलाते हैं, सुलाते हैं, उन्हें देखने के लिए रोते हैं, कलकत्ता भागे-भागे जाते हैं। कलकत्ता से उनको गाड़ी से लाने के लिए लोगों की खुशामद करते फिरते हैं। गृही भक्तों को सर्वदा कहते हैं— 'उन्हें बुलाकर खिलाइयो, उससे तुम्हारा भला होगा।' यह क्या मायिक प्रेम है या विशुद्ध ईश्वर-प्रेम? मिट्टी की प्रतिमा में इतनी षोडश उपचार से ईश्वर की पूजा और सेवा होती है, फिर शुद्ध नर-देह में क्या नहीं होती? इसके अतिरिक्त ये ही तो हैं भगवान की प्रत्येक लीला के सहाई! जन्म-जन्म के सांगोपांग!

"नरेन्द्र को देखते-देखते बाह्यजगत् भूल गए, देही नरेन्द्र को क्रमशः भूल गए। बाहरी मनुष्य (apparent man) को भूल गए , प्रकृत मनुष्य (Real Man) के दर्शन करने लगे— अखण्ड सच्चिदानन्द में मन

लीन हो गया। जिनके दर्शन करके कभी अवाक्, स्पन्दनहीन होकर चुप रहते हैं, कभी 'ॐ, ॐ' बोलते हैं, कभी फिर 'माँ-माँ' करके बालकवत् पुकारते हैं, नरेन्द्र के भीतर उनका अधिक प्रकाश देखते हैं। नरेन्द्र-नरेन्द्र करके पागल हैं।

"नरेन्द्र अवतार नहीं मानते, उससे फिर क्या हुआ? ठाकुर के दिव्यचक्षु हैं, उन्होंने देख लिया है कि यह अभिमान हो सकता है। वे तो बहुत बड़े अपने जन हैं, वे तो अपनी माँ हैं, बनाई हुई माँ तो नहीं। वे क्यों नहीं समझा देंगे, वे क्यों दया करके आलोक जलाकर दिखा नहीं देंगे? तभी तो लगता है, ठाकुर बोले—

"मान कयलि सो कयलि, आमराओ तोर माने आछि।" (हे राधा, मान कर रही हो तो करो, हम भी तेरे मान में हैं।)

"जो आत्मीय से परमात्मीय हैं, उनके ऊपर अभिमान नहीं करेगा तो किसके ऊपर करेगा? धन्य नरेन्द्रनाथ, तुम्हारे ऊपर इन पुरुषोत्तम का इतना प्यार! तुम्हें देखकर इतने सहज में ही ईश्वर-उद्दीपन!"

इस प्रकार सोचते-सोचते उसी गम्भीर रात में भक्तगण श्री रामकृष्ण को स्मरण करते-करते अपने गृहों को लौट रहे हैं।

•

पञ्चदश खण्ड

श्री रामकृष्ण ईशान, डॉक्टर सरकार, गिरीश आदि भक्तों के संग में श्यामपुकुर-गृह में आनन्द और कथोपकथन

प्रथम परिच्छेद

(गृहस्थाश्रम कथा-प्रसंग)

आश्विन शुक्ला चतुर्दशी। सप्तमी, अष्टमी और नवमी, तीन दिन महामाया का पूजा-महोत्सव हो गया। दशमी को विजया है। उसके उपलक्ष्य में परस्पर का प्रेमालिंगन-व्यापार पूरा हो गया है। भगवान श्री रामकृष्ण भक्तों के संग में कलकत्ता के शहर के भीतर के श्यामपुकुर नामक मुहल्ले में वास कर रहे हैं। शरीर में कठिन रोग है— गले का कैंसर। बलराम के मकान पर जब थे, कविराज गंगाप्रसाद देखने आया करते। उनको ठाकुर ने पूछा था, 'यह रोग साध्य है या असाध्य?' कविराज ने इस प्रश्न का उत्तर नहीं दिया था, चुप रहे थे। अंग्रेज़ी डॉक्टरों ने 'रोग असाध्य है', इशारा कर दिया था। इस समय डॉ० सरकार चिकित्सा कर रहे हैं।

आज बृहस्पतिवार, 22 अक्तूबर, 1885 ईसवी। श्यामपुकुर में एक दोतल के मकान के दूसरे तल के कमरे के मध्य में शय्या बिछाई गई है, उसके ऊपर श्री रामकृष्ण बैठे हैं। डॉक्टर सरकार, श्रीयुक्त ईशानचन्द्र मुखोपाध्याय तथा भक्तगण सामने एवं चारों ओर बैठे हैं। ईशान बड़े दानी हैं। पैंशन लेकर भी दान करते हैं और सर्वदा ईश्वर-चिन्तन में ही

रहते हैं। कष्ट सुनकर देखने आए हैं। डॉक्टर सरकार इलाज़ करने आकर छः-सात घण्टे रह जाते हैं। श्री रामकृष्ण के प्रति बहुत अधिक भक्ति, श्रद्धा है और भक्तों के साथ अपने परम जन जैसा व्यवहार करते हैं। रात के प्रायः सात बजे हैं। बाहर ज्योत्स्ना है, पूर्ण अंगी निशानाथ जैसे चारों ओर सुधा ढाल रहे हैं। भीतर दीप का आलोक है, कमरे में अनेक लोग हैं। अनेक ही महापुरुष-दर्शन करने के लिए आए हैं। सब ही एक दृष्टि से उनकी ओर देख रहे हैं। सुनेंगे, वे क्या कहते हैं और देखेंगे, वे क्या करते हैं।' ईशान को देखकर ठाकुर श्री रामकृष्ण कहते हैं—

(निर्लिप्त संसारी— निर्लिप्त होने का उपाय)

"जो संसारी ईश्वर के पादपद्मों में भक्ति रखकर संसार करता है, वह धन्य है, वह वीर पुरुष! जैसे किसी के सिर पर दो मन बोझा है और वर जा रहा है, सिर पर बोझा है, तब भी वह वर देखता है। खूब शक्ति न हो तो होता नहीं। जैसे पांकाल मछली पंक में रहती है, किन्तु शरीर पर तनिक भी पंक (कीचड़) नहीं लगता। पनडुब्बी जल में सर्वदा डुबकी लगाती है, किन्तु पंख एक बार झाड़ते ही फिर शरीर पर जल ठहरता नहीं।

"किन्तु संसार में निर्लिप्त भाव से रहने के लिए कुछ साधन करना चाहिए। कुछेक दिन निर्जन में रहना आवश्यक है। वह एक साल हो, या छः महीने हो, तीन महीने हो अथवा एक मास हो। उस निर्जन में ईश्वर-चिन्तन करना चाहिए, सर्वदा व्याकुल होकर उनसे भक्ति के लिए प्रार्थना करनी चाहिए; और मन-मन में कहना चाहिए— 'मेरा इस संसार में कोई नहीं है। जिन्हें अपना कहता हूँ, वे तो दो दिन के लिए हैं। भगवान ही मेरे अपने एकमात्र जन हैं। वे ही मेरे सर्वस्व हैं। हाय, कैसे उन्हें पाऊँ?'

"भक्ति-लाभ के पश्चात् संसार किया जा सकता है। जैसे हाथों पर तेल मलकर कटहल तोड़ना चाहिए। हाथों में फिर लेस (चेप) नहीं

लगेगा। संसार जल-स्वरूप है और मनुष्य का मन जैसे दूध है। जल में यदि दूध रखो तो दूध और जल एक हो जाएगा। तभी तो निर्जन स्थान पर दही जमाना पड़ता है। दही जमने पर मक्खन निकालना होता है। मक्खन निकाल कर यदि जल में रख दें तो फिर जल में नहीं मिलेगा, निर्लिप्त होकर तैरता रहेगा।

"ब्रह्म-ज्ञानियों ने मुझसे कहा था, 'महाशय, हमारा तो राजा जनक का मत है। उनकी भाँति निर्लिप्त रूप से हम संसार करेंगे।' मैंने कहा, 'निर्लिप्त रूप से संसार करना बड़ा कठिन है। मुख से बोल लेने से ही राजा जनक नहीं बना जाता। राजा जनक ने सिर नीचे और पैर ऊपर करके कितनी तपस्या की थी! तुम लोगों को सिर नीचे, पैर ऊपर करना नहीं पड़ेगा।'

"किन्तु साधन चाहिए! निर्जन में वास चाहिए। निर्जन में ज्ञान-लाभ, भक्ति-लाभ करके तब फिर जाकर संसार करना चाहिए। दही निर्जन में जमानी पड़ती है। हिलाने-डुलाने से दही नहीं जमती।

"जनक निर्लिप्त थे। इस कारण, उनका एक विशेष नाम विदेह है। क्योंकि देह में देह-बुद्धि नहीं थी। संसार में रहते हुए भी जीवन्मुक्त होकर घूमते थे। किन्तु देह-बुद्धि जाना बहुत दूर की बात है। खूब साधन चाहिए।

जनक थे बड़े भारी वीर पुरुष। दो तलवारें घुमाते थे— एक ज्ञान की, एक कर्म की!"

(गृहस्थ आश्रम का ज्ञान और संन्यास आश्रम का ज्ञान)

"यदि पूछो कि गृहस्थ आश्रम के ज्ञानी और संन्यास आश्रम के ज्ञानी— इन दोनों में अन्तर है कि नहीं , तो उसका उत्तर यही है कि दोनों एक ही वस्तु हैं। यह भी ज्ञानी, वह भी ज्ञानी— एक वस्तु। किन्तु गृहस्थ के ज्ञानी को भय रहता ही है। कमिनी-काञ्चन के भीतर रहने पर कुछ-न-कुछ भय है ही। काजल के कक्ष में रहने पर कितना ही

सयाना क्यों न हो, थोड़ा-बहुत काला दाग़ तो शरीर पर लगेगा ही। मक्खन निकाल कर यदि नई हण्डी में रखो, तो मक्खन के नष्ट होने की सम्भावना नहीं रहती। यदि छाछ (लस्सी) की हण्डी में रखो, तो सन्देह रहता है। *(सब का हास्य)*।

"खीलें जब भूनी जाती हैं, तो दो-चार दाने भूनने के बरतन में से पट-पट करके उछल पड़ते हैं। वे मानो मल्लिका फूलवत् हैं, शरीर पर तनिक-सा भी दाग नहीं होता। बर्तन में जो खीलें होती हैं, वे भी अच्छी खीलें हैं, किन्तु ऐसी फूलवत् नहीं होतीं। शरीर पर तनिक दाग रहता है। गृहस्थ-त्यागी संन्यासी यदि ज्ञान-लाभ कर लेता है, तो फिर से ठीक इस मल्लिका फूलवत् दागशून्य हो जाता है; और ज्ञान के पश्चात् संसार-बर्तन में रहने पर थोड़ा-सा शरीर पर लाल-सा दाग हो सकता है। *(सब का हास्य)*।

"राजा जनक की सभा में एक भैरवी आई थी। स्त्री देखकर राजा जनक ने मुख झुकाकर आँखें नीची कर ली थीं। भैरवी ने यह देखकर कहा था, 'हे जनक, तुम्हें अब भी स्त्री देखकर भय है?' पूर्ण ज्ञान होने पर पाँच वर्ष के बच्चे का स्वभाव हो जाता है। तब स्त्री-पुरुष नामक भेद बुद्धि नहीं रहती।

"जो भी हो, यद्यपि गृहस्थ-ज्ञानी की देह पर दाग तो रह सकता है, तथापि उस दाग से कोई क्षति नहीं होती। चन्द्र पर कलंक तो चाहे है, किन्तु आलोक का व्याघात नहीं होता।"

(ज्ञान के पश्चात् कर्म— लोक-संग्रहार्थ)

"कोई-कोई ज्ञान-प्राप्ति के पश्चात् लोक-शिक्षा के लिए कर्म करते हैं, जैसे जनक और नारद आदि। लोक-शिक्षा के लिए शक्ति रहनी चाहिए। ऋषि अपने-अपने ज्ञान के लिए व्यस्त थे। नारद आदि आचार्य लोक-हित के लिए विचरण किया करते। वे वीर पुरुष थे।

'हाबाते काठ' (हलकी, पुरानी लकड़ी) जब तैरती हुई जाती है तो पक्षी के ज़रा से बैठ जाने पर ही डूब जाती है। किन्तु 'बाहादुरी काठ' (भारी लकड़ी) जब तैरती है, तब गाय, मनुष्य, हाथी तक उसके ऊपर जा सकता है। स्टीम-बोट आप भी उस पार जाती है, और फिर कितने ही मनुष्यों को भी पार कर देती है।

"नारद आदि आचार्य बाहादुरी काठवत्, स्टीम-बोटवत् हैं।

"कोई खाकर अंगोछे से मुख पोंछकर बैठ जाता है, कहीं पीछे किसी को पता लगे ही नहीं। *(सब का हास्य)*। और फिर कोई एक आम मिलने पर काटकर थोड़ा-थोड़ा सबको देता है और आप भी खाता है।

"नारद आदि आचार्य सबके मंगल के लिए ज्ञान-लाभ के पश्चात् भी भक्ति लिए हुए थे।"

द्वितीय परिच्छेद

(युग-धर्म कथा प्रसंग में— ज्ञानयोग और भक्तियोग)

डॉक्टर— ज्ञान में मनुष्य अवाक् हो जाता है। नेत्र बन्द हो जाते हैं और नेत्रों से जल आता है। तब भक्ति का प्रयोजन है।

श्री रामकृष्ण— भक्ति स्त्री है। तभी अन्तःपुर तक जा सकती है। ज्ञान बाहर की बैठक तक ही जा पाता है। *(सब का हास्य)*।

डॉक्टर— किन्तु अन्तःपुर में तो जिस किसी को प्रवेश करने नहीं दिया जाता। वेश्याएँ नहीं जा सकतीं। ज्ञान चाहिए।

श्री रामकृष्ण— ठीक पथ नहीं जानता, किन्तु ईश्वर में भक्ति है, उनको जानने की इच्छा है— ऐसे लोग केवल भक्ति के ज़ोर से ईश्वर-लाभ करते हैं। एक बड़ा भारी भक्त जगन्नाथ जी का दर्शन करने निकला था। पुरी का कोई भी पथ वह नहीं जानता था। दक्षिण की ओर न चलकर पश्चिम की ओर चला गया। पथ तो चाहे भूल गया था,

किन्तु व्याकुल होकर लोगों से पूछता था। उन्होंने बता दिया— 'यह रास्ता नहीं है, उस रास्ते से जाओ।' उस भक्त ने अन्त में पुरी पहुँच कर जगन्नाथ-दर्शन कर लिया। देखो, न जानने पर भी कोई न कोई बतला देता है।

डॉक्टर— वह भूल तो गया था।

श्री रामकृष्ण— हाँ, भूला तो चाहे था, किन्तु अन्त में पा लिया।

किसी ने पूछा— ईश्वर साकार हैं कि निराकार।

श्री रामकृष्ण— वे साकार हैं और निराकार भी हैं। एक संन्यासी जगन्नाथ-दर्शन करने गया था। जगन्नाथ-दर्शन करने के बाद सन्देह हुआ कि ईश्वर साकार हैं या निराकार। हाथ में दण्ड था। उसी डण्डे से देखने लगा, जगन्नाथ की देह पर स्पर्श करता है कि नहीं। एक बार इस किनारे से उस किनारे तक डण्डा ले जाते समय देखा कि उसने जगन्नाथ जी की देह को स्पर्श नहीं किया। देखा कि वहाँ पर ठाकुर की मूर्त्ति नहीं है। और फिर दुबारा डण्डे को इस किनारे से उस किनारे तक ले जाते समय विग्रह की देह को स्पर्श किया। तब संन्यासी ने समझ लिया कि ईश्वर निराकार हैं और साकार भी हैं।

"किन्तु इसकी धारणा करना बड़ा कठिन है। जो निराकार हैं, वे फिर साकार कैसे होंगे? वह सन्देह मन में उठता है। फिर यदि साकार हैं, तो नाना रूप क्यों हैं?"

डॉक्टर— जिन्होंने आकार बनाया है, उन्होंने साकार भी। उन्होंने फिर इच्छा की तो वे निराकार हुए। वे सब ही हो सकते हैं।

श्री रामकृष्ण— ईश्वर को प्राप्त बिना किए यह समस्त समझा नहीं जाता। साधक के लिए वे नाना प्रकार से नाना रूपों में दिखाई देते हैं।

"किसी के पास एक चिलमची रंग था। बहुत-से जन उसके पास कपड़ा रंगवाने आते थे। वह व्यक्ति पूछता, 'तुम कौन सा रंग रंगवाना चाहते हो?' एक ने शायद कह दिया, 'मैं लाल रंग में रंगवाना चाहता हूँ।' वह आदमी झट से चिलमची के रंग में वह कपड़ा रंगकर कहता है,

'यह लो अपना लाल रंगा हुआ कपड़ा।' और एक शायद कहता, 'मैं पीले रंग में रंगवाना चाहता हूँ।' झट से वह व्यक्ति उसी बर्तन में कपड़ा डुबा कर कहता, 'यह लो अपना पीले रंग का कपड़ा।' नीले रंग में रंगा हुआ माँगने पर फिर उसी एक ही बर्तन में डुबा कर वही बात, 'यह लो अपना नीले रंग में रंगा हुआ कपड़ा।' इस प्रकार जो जिस रंग में रंगवाना चाहता, वह उस कपड़े को उसी रंग में उसी एक ही बर्तन में रंगता। एक व्यक्ति यह आश्चर्यजनक व्यापार देख रहा था। जिसकी चिलमची थी, उस व्यक्ति ने पूछा, 'कैसे आए हो भाई? तुम्हें किस रंग में रंगवाना है?' तब वह बोला, "भाई! तुम जिस रंग में रंग रहे हो, मुझे वही रंग दो।" *(सब का हास्य)*।

"एकजन बाह्य गया था। वहाँ देखा, पेड़ के ऊपर एक सुन्दर जानवर रहता है। उसने क्रमशः और एकजन से कहा, 'भाई, अमुक् वृक्ष पर मैंने एक लाल रंग का विशेष जानवर देखा है।' वह व्यक्ति कहने लगा, 'मैंने भी देखा है, किन्तु वह लाल रंग का नहीं है, वह तो हरे रंग का है।' और एकजन बोला, 'नहीं नहीं, हरा नहीं, वह तो पीले रंग का है।' इसी प्रकार औरों ने भी कहा। कोई कहता है बैंगनी, कोई नीला, काला इत्यादि। अन्त में झगड़ा हो गया। तब वे लोग वृक्ष के नीचे गए। जाकर देखा, एक व्यक्ति वहाँ पर बैठा है। पूछने पर वह बोला, 'मैं इसी पेड़ के नीचे रहता हूँ और मैं उस विशेष जानवर को भली-भाँति जानता हूँ। तुम लोग जो भी कुछ कह रहे हो, सब सत्य है। वह कभी लाल, कभी हरा, कभी पीला, कभी नीला और कभी न जाने क्या-क्या कितना कुछ होता रहता है। और कभी देखता हूँ कोई रंग ही नहीं है।'

"जो व्यक्ति सदा-सर्वदा ईश्वर-चिन्तन करता है, वही जान सकता है उनका स्वरूप क्या है। वही व्यक्ति ही जानता है, ईश्वर नाना रूपों में दर्शन देते हैं— नाना भावों में दिखाई देते हैं। वे सगुण हैं और फिर निर्गुण भी हैं। वृक्ष के नीचे जो रहता है, वही जानता है कि बहुरूपी के नाना रंग हैं और फिर कभी-कभी कोई रंग भी नहीं रहता। अन्य जन केवल तर्क, झगड़ा करके कष्ट पाते हैं।

"वे साकार हैं, वे निराकार हैं। वे कैसे हैं, जानते हो?— मानो सच्चिदानन्द समुद्र। कूल, किनारा नहीं। भक्ति-हिम से स्थान-स्थान पर जल जम जाता है— जैसे जल बरफ़ के आकार में जम जाता है। अर्थात् भक्त के पास वे साक्षात् हो जाते हैं। कभी-कभी साकार रूप बनकर (लेकर) दिखाई देते हैं; और कभी फिर ज्ञान-सूर्य के निकलने पर वह बरफ़ गल जाती है।"

डॉक्टर— सूर्य के निकल जाने पर बरफ़ गल कर जल बन जाता है, और फिर जानते हो, फिर दुबारा निराकार वाष्प बन जाता है।

श्री रामकृष्ण— अर्थात् ब्रह्म सत्य, जगत् मिथ्या— इस विचार के पश्चात् समाधि होने पर रूप-शूप सब उड़ जाते हैं। तब फिर ईश्वर व्यक्ति (Person) है, यह बोध नहीं होता। वे क्या हैं, मुख से नहीं बोला जाता। कौन बोलेगा? जो बोलेंगे, वे ही नहीं हैं। उनका 'मैं' तो फिर खोजने पर भी नहीं मिलता। तब ब्रह्म निर्गुण (Absolute) हैं। तब वे केवल, 'बोधे-बोध' होते हैं। मन-बुद्धि द्वारा उन्हें पकड़ा नहीं जाता। (Unknown and Unknowable)

"तभी तो कहते हैं, भक्ति चन्द्र है, ज्ञान सूर्य। सुना है, खूब उत्तर में और दक्षिण में समुद्र है। इतनी ठण्ड होती है कि जल जमकर कहीं-कहीं बरफ़ का तोंदा बन जाता है। जहाज़ नहीं चलता। वहाँ जाकर अटक जाता है।"

डॉक्टर— भक्ति-पथ पर मनुष्य अटक जाता है।

श्री रामकृष्ण— हाँ, अटक तो जाता है, किन्तु उससे हानि नहीं होती, वही सच्चिदानन्द-सागर का जल ही तो जम कर बरफ़ बना है। यदि और भी विचार करना चाहो, यदि 'ब्रह्म सत्य जगत् मिथ्या' यह विचार ही करो, उसमें भी क्षति नहीं है। ज्ञान-सूर्य से ही बरफ़ गल जाएगी। तब फिर वही सच्चिदानन्द सागर ही बचता है।

(कच्चा 'मैं' और पक्का 'मैं'— भक्त का 'मैं'— बालक का 'मैं')

"ज्ञान-विचार के अन्त में समाधि होने पर 'मैं' आदि कुछ नहीं रहता। किन्तु समाधि होना बड़ा कठिन है। 'मैं' किसी तरह भी जाना नहीं चाहता। और क्योंकि जाना नहीं चाहता, तो लौटकर फिर इसी संसार में आना पड़ता है।

"बैल हम्बा-हम्बा (मैं-मैं) करता है, इसलिए इतना दुःख है। सारा दिन हल चलाना पड़ता है। ग्रीष्म नहीं, वर्षा नहीं। उस पर भी उसको कसाई काट देते हैं। उस पर भी निस्तार नहीं। चमार लोग चमड़ा बनाते हैं, जूता तैयार करते हैं। सबसे अन्त में अन्तड़ियों से ताँत बनती है। धुनिये के हाथ में पड़कर जब 'तुहुँ' 'तुहुँ' ('तुम','तुम') करता है, तब निस्तार होता है।

"जब जीव कहता है, 'नाहं', 'नाहं', 'नाहं'— हे ईश्वर , मैं कुछ नहीं। मैं दास, तुम प्रभु— तब निस्तार, तब ही मुक्ति।"

डॉक्टर— किन्तु धुनिये के हाथ में पड़ना चाहिए। *(सब का हास्य)*।

श्री रामकृष्ण— यदि 'मैं' बिल्कुल जाता ही नहीं, तो साला रहे 'दास-मैं' बन कर। *(सब का हास्य)*।

"समाधि के बाद किसी-किसी का 'मैं' रहता है— दास 'मैं', भक्त-'मैं'। शंकराचार्य ने विद्या का 'मैं' लोक-शिक्षा के लिए रख दिया था। दास 'मैं', विद्या का 'मैं', भक्त का 'मैं'— इसका नाम ही है पक्का 'मैं'। कच्चा 'मैं' क्या है, जानते हो? मैं कर्ता, मैं इतने बड़े व्यक्ति की सन्तान, विद्वान्, मैं धनवान, मुझको फिर ऐसी बात कहता है?— ऐसा समस्त भाव। यदि कोई घर में चोरी करता है और पकड़ लिया जाता है; प्रथम तो सब चीजें निकाल लेता है, फिर उसके बाद खूब मारता है, फिर पुलिस में दे देता है। कहता है, क्या जानते नहीं, किसकी चोरी की है?

"ईश्वर-लाभ हो जाने पर पाँच वर्ष के बालक का स्वभाव हो जाता है। बालक का 'मैं' अर्थात् पक्का 'मैं'। बालक किसी गुण के वश में नहीं— त्रिगुणातीत। सत्त्व, रज, तम, किसी भी गुण के वश में नहीं।

देखो, बच्चा तमोगुण के वश में नहीं। अभी-अभी झगड़ा, मार-काट करता है और तत्क्षण उसके ही गले में बाहें डालकर कितना प्यार, कितना खेल! रजोगुण के भी वश में नहीं। अभी खिलौनाघर बनाया, कितना प्रबन्ध आदि! कुछ क्षण पश्चात् ही सब पड़ा रह गया, माँ की तरफ़ झट भाग जाता है। शायद एक सुन्दर धोती पहने हुए टहल रहा है। क्षणेक पश्चात् धोती धूल में गिर गई। शायद धोती की बात बिल्कुल ही भूल गया। नहीं तो बगल में दबाकर फिर रहा है *(हास्य)*।

"यदि उस लड़के से कहो, सुन्दर धोती है, किसकी है? वह कहता है— मेरी धोती मेरे पिता ने दी है। यदि कहो, 'प्यारे नन्हें बच्चे, मुझे यह धोती दे दे।' वह कहता है, 'यह मेरी धोती है, मेरे पिता जी ने दी है, नहीं, मैं नहीं दूँगा।' तत्पश्चात् यदि भुलाकर एक गुड़िया या एक बंसी हाथ में दे दो, तो फिर पाँच रुपये की धोती तुम्हें देकर चला जाएगा। और पाँच वर्ष के बच्चे में सत्त्व गुण की भी आसक्ति नहीं। अभी-अभी तो मुहल्ले के साथियों के साथ कितना प्यार, एक पल भी देखे बिना नहीं रह सकता। किन्तु बाप-माँ के संग जब अन्य स्थान पर चला गया, तब नए साथी बन गए। उनके ऊपर तब सारा प्यार पड़ गया। पुराने साथियों को एकदम भूल गया। फिर उस पर जाति-अभिमान नहीं। माँ ने कह दिया है कि वह तेरा दादा है, तो सोलह आना यही समझता है कि सचमुच ही दादा है। तब यदि एक ब्राह्मण का लड़का हो और एक कुम्हार का लड़का हो, तो फिर एक ही थाली में भात खाएगा। फिर शुचि-अशुचि नहीं। टट्टी वाले चूतड़ से खा लेगा। फिर लोक-लज्जा भी नहीं। झाड़ा फिरने के बाद, शौच करने के बाद, जिस किसी के पीछे फिर कर कहता है कि देख मेरी शौच ठीक हो गई कि नहीं।

"और फिर बूढ़े का 'मैं' है। *(डॉक्टर का हास्य)*। बूढ़ों के अनेक पाश होते हैं— जाति, अभिमान, लज्जा, घृणा, भय, विषय-बुद्धि, पटवारीपन, कपटता। यदि किसी पर आक्रोश-द्वेष होता है, तो सहज में नहीं जाता। सम्भवतः जब तक जीता रहता है, तब तक नहीं जाता। फिर पाण्डित्य-अहंकार, धन का अहंकार। बूढ़े का 'मैं' कच्चा मैं है।"

(ज्ञान किन को नहीं होता?)

(डॉक्टर के प्रति)— चार-पाँच जन को ज्ञान नहीं होता। जिनका विद्या का अहंकार, जिनका पाण्डित्य का अहंकार, जिनका धन का अहंकार, उनको ज्ञान नहीं होता। इन सब लोगों को यदि कहा जाए कि अमुक् स्थान पर एक बढ़िया साधु है, देखने चलोगे? वे झट नाना बहाने करके कहेंगे; और नहीं जाएँगे। और मन-मन में कहेंगे, मैं इतना बड़ा व्यक्ति, मैं जाऊँगा?

(तीन गुण— सत्त्वगुण में ईश्वर-लाभ— इन्द्रिय-संयम का उपाय)

"तमोगुण का स्वभाव अहंकार है। अहंकार अज्ञान से होता है, तमोगुण से होता है।

"पुराण में है, रावण का रजोगुण था, कुम्भकरण का तमोगुण और विभीषण का सत्त्वगुण। तभी तो विभीषण ने रामचन्द्र को पा लिया था। तमोगुण का एक लक्षण और है— क्रोध। क्रोध में दिशा-विदिशा की होश नहीं रहती। हनुमान ने लंका में आग लगा दी। यह होश नहीं रहा कि सीता की कुटी नष्ट हो जाएगी!

"और फिर तमोगुण का और एक लक्षण है— काम। पाथुरघाट के गिरीन्द्र घोष ने कहा था, 'काम-क्रोधादि रिपु तो जाएँगे नहीं, इनका मोड़ फिरा दो। ईश्वर की कामना करो। सच्चिदानन्द के साथ रमण करो।' और क्रोध यदि न जाए तो भक्ति का तम लाओ— 'क्या? मैंने दुर्गा का नाम किया है, उद्धार नहीं होगा? मुझे फिर पाप क्या? बन्धन क्या?' तत्पश्चात् ईश्वर-लाभ करने का लोभ करो। ईश्वर के रूप पर मुग्ध होओ। अगर अहंकार करना ही है, तो यह अहंकार करो कि मैं ईश्वर का दास हूँ, मैं ईश्वर का लड़का हूँ। इस प्रकार छहों रिपुओं का मोड़ फिरा देना चाहिए।"

डॉक्टर— इन्द्रिय-संयम करना बड़ा कठिन है। घोड़े की आँखों पर दोनों ओर पर्दा लगा दो। किसी-किसी घोड़े की आँखें तो एकदम ही बन्द करनी पड़ती हैं।

श्री रामकृष्ण— उनकी यदि एक बार कृपा हो जाए , ईश्वर का यदि दर्शन मिल जाए , आत्मा का यदि एक बार साक्षात् हो जाए, तो फिर कोई भय नहीं— तब फिर छहों रिपु कुछ नहीं कर सकते।

"नारद, प्रह्लाद जैसे सब नित्य सिद्ध महापुरुषों को इतना करके आँखों के दोनों ओर ठूलि (पर्दा) नहीं देना पड़ता। जो लड़का स्वयं बाप का हाथ पकड़कर खेत की मेड़ पर चलता है, वह ज़रा-सा भी असावधान होते ही बाप का हाथ छोड़ कर पोखरे में गिर सकता है। किन्तु बाप ने जिस लड़के का हाथ पकड़ लिया है, वह कभी भी पोखरे में नहीं गिरता।"

डॉक्टर— किन्तु बाप को लड़के का हाथ पकड़ना ठीक नहीं।

श्री रामकृष्ण— वैसा नहीं है। महापुरुषों का बालक स्वभाव होता है। ईश्वर के पास वे सर्वदा ही बालक हैं, उनका अहंकार नहीं रहता। उनकी सब शक्ति ईश्वर की शक्ति है। बाप की शक्ति है। अपना कुछ भी नहीं है। उनका यही तो दृढ़ विश्वास होता है।

(विचार पथ और आनन्द पथ, ज्ञान योग और भक्ति योग)

डॉक्टर— पहले घोड़े की आँखों पर दोनों ओर पर्दा बिना दिए क्या घोड़ा बढ़ना चाहता है? रिपु वश में न हो, तो क्या ईश्वर को पाया जाता है?

श्री रामकृष्ण— तुम जो कह रहे हो, उसको विचार-पथ कहते हैं; ज्ञानयोग नाम से कहते हैं। उस पथ में भी ईश्वर प्राप्त होते हैं। ज्ञानीजन कहते हैं पहले चित्तशुद्धि होना आवश्यक है। पहले साधना चाहिए, तभी ज्ञान होगा।

"भक्ति-पथ से भी उन्हें पाया जाता है। यदि ईश्वर के पादपद्मों में एक बार भक्ति हो जाए, यदि उनका नाम-गुण-गान करना अच्छा लगे, तो फिर इन्द्रिय-संयम की और चेष्टा नहीं करनी पड़ती। अपने-आप ही रिपु वश में हो जाता है।

"यदि किसी को पुत्र-शोक हो जाता है, उस दिन क्या वह और किसी व्यक्ति के साथ झगड़ा कर सकता है? अथवा न्योते पर जाकर खा सकता है? वह लोगों के सामने क्या अहंकार करता हुआ घूम सकता है? या सुख-संभोग कर सकता है?

"बरसाती कीड़ा यदि एक बार आलोक देख लेता है, तो फिर क्या वह अन्धकार में रहता है?"

डॉक्टर *(सहास्य)*— फिर तो जलकर ही मरूँ , वही स्वीकार है।

श्री रामकृष्ण— नहीं, किन्तु भक्त बरसाती कीड़े की भाँति जलकर नहीं मरता। भक्त जिस आलोक को देखकर छूट भागता है, वह तो मणि का आलोक है। मणि का आलोक बड़ा उज्जवल तो चाहे होता है, किन्तु स्निग्ध और शीतल होता है। इस आलोक से देह जलती नहीं, इस आलोक से शान्ति होती है, आनन्द होता है।

(ज्ञानयोग बड़ा कठिन)

"विचार-पथ से, ज्ञानयोग के पथ से, उन्हें प्राप्त किया जाता है। किन्तु यह पथ बड़ा कठिन है। मैं शरीर नहीं, मन नहीं, बुद्धि नहीं, मैं रोग नहीं, शोक नहीं, अशान्ति नहीं, मैं सच्चिदानन्द स्वरूप, मैं सुख-दुःख के अतीत, मैं इन्द्रियों के वश में नहीं— ये समस्त बातें मुख से कहना तो बहुत सहज है, कार्य में लाना, धारणा होना बड़ा कठिन है। काँटों से हाथ कटा जा रहा है, धड़ा-धड़ खून बह रहा है। अथच कहता है, कहाँ? काँटों से हाथ तो नहीं कटा, मैं ठीक हूँ। ऐसी बातें कहना सजता नहीं। पहले तो उसी काँटे को ज्ञानाग्नि में जलाना होगा।"

(पुस्तक पढ़कर ज्ञान व पाण्डित्य— ठाकुर की शिक्षा प्रणाली)

"अनेक ही सोचते हैं कि पुस्तक बिना पढ़े तो शायद ज्ञान होता ही नहीं, विद्या नहीं होती। किन्तु पढ़ने की अपेक्षा सुनना अच्छा है। सुनने से देखना अच्छा है। काशी के विषय में सुनना और काशी-दर्शन में बड़ा अन्तर है।

"और फिर जो स्वयं शतरंज खेलता है, वह चाल उतनी नहीं समझता, किन्तु जो खेलते नहीं, ऊपर से चाल बोल देते हैं, उनकी चाल खिलाड़ियों की अपेक्षा काफ़ी ठीक होती है। संसारी लोग सोचते हैं, हम बड़े बुद्धिमान हैं। किन्तु वे विषयासक्त हैं। स्वयं खेल रहे हैं। अपनी चालों को ठीक नहीं समझ सकते। किन्तु संसार-त्यागी साधु लोग विषय में अनासक्त हैं। वे गृहस्थियों की अपेक्षा बुद्धिमान हैं। स्वयं नहीं खेलते, तभी ऊपर से चाल ठीक बता सकते हैं।"

डॉक्टर *(भक्तों के प्रति)*— पुस्तक पढ़ लेने से इस व्यक्ति (परमहंसदेव) का इतना ज्ञान नहीं होता। Farady communed with Nature, फैरेडे स्वयं प्रकृति का दर्शन किया करता था। तभी तो इतनी बड़ी scientific truth discover (वैज्ञानिक सच्चाई का आविष्कार) कर सका था। किताब पढ़कर विद्या होने से इतना नहीं हो सकता था। Mathematical formulae only throw the brain into confusion. Original inquiry के पथ में बड़ा विघ्न डाल देते हैं। (गणित के गुर केवल मस्तिष्क की नूतन जानकारी के पथ में सन्देह रूप विघ्न डाल देते हैं।)

ईश्वर प्रदत्त ज्ञान— पुस्तकीय ज्ञान
Divine widsom and book learning

श्री रामकृष्ण *(डॉक्टर के प्रति)*— जब पञ्चवटी में धरती पर पड़ा हुआ माँ को पुकारा करता था, तब मैंने माँ से कहा था, "माँ, कर्मियों ने कर्म करके जो पाया है, योगियों ने योग करके जो देखा है, ज्ञानियों ने

विचार करके जो जाना है, मुझे दिखला दो। और भी कितना क्या-क्या कहा करता था, वह क्या बताऊँ?

"आहा! कैसी-कैसी अवस्थाएँ ही चली गई हैं। निद्रा चली गई।" यह कहकर परमहंस गाना गा कर कहने लगे—

घुम भेंगेछे आर कि घुमाई, योगे-यागे जेगे आछि।
एखन योगनिद्रा तोरे दिये माँ, घुमेरे घुम पाड़ायेछि॥

[मेरी निद्रा तो टूट गई, अब और क्या सोऊँ? योग के यज्ञ में जाग रहा हूँ। इस तेरे द्वारा दी गई योग-निद्रा ने निद्रा को भी निद्रा में डाल दिया है।]

"मैंने तो पुस्तक-वुस्तक कुछ भी नहीं पढ़ी। किन्तु देखो, माँ का नाम करता हूँ, इस कारण मुझे सब ही मानते हैं। शम्भू मल्लिक ने मुझ से कहा था, 'ढाल नहीं, तलवार नहीं, शान्तिराम सिंह'?" *(सब का हास्य)*।

श्रीयुक्त गिरीशचन्द्र घोष के 'बुद्ध-चरित' नाटक की बातें होने लगीं। उन्होंने डॉक्टर को नाटक देखने का निमन्त्रण देकर अभिनय दिखाया था। डॉक्टर उसे देखकर अत्यन्त आनन्दित हुए थे।

डॉक्टर *(गिरीश के प्रति)*— तुम बहुत खराब आदमी हो। क्या मुझे रोज़ थियेटर जाना पड़ेगा?

श्री रामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— क्या कह रहा है, मैं समझा नहीं।

मास्टर— इन्हें नाटक बहुत अच्छा लगा है।

तृतीय परिच्छेद

(अवतार-कथा-प्रसंग— अवतार और जीव)

श्री रामकृष्ण *(ईशान के प्रति)*— तुम कुछ नहीं कहते? यह (डॉक्टर) अवतार नहीं मानता।

ईशान— जी, क्या अब विचार करूँ? विचार और अच्छा नहीं लगता।

श्री रामकृष्ण *(विरक्त होकर)*— क्यों? उचित बात नहीं कहोगे?

ईशान *(डॉक्टर के प्रति)*— अहंकार के कारण हम लोगों को विश्वास कम होता है। काकभुशुण्डि, रामचन्द्र को प्रथम तो अवतार रूप में नहीं माने थे। अन्त में जब चन्द्रलोक, देवलोक, कैलाश-भ्रमण करके देख लिया कि राम के हाथ से किसी प्रकार भी निस्तार नहीं है, तब स्वयं पकड़वा दिया, राम के शरणागत हो गया। राम ने तब उसको पकड़कर निगल लिया। भुशुण्डि ने तब देखा कि वह अपने ही वृक्ष पर बैठा हुआ है। अहंकार चूर्ण हो जाने पर ही तब काकभुशुण्डि समझ सके थे कि रामचन्द्र देखने में तो हमारे जैसे ही मनुष्य चाहे हैं, किन्तु उनके पेट में ब्रह्माण्ड है। उनके ही उदर के भीतर आकाश, चन्द्र, तारे, सूर्य, नक्षत्र, समुद्र, पर्वत, जीव, जन्तु, वृक्ष इत्यादि हैं।

(जीव की क्षुद्र बुद्धि)
(Limited powers of the conditioned)

श्री रामकृष्ण *(डॉक्टर के प्रति)*— इतना-सा समझना ही कठिन है कि वे ही स्वराट हैं और वे ही विराट हैं। जिनका नित्य है, उनकी ही लीला है। वे मनुष्य नहीं बन सकते, यह बात हम क्षुद्र बुद्धि से कैसे कह सकते हैं ज़बरदस्ती? हमारी क्षुद्र बुद्धि में इन समस्त बातों की क्या धारणा हो सकती है? एक सेर लोटे में क्या चार सेर दूध समाता है?

"इसलिए साधु-महात्मा, जिन्होंने ईश्वर-लाभ कर लिया है, उनकी वाणी पर विश्वास करना चाहिए। साधु ईश्वर-चिन्तन लिए रहते हैं, जैसे वकील मुकद्दमा लिए रहते हैं। क्या तुम्हें काकभुशुण्डि की बात पर विश्वास होता है?"

डॉक्टर— जितनी भली है, उतनी बात पर ही विश्वास हुआ है। विश्वास होने पर अविश्वास नहीं रहता। राम को अवतार कैसे कहूँ?

प्रथम उनका बालि-वध लो। छिप कर चोर की भाँति बाण मार कर गिराया। यह तो मनुष्य का कार्य है, ईश्वर का नहीं।

गिरीश घोष— महाशय, यह काम ईश्वर ही कर सकते हैं।

डॉक्टर— उसके पश्चात् देखो सीता का त्याग।

गिरीश— महाशय, यह कार्य भी ईश्वर ही कर सकते हैं, मनुष्य नहीं।

(साइन्स— अथवा महापुरुषों के वाक्य)

ईशान *(डॉक्टर के प्रति)*— आप अवतार क्यों नहीं मानते? अभी-अभी तो आपने ही कहा है, जिन्होंने आकार बनाया है, वे साकार हैं, जिन्होंने मन बनाया, वे निराकार हैं। अभी-अभी तो आपने कहा, ईश्वर द्वारा सब कार्य हो सकते हैं।

श्री रामकृष्ण *(हँसते-हँसते)*— ईश्वर अवतार हो सकते हैं, यह बात उनकी साइन्स (अंग्रेज़ी-विज्ञान-शास्त्र) में है जो नहीं। तो फिर किस प्रकार विश्वास हो? *(सब का हास्य)*।

"एक कहानी सुनो— किसी ने आकर कहा अरे भाई, उस मुहल्ले में देखकर आया हूँ, अमुक् का घर कड़-मड़ करके गिर गया है। जिसको यह बात कही थी, वह अंग्रेज़ी पढ़ा-लिखा था। वह बोला, ज़रा ठहरो, एक बार समाचार-पत्र देख लूँ। उसने अखबार पढ़कर देखा कि उसमें घर के गिरने का कुछ भी नहीं है। तब वह व्यक्ति बोला, 'अरे भाई, तुम्हारी बातों का मैं विश्वास नहीं करता। कहाँ? घर गिरने की खबर तो अखबार में नहीं है। वह तो झूठ बातें हैं।' *(सबका हास्य)*।

गिरीश *(डॉक्टर के प्रति)*— आपको श्री कृष्ण को ईश्वर मानना ही होगा। आपको मनुष्य मानने नहीं दूँगा। कहना ही पड़ेगा Demon or God (राक्षस या ईश्वर)।

(सरलता और ईश्वर में विश्वास)

श्री रामकृष्ण— सरल बिना हुए ईश्वर में झटपट विश्वास नहीं होता। विषय-बुद्धि से ईश्वर अनेक दूर हैं। विषय-बुद्धि रहने से नाना संशय उपस्थित हो जाते हैं और नाना प्रकार का अहंकार आ जाता है— पाण्डित्य का अहंकार, धन का अहंकार इत्यादि। ये (डॉक्टर) तो किन्तु सरल हैं।

गिरीश *(डॉक्टर के प्रति)*— महाशय, क्या कहते हैं? कुरूट (कुबड़े) को क्या ज्ञान होता है?

डॉक्टर— राम-राम बोलो! उसे भी कभी होता है?

श्री रामकृष्ण— केशवसेन कैसा सरल था! एक दिन वहाँ (रासमणि की कालीबाड़ी में) आया था। अतिथिशाला देखकर चार बजे के समय बोला, 'अजी, अतिथि और कंगालों को कब खिलाया जाएगा?'

"विश्वास जितना बढ़ेगा, ज्ञान भी उतना ही बढ़ जाएगा। जो गाय चुन-चुनकर घास खाती है, वह थोड़ा-थोड़ा दूध देती है। और जो गाय साग-पात, छिलका, भूसी, जो दो वही गप्-गप् करके खा लेती है, वह धारम्धार दूध देती है। *(सब का हास्य)*।

"बालक जैसा विश्वास हुए बिना ईश्वर को नहीं पाया जाता। माँ ने कहा, 'वह तेरा दादा है।' बालक का ऐसा विश्वास होता है कि 'वह मेरा सोलह आने दादा है।' माँ ने कहा, 'हव्वा है।' सोलह आना विश्वास है कि उस कमरे में हव्वा है। इसी तरह बालक जैसा विश्वास देखने से ईश्वर की दया होती है। सांसारिक बुद्धि से ईश्वर को नहीं पाया जाता।"

डॉक्टर *(भक्तों के प्रति)*— किन्तु गाय का जो-सो भी खाकर दूध देना ठीक नहीं है। हम एक गाय को इसी प्रकार जो-सो खाने को दे दिया करते थे, बाद में मैं बड़ा बीमार हुआ। तब सोचा इसका कारण क्या है। अनेक अनुसन्धान करने पर पता लगा, उसने चावलों की

किनकी, और भी क्या-क्या खाया था। तब महा मुश्किल हुई। लखनऊ जाना पड़ा। अन्त में बारह हज़ार रुपया खराब हो गया। *(सब का हो-हो करके हास्य)*।

"किससे क्या हो जाता है, कहा नहीं जाता। पाकपाड़ा के बाबुओं के घर में सात मास की लड़की बीमार हुई थी। काली खांसी (whooping cough) हुई थी। मैं देखने गया था। किसी तरह भी असुख का कारण निश्चित नहीं कर सका। अन्त में पता लगा गधी भीग गई थी, उस गधी का दूध वह लड़की पीती थी।" *(सब का हास्य)*।

श्री रामकृष्ण— क्या कहते हो जी? इमली के पेड़ के नीचे से मेरी गाड़ी चली गई थी, इसीलिए मुझे अम्ल रोग हुआ? *(डॉक्टर तथा सबका हास्य)*।

डॉक्टर *(हँसते-हँसते)*— जहाज़ के कप्तान को खूब सिर दर्द हुआ था। तो डॉक्टरों ने सलाह करके जहाज़ पर दवा का लेप (blister) कर दिया। *(सब का हास्य)*।

(साधुसंग और भोग-विलास-त्याग)

श्री रामकृष्ण *(डॉक्टर के प्रति)*— साधु-संग सर्वदा ही आवश्यक है। रोग लगा ही रहता है। साधु जैसे कहते हैं, वैसे ही करना चाहिए। केवल सुनने से क्या होगा? औषध खानी होगी और फिर आहार में भी नियन्त्रण करना होगा। पथ्य चाहिए।

डॉक्टर— पथ्य में ही सार है।

श्री रामकृष्ण— वैद्य तीन प्रकार के होते हैं— उत्तम वैद्य, मध्यम वैद्य, अधम वैद्य। जो वैद्य आकर नाड़ी दबाकर 'औषध खा लियो रे', यह बात कह कर चला जाता है, वह अधम वैद्य है। रोगी ने (दवा, पथ्य) खाया है कि नहीं, यह खबर नहीं लेता। और जो वैद्य रोगी को औषध खाने के लिए बहुत तरह से समझाता है, जो मीठी बातें करता

है, 'भाई, औषध बिना खाए कैसे ठीक होवोगे? प्यारे भैया, खा लो, मैं स्वयं औषध डाल देता हूँ', वह मध्यम वैद्य है। और जो वैद्य रोगी को किसी तरह भी दवा खाते न देखकर छाती पर घुटने रखकर ज़बरदस्ती औषध खिला देता है, वह उत्तम वैद्य है।

डॉक्टर— और फिर ऐसी भी दवा है जिसके लिए छाती पर घुटने रखने ही नहीं पड़ते; जैसे होमियो-पैथिक।

श्री रामकृष्ण— उत्तम वैद्य के छाती पर घुटने रखने से कोई भय नहीं है। वैद्य की भाँति आचार्य भी तीन प्रकार के होते हैं। जो धर्म-उपदेश देकर शिष्यों की फिर कोई खबर ही नहीं लेते, वे अधम आचार्य हैं। जो शिष्यों के मंगल के लिए उनको बार-बार समझाते हैं, जिससे वे उपदेशों की धारणा कर सकें, बहुत तरह से अनुनय-विनय करते हैं, प्यार दिखाते हैं— वे मध्यम आचार्य हैं। और जब देखते हैं कि शिष्य किसी प्रकार भी नहीं सुन रहे हैं, कोई-कोई ज़ोर, ज़बरदस्ती तक करते हैं, उनको कहते हैं उत्तम आचार्य।

(स्त्री और संन्यासी— संन्यासी का कठिन नियम)

(डॉक्टर के प्रति)— संन्यासी के लिये कामिनी-काञ्चन-त्याग है। स्त्रियों की छवि तक भी संन्यासी नहीं देखेगा। स्त्रियाँ कैसी हैं, जानते हो? जैसे अचार और इमली। याद आते ही मुख में जल आ जाता है, अचार और इमली समक्ष भी नहीं लाने होते।

"किन्तु यह बात आप लोगों के लिए नहीं है, यह संन्यासी के लिए है। आप लोग जहाँ तक हो सके, स्त्रियों के साथ अनासक्त होकर रहोगे। बीच-बीच में निर्जन स्थान में जाकर ईश्वर-चिन्तन करोगे। वहाँ पर वे लोग कोई न रहे। ईश्वर पर विश्वास, भक्ति आ जाने पर काफ़ी मात्रा में अनासक्त होकर रह सकोगे। दो-एक बच्चे हो जाने पर स्त्री-पुरुष दोनों जन भाई बहन की तरह रहेंगे और ईश्वर के पास प्रार्थना करेंगे, जिससे इन्द्रिय-सुख में मन न जाए , लड़के-बच्चे और न हों।"

गिरीश *(सहास्य, डॉक्टर के प्रति)*— आप यहाँ पर तीन-चार घण्टों से हैं, क्या रोगियों की चिकित्सा के लिए नहीं जाएँगे?

डॉक्टर— अब डॉक्टरी कहाँ और रोगी कहाँ? ये जो परमहंस मिले हैं, इनके कारण मेरा सब गया! *(सब का हास्य)*।

श्री रामकृष्ण— देखो, कर्मनाशा नामक एक नदी है। उस नदी में डुबकी लगा लेने पर एक बड़ी विपत्ति है। डुबकी लगा लेने पर कर्मनाश हो जाते हैं— वह व्यक्ति फिर कोई कर्म नहीं कर सकता। *(डॉक्टर तथा सब का हास्य)*।

डॉक्टर *(मास्टर, गिरीश और अन्य भक्तों के प्रति)*— देखो, मैं तुम्हारा ही हूँ। बीमारी के लिए यदि समझो, तो फिर नहीं। किन्तु अपना जन यदि मानो, तो फिर मैं तुम लोगों का हूँ।

श्री रामकृष्ण *(डॉक्टर के प्रति)*— एक है अहेतुकी भक्ति! वह यदि हो जाती है, तो बड़ा अच्छा है। प्रह्लाद की अहेतुकी भक्ति थी। वैसा भक्त कहता है, 'हे ईश्वर! मैं धन, मान, देह-सुख इत्यादि कुछ नहीं चाहता। ऐसा कर दो कि जैसे तुम्हारे पादपद्मों में शुद्धा भक्ति हो जाए।

डॉक्टर— हाँ, काली-मन्दिर में लोगों को प्रणाम करते हुए देखा है, मन के भीतर केवल कामना होती है— मेरी नौकरी लगवा दो, मेरा रोग चंगा कर दो, इत्यादि।

(श्री रामकृष्ण के प्रति)— जो बीमारी तुम्हें हुई है, इसमें लोगों के साथ बातें नहीं करनी चाहिएँ। किन्तु मैं जब आऊँगा, तब आप मेरे साथ बातें करोगे। *(सब का हास्य)*।

श्री रामकृष्ण— इस रोग को चंगा कर दो, उनका नाम-गुण-गान नहीं कर सकता।

डॉक्टर— ध्यान करने से ही हुआ।

श्री रामकृष्ण— वह कैसी बात? मैं एक-सुरा कैसे होऊँ? मैं पाँच (अनेक) प्रकार से माछ बना कर खाता हूँ। कभी झोल, कभी झाल, कभी अम्बल या कभी भाजा करके। (कभी रसदार, कभी तेज़ मिर्च

वाली, कभी खट्टी, कभी भून-तल कर)। मैं कभी पूजा, कभी जप, कभी ध्यान, अथवा कभी उनका नाम-गुण-गान करता हूँ। कभी उनका नाम करते हुए नाचता हूँ।

डॉक्टर— मैं भी एक-सुरा नहीं हूँ।

(अवतार न मानने में क्या दोष है?)

श्री रामकृष्ण— तुम्हारा लड़का अमृत अवतार नहीं मानता। उसमें दोष भी क्या है? ईश्वर को निराकार मानकर विश्वास होने से भी उनको प्राप्त किया जाता है और फिर साकार कहकर विश्वास होने पर भी उनको प्राप्त किया जाता है। उन पर विश्वास रहना और शरणागत होना, ये दो ही तो प्रयोजनीय हैं। मनुष्य तो अज्ञानी (नासमझ) है, भूल हो ही सकती है। एक सेरे लोटे में क्या चार सेर दूध रखा जाता है? इसलिए जिस पथ पर भी रहना हो, व्याकुल होकर उन्हें पुकारना चाहिए। वे तो अन्तर्यामी हैं— वे आन्तरिक पुकार को सुनेंगे ही सुनेंगे। व्याकुल होकर साकारवादी के पथ से ही जाओ या निराकारवादी के पथ से ही जाओ; उनको (ईश्वर को) ही पाओगे।

"मिश्री की रोटी सीधी करके ही खाओ या टेढ़ी करके ही खाओ, मीठी ही लगेगी। तुम्हारा लड़का अमृत तो बहुत अच्छा है।"

डॉक्टर— वह तुम्हारा चेला है।

श्री रामकृष्ण *(सहास्य, डॉक्टर के प्रति)*— कोई भी साला मेरा चेला-वेला नहीं है। मैं ही सबका चेला हूँ! सब ही ईश्वर के बच्चे हैं, सब ही ईश्वर के दास हैं। मैं भी ईश्वर का बच्चा हूँ, मैं भी ईश्वर का दास हूँ। चन्दा मामा सब का ही मामा है। *(सभास्थ सबका आनन्द और हास्य)*।

•

षोडश खण्ड

श्रीरामकृष्ण के साथ विजय, नरेन्द्र, मास्टर, डॉक्टर सरकार आदि भक्तों का कथोपकथन और आनन्द

प्रथम परिच्छेद

(ठाकुर के रोग का हाल बताने मास्टर डॉक्टर के पास)

आज रविवार, 10वाँ कार्त्तिक, कृष्णा द्वितीया, 25 अक्तूबर, 1885 ईसवी। श्री रामकृष्ण कलकत्ता में श्यामपुकुर वाले मकान में रह रहे हैं। गले की पीड़ा (कैन्सर) की चिकित्सा करवाने के लिए आए हैं। आजकल डॉक्टर सरकार देख रहे हैं।

डॉक्टर को परमहंस जी का हाल बताने के लिए मास्टर को नित्य भेजा जाता है। आज प्रातः साढ़े 6 बजे ठाकुर को प्रणाम करके मास्टर ने पूछा— "आप कैसे हैं?" श्री रामकृष्ण बोले, "डॉक्टर से कहना, आखिरी रात को सारे मुँह में पानी भर जाता है। खाँसी है, इत्यादि। पूछना, नहाऊँ कि नहीं?"

मास्टर सात के पश्चात् डॉक्टर से मिले और सब हाल बताया। डॉक्टर, वृद्ध शिक्षक और दो-एक मित्र उपस्थित थे। डॉक्टर वृद्ध शिक्षक से कहते हैं "महाशय, रात को तीन बजे से परमहंस की चिन्ता आरम्भ हो गई। फिर नींद नहीं आई। अब तक भी परमहंस चल रहा है!" *(सब का हास्य)*।

डॉक्टर के एक मित्र ने डॉक्टर से कहा, "महाशय, सुना है परमहंस को कोई-कोई अवतार कहते हैं! आप तो रोज़ देखते हैं, आप को क्या लगता है?"

डॉक्टर— As a man I have the greatest regard for him. (मनुष्य रूप में मेरी उनमें सर्वाधिक श्रद्धा है।)

मास्टर *(डॉक्टर के मित्र के प्रति)*— डॉक्टर महाशय उन्हें बड़े अनुग्रह से देखते हैं।

डॉक्टर— अनुग्रह!

मास्टर— परमहंसदेव के ऊपर नहीं, हमारे ऊपर कह रहा हूँ।

डॉक्टर— नहीं, भाई नहीं! तुम नहीं जानते, मेरा actual loss (वास्तविक नुकसान) हो रहा है, रोज़-रोज़ दो-तीन call (रोगी) देखने रह जाते हैं। उसके अगले दिन अपने आप रोगियों के घर जाता हूँ और फ़ीस नहीं लेता; अपने-आप जाकर फ़ीस किस तरह लूँ?

श्रीयुक्त महिमा चक्रवर्ती की बातें होने लगीं। शनिवार को जब डॉक्टर साहिब परमहंस को देखने आए थे, तब चक्रवर्ती वहाँ पर थे। डॉक्टर को देखकर उन्होंने श्री रामकृष्ण से कहा था, "महाशय, आपने डॉक्टर का अहंकार बढ़ाने के लिए रोग लिया है।"

मास्टर *(डॉक्टर के प्रति)*— महिमा चक्रवर्ती आपके यहाँ पहले आया करते। आप अपने घर में डॉक्टरी साइन्स पर लैक्चर देते थे, तब वे सुनने आया करते।

डॉक्टर— अच्छा, यह बात है? इस व्यक्ति में कितना तम है! देखते ही मैंने उन्हें as God's lower third (तमोगुणी ईश्वर) मान कर नमस्कार किया था। फिर ईश्वर के भीतर तो (सत्त्व, रज, तम) सब गुण हैं। आपने उस बात पर mark (ध्यान) दिया था, "आप डॉक्टर का अहंकार बढ़ाने के लिए रोग लिए बैठे हैं।"

मास्टर— महिमा चक्रवर्ती का विश्वास है कि परमहंसदेव इच्छा करें तो अपना रोग ठीक कर सकते हैं।

डॉक्टर— ओह! वह क्या होता है? अपने रोग को स्वयं ठीक करना? हम डॉक्टर हैं। हम तो जानते हैं कैन्सर में क्या है। हम ही आराम नहीं कर सकते। वे तो कुछ नहीं जानते, वे कैसे ठीक करेंगे? *(मित्रों के प्रति)*— देखिए , रोग दुःसाध्य तो चाहे है, किन्तु ये सब उसी प्रकार devotees (भक्तों) की भाँति सेवा कर रहे हैं।

द्वितीय परिच्छेद

(श्री रामकृष्ण सेवक के संग में)

मास्टर ने डॉक्टर को आने के लिए कहा और वापिस आ गए। खाने-पीने के पश्चात् तीन बजे फिर दुबारा श्री रामकृष्ण के दर्शन करके सब कुछ निवेदन किया। बोले, "डॉक्टर ने आज बड़ा अप्रतिभ (लज्जित) किया।"

श्री रामकृष्ण— क्या हुआ?

मास्टर— आप हतभाग्य डॉक्टरों के अहंकार को बढ़ाने के लिए रोग लेकर बैठे हैं, यह बात कल सुन गए थे।

श्री रामकृष्ण— किसने कहा था?

मास्टर— महिमा चक्रवर्ती।

श्रीरामकृष्ण— फिर?

मास्टर— वह महिमा चक्रवर्ती को कहता है तमोगुणी ईश्वर (God's Lower Third)। अब डॉक्टर कहते हैं, ईश्वर में सब गुण (सत्त्व, रज, तम) हैं। (परमहंसदेव का हास्य)। और फिर मुझसे कहते हैं, रात को तीन बजे से नींद टूट गई थी, परमहंस देव की चिन्ता रही। आठ बजे कहा, अब भी परमहंस ही चल रहे हैं!

श्री रामकृष्ण *(हँसते-हँसते)*— वह अंग्रेज़ी पढ़े हुए हैं, उससे तो कहा नहीं जाता कि मेरा चिन्तन कर, वह अपने आप ही कर रहा है।

मास्टर— और फिर कहा— As a man I have the greatest regard for him. इसका मतलब यही है कि मैं उनको अवतार तो नहीं कहता, किन्तु मनुष्यों में जहाँ तक सम्भव है, मेरी उन पर भक्ति है।

श्री रामकृष्ण— और कुछ बातें हुईं?

मास्टर— मैंने पूछा, आज रोगी के लिए क्या बन्दोबस्त करना है? डाक्टर बोले, बन्दोबस्त क्या मेरा सिर! आज फिर जाना पड़ेगा। *(सब का हास्य)*। और क्या बन्दोबस्त?' और कहा , 'तुम लोग नहीं जानते कि मेरा कितने रुपये का नुकसान रोज़ हो रहा है। रोज़ दो-तीन स्थानों पर जाने का समय नहीं होता।'

तृतीय परिच्छेद

(विजय आदि भक्तों के संग प्रेमानन्द में)

कुछ देर पश्चात् श्रीयुक्त विजयकृष्ण गोस्वामी परमहंसदेव के दर्शन करने आए। साथ में कई एक ब्राह्म भक्त हैं। विजयकृष्ण अनेक दिन ढाका में थे। अब पश्चिम (पंजाब तथा उत्तर प्रदेश) के तीर्थों का भ्रमण करके कलकत्ता पहुँचे हैं। आकर ठाकुर श्री रामकृष्ण को भूमिष्ठ होकर प्रणाम किया। वहाँ पर अनेक जन उपस्थित थे। नरेन्द्र, महिमा चक्रवर्ती, नवगोपाल, भूपति, लाटु, मास्टर , छोटे नरेन्द्र इत्यादि बहुत से भक्त थे।

महिमा चक्रवर्ती *(विजय के प्रति)*— महाशय, तीर्थ करके आए हैं, अनेक स्थान देखे हैं। अब क्या देखा है, बताइए।

विजय— क्या बताऊँ**?** देख रहा हूँ, जहाँ पर अब बैठा हुआ हूँ, वहाँ पर ही सब कुछ है। घूमना केवल मिथ्या है। किसी-किसी जगह पर

इनका ही एक आना या दो आना है, कहीं पर चार आना, बस इतना ही। यहाँ पर ही पूर्ण सोलह आना देख रहा हूँ।

महिमा चक्रवर्ती— ठीक कह रहे हैं। और फिर ये ही घुमाते हैं, और ये ही बिठाते हैं।

श्री रामकृष्ण *(नरेन्द्र के प्रति)*— देख, विजय की कैसी अवस्था हो गई है। सब लक्षण बदल गए हैं, मानो औंट गया है। मैं 'घाड़ और कपाल' (कन्धा, ग्रीवा और माथा) देखकर परमहंस को पहचान सकता हूँ। बता सकता हूँ, परमहंस हैं या नहीं।

महिमा चक्रवर्ती— महाशय, आपका आहार कम हो गया है।

विजय— हाँ , लगता है, कम हो गया है।

(श्री रामकृष्ण के प्रति)— आप की पीड़ा की बात सुनकर देखने आया हूँ और फिर ढाके से...

श्री रामकृष्ण— क्या?

विजय ने कोई उत्तर नहीं दिया। कुछ क्षण चुप रहे।

विजय— पकड़ाए बिना पकड़ना मुश्किल है। यहाँ पर ही सोलह आना है।

श्री रामकृष्ण— केदार[1] कहता है, अन्य स्थानों पर खाना नहीं मिलता— यहाँ पर आकर भरपेट पा लिया है।

महिमा चक्रवर्ती— भरपेट! क्या उछल रहा है?

विजय *(हाथ जोड़कर श्री रामकृष्ण के प्रति)*— अब पहचान लिया है कि आप कौन हैं। अधिक बताना नहीं पड़ेगा।

श्री रामकृष्ण *(भावस्थ)*— यदि वैसा हो गया है, तो वही है।

विजय— समझ गया हूँ।

---

[1] केदारनाथ भट्टाचार्य अनेक दिन ढाका में थे। ईश्वर की कथा पढ़ते ही उनकी आँखें गीली हो जाती थीं। वे परम भक्त थे। घर हालि शहर में था।

यह कहकर श्री रामकृष्ण के चरणों में गिर गए और अपने वक्ष पर उनके चरण रख लिए। श्री रामकृष्ण तब बाह्यशून्य चित्रार्पितवत् बैठे हैं। यह प्रेमावेश, यह अद्भुत दृश्य देखकर उपस्थित भक्तों में से कोई-कोई रो रहे हैं। कोई स्तव कर रहे हैं। जिनका जो भाव है, वे उसी भाव में एकटक श्री रामकृष्ण की ओर ताक लगाए रह गए। कोई उन्हें परम भक्त, कोई साधु, अथवा कोई साक्षात् देहधारी ईश्वर अवतार देख रहे हैं, जिनका जैसा भाव है।

महिमाचरण साश्रु नयनों से गाने लगे— 'देखो-देखो प्रेममूर्त्ति'... और साथ-साथ मानो ब्रह्म-दर्शन कर रहे हैं! इस प्रकार कह रहे हैं— 'तुरीयं सच्चिदानन्दं द्वैताद्वैतविवर्जितम्।"

नव गोपाल रो रहे हैं। एक और भक्त भूपति ने गाया—

"जय जय परब्रह्म, अपार तुमि अगम्य, परात्पर तुमि, सारात्सार।
सत्येर आलोक तुमि, प्रेमेर आकर भूमि, मंगलेर तुमि मूलाधार।
नाना रसयुत भव, गभीर रचना तव, उच्छवसित शोभाय शोभाय।
महाकवि आदिकवि, छन्दे उठे शशी रवि, छन्दे पुनः अस्ताचले जाय।
तारका कनक कुचि, जलद अक्षर रुचि, गीत लेखा नीलाम्बर पाते।
छय ऋतु सम्बत्सरे, महिमा कीर्तन करे, सुखपूर्ण चराचर साथे।
कुसुमे तोमार कान्ति, सलिले तोमार शान्ति, बज्ररवे रुद्र तुमि भीम।
तव भाव गूढ़ अति, कि जानिबे मूढ़ मति, ध्याय युग युगान्त असीम।
आनन्दे सबे आनन्दे, तोमार चरण बन्दे, कोटि चन्द्र कोटि सूर्य तारा।
तोमारिए रचनारि, भाव लये नर नारि, हाहाकारे नेत्रे बहे धारा।
मिलि सुर, नर, ऋभु , प्रणमे तोमाय विभु, तुमि सर्व मंगल आलय।
देओ ज्ञान, देओ प्रेम, देओ भक्ति, देओ क्षेम, देओ देओ ओपदे आश्रय।

[जय जय परब्रह्म! आप अपार अगम्य हो, आप परात्पर तथा सारात्सार हो। सत्य का आलोक आप ही हो, आप ही प्रेम की आकर भूमि हो। मंगल के आप मूल आधार हो। नाना रसयुक्त यह आपकी गम्भीर रचना, शोभा से भरपूर है। आप महाकवि हैं, आदिकवि हैं। शशि-रवि आपके गीत से पैदा होते हैं और फिर आपके गीत से ही अस्ताचल को जा रहे हैं। तारों की सुनहरी कूची

से बादलों के सुन्दर अक्षरों में नीलाम्बर रूप पत्र पर गीत लिखे हुए हैं। वर्ष में छह ऋतुएँ चर-अचर के साथ सुखपूर्ण आपकी महिमा का कीर्त्तन कर रही हैं। पुष्पों में आपकी कान्ति है। जल में आपकी शान्ति है। और वज्र के शोर में आप ही भीम रुद्र हो, आपका मान अति गूढ़ है, मूढ़मति इसे क्या जानेगा? असीम आपको युगयुगान्त ध्याता आ रहा है। आनन्द-पूर्णानन्द में आपके चरणों की करोड़ों सूर्य-चन्द्र-तारे वन्दना कर रहे हैं। आपकी इस रचना से नरनारी भाव प्राप्त करके हाहाकार करते हुए नेत्रों से जल-धारा बहा रहे हैं। सुर, नर, ऋभु (देवता) आप विभु को प्रणाम कर रहे हैं। आप सर्वमंगल के आलय हैं। आप ज्ञान दो, प्रेम दो, भक्ति दो, क्षेम दो, और दो अपने चरणों में आश्रय।]

भूपति ने फिर गाया।

(झिझिट— (खयरा) कीर्तन)

चिदानन्द सिन्धुनीरे प्रेमानन्देर लहरी।
महाभाव रसलीला कि माधुरी मरि मरि॥
विविध विलास रस प्रसंग, कत अभिनव भाव तरंग,
डूबिछे उठिछे करिछे रंग, नवीन नवीन रूप धरि,
(हरि-हरि बले)
महायोगे समुदाय एकाकार होइलो,
देशकाल व्यवधान भेदाभेद घुचिलो,
(आशा पूरिलो रे, आमार सकल साध मिटे गेल!)
एखन आनन्दे मातिया दुबाहु तुलिया, बल रे मन हरि हरि।

[सच्चिदानन्द समुद्र में प्रेम और आनन्द की लहरें ठाठें मार रही हैं। महाभाव की रासलीला में कैसी मनोमोहिनी माधुरी है! प्रेम-विलास की तरह-तरह की रस-अभिव्यक्ति के लिए कितनी ही नूतन-नूतन भाव-तरंगें उठ रही हैं! डूबती हुईं, फिर उठती हुईं, वे नवीन-नवीन रूप धारण कर रही हैं! हरि-हरि बोल। फिर

महायोग में समस्त समुदाय एकाकार हो गया, देशकाल का व्यवधान तथा भेद-अभेद समाप्त हो गया। अरे, मेरी आशा पूर्ण हो गई, मेरी सब इच्छाएँ मिट गईं। अरे मन! अब आनन्द में दोनों बाहें उठाकर हरि-हरि बोल।]

(झांप ताल)

टूटलो भरम भीति धरम करम नीति
दूर भेल जाति कुल-मान,
कहाँ हाम, कहाँ हरि, प्राण मन चुरि करि,
बँधुआ करिला पयान,
(आमि केनोई बा एलाम गो, प्रेम सिंधु तटे)
भावेते हउल भोर, अबहिँ हृदय मोर
नाहि जात आपना पसान,
प्रेमदास कहे हासि, सुनो साधु जगवासी,
एयसाहि नूतन विधान॥
(किछु भय नाइ! भय नाइ!)

[भ्रम, भय, धर्म-कर्म नीति सब टूट गए हैं। जाति-कुल मान दूर हो गया है। कहाँ हम हैं, कहाँ हरि हैं, यह बन्धु प्राण और मन चोरी करके भाग गया। मैं क्यों इस प्रेम-सिन्धु के तट पर आया? भाव में रहते हुए ही भोर हो गई है, अभी तक भी मेरा हृदय अपने होश में नहीं आया। प्रेमदास हँसकर कहते हैं, 'हे साधु, और जगवासी, सुनो; यह नूतन विधान ऐसा ही है। कुछ डर नहीं, डरो मत।]

अनेक क्षण पश्चात् ठाकुर श्री रामकृष्ण प्रकृतिस्थ हुए।

(ब्रह्मज्ञान और आश्चर्य गणित— अवतार का प्रयोजन)

श्री रामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— आवेश में जाने क्या होता है? अब लज्जा हो रही है। मानो मुझे भूत पकड़ लेता है और मैं जो हूँ, वह नहीं रहता।

"इस अवस्था के बाद गणना नहीं होती। गिनती करने लगे, तो 1-7-8 इस प्रकार गिना जाता है।"

नरेन्द्र— सब एक ही तो है कि ना!

श्री रामकृष्ण— नहीं , एक-दो के पार।[1]

महिमाचरण— जी हाँ, द्वैताद्वैतविवर्जितम्।

श्री रामकृष्ण— हिसाब सड़ जाता है। पाण्डित्य के द्वारा उनको नहीं पाया जाता। वे शास्त्र— वेद, पुराण, तन्त्र के पार हैं। ज्ञानी होते हुए भी यदि हाथ में पुस्तक देखता हूँ तो उसे राजर्षि कहता हूँ। ब्रह्मर्षि का कोई चिन्ह नहीं रहता। शास्त्र का व्यवहार क्या है, जानते हो? किसी ने चिट्ठी लिखी थी कि पाँच सेर सन्देश और एक धोती भेज देना। जिसको चिट्ठी मिली थी, उसने पढ़कर पाँच सेर सन्देश और एक धोती, यह बात याद रखकर पत्र फेंक दिया। पत्र का अब क्या प्रयोजन?

विजय— सन्देश भेज दिया गया है, समझ में आ गया है।

श्री रामकृष्ण— मनुष्य-देह धारण करके ईश्वर अवतीर्ण होते हैं। वे सर्वस्थानों पर सर्वभूतों में तो अवश्य हैं, किन्तु अवतार के हुए बिना जीव की आकांक्षा पूरी नहीं होती, प्रयोजन नहीं मिटता। यह कैसे है, जानते हो? गाय को जिस स्थान पर से ही छुओ, गाय को छूना ही तो हुआ। सींग को छू लेने पर भी गाय को ही छूना हो गया, किन्तु गाय के थनों में से ही दूध आता है। *(सब का हास्य)*।

---

[1] एक दो के पार— The Absolute is distinguished from the relative.

महिमा— दूध यदि प्रयोजनीय हो, तो गाय के सींग में मुख देने से क्या होगा? थनों में ही मुँह देना होगा। *(सब का हास्य)*।

विजय— किन्तु बछड़ा शुरु-शुरु में तो इधर-उधर ही मुख मारता है।

श्री रामकृष्ण *(हँसते-हँसते)*— और फिर शायद कोई जन बछड़े को ऐसा करते देखकर थनों को पकड़वा देता है। *(सब का हास्य)*।

चतुर्थ परिच्छेद

(भक्तों के संग प्रेमानन्द में)

ऐसी ही सब बातें हो रही थीं, तब डॉक्टर उन्हें देखने के लिए आ गए और बैठ गए। वे कहते हैं— "कल रात तीन बजे मेरी नींद टूट गई थी। केवल तुम्हारे लिए ही सोचता रहा, कहीं ठण्ड न लग जाए; और भी कितना ही कुछ सोचता रहा।"

श्री रामकृष्ण— खांसी हुई थी, टीस मारती रही, आखिरी रात को मुँह में जल भर गया, और जैसे काँटा बिंध रहा है।

डॉक्टर— सुबह मुझे सब खबर मिल गई थी।

महिमाचरण अपनी 'भारतवर्ष-भ्रमण की बातें' बतला रहे थे। बताया कि लंका द्वीप में 'लाफिंग मैन' (हंसोड़ व्यक्ति) नहीं है। डॉक्टर सरकार ने कहा, 'होगा तो एन्क्वायर (खोज) करना होगा।' *(सब का हास्य)*।

(डॉक्टर का व्यवसाय और ठाकुर श्री रामकृष्ण)

डॉक्टरी कार्य की बात उठी।

श्री रामकृष्ण *(डॉक्टर के प्रति)*— डॉक्टरी के काम को बहुत लोग बहुत ऊँचा कर्म समझते हैं। यदि रुपया बिना लिए अन्य का दुःख देख कर दया करके चिकित्सा करे, तब तो वह महत् कार्यों में भी महत् कार्य है। किन्तु रुपया लेकर ऐसा काम करते-करते मनुष्य निर्दय हो

जाता है। व्यवसाय के लिए टट्टी-पेशाब आदि का रंग इत्यादि देखना नीच का काम है।

डॉक्टर— केवल यदि वैसा ही करता है, तब तो खराब काम ही है। तुम्हारे सामने कहना तो बड़प्पन दिखाना है।

श्री रामकृष्ण— हाँ, यदि निःस्वार्थ भाव से डॉक्टरी के काम से दूसरे का उपकार किया जाए , तब तो यह बहुत अच्छा है।

"कोई भी व्यक्ति कुछ भी कर्म करे, संसारी व्यक्ति के लिए बीच-बीच में साधुसंग बड़ा ही आवश्यक है। ईश्वर में भक्ति हो, तो व्यक्ति साधुसंग अपने-आप खोज लेता है। मैं उपमा दिया करता हूँ, गांजाखोर गांजाखोर के साथ रहता है, अन्य व्यक्ति देखने पर मुँह नीचा करके चला जाता है या छिप जाता है। किन्तु और एक गांजाखोर को देखकर महा-आनन्द करता है। *(सब का हास्य)*। और फिर शकुनि के साथ शकुनि (गिद्ध) ही रहता है।"

(साधु की सर्व जीवों में दया)

डॉक्टर— और कव्वे के भय से गिद्ध भागता है। मैं कहता हूँ— केवल मनुष्य ही क्यों, सब जीवों की ही सेवा करना उचित है। मैं प्रायः ही चिड़ियों को मैदे की छोटी-छोटी गोलियाँ बनाकर फेंक देता हूँ और छत पर झुण्ड-की-झुण्ड चिड़ियाँ आ जाती हैं।

श्री रामकृष्ण— वाह! यह तो बड़ी अच्छी बात है। जीव को खिलाना तो साधु का काम है। साधु चींटियों को चीनी देते हैं।

डॉक्टर— आज गाना नहीं होगा?

श्री रामकृष्ण *(नरेन्द्र के प्रति)*— थोड़ा-सा गाना कर ना!

नरेन्द्र गाते हैं, तानपूरे के संग। अन्य साज भी बजने लगे—

सुन्दर तोमारि नाम दीन-शरण हे,
प्रति बरिषे अमृताधार, जुड़ाय श्रवण ओ प्राणरमण हे।

एक तव नाम धन, अमृत भवन हे,
अमर होय सेइ जन, जे करे कीर्तन हे।
गम्भीर विषाद राशि निमेषे विनाशे,
जखनि तव नाम सुधा श्रवणे परशे,
हृदय मधुमय तव नाम गाने,
होय हे हृदयनाथ, चिदानन्द घन हे॥

नरेन्द्र ने और गाया—

आमाय दे माँ पागल करे (ब्रह्ममयी)।
आर काज नाई माँ ज्ञान विचारे॥
(ब्रह्ममयी दे माँ पागल करे।)
(ओ माँ) तोमार प्रेमेर सुरा, पाने करो मातोयारा,
ओ माँ भक्त चित्तहरा डुबाओ प्रेमसागरे॥
तोमार ए पागला गारदे, केहो हासे केहो कांदे,
केहो नाचे आनन्द भरे,
ईशान बुद्ध श्रीचैतन्य, ओ माँ प्रेमेर भरे अचैतन्य.
हाय कबे हबो माँ धन्य, (ओ माँ) मिशे तार भितरे॥
स्वर्गेते पागलेर मेला, जेमन गुरु तेमनि चेला
प्रेमेर खेला के बुझते पारे,
तुमि प्रेमे उन्मादिनी, ओ मा पागलेर शिरोमणि
प्रेमधने करो माँ धनी काँगाल प्रेम दासेरे॥

गाने के पश्चात् फिर और अद्भुत दृश्य! सब लोग ही भाव में उन्मत्त हैं। पण्डित पाण्डित्याभिमान त्याग करके खड़े हुए हैं। कह रहे हैं, “आमाय दे माँ पागल करे, आर काज नहीं ज्ञान विचारे।” विजय सर्वप्रथम आसन त्याग करके भावोन्मत्त होकर खड़े हो गए हैं, उसके बाद ठाकुर श्री रामकृष्ण देह की कठिन असाध्य व्याधि एकदम भूल गए हैं। डॉक्टर सामने हैं। वे भी खड़े हैं। रोगी की भी होश नहीं, छोटे नरेन्द्र की भी भाव-समाधि हो गई है। लाटु की भी भाव-समाधि हो गई है। डॉक्टर ने साइन्स पढ़ी है, किन्तु अवाक् होकर यह अद्भुत व्यापार देखने लगे। उन्होंने देखा, जिनको भाव हुआ है, उन्हें कुछ भी

बाहरी होश नहीं है। सब ही स्थिर हैं; निस्पन्द, भाव उपशम होने पर कोई रो रहे हैं, कोई हँस रहे हैं, मानो कितने ही शराबी एकत्र हुए हैं!

पंचम परिच्छेद

(भक्तों के संग— श्री रामकृष्ण और क्रोध-जय)

इस काण्ड के पश्चात् सब ने आसन ग्रहण किया। रात के आठ बज गए हैं। फिर दुबारा कथा-वार्त्ता होने लगी।

श्री रामकृष्ण *(डॉक्टर के प्रति)*— अभी-अभी जो भाव-शाव देखा है, उसे तुम्हारी साइन्स में क्या कहते हैं? तुम्हें यह सब क्या ढोंग लगता है?

डॉक्टर *(श्री रामकृष्ण के प्रति)*— जहाँ इतने लोगों को हो रहा है, वहाँ natural (आन्तरिक) लगता है; ढोंग नहीं लगता। (नरेन्द्र के प्रति) जब तुम गा रहे थे- 'दे माँ पागल करे, और काज नहीं माँ ज्ञान विचारे।' तब फिर ठहर नहीं सका। खड़ा हो ही गया। और क्या करता? तब फिर बड़े कष्ट से भाव को रोका, सोचा कि display (दिखाना) नहीं चाहिए।

श्री रामकृष्ण *(डॉक्टर के प्रति)*— तुम तो अटल, अचल सुमेरुवत् हो। *(सब का हास्य)*। तुम गम्भीर-आत्मा हो, रूप सनातन के भाव का किसी को पता भी नहीं लगता था। यदि पोखर (गढ़ी) में हाथी उतरता है, तो फिर उलट-पलट हो जाती है, किन्तु बड़े तालाब में हाथी उतरता है तो उलट-पलट (हलचल) नहीं होती। किसी को शायद ज़रा भी पता नहीं लगता। श्रीमती ने सखी से कहा, 'सखि, तुम तो कृष्ण के विरह में कितना रो रही हो! किन्तु देख, मैं कैसी कठोर हूँ , मेरी आँखों में एक बून्द भी जल नहीं है।' तब वृन्दा ने कहा, 'तेरी आँखों में जल नहीं है' उसके कई अर्थ हैं। तेरे हृदय में विरह अग्नि सर्वदा जल रही है, आँखों में ज्यों ही जल निकलने लगता है, त्यों ही उस अग्नि के ताप से सूख जाता है।

डॉक्टर— तुम्हारे साथ तो बातों में पार पाने योग्य नहीं हूँ। *(हास्य)*।

क्रमशः और बातें चल पड़ीं। श्री रामकृष्ण अपनी प्रथम भावावस्था का वर्णन करने लगे; और कैसे काम, क्रोधादि वश में करने चाहिएँ।

डॉक्टर— तुम भाव में पड़े हुए थे, और एक दुष्ट व्यक्ति ने आकर बूट से ठुड्डे मारे थे, ये सब बातें सुनी हैं।

श्री रामकृष्ण— मास्टर से सुना, वह कालीघाट का चन्द्र हालदार था। सेजोबाबू (मथुर बाबू) के पास प्रायः ही आया करता। मैं ईश्वर के आवेश में धरती पर अन्धकार में पड़ा हुआ था। चन्द्र हालदार सोचता था कि मैं ढोंग करके उसी प्रकार रहता हूँ। बाबू का प्रिय पात्र बनने के लिए वह अन्धकार में आकर मुझे बूट-जूते से ठुड्डे मारने लगा। शरीर पर दाग पड़ गए। सबने ही कहा, सेजोबाबू को बता दिया जाए। मैंने मना कर दिया।

डॉक्टर— यह भी ईश्वर का खेल है। इससे भी लोग सीखेंगे। कैसे क्रोध वशीभूत करना चाहिए, क्षमा किसे कहते हैं, लोग सीखेंगे।

(विजय और नरेन्द्र का ईश्वरीय रूप-दर्शन)

इस बीच ठाकुर श्री रामकृष्ण के सामने विजय के संग भक्तों की बहुत सी बातें हुईं।

विजय— कोई एक जन मेरे संग में सदा-सर्वदा रहते हैं। मैं दूर रहूँ तो भी वे बता देते हैं कि कहाँ पर क्या हो रहा है।

नरेन्द्र— Guardian angel (रक्षक देवदूत) की भाँति।

विजय— ढाका में इन्हें (परमहंसदेव को) देखा था शरीर छू कर।

श्री रामकृष्ण *(हँसते-हँसते)*— वह फिर और एक जन!

नरेन्द्र— मैंने भी स्वयं इन्हें अनेक बार देखा है। *(विजय के प्रति)* इसीलिए तो कैसे कहूँ कि आपकी बात का विश्वास नहीं करता।

•

सप्तदश खण्ड

श्यामपुकुर वाले घर में भक्तों के संग में श्री रामकृष्ण

प्रथम परिच्छेद

(श्री रामकृष्ण— गिरीश, मास्टर, छोटे नरेन्द्र, काली, शरत्, राखाल, डॉक्टर सरकार आदि भक्तों के संग)

दूसरे दिन आश्विन की कृष्णा तृतीया तिथि, सोमवार, 11वाँ कार्त्तिक, 26 अक्तूबर, 1885 ईसवी। श्री श्री परमहंसदेव कलकत्ता में उसी श्यामपुकुर वाले घर में चिकित्सार्थ रह रहे हैं। डॉक्टर सरकार चिकित्सा कर रहे हैं। प्रायः प्रतिदिन आते हैं और उनके पास पीड़ा का संवाद लेकर लोग सर्वदा यातायात करते हैं।

शरत्काल। कुछ दिन हुए शारदीय दुर्गा-पूजा हो चुकी है। इस महोत्सव को श्री रामकृष्ण-शिष्य-मण्डली ने हर्ष-विषाद में मनाया क्योंकि तीन महीने से गुरुदेव को कठिन रोग है— गले का कैंसर। यह रोग असाध्य है। हतभाग्य शिष्यगण यह बात सुनकर एकान्त में चुपचाप अश्रु बहाते हैं। इस समय इसी श्यामपुकुर के मकान में रह रहे हैं। शिष्यगण जी-जान से श्री रामकृष्ण जी की सेवा कर रहे हैं। नरेन्द्र आदि कुमार-वैरागी शिष्य इस महती सेवा के कारण कामिनी- काञ्चन-त्याग दिखलाने वाली सीढ़ी पर चढ़ना अभी-अभी सीखने लगे हैं।

इतनी पीड़ा है, किन्तु दल-के-दल लोग दर्शन करने आ रहे हैं। श्री रामकृष्ण के पास आते ही शान्ति और आनन्द होता है— अहेतुक कृपासिन्धु! दया की सीमा नहीं— सबके साथ ही बातें करते हैं, किस

प्रकार उनका मंगल हो। अन्त में डॉक्टरों ने, विशेषतः डॉक्टर सरकार ने, बातें करना बिल्कुल बन्द कर दिया। किन्तु डॉक्टर स्वयं 6-7 घण्टे रहते हैं। वे कहते हैं, और किसी के साथ बातें नहीं करेंगे। केवल मेरे साथ करेंगे।

श्री रामकृष्ण का कथामृत-पान करके डॉक्टर एकदम मुग्ध हो जाते हैं। तभी तो इतनी-इतनी देर बैठे रहते हैं। दस बजे डॉक्टर को हाल बताने मास्टर जाएँगे, इसीलिए ठाकुर श्री रामकृष्ण के साथ बातें हो रही हैं।

श्री रामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— तकलीफ़ काफ़ी कम हो गई है। बहुत ठीक हूँ। अच्छा, तो क्या औषध से ऐसा हुआ है? तो फिर वही दवाई ही क्यों न खाऊँ?

मास्टर— मैं डॉक्टर साहिब के पास जा रहा हूँ, उन्हें सब कुछ बताऊँगा। वे जो ठीक होगा, वही बताएँगे।

श्री रामकृष्ण— देख, पूर्ण (श्रीयुक्त पूर्णचन्द्र, आयु 14-15 वर्ष) दो-तीन दिन से नहीं आया, मन बड़ा कैसे-कैसे कर रहा है!

मास्टर— काली बाबू, पूर्ण को बुलाने तुम जाओ ना!

काली— अभी जाता हूँ।

श्री रामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— डॉक्टर का लड़का बड़ा भला है। एक बार आने के लिए कहो।

द्वितीय परिच्छेद

(मास्टर और डॉक्टर-संवाद)

मास्टर ने डॉक्टर के घर पहुँच कर देखा, डॉक्टर दो-तीन मित्रों के साथ बैठे हैं।

डॉक्टर *(मास्टर के प्रति)*— यही एक मिनट पहले तुम्हारी ही बातें कर रहा था। दस बजे आने को कहा था, डेढ़ घण्टे से बैठा हुआ हूँ। सोच रहा था, कैसे हैं, क्या हुआ! (बन्धु से) हे भाई, वही गाना गाओ तो!

बन्धु गाते हैं :

करो ताँर नाम गान, जतो दिन देहे रहे प्राण,
जाँर महिमा ज्वलन्त ज्योति जगत् करे आलो हे,
श्रोत बहे प्रेम पीयूष-वारि, सकल जीव सुखकारी हे।
करुणा स्मरिये तनु हय पुलकित वाक्ये बोलिते कि पारि।
जार प्रसादे एक मुहूर्त्ते सकल शोक अपसारि हे,
उच्चे नीचे देश-देशान्ते, जलगर्भे कि आकाशे।
अन्त कोथा ताँर, अन्त कोथा ताँर, एइ सबे सदा जिज्ञासे हे।
चेतन निकेतन, परश रतन, सेइ नयन अनिमेष,
निरंजन सेइ, जाँर दरशने, नाहि रहे दुःख लेश हे।

[जब तक शरीर में प्राण है, तब तक उनका नाम-गुणगान करो, जिनकी महिमा की ज्वलन्त ज्योति जगत् को आलोकित कर रही है, प्रेम-अमृत के जल का स्रोत बह रहा है जो सब जीवों को सुख देने वाला है। भाई! उनकी करुणा का स्मरण करते ही शरीर पुलकित हो जाता है, जिसे वाणी क्या बता सकती है? जिनकी कृपा से एक पल में सब शोक समाप्त हो जाते हैं, भाई! वह ऊँचे-नीचे देश-देशान्तरों में, जलाशयों में, या आकाश में है। भाई! उनका अन्त कहाँ है? उनका अन्त कहाँ है?— यह बात ही सब सर्वदा पूछते हैं। इस पारसमणि का निकेतन चेतन है, वही अपलक नयन है, वही निरंजन रूप है जिनके दर्शन से दुःख का लेश तक भी नहीं रहता।]

डॉक्टर *(मास्टर से)*— यह गाना बड़ा सुन्दर है, है ना? इस स्थान पर तो विशेषकर वैसा है— अन्त कोथा ताँर अन्त कोथा ताँर, एइ सबे सदा जिज्ञासे।

मास्टर— हाँ जी, यहाँ पर तो बड़ा ही सुन्दर है। अनन्त का सुन्दर भाव है।

डॉक्टर *(सस्नेह)*— काफ़ी देर हो गई, तुम खाकर तो आए हो? मेरा तो दस के बीच खाना हो जाता है। उसके बाद मैं डॉक्टरी करने निकलता हूँ। बिना खाए निकलने से असुख हो जाता है। अरे हाँ, सोच रहा था कि एक दिन तुम लोगों को खाना खिलाऊँगा।

मास्टर— यह तो अच्छा है, महाशय।

डॉक्टर— अच्छा, यहाँ पर या वहाँ पर? तुम लोग जैसा कहो।

मास्टर— महाशय, यहाँ पर ही हो, या वहाँ पर ही हो, सब ही बड़े प्रेमानन्द से खाएँगे।

अब माँ काली की बात चली।

डॉक्टर— काली तो एक सन्थाली औरत है *(मास्टर का उच्चहास्य)*।

मास्टर— महाशय, यह बात कहाँ है?

डॉक्टर— ऐसा सुना है। *(मास्टर का हास्य)*।

पूर्व दिन श्रीयुक्त विजयकृष्ण और अन्य भक्तों को भाव-समाधि हुई थी। डॉक्टर भी उपस्थित थे। वही बात होने लगी।

डॉक्टर— भाव तो देख लिया है। अधिक भाव क्या ठीक है?

मास्टर— परमहंसदेव कहते हैं, ईश्वर का चिन्तन करके जो भाव होता है, वह अधिक होने पर भी क्षति नहीं करता। वे कहते हैं, जिस मणि की ज्योति से आलोक होता है और शरीर स्निग्ध होता है, उससे शरीर नहीं जलता।

डॉक्टर— मणि की ज्योति, वह तो reflected light (प्रतिबिम्बित आलोक) है।

मास्टर— वे और भी कहते हैं, अमृतसरोवर में डूबने पर मनुष्य मरता नहीं। ईश्वर अमृत का सरोवर है। उसमें डूबने पर मनुष्य का

अनिष्ट नहीं होता, मनुष्य अमर हो जाता है अवश्य ही, यदि ईश्वर में विश्वास रहे।

डॉक्टर— हाँ, वह तो है ही।

डॉक्टर गाड़ी में बैठ गए। दो-चार रोगियों को देखकर परमहंसदेव को देखने जाएँगे। मार्ग में मास्टर के संग फिर और बातें होने लगीं। 'चक्रवर्ती का अहंकार' डॉक्टर ने वही बात उठाई।

मास्टर— परमहंसदेव के पास उनका आना-जाना है। अहंकार यदि है भी, तो वह कुछ दिनों में नहीं रहेगा। उनके निकट बैठने पर जीव का अहंकार पलायन कर जाता है। अहंकार चूर्ण हो जाता है। वहाँ पर अहंकार नहीं है ना, तभी। निरहंकार के निकट आने पर अहंकार भाग जाता है। देखिए, विद्यासागर महाशय कितने बड़े व्यक्ति हैं! कितनी विनय और नम्रता दिखाई है! परमहंसदेव उन्हें मिलने गए थे। उनके बादुड़ बागान के मकान पर जब विदा ली थी, तब रात के नौ बजे थे। विद्यासागर ने लाइब्रेरी के कमरे से लगातार साथ-साथ स्वयं बराबर बत्ती पकड़ कर दिखाते हुए आकर गाड़ी में बिठाया था और विदा के समय हाथ जोड़ कर खड़े रहे।

डॉक्टर— अच्छा, इनके विषय में विद्यासागर का क्या मत है?

मास्टर— उस दिन बड़ी भक्ति की थी। तो भी बातें करके देखा है, वैष्णव लोग जिसे भाव-शाव कहते हैं, वे उसे बहुत पसन्द नहीं करते, आपके मत की तरह।

डॉक्टर— हाथ जोड़ना, पाँव पर सिर लगाना; मैं ये बातें पसन्द नहीं करता। जो सिर है, वही पैर है। किन्तु जो पाँव को अन्य समझता है, वह करे।

मास्टर— आप भाव-शाव को पसन्द नहीं करते। परमहंसदेव आप को कभी-कभी 'गम्भीरात्मा' कहते हैं। शायद आपको याद है, उन्होंने कल आप से कहा था कि गढ़ी-तलैया में हाथी के उतर जाने पर पानी उलट-पुलट हो जाता है। किन्तु सरोवर में हाथी चला जाए तो पानी

हिलता भी नहीं। गम्भीरात्मा के भीतर भाव-हस्ती के उतर जाने पर वह उसका कुछ नहीं कर सकता। वे कहते हैं, आप गम्भीर आत्मा हैं।

डॉक्टर— I don't deserve the compliment. (मैं इस प्रशंसा का अधिकारी नहीं हूँ।) भाव और क्या? feeling, भक्ति। तथा और भी बहुत सी हैं feelings (भाव)— अधिक होने पर कोई दबा सकता है, कोई नहीं दबा सकता।

मास्टर— Explanation (स्पष्टीकरण) कोई-कोई किसी-न-किसी प्रकार कर सकता है, कोई नहीं कर सकता। किन्तु महाशय, भाव-भक्ति तो कुछ और ही अपूर्व वस्तु है। 'Stebbing on Darwinism'— (स्टैबिंग ऑन डारविनिज़म) आपकी लाइब्रेरी में देखी थी। स्टैबिंग कहते हैं, human mind (मनुष्य-मन) चाहे जैसे भी हो— evolution (विकास) द्वारा ही चाहे हो अथवा ईश्वर अलग बैठकर सृष्टि करते हैं; equally wonderful (एक-सी ही विलक्षण) बात है! उन्होंने एक सुन्दर उपमा दी है— theory of light (आलोक का सिद्धान्त)। Whether you know the undulatory theory of light or not, light in either case is equally wonderful. (चाहे तुम आलोक का तरंगायित सिद्धान्त जानो अथवा न जानो, आलोक दोनों अवस्थाओं में ही समान विलक्षण है)।

डॉक्टर— हाँ देखा है, स्टैबिंग डारविनिज़म मानते हैं और साथ ही God (भगवान) भी मानते हैं।

परमहंसदेव की बातें फिर होने लगीं।

डॉक्टर— देखता हूँ, ये (परमहंसदेव) काली के उपासक हैं।

मास्टर— उनकी काली के मायने अलग हैं। वेद जिन्हें परमब्रह्म कहता है, वे उन्हें काली कहते हैं। क्रिश्चियन जिन्हें गॉड कहते हैं, वे उन्हें ही काली कहते हैं। वे अनेक ईश्वर नहीं देखते, एक देखते हैं। पुरातन ब्रह्मज्ञानी जिन्हें ब्रह्म कह गए, योगीजन जिन्हें आत्मा कहते हैं, भक्तगण जिन्हें भगवान कहते हैं, परमहंसदेव उनको ही काली कहते हैं।

"उनसे सुना है— एक व्यक्ति के पास एक तसला था, उसमें रंग था। किसी को भी कपड़ा रंगवाना होता तो वह उसी के पास जाता। वह पूछता, तुम किस रंग में रंगवाना चाहते हो? व्यक्ति यदि कहता, हरा; तो फिर वह कपड़ा तसले में डाल कर वापिस दे देता और कहता यह लो अपना हरे रंग का कपड़ा। यदि कोई कहता लाल; तो वह इसी तसले में उस कपड़े को रंग कर कहता, यह लो अपना लाल रंग का कपड़ा। इसी एक तसले के रंग में हरा, नीला, पीला— सब रंगों का कपड़ा रंगा जाता। यह अद्भुत व्यापार देखकर एक व्यक्ति ने कहा, 'बाबू मुझे कौन-सा रंग चाहिए, बताऊँ? तुम स्वयं जिस रंग में रंगे हुए हो, मुझे वही रंग दे दो।'

उसी प्रकार परमहंसदेव के भीतर सब भाव हैं। सब सम्प्रदायों के लोग उनके पास से शान्ति पाते हैं, और आनन्द प्राप्त करते हैं। उनका क्या भाव है, उनकी कैसी गम्भीर अवस्था है, उसे कौन बूझेगा?"

डॉक्टर— All things to all men, वह भी ठीक नहीं, although St. Paul says it. (सब वस्तुएँ सब मनुष्यों के लिए हों, यह भी ठीक नहीं, सेण्ट पाल ने तो यह बात चाहे कही है)।

मास्टर— परमहंस देव की अवस्था को कौन समझेगा? उनके मुख से सुना है, सूत का व्यवसाय बिना किए 40 नम्बर के सूत और 41 नम्बर के सूत का प्रभेद पता नहीं लगता। पेंटर बिना बने पेंटर के आर्ट को समझा नहीं जाता। महापुरुष का गम्भीर भाव होता है। क्राइस्टवत् हुए बिना क्राइस्ट का समस्त भाव समझ में नहीं आता। परमहंसदेव का यह गम्भीर भाव शायद वही है जिसे क्राइस्ट कहा करते— Be perfect as your Father in heaven is perfect. (ऐसे पूर्ण बनो जैसे कि तुम्हारे स्वर्गस्थित पिता पूर्ण हैं)।

डॉक्टर— अच्छा, उनके रोग की देख-रेख तुम कैसे करते हो?

मास्टर— आपाततः (फिलहाल) अब प्रतिदिन एक जन, जिनकी वयस् अधिक होती है, सुपरिन्टैण्डेंट होते हैं। किसी दिन गिरीश बाबू,

किसी दिन राम बाबू, किसी दिन बलराम बाबू, किसी दिन सुरेश बाबू, किसी दिन नव गोपाल, किसी दिन काली बाबू— इसी प्रकार।

तृतीय परिच्छेद

(भक्तों के संग में— केवल पाण्डित्य में क्या है?)

ऐसी ही बातें होते-होते श्री श्री ठाकुर परमहंसदेव श्यामपुकुर के जिस घर में इलाज़ के लिए ठहरे हुए हैं, उसी मकान के सामने डॉक्टर की गाड़ी आकर खड़ी हो गई। तब समय दोपहर एक बजे का था। ठाकुर दोतले के कमरे में बैठे हुए हैं। बहुत-से भक्त सामने बैठे हैं। उनमें गिरीश घोष, छोटे नरेन्द्र, शरत् इत्यादि हैं। सब की दृष्टि उसी महायोगी सदानन्द की ओर है। सब मानो मन्त्र-मुग्ध सर्पवत् ओझे के सामने बैठे हुए हैं। अथवा वर को लेकर जैसे बाराती आनन्द मना रहे हों। डॉक्टर और मास्टर ने आकर प्रणाम करके आसन ग्रहण किया।

डॉक्टर को देखकर हँसते-हँसते श्री रामकृष्ण कहते हैं— "आज मैं काफ़ी अच्छा हूँ।"

क्रमशः भक्तों के संग ईश्वर सम्बन्धी अनेक बातें होने लगीं।

(पूर्व कथा— रामनारायण डॉक्टर— बंकिम-संवाद)

श्री रामकृष्ण— केवल (कोरे) पाण्डित्य से क्या होगा, यदि विवेक, वैराग्य न रहे? ईश्वर के पादपद्मों का चिन्तन करके मेरी एक विशेष अवस्था हो जाती है। तब पहनी हुई धोती गिर पड़ती है। शिड़-शिड़ करके पैर से सिर तक क्या एक विशेष चढ़ता है! तब समस्त तृणवत् बोध होता है। पण्डित में यदि देखता हूँ विवेक नहीं है, ईश्वर पर प्यार नहीं है, तो फिर वह घास-फूस जैसा लगता है।

"रामनारायण डाक्टर ने मेरे साथ तर्क किया था। हठात् वैसी अवस्था हो गई! तब फिर उससे कहा, 'तुम क्या कहते हो? उन्हें तर्क करके क्या समझोगे? उनकी सृष्टि को ही अथवा क्या समझोगे? तुम्हारी तो बड़ी भारी 'तेंतें' बुद्धि[1] है।' मेरी अवस्था देखकर वह रोने लग गया और पाँव दबाने लग पड़ा।

डॉक्टर— डॉक्टर रामनारायण हिन्दू है ना! और फिर फूल-चन्दन लेता है। सच्चा हिन्दू है ना!

मास्टर *(स्वतः)*— डॉक्टर ने बताया था कि मैं शंख, घण्टे में नहीं हूँ।

श्री रामकृष्ण *(डॉक्टर के प्रति)*— बंकिम[2] तुम लोगों का ही एक पण्डित है। बंकिम के साथ मुलाकात हुई थी— मैंने पूछा, 'मनुष्य का कर्त्तव्य क्या है?' उसने कहा, 'आहार, निद्रा और मैथुन।' ऐसी बातें सुनकर मुझे घृणा हो गई। फिर कहा, 'तुम्हारी यह कैसी बात है? तुम तो बड़े ओछे (छेछड़े) हो। जो कुछ रात-दिन चिन्ता करते हो, कार्य में करते हो, फिर वह ही मुख से निकल रहा है। मूली खाने पर मूली की ही डकार आती है।' तत्पश्चात् अनेक ईश्वरीय बातें हुईं। घर में संकीर्तन हुआ। और मैं नाचा था। वह बोला, 'महाशय, हमारे यहाँ पर भी एक बार आना।' मैंने कहा, 'वह ईश्वर की इच्छा है।' तब बोला, 'हमारे वहाँ पर भी भक्त हैं, देखिएगा।' मैंने हँसते-हँसते कहा था, कैसे भक्त हैं जी वहाँ पर? 'गोपाल –गोपाल' जिन्होंने कहा था— क्या वैसे ही भक्त हैं?'

डॉक्टर— 'गोपाल, गोपाल' क्या मतलब?

श्री रामकृष्ण *(सहास्य)*— एक सुनार की दुकान थी। मालिक आदि बड़े भक्त थे, परम वैष्णव— गले में माला, मस्तक पर तिलक,

---

[1] तेंतें बुद्धि— तांती की बुद्धि, जुलाहे की बुद्धि।

[2] बंकिम— कलकत्ता के बेनेटोला के निवासी थे। डिप्टी मैजिस्ट्रेट, परम भक्त। बंगाल प्रान्त के एक प्रसिद्ध लेखक। 'वन्दे मातरम्' लिखा है 'आनन्द मठ' में। श्री अधरसेन के घर में श्रीयुक्त बंकिमचन्द्र चैटर्जी के संग श्री श्री परमहंसदेव मिले थे। बंकिम बाबू ने उनके बस यही एक बार दर्शन किए थे।

हाथ में हरिनाम की माला। सब विश्वास करके उसी दुकान पर आते। सोचते— ये लोग परम भक्त हैं, ये कभी ठगेंगे नहीं। खरीददारों के दल को देखकर कोई कारीगर कहने लगता, 'केशव, केशव' और एक कारीगर कुछ क्षण पश्चात् नाम-जप करता, 'गोपाल, गोपाल!' और फिर कुछ देर पश्चात् एक और कारीगर बोलता, 'हरि, हरि!' फिर कोई कह देता, 'हर, हर'। अतः भगवान का इतना नाम देखकर खरीदने वाले सहज ही सोचते कि ये सुनार अति उत्तम व्यक्ति हैं। किन्तु वास्तव में बात क्या थी, जानते हो? जिसने कहा था, 'केशव-केशव', उसके मन का भाव था— ये सब कैसे हैं? जिसने कहा था, 'गोपाल, गोपाल' उसका अर्थ था कि मैंने जाँच-पड़ताल करके जैसा देखा है, ये लोग गायों के दल (मूर्ख, भोले) हैं। *(हास्य)*। जिसने 'हरि, हरि' कहा था, उसका मतलब था कि ये यदि गायों के ही पालक हैं तो 'हरि' अर्थात् हरण कर लूँ क्या? *(हास्य)*। जिसने हर-हर कहा था, उसके मायने हैं, 'तो फिर हरण करो, हरण करो।' ये तो गायों का दल है।

"सेजो बाबू (मथुर बाबू) के साथ और एक जगह पर गया था, बहुत से पण्डित मेरे साथ विचार करने आए। मैं तो मूर्ख! *(सब का हास्य)*। उन्होंने मेरी वही अवस्था देखकर, और मेरे साथ कथा-वार्त्ता होने पर कहा, 'महाशय, पहले जो पढ़ा था, आपके साथ बातें करने पर वह सब पढ़ा-लिखा, विद्या आदि सब 'थू' हो गया। अब समझ पाए हैं कि उनकी कृपा हो जाने पर ज्ञान का अभाव नहीं रहता, मूर्ख विद्वान् हो जाता है, गूंगा बोलने लगता है। इसी कारण कहता हूँ, पुस्तक पढ़ने से ही पण्डित नहीं बना जाता।"

(पूर्व कथा— प्रथम समाधि— आविर्भाव और मूर्ख के कण्ठ में सरस्वती)

"हाँ, उनकी कृपा हो जाने पर फिर क्या ज्ञान का अभाव रहता है? देखो ना, मैं तो मूर्ख हूँ, कुछ भी नहीं जानता। तो फिर ये समस्त बातें कौन बोलता है? और फिर इस ज्ञान का भण्डार तो अक्षय है। उस

दिन देखा कामारपुकुर (ठाकुर का जन्मस्थान) में धान मापते हैं, 'रामें राम, रामें-राम' बोलते-बोलते। एक व्यक्ति मापता है और ज्योंहि समाप्त होने लगता है, और एक व्यक्ति राश ठेल देता है (ढेर आगे कर देता है)। उसका काम ही वही है, खतम होते ही राश ठेल देना।' मैं भी जब बातें कहता जाता हूँ, खत्म होने को आते-आते ही मेरी माँ झट से अपने अक्षय ज्ञान-भण्डार से 'राश ठेल' देती हैं।

"बचपन में उनका आविर्भाव हुआ था। ग्यारह वर्ष की वयस् में मैदान के ऊपर क्या देखा था! सब ही कहते हैं, बेहोश हो गया था, कोई भी चैतन्य नहीं था। उसी दिन से और ही एक प्रकार का हो गया; अपने भीतर और एक जन को देखने लगा। जब ठाकुर-पूजा करने जाता, यह हाथ अनेक समय ठाकुर की ओर न जाकर अपने सिर के ऊपर आ जाता और फूल मस्तक पर दे देता। जो छोकरा मेरे पास रहा करता, वह फिर मेरे पास नहीं आता। कहा करता, तुम्हारे मुख पर कैसी एक ज्योति देखता हूँ, तुम्हारे अधिक निकट आते भय होता है।"

चतुर्थ परिच्छेद

(FREE WILL OR GOD'S WILL?
स्वाधीन इच्छा अथवा भगवान की इच्छा)

यन्त्रारूढ़ाणि मायया— गीता 18 : 61

श्री रामकृष्ण— मैं तो मूर्ख हूँ, मैं कुछ नहीं जानता, तो फिर ये समस्त कौन बोलता है? मैं कहता हूँ, 'माँ! मैं यन्त्र, तुम यन्त्री; मैं घर, तुम घरणी; मैं रथ, तुम रथी; जिस प्रकार करवाती हो, उसी प्रकार ही करता हूँ; जैसे बुलवाती हो, वैसे ही बोलता हूँ; जैसे चलाती हो, वैसे ही चलता हूँ। 'नाहं, नाहं; तुंहुँ, तुंहुँ।' उनकी ही जय है। मैं तो केवल यन्त्र मात्र हूँ। श्रीमती (राधा जी) जब सहस्र-धारा-कलसी (गागर) लेकर जा रही थीं और जल तनिक-सा भी नहीं चू रहा था, 'ऐसी सती

और नहीं मिलेगी'— सब यह कहकर उनकी प्रशंसा करने लगे। तब श्रीमती बोलीं, 'तुम मेरी जय क्यों कहते हो? बोलो, कृष्ण की जय, कृष्ण की जय! मैं तो उनकी दासी मात्र हूँ। उसी अवस्था में विजय की छाती पर पाँव रखा था, इधर तो विजय को इतनी भक्ति से देखता हूँ। उसी विजय के वक्ष पर पैर रख दिया, इसे आप क्या कहते हैं?

डॉक्टर— उसके पश्चात् सावधान होना ही उचित है।

श्री रामकृष्ण *(हाथ जोड़ कर)*— मैं क्या करूँ? वैसी विशेष अवस्था हो जाने पर बेहोश हो जाता हूँ। क्या-क्या कर रहा हूँ, मुझे तो कुछ भी पता नहीं लगता।

डॉक्टर— सावधान होना उचित है, हाथ जोड़ने से क्या होगा?

श्री रामकृष्ण— तब क्या मैं कुछ कर सकता हूँ? किन्तु तुम मेरी अवस्था को कैसा समझते हो? यदि ढोंग सोचते हो तो फिर तुम्हारी साइन्स-वाइन्स पर सब राख पड़ गई है।

डॉक्टर— महाशय, यदि ऐसा सोचता हूँ तो फिर क्यों इतना आता हूँ? यही देखो, सब कार्य छोड़कर यहाँ पर आता हूँ। कितने ही रोगियों के घर नहीं जा पाता, यहाँ पर आकर छह-सात घण्टे तक रह जाता हूँ।

(न योत्स्ये— भगवत् गीता— ईश्वर ही कर्त्ता, अर्जुन यन्त्र)

श्री रामकृष्ण— सेजो बाबू से कहा था, तुम यह मत सोचना कि तुम बड़े व्यक्ति हो, मुझ को मानते हो, इसलिये मैं कृतार्थ हो गया हूँ। तुम यह मानो चाहे न मानो। किन्तु एक बात तो अवश्य है कि मनुष्य क्या करेगा? वे ही मनवाएँगे। ईश्वरीय शक्ति के निकट मनुष्य तृण मात्र है।

डॉक्टर— तुम क्या सोचते हो कि अमुक मछुआ[1] तुम्हें मानता है, इस कारण मैं तुम्हें मानूँगा? किन्तु तुम्हारा सम्मान तो मैं करता हूँ, रिगार्ड करता हूँ, मनुष्य का जैसे रिगार्ड करते हैं।

श्री रामकृष्ण— मैं क्या आपको मानने के लिये कह रहा हूँ भाई?

गिरीश घोष— ये क्या आपको मानने के लिए कह रहे हैं?

डॉक्टर— *(श्री रामकृष्ण के प्रति)* तुम क्या कहते हो, ईश्वर-इच्छा?

श्री रामकृष्ण— फिर और क्या कह रहा हूँ? ईश्वरीय शक्ति के निकट मनुष्य क्या करेगा? अर्जुन ने कुरुक्षेत्र के युद्ध में कहा था, 'मैं युद्ध नहीं कर सकूँगा, अपनों का वध मैं नहीं करता।' श्री कृष्ण जी बोले— अर्जुन, तुम्हें युद्ध करना ही पड़ेगा। तुम्हारा स्वभाव करवा लेगा। श्री कृष्ण ने सब दिखला दिया कि ये लोग तो पहले से ही मरे हुए हैं।[2] सिक्ख लोग मन्दिर में आए थे, उनके मत में है (पीपल के पेड़ का पत्ता भी जो हिलता है, वह भी ईश्वर की ही इच्छा से हिलता है— उनकी इच्छा बिना एक पत्ता भी नहीं हिल सकता)।

Liberty or Necessity?— Influence of Motives
स्वाधीनता अथवा प्रयोजनीयता?— प्रेरणाओं का प्रभाव

डॉक्टर— यदि ईश्वर की इच्छा है, तो फिर तुम क्यों बातें करते हो? लोगों को ज्ञान देने के लिए इतनी बातें क्यों करते हो?

श्री रामकृष्ण— वे बुलवाते हैं तो बोलता हूँ। मैं यन्त्र, वे यन्त्री।

डॉक्टर— यन्त्र तो कहते हो; हो सको तो बोलो, नहीं तो चुप रहो। सब ही ईश्वर है।

---

[1] यहाँ पर डॉक्टर मथुर बाबू के लिए कह रहे हैं। वे मछुआ जाति के थे।

[2] मयैवैते निहताः पूर्वमेव निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन् —गीता 11 : 33

गिरीश— अरे भाई, जो मन में आए, करो। किन्तु वे करवाते हैं, तभी करता हूँ। A single step against the Almighty Will (उनकी इच्छा के प्रतिकूल एक कदम भी) क्या कोई जा सकता है?

डॉक्टर— Free will (स्वाधीन इच्छा) उन्होंने ही तो दी है। मैं मर्जी हो तो ईश्वर-चिन्तन कर सकता हूँ; और फिर न मर्जी हो तो नहीं कर सकता।

गिरीश— आपको ईश्वर-चिन्तन अथवा अन्य कोई सत्कार्य अच्छा लगता है तो करते हैं। आप नहीं करते, वह भला लगना ही तो करवाता है।

डॉक्टर— क्यों, मैं कर्त्तव्य जानकर करता हूँ।

गिरीश— वही कर्त्तव्य-कर्म करना ही तो अच्छा लगता है, इसी लिए।

डॉक्टर— कल्पना करो, एक लड़का जल रहा है, उसको बचाने जाना कर्त्तव्य है, इस ज्ञान से...

गिरीश— लड़के को बचाने में आनन्द होता है, जभी तो आग के भीतर जाते हैं। आनन्द आपको ले जाता है। चाट के लोभ में गोली खाना *(सब का हास्य)*।

(ज्ञान, ज्ञेय, परिज्ञाता— त्रिविधा कर्मचोदना)

श्री रामकृष्ण— कर्म करने से पहले एक विश्वास चाहिए, उस विश्वास के साथ ही उस वस्तु को मन में करके आनन्द होता है, तब फिर वह व्यक्ति कार्य में प्रवृत्त होता है। ज़मीन के अन्दर एक मोहरों से भरा हुआ घड़ा है। यही ज्ञान, यही विश्वास पहले आवश्यक है— घड़ा स्मरण करने के संग-संग ही आनन्द होता है— तत्पश्चात् खोदता है। खोदते-खोदते टंग् शब्द होने से आनन्द होता है। फिर घड़े का कोना दिखाई पड़ता है। तब आनन्द और भी बढ़ जाता है। उसी प्रकार क्रमशः

आनन्द बढ़ता जाता है। मैंने स्वयं मन्दिर के बरामदे में खड़े होकर देखा है, साधु गांजा तैयार कर रहे हैं और उसे बनाते-बनाते आनन्द ले रहे हैं।

डॉक्टर— किन्तु आग 'हीट' (गर्मी) भी देती है और 'लाइट' (आलोक) भी देती है। आलोक में दिखाई तो चाहे देता है, किन्तु उत्ताप से पैर जल जाते हैं। 'ड्यूटी' (कर्त्तव्य-कर्म) करने जाओ तो केवल आनन्द ही होता है, ऐसी बात नहीं है, कष्ट भी है।

मास्टर— *(गिरीश के प्रति)*— पेट में आहार पड़ जाने पर पीठ भी सह लेती है। कष्ट में भी आनन्द है।

गिरीश *(डॉक्टर के प्रति)*— ड्यूटी शुष्क होती है।

डॉक्टर— क्यों?

गिरीश— तो फिर सरस होती है। *(सब का हास्य)*

मास्टर— बहुत खूब, सुन्दर! अब लोभ से गोली खाना आ पड़ा है।

गिरीश *(डॉक्टर के प्रति)*— सरस लगता है, नहीं तो ड्यूटी क्यों करते हैं?

डॉक्टर— मन का इन्क्लिनेशन ऐसा ही है (गति उसी ओर है)।

मास्टर *(गिरीश के प्रति)*— मेरा स्वभाव खींचता है। *(हास्य)*। यदि एक ओर झोंक (इन्क्लिनेशन) ही है तो फिर Free Will (स्वाधीन इच्छा) कहाँ रही?

डॉक्टर— मैं बिल्कुल स्वाधीन नहीं कहता। गाय खूँटे पर बँधी हुई है, रस्सी जितनी दूर जाती है, उसके भीतर ही फ्री (स्वाधीन) है। रस्सी की खींच से फिर...

(श्री रामकृष्ण और Free Will— स्वाधीन इच्छा)

श्री रामकृष्ण— यह उपमा यदु मल्लिक ने भी कही थी। *(छोटे नरेन्द्र के प्रति)*— यह क्या अंग्रेज़ी में है?

(डॉक्टर के प्रति)— "देखो, ईश्वर सब कर रहे हैं। वे यन्त्री हैं, मैं यन्त्र हूँ; यह विश्वास यदि किसी को हो जाता है, तो वह जीवन्मुक्त है— 'तोमार कर्म तुमि करो, लोके बोले करि आमि।' (तुम्हारा कर्म तुम्ही करते हो, लोग कहते हैं मैं करता हूँ)। यह कैसे है, जानते हो? वेदान्त की एक सुन्दर उपमा है। एक पतीली में भात चढ़ाया। आलू, बैंगन, उसी भात में डाल दिए। थोड़ी देर में आलू, बैंगन,चावल उछलने-कूदने लगे; जैसे अभिमान कर रहे हों, 'मैं हिल रहा हूँ, मैं उछल-कूद रहा हूँ।' छोटे बच्चे ऐसा देखने पर सोचते हैं— आलू, परवल, बैंगन, मानो जिन्दा हैं। तभी उछल-कूद रहे हैं। जिन्हें ज्ञान हो गया है, वे समझा देते हैं— ये आलू, बैंगन, परवल इत्यादि जीवन्त नहीं हैं। वे स्वयं नहीं उछल-कूद रहे। यदि लकड़ी खींच ली जाए, तो और फिर नहीं हिलते। जीव का 'मैं कर्त्ता' यह अभिमान अज्ञान से होता है। ईश्वर की शक्ति से ही सब शक्तिमान हैं। जलती हुई आग खींच लेने पर सब चुप। नाचने वाली कठपुतलियाँ कठपुतली नचाने वाले के हाथ में सुन्दर नाचती हैं। हाथ से गिर जाने पर न हिलती हैं, न डुलती हैं।

"जब तक ईश्वर-दर्शन नहीं होता, जब तक पारसमणि को छू नहीं लिया जाता, तब तक 'मैं कर्त्ता हूँ', यह भूल रहेगी— मैं सत् कार्य कर रहा हूँ, मैं असत् कार्य कर रहा हूँ इत्यादि बोध रहेगा। यह भेद-बोध उनकी ही माया है— अपनी माया का संसार चलाने के लिए ऐसा प्रबन्ध किया हुआ है। विद्या-माया का आश्रय कर लेने पर, सत्पथ पकड़ लेने पर उनको प्राप्त किया जाता है। जो प्राप्त करता है, जो ईश्वर का दर्शन करता है, वह ही माया पार कर सकता है। 'वे ही एक मात्र कर्त्ता हैं और मैं अकर्त्ता हूँ', जिसको यह विश्वास है, वह ही जीवन्मुक्त है— यह बात केशवसेन से कही थी।"

गिरीश *(डॉक्टर के प्रति)*— Free Will (स्वाधीन इच्छा) यह आपने कैसे जाना?

डॉक्टर— Reason (विचार) के द्वारा नहीं— I feel it. (मैं बोध करता हूँ)।

गिरीश— Then I and others feel it to be the reverse (हम सब बिल्कुल उल्टा बोध करते हैं कि हम परतन्त्र हैं)। *(सब का हास्य)*।

डॉक्टर— ड्यूटी के अन्दर दो एलीमैंट (तत्त्व) हैं— एक ड्यूटी के कारण कर्त्तव्य-कर्म करने जाता हूँ। फिर दूसरा आह्लाद होता है। किन्तु initial stage (आरम्भ की अवस्था) में आनन्द होगा, इस कारण कर्त्तव्य-कर्म करने नहीं जाता। बचपन में देखता था, सन्देश में च्यूँटियाँ हो जाने पर पुजारी बहुत चिन्तित हो जाया करता था। पुजारी के सन्देश का चिन्तन करके पहले ही आनन्द नहीं होता था *(हास्य)*। पहले तो बड़ी चिन्ता हो जाती थी।

मास्टर *(स्वगत)*— यह कहना बड़ा कठिन है कि पीछे आनन्द होता है अथवा संग-संग याद आते ही आनन्द होता है। आनन्द के ज़ोर से कार्य होने पर Free will (स्वाधीन इच्छा) कहाँ?

पञ्चम परिच्छेद

(अहेतुकी भक्ति, पूर्वकथा— श्री रामकृष्ण का दास-भाव)

श्री रामकृष्ण— ये (डॉक्टर) जो कहते हैं, उसका नाम है अहेतुकी भक्ति। महेन्द्र सरकार से कुछ नहीं चाहता, कोई प्रयोजन नहीं; महेन्द्र सरकार को मिलना अच्छा लगता है, इसका ही नाम है अहेतुकी भक्ति। तनिक-सा आनन्द होता है तो क्या करूँ?

"अहल्या ने कहा था, 'हे राम, यदि सूअर-योनि में भी जन्म हो जाए, उसमें भी मुझे कोई आपत्ति नहीं, किन्तु जैसे भी हो तुम्हारे पादपद्मों में शुद्धा भक्ति रहे— मैं और कुछ नहीं माँगती।'

"रावण-वध की बात याद करवाने के लिए नारद रामचन्द्र जी को मिलने के लिए अयोध्या जी गए। वे सीताराम-दर्शन करके स्तवन करने लगे। रामचन्द्र स्तवन से सन्तुष्ट होकर बोले, 'नारद, मैं तुम्हारे स्तवन से सन्तुष्ट हुआ हूँ। तुम कुछ वर लो।' नारद कहने लगे, 'राम, यदि मुझे वर अवश्य ही देना है तो यह वर दो कि जैसे तुम्हारे पादपद्मों में शुद्धाभक्ति रहे, और ऐसा कर दो कि जैसे तुम्हारी भुवनमोहिनी माया में मुग्ध न हो जाऊँ।' राम बोले, 'और भी कुछ वर लो।' नारद ने उत्तर में कहा, 'मैं और कुछ भी नहीं चाहता, केवल चाहता हूँ तुम्हारे पादमद्मों में शुद्धाभक्ति।'

"इनका भी ऐसा ही है। जैसे केवल ईश्वर को देखना चाहते हैं और धन, मान, देह-सुख कुछ भी नहीं चाहते। इसका ही नाम है शुद्धा भक्ति।

"थोड़ा-सा आनन्द तो चाहे होता ही है, किन्तु यह विषय का आनन्द नहीं है। भक्ति का, प्रेम का आनन्द है। शम्भु (मल्लिक) ने कहा था, जब मैं प्रायः उनके घर जाया करता था— 'तुम यहाँ पर आते हो, मेरे साथ बातें करके अवश्य आनन्द पाते हो, तभी तो आते हो'— बस इतना-सा ही आनन्द आता है।

"किन्तु उसके ऊपर और भी एक अवस्था है— बालक की भाँति चलता है, कुछ भी निश्चय नहीं होता, संभवतः एक पतंगा ही पकड़ रहा है।

(भक्तों के प्रति)— उनका (डॉक्टर के मन का) भाव क्या है, समझे? ईश्वर से प्रार्थना करना, हे ईश्वर! मुझ को सत् इच्छा दो ताकि असत् कार्य में मेरी मति न हो।

मेरी भी ऐसी अवस्था थी। इसको दास्य कहते हैं। मैं 'माँ, माँ' कहकर इस प्रकार रोता था, लोग खड़े हो जाया करते। मेरी ऐसी अवस्था के पश्चात् मुझे बिगाड़ने के लिए और मेरा पागलपन हटाने के लिए उनके एक व्यक्ति ने कमरे में एक वेश्या लाकर बिठा दी— सुन्दर थी, आँखें अच्छी! मैं 'माँ, माँ' कहकर कमरे से निकल आया और हलधारी को पुकार कर कहा, 'दादा! आओ, देखो, कमरे में कौन आ गया है!' हलधारी तथा सब लोगों को मैंने बता दिया। इस अवस्था में 'माँ, माँ' कहकर रोया करता था और रोते-रोते कहा करता, 'माँ, रक्षा करो। माँ, मुझे शुद्ध बना दो, ताकि सत् से मन असत् में न जाए।' *(डॉक्टर के प्रति)* तुम्हारा यह भाव तो सुन्दर है। ठीक भक्ति-भाव है, दास-भाव है।"

(जगत् का उपकार और सामान्य जीव— निष्काम कर्म और शुद्ध सत्त्व)

"यदि किसी में शुद्ध सत्त्व (गुण) है, वह केवल ईश्वर-चिन्तन करता है, उसको और कुछ अच्छा नहीं लगता। कोई-कोई प्रारब्ध के प्रभाव से जन्म से शुद्ध सत्त्व गुण पाता है, कामना-शून्य होकर कर्म करने की चेष्टा करने से अन्त में वही शुद्ध सत्त्व लाभ करता है। रजो-मिश्रित सत्त्व रहने पर क्रमशः नाना ओर मन जाता है। तब जगत् का उपकार करने का अभिमान आ जुटता है। जगत् का उपकार इस सामान्य जीव के लिए करना बड़ा कठिन है। किन्तु यदि कोई परोपकार के लिए कामनाशून्य होकर कर्म करता है, तो उसमें दोष नहीं है— इसे निष्काम कर्म कहते हैं। इस प्रकार कर्म करने की चेष्टा करना बहुत अच्छा है। किन्तु सब नहीं कर सकते। बड़ा कठिन है। सब को ही कर्म तो करना पड़ेगा। दो-एक जन ही कर्म-त्याग कर सकते हैं। दो-एक लोगों में शुद्ध सत्त्व दिखाई देता है। यह निष्काम कर्म करते-करते रजोमिश्रित सत्त्वगुण क्रमशः शुद्धसत्त्व हो जाता है।

"शुद्ध सत्त्व होने पर ही उनकी कृपा से ईश्वर-लाभ होता है।

"साधारण व्यक्ति इस शुद्ध सत्त्व की अवस्था को समझ नहीं सकता। हेम ने मुझसे कहा था, क्यों भट्टाचार्य महाशय, जगत् में मान-यश प्राप्त करना ही तो मनुष्य जीवन का उद्देश्य है ना, क्यों जी?"

•

अष्टादश खण्ड

श्री रामकृष्ण का नरेन्द्र, डॉक्टर सरकार, गिरीश घोष आदि भक्तों के संग कथोपकथन और आनन्द

प्रथम परिच्छेद

(भजनानन्द में समाधि-मन्दिर में)

दूसरा दिन 27 अक्तूबर, 1885 ईसवी; मंगलवार, समय साढ़े पाँच। आज नरेन्द्र, डॉक्टर सरकार, श्यामवसु, गिरीश, डॉक्टर दोकड़ि, छोटे नरेन्द्र, राखाल, मास्टर इत्यादि अनेक जन आए हुए हैं। डॉक्टर ने आकर हाथ देखा और औषध की व्यवस्था की। कई पीड़ा सम्बन्धी बातों के बाद और श्री रामकृष्ण के औषध-सेवन के पश्चात् डॉक्टर ने कहा— "तो अब आप श्याम बाबू के साथ बातें करो और मैं चलता हूँ।" श्री रामकृष्ण और एक भक्त बोल उठे— गाना सुनोगे?

डॉक्टर— तुम तो छिनमिना उठते हो। भाव को दबाकर रखना होगा।

डॉक्टर फिर दुबारा बैठ गए। तब नरेन्द्र मधुर कण्ठ से गाना गाते हैं। उनके संग तानपूरा और मृदंग घन-घन बज रहे हैं। वे गा रहे हैं—

चमत्कार अपार जगत् रचना तोमार,
शोभार आगार विश्व संसार।
अयुत तारका चमके रतन-काञ्चन हार
कतो चन्द्र कतो सूर्य नाहि अन्त तार।

शोभे वसुन्धरा धनधान्यमय, होय पूर्ण तोमार भाण्डार
हे महेश, अगणनलोक गाय धन्य धन्य ऐ गीति अनिवार।

[तुम्हारे जगत् की रचना अपार सुन्दर है, यह सम्पूर्ण संसार शोभा का आगार (भण्डार) है। करोड़ों तारों का रत्न-काञ्चन-हार चमक रहा है। कितने चन्द्र हैं, कितने सूर्य हैं, उनका कोई अन्त नहीं है। धन-धान्यमय वसुन्धरा सुशोभित हो रही है। तुम्हारा भण्डार पूर्ण है। हे महेश, अगणित लोग धन्य-धन्य करते हुए यह गीत निरन्तर गा रहे हैं।]

निबिड़ आँधारे माँ तोर चमके अरूपराशि।
ताइ योगी ध्यान धरे होये गिरि-गुहावासी।
अनन्त आँधार कोले, महानिर्वाण हिल्लोले।
चिरशान्ति परिमल, अविरल जाय भासि।
महाकाल रूप धरि, आँधार बसन परि,
समाधि मन्दिरे ओ मा के तुमि गो एका बोसि।
अभय पद-कमले, प्रेमेर बिजली ज्वले,
चिन्मय मुख मण्डले शोभे अट्ट-अट्ट हासि।

[हे माँ, घने अन्धकार में तेरी यह रूपराशि चमक रही है। इसीलिए तो योगी ध्यान करने के लिए गिरि-गुहा-वासी हुए हैं। अनन्त अन्धकार की गोद में, महानिर्वाण हिलोरें ले रहा है। चिर-शान्ति का परिमल निरन्तर बह रहा है। महाकाल का रूप धारण करके वस्त्र पहन कर हे माँ, तुम कौन हो जो अकेली बैठी हुई हो? तुम्हारे अभय पदकमलों में प्रेम की बिजली जल रही है, चिन्मय मुख-मण्डल पर अट्टहास शोभा दे रहा है।]

डॉक्टर ने मास्टर से कहा— It is dangerous to him. (यह गाना ठाकुर के लिए ठीक नहीं है, भाव होने पर अनर्थ हो सकता है)।

श्री रामकृष्ण ने मास्टर से पूछा, क्या कह रहा है। उन्होंने उत्तर दिया, डॉक्टर को भय है कि पीछे आपको भाव-समाधि न हो जाए। कहते-कहते श्री रामकृष्ण कुछ भावस्थ हो गए हैं। डॉक्टर के मुख की

ओर देखकर हाथ जोड़ कर कहते हैं— 'ना, ना, भाव होगा क्यों?' किन्तु यह बात कहते-कहते वे गम्भीर भाव-समाधि में मग्न हो गए। शरीर स्पन्दनहीन, नयन स्थिर! अवाक्! लकड़ी की पुतली की न्यायीं बैठे हैं। बाह्य-शून्य। मन, बुद्धि, अहंकार, चित्त समस्त ही अन्तर्मुख। अब वे वह मनुष्य नहीं हैं। नरेन्द्र के मधुर कण्ठ से मधुर गाना चल रहा है—

ए कि ए सुन्दर शोभा, कि मुख हेरि ए!
आजि मोर घरे आइलो हृदयनाथ, प्रेम उथलिलो आजि।
बल हे प्रेममय हृदयेर स्वामी, कि धन तोमारे दिबो उपहार।
हृदय प्राण लहो लहो तुमि कि बोलिबो,
जाहा किछु आछे मम, सकलि लओ हे नाथ!

[अरे, यह कैसी सुन्दर शोभा है! अरे, किसका मुखड़ा देख रहे हो! आज मेरे घर में हृदयनाथ आए हैं, प्रेम का स्रोत (झरना) आज उथल पड़ा है। हे प्रेममय हृदय के स्वामी! बोलो, तुम्हें क्या सम्पत्ति-धन उपहार में दूँ? तुम हृदय, प्राण ले लो, ले लो, मैं क्या कहूँ? मेरा जो कुछ भी है, समस्त ले लो नाथ!]

कि सुख जीवने मम ओ हे नाथ दयामय हे
यदि चरण सरोजे पराण मधुप चिरमगन ना रय हे।
अगणन धनराशि ताय किबा फलोदय हे
यदि लभिये से धन, परम रतने यतन ना करय हे।
सुकुमार कुमार मुख देखिते ना चाइ हे
यदि से चाँदबयाने तब प्रेममुख देखिते ना पाइ हे।
कि छार शशांकज्योतिः, देखि आँधारमय हे,
यदि से चाँद प्रकाशे तब प्रेम चाँद नाहि हय उदय हे।
सतीर पवित्र प्रेम ताओ मलिनतामय हे,
यदि से प्रेमकनके, तब प्रेममणि नाहि जड़ित रय हे।
तीक्ष्ण बिषा व्याली सम सतत दंशय हे,
यदि मोह परमादे नाथ तोमाते घटाय संशय हे।
कि आर बलिबो नाथ, बलिब तोमाय हे,
तुमि आमार हृदयरतन मणि, आनन्दनिलय हे।

[मेरे जीवन में हे दयामय नाथ, क्या सुख है यदि आपके चरण-कमलों में मेरा प्राण-मधुप चिरमग्न नहीं रहता? अगणित धनराशि का क्या लाभ यदि उस परम रत्न को प्राप्त करने का यत्न मैं नहीं करता? यदि मैं तेरे प्रेममय चाँदमुख को नहीं देख पाता तो सुकुमार कुमार का मुख मैं देखना भी नहीं चाहता। चन्द्र की ज्योति व्यर्थ है, मैं उसे अन्धकारमय देखता हूँ, यदि उस चाँद के प्रकाश में तेरा प्रेम-चन्द्र उदित नहीं होता। सती का पवित्र प्रेम भी मलिनतामय है यदि उस प्रेम-स्रोत के सोने में तेरी प्रेम-मणि नहीं जड़ित रहती। हे नाथ, तीक्ष्ण विष-सर्पिणी के समान संशय लगातार डंक मारता है तथा मोह के प्रमाद में वह तुम्हारे प्यार को घटाता है। हे नाथ, और मैं अब क्या कहूँ तुम्हें। तुम्हीं तो मेरे हृदय-रत्न-मणि आनन्द के आधार हो।]

'सती का पवित्र प्रेम' गाने का यह अंश सुनते-सुनते डॉक्टर अश्रुपूर्ण लोचन से बोल उठे, 'आह! आह!' नरेन्द्र ने फिर और गाया—

कतो दिने होबे से प्रेम संचार,
होये पूर्णकाम बोलबो हरिनाम, नयने बहिबे प्रेम अश्रुधार।
कबे हबे आमार शुद्ध प्राण मन, कबे जाबो आमि प्रेमेर बृन्दाबन,
संसार बन्धन होइबे मोचन, ज्ञानांजने जाबे लोचन आँधार॥
कबे परशमणि करि परशन लौहमय देह होइबे कांचन,
हरिमय विश्व करिबो दर्शन, लुटाइबो भक्ति पथे अनिवार॥
(हाय) कबे जाबे आमार धरम करम, कबे जाबे जाति कुलेर भरम
कबे जाबे भय 'भावना सरम' परिहरि अभिमान लोकाचार॥
माखि सर्व अंगे भक्त पद धूलि, कांधे लये चिर बैराग्येर झुली,
पिबो प्रेम बारि दुइ हाते तुलि, अंजलि-अंजलि प्रेमयमुनार॥
प्रेमे पागल होये हासिबो काँदिबो सच्चिदानन्द सागरे भासिबो,
आपनि मातिये सकले माताबो, हरिपदे नित्य करिबो बिहार॥

[कितने दिन में वह प्रेम संचार होगा जब पूर्णकाम होकर हरि-नाम बोलूँगा तथा नयनों से प्रेम-अश्रुधार बहेगी? कब मेरा प्राण-मन शुद्ध होगा और कब मैं प्रेम के वृन्दावन जाऊँगा, संसार-बन्धन

का मोचन होगा तथा ज्ञान के अंजन (काजल) से आँखों का अन्धेरा चला जाएगा? कब लौहमय (जड़) शरीर पारस पत्थर को छूकर सोना बनेगा, कब मैं हरिमय विश्व का दर्शन करूँगा और भक्ति के पथ पर निरन्तर लोट लगाऊँगा? (हाय!) मेरा धर्म-कर्म कब जाएगा, जाति-कुल का भ्रम कब जाएगा? कब भय की भावना, शर्म जाएगी; कब लोकाचार- अभिमान हटेगा? भक्तों के चरणों की धूलि कब सारे अंगों पर मल कर, कन्धे पर चिरवैराग्य की झोली लटका कर दोनों हाथों से अंजलि भर-भर प्रेम-यमुना का प्रेम-जल पिऊँगा? कब प्रेम में पागल होकर हँसूँगा, रोऊँगा और सच्चिदानन्द-सागर में तैरूँगा? कब अपने आप मतवाला होकर सब को मतवाला बनाऊँगा और हरि-चरणों में नित्य विहार करूँगा?]

द्वितीय परिच्छेद

(ज्ञान और विज्ञान-विचार में ब्रह्मदर्शन)

इसी बीच ठाकुर श्री रामकृष्ण को होश आ गया। गाना समाप्त हो गया। तब पण्डित और मूर्ख, बालक और वृद्ध, पुरुष और स्त्री, जन साधारण के लिए मनोमुग्धकारी बातें होने लगीं। सारी सभा के लोग निःस्तब्ध हैं। सब ही उस सुन्दर मुख की ओर ताक रहे हैं। अब वह कठिन पीड़ा कहाँ है? मुख अब भी मानो प्रफुल्ल अरविन्द है, मानो ऐश्वरिक ज्योति निकल रही है। तब वे डॉक्टर को सम्बोधित करके कहते हैं—

"लज्जा त्याग करो; ईश्वर का नाम करोगे तो उसमें फिर लज्जा क्या? 'लज्जा, घृणा, भय— तिन थाकते नय।' (लज्जा, घृणा, भय रहने पर नहीं होता।) मैं इतना बड़ा व्यक्ति हूँ, मैं हरि-हरि बोलकर नाचूँगा, बड़े-बड़े लोग यह बात सुनेंगे तो मुझे क्या कहेंगे? यदि कहें, 'अरे ओ

भाई,वह डॉक्टर हरि-हरि कहकर नाचा था, लज्जा की बात है'— ऐसा भाव त्याग करो।

डॉक्टर— मैं तो उस तरफ़ जाता ही नहीं कि लोग क्या कहेंगे। मैं उन की परवाह नहीं करता।

श्री रामकृष्ण— तुम में वह तो बहुत ही है। *(सब का हास्य)*। देखो, ज्ञान-अज्ञान के पार हो जाओ, तभी तो उनको जाना जा सकता है। नाना ज्ञानों का नाम अज्ञान है। पाण्डित्य का अहंकार भी अज्ञान है। एक ईश्वर सर्वभूतों में हैं, इसी निश्चयबुद्धि का नाम ज्ञान है। उनको विशेषरूप में जानने का नाम विज्ञान है। जैसे पैर में काँटा बिंध गया है, उस काँटे को निकालने के लिए एक और काँटे का प्रयोजन होता है। चुभे हुए काँटे को निकाल लेने पर दोनों काँटों को ही फेंक देते हैं। पहले तो अज्ञान-काँटे को दूर करने के लिए ज्ञान-काँटा लाना चाहिए। तत्पश्चात् ज्ञान-अज्ञान दोनों को ही फेंक देना चाहिए। वे तो ज्ञान-अज्ञान के पार हैं। लक्ष्मण ने कहा था, 'राम, यह कैसा आश्चर्य! वशिष्ठदेव स्वयं इतने बड़े ज्ञानी, पुत्रशोक में अधीर होकर वे भी रोए थे!' राम ने कहा, 'भाई, जिसे ज्ञान है, उसे अज्ञान भी है; जिसे एक ज्ञान है, उसे अनेक ज्ञान भी हैं। जिसे आलोक-बोध है, उसे अन्धकार-बोध भी है। ब्रह्म ज्ञान-अज्ञान के पार है, पाप-पुण्य के पार, धर्म-अधर्म के पार, शुचि-अशुचि के पार।'

यह कहकर श्री रामकृष्ण रामप्रसाद का गाना आवृत्ति करते हैं—

आय मन बेड़ाते जाबि
काली कल्पतरु मूले रे (मन) चारिफल कुड़ाये पाबि।
प्रवृत्ति निवृत्ति जाया (ताँर) निवृत्ति रे संगे लबि।[1]

---

[1] पूरे गाने के लिए इसी ग्रन्थ में 27 अक्तूबर, 1882 (पृष्ठ 61), और 28 नवम्बर, 1883 (पृष्ठ 156) देखें, ब्राह्म-भक्तों को ठाकुर गाना सुनाते हैं।

(अवाङ्मनसगोचरम्— ब्रह्म का स्वरूप समझाया नहीं जाता)

श्याम वसु— दोनों काँटे फेंक देने पर क्या रहेगा?

श्री रामकृष्ण— नित्यशुद्धबोधरूपम्। वह तुम्हें अब किस प्रकार समझाऊँ? यदि कोई पूछे घी कैसा लगा? उसको अब किस प्रकार समझाओगे? हद्द कह सकता है, घी कैसा है, वही ना, जैसा घी होता है। एक लड़की से उसकी सहेली ने पूछा— तेरा पति आया है, अच्छा बहन, बता पति आने पर किस प्रकार से आनन्द होता है? लड़की ने कहा— बहिन, तेरा पति हो जाने पर ही तू जानेगी। अब तुझे किस प्रकार समझाऊँ?

पुराण में है, भगवती ने जब हिमालय के घर जन्म ले लिया, तब उनको माँ ने नाना रूपों में दर्शन दिया। गिरिराज ने जब समस्त रूपों के दर्शन कर लिए, अन्त में भगवती से कहा— माँ, वेद में जिस ब्रह्म की बात है, अब मुझे जैसे ब्रह्म-दर्शन हो जाए। तब भगवती बोली— पिताजी, यदि ब्रह्म-दर्शन करना चाहो तो फिर साधुसंग करो।

"ब्रह्म क्या वस्तु है, मुख से नहीं बोला जाता। एक जन ने कहा था, सब-कुछ जूठा हुआ है, केवल ब्रह्म जूठा (उच्छिष्ट) नहीं हुआ। इस का मतलब यही है कि वेद, पुराण, तन्त्र और शास्त्र, मुख से उच्चारण किए जाने के कारण उच्छिष्ट हो गए हैं, कहा जा सकता है; किन्तु ब्रह्म क्या वस्तु है, कोई अब तक मुख से बोल नहीं सका। इसीलिए ब्रह्म अब तक जूठा नहीं हुआ। और सच्चिदानन्द के साथ क्रीड़ा, रमण— यह कैसा है, वह मुख से नहीं बोला जाता। जिसका हुआ है, वही जानता है।"

तृतीय परिच्छेद

(पण्डित का अहंकार— पाप और पुण्य)

ठाकुर श्री रामकृष्ण फिर दुबारा डॉक्टर को सम्बोधन करके बोले— "देखो, अहंकार बिना गए ज्ञान नहीं होता। मुक्त होऊँगा कब?

'मैं' जाएगी जब। 'मैं' और 'मेरा'— ये दोनों ही अज्ञान हैं। 'तुम' और 'तुम्हारा'— ये दोनों ही ज्ञान हैं। जो भक्त है, वह कहता है, 'हे ईश्वर! तुम ही कर्त्ता हो, तुम ही सब-कुछ कर रहे हो, मैं केवल यन्त्र हूँ। मुझसे जैसे करवाते हो, वैसे ही करता हूँ। और यह सब तुम्हारा ऐश्वर्य, तुम्हारा जगत् है। तुम्हारा ही गृह, परिवार है, मेरा कुछ नहीं है। मैं दास हूँ। तुम्हारा जैसा हुक्म है, उसी प्रकार सेवा करने का मेरा अधिकार है।'

"जिन्होंने थोड़ी भी पुस्तक आदि पढ़ ली है, उन्हें झट अहंकार हो जाता है। क-ठाकुर के संग ईश्वरीय बातें हुई थीं। वह बोला, 'यह सब तो मैं जानता हूँ।' मैंने कहा, 'जो दिल्ली गया था, वह क्या कहता फिरता है, मैं दिल्ली हो आया हूँ और शेखी मारता है? जो बाबू है, वह क्या कहता है, मैं बाबू हूँ?' "

श्याम बसु— वे (क-ठाकुर) आप को खूब मानते हैं।

श्री रामकृष्ण— अरे भाई, क्या कहूँ? दक्षिणेश्वर कालीबाड़ी में एक मेहतरानी का जो अहंकार है। उसकी देह पर दो-एक गहने थे। वह जिस पथ से आ रही थी, उसी पथ पर दो-एक व्यक्ति जा रहे थे। मेहतरानी उनसे बोली, 'अरे, परे हट जाओ।' तो फिर और व्यक्तियों के अहंकार की बात मैं और क्या कहूँ?

श्याम बसु— महाशय! पाप का दण्ड है, किन्तु ईश्वर ही सब कुछ कर रहे हैं, यह कैसी बात है?

श्री रामकृष्ण—तुम्हारी कैसी सोनार बेने (सुनार वाली) बुद्धि?

नरेन्द्र— सोनार-बेने-बुद्धि अर्थात् हिसाबी बुद्धि।

श्री रामकृष्ण— ओ रे पोदो, तू आम खा ले। बाग में कितने सैंकड़े वृक्ष हैं, कितनी हज़ार डालें हैं, कितने करोड़ पत्ते हैं, ऐसे हिसाब से तेरा क्या काम? तू आम खाने आया है, आम खा जा। *(श्याम बसु के प्रति)* तुमने इस संसार में ईश्वर-साधना के लिए मानव-जन्म पाया है। ईश्वर के पादपद्मों में किसी प्रकार भक्ति हो जाए, उसी की चेष्टा करो।

तुम्हें इन सबसे क्या काम? फ़िलॉसफ़ी लेकर विचार करके तुम्हारा क्या होगा? देखो, आध पाव मद से तुम मतवाले हो सकते हो। कलवार की दूकान में कितने मन शराब है, इस हिसाब का तुम्हें क्या प्रयोजन?

डॉक्टर— फिर ईश्वर का मद तो infinite (अनन्त) है। उस मद का शेष नहीं।

श्री रामकृष्ण *(श्याम बसु के प्रति)*— फिर ईश्वर को आममुख्त्यारी दे दो ना! उनके ऊपर सब भार दे दो। भले व्यक्ति पर यदि कोई भार दे देता है, तो वे क्या धोखा देते हैं? पाप का दण्ड देंगे कि नहीं देंगे, यह वे स्वयं समझेंगे।

डॉक्टर— उनके मन में क्या है, वे ही जानते हैं। मनुष्य हिसाब करके क्या कहेगा? वे हैं हिसाब के पार।

श्री रामकृष्ण *(श्याम बसु के प्रति)*— तुम लोगों का बस वही एक है। कलकत्ता के लोग जो कहते हैं, ईश्वर में वैषम्यदोष है क्योंकि उन्होंने एक व्यक्ति को सुख में रखा हुआ है और एक को दुःख में रखा हुआ है। सालों के अपने भीतर जैसा है, ईश्वर के भीतर भी वैसा ही देखते हैं।

(लोकमान्य क्या जीवन का उद्देश्य?)

"हेम दक्षिणेश्वर में जाता था। मिलते ही मुझसे कहता, 'क्या भट्टाचार्य महाशय, जगत् में एक ही वस्तु है— मान?' ईश्वर-लाभ जो मनुष्य जीवन का उद्देश्य है, यह कम लोग ही कहते हैं ना।

चतुर्थ परिच्छेद

(स्थूल, सूक्ष्म, कारण और महाकारण)

श्याम बसु— क्या कोई सूक्ष्म शरीर को दिखला सकता है? क्या कोई दिखला सकता है कि वही शरीर बाहिर चला जाता है?

श्री रामकृष्ण— जो ठीक भक्त हैं, उन्हें क्या मुसीबत पड़ी है दिखलाने की? किसी को क्या परवाह है कि कोई साला मानता है कि नहीं मानता। एक बड़ा व्यक्ति हाथ में रहेगा, ऐसी इच्छा उन्हें नहीं होती।

श्याम बसु— अच्छा, स्थूल, सूक्ष्म देह इत्यादि का अन्तर क्या है?

श्री रामकृष्ण— पंचभूतों से बनी जो देह है, वही स्थूल देह है। मन, बुद्धि, अहंकार और चित्त, इन्हें लेकर सूक्ष्म शरीर है। जिस शरीर से भगवान् का आनन्द प्राप्त होता है और सम्भोग होता है, वह ही कारण शरीर है। तन्त्र में कहते हैं, 'भागवती तनु'। सब के बाद में महाकारण (तुरीय) है, मुख से नहीं कहा जाता।

(साधन का प्रयोजन— ईश्वर में एकमात्र भक्ति ही सार)

"केवल सुन लेने से क्या होगा? कुछ करो। भंग-भंग मुख से बोलने से क्या होगा? उससे क्या नशा होता है? भंग पीस कर शरीर पर मलने से भी नशा नहीं होता। कुछ खानी चाहिए। कौन-सा इकतालीस नम्बर का सूत है, कौन-सा चालीस नम्बर का है; सूत का व्यवसाय बिना किए क्या ये बातें बताई जाती हैं? जिनका सूत का व्यवसाय है, उनके लिए अमुक नम्बर का सूत देना कुछ भी कठिन नहीं है। जभी कहता हूँ, कुछ साधन करो। तब स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण किसको कहते हैं,सब समझ सकोगे। जब ईश्वर के पास प्रार्थना करोगे, तब उनके पादपद्मों में एकमात्र भक्ति की ही प्रार्थना करोगे।

"अहल्या के श्राप-मोचन के पश्चात् श्री रामचन्द्र ने उनसे कहा, 'तुम मेरे से वर लो।' अहल्या ने कहा, 'राम, यदि वर दे रहे हो तो यही वर दो, मेरा यदि सूअर-योनि में जन्म हो, उसमें भी कोई हानि नहीं; किन्तु हे राम! तुम्हारे पादपद्मों में जैसे मेरा मन रहे।'

"मैंने माँ से एकमात्र भक्ति माँगी थी। माँ के चरणों में फूल देकर हाथ जोड़कर कहा था:

'माँ! यह लो अपना अज्ञान, यह लो अपना ज्ञान, मुझे शुद्धा भक्ति दो।
यह लो अपनी शुचि, यह लो अपनी अशुचि, मुझे शुद्धा भक्ति दो।
यह लो अपना भला, यह लो अपना मन्दा, मुझे शुद्धा भक्ति दो।
यह लो अपना धर्म, यह लो अपना अधर्म, मुझे शुद्धा भक्ति दो।'

"धर्म वही ना, दान आदि कर्म। धर्म लेने से ही अधर्म लेना होगा, पुण्य लेने से ही पाप लेना होगा। ज्ञान लेने से ही अज्ञान लेना होगा। शुचि लेने से ही अशुचि लेनी होगी। जैसे जिसका प्रकाश-बोध है, उसका अन्धकार-बोध भी है। जिसका एक बोध है, उसका अनेक बोध भी है। जिसका भला बोध है, उसका मन्द बोध भी है।

"यदि किसी व्यक्ति को सूअर का मांस खाकर भी ईश्वर के पादपद्मों में भक्ति रहती है, वह पुरुष धन्य है, और हविष्य (निरामिष— घृत-भातादि) खाकर भी यदि संसार में आसक्ति रहती है..."

डॉक्टर— तब तो वह अधम है। यहाँ पर एक बात कहता हूँ— बुद्ध ने सूअर का मांस खाया था। शूकर-मांस खाना और कॉलिक (पेट में शूलवेदना) होना। इसी बीमारी के लिए बुद्ध opium (अफ़ीम) खाया करते थे। निर्वाण-शिर्वाण क्या है, जानते हो? अफ़ीम खाकर नशे में चूर हुए रहते थे। बाह्यज्ञान नहीं रहता था। वही निर्वाण।

भगवान बुद्ध के निर्वाण के सम्बन्ध में ऐसी व्याख्या सुनकर सब हँसने लगे, फिर और कथावार्त्ता होने लगी।

पंचम परिच्छेद

(गृहस्थ और निष्काम कर्म— Theosophy)

श्री रामकृष्ण *(श्याम बसु के प्रति)*— संसार-धर्म, इसमें दोष नहीं। किन्तु ईश्वर के पादपद्मों में मन रखकर, कामनाशून्य होकर काज-कर्म

करोगे। यही देखो ना, यदि किसी की पीठ में एक फोड़ा हो जाता है, वह जैसे सबके साथ कथावार्त्ता करता है, शायद काज-कर्म भी करता है, किन्तु जिस प्रकार उसका मन फोड़े की ओर पड़ा रहता है, उसी प्रकार ही।

"संसार में नष्टा स्त्री की भाँति रहोगे। मन उपपति की ओर रहता है, किन्तु वह गृहस्थी के काम करती है। *(डॉक्टर के प्रति)* समझ गए?"

डॉक्टर— वैसा भाव यदि न हो तो समझूँगा कैसे?

श्याम बसु— कुछ-कुछ समझे ही, नहीं क्या? *(सब का हास्य)*

श्री रामकृष्ण *(हँसते-हँसते)*— फिर वही व्यवसाय बहुत दिनों से कर रहे हैं, क्यों जी? *(सब का हास्य)*।

श्याम बसु— महाशय, थियोसोफ़ी में क्या कहा है?

श्री रामकृष्ण— मोटी बात तो यह है जो शिष्य करते फिरते हैं, वे हलकी श्रेणी के लोग हैं। और जो सिद्धाई अर्थात् नाना प्रकार की शक्तियाँ चाहते हैं, वे भी हलकी श्रेणी के हैं। जैसे चलकर गंगा पार करना, ऐसी शक्ति! दूसरे देश में कोई व्यक्ति क्या बातें कर रहा है, यह बता सकना एक शक्ति है। ईश्वर में शुद्धा भक्ति का होना लोगों में बड़ा कठिन है।

श्याम बसु— किन्तु वे (थियोसोफ़िस्ट जन) हिन्दु धर्म को पुनः स्थापित करने की चेष्टा कर रहे हैं।

श्री रामकृष्ण— मैं उनके विषय में अच्छी तरह नहीं जानता।

श्याम बसु— मरने के बाद जीवात्मा कहाँ जाता है, चन्द्रलोक में या नक्षत्रलोक में, इत्यादि— थियोसोफ़ी से यह सब जाना जाता है।

श्री रामकृष्ण— जाना जाता होगा। मेरा भाव कैसा है, जानते हो? हनुमान को किसी ने पूछा था, आज कौन सी तिथि है? हनुमान बोले, मैं वार, तिथि, नक्षत्र इत्यादि कुछ नहीं जानता। केवल एक राम-चिन्तन करता हूँ।' मेरा ठीक वही भाव है।

श्याम बसु— वे कहते हैं, महात्मा सब (कुछ) हैं। आपका क्या विश्वास है?

श्री रामकृष्ण— मेरी बात पर विश्वास करते हो, तो हैं। ये सब बातें अब रहने दो। मेरी बीमारी कम होने पर तुम आना, जिससे तुम्हें शान्ति हो। यदि मुझ पर विश्वास करो तो उपाय हो जाएगा। देखते तो हो, मैं रुपया नहीं लेता, कपड़ा नहीं लेता। भेंट नहीं देनी पड़ती, तभी अनेक जन आते हैं। *(सब का हास्य)*। *(डॉक्टर के प्रति)* तुम्हें ऐसा कहा है, नाराज़ न होना। वह सब तो बहुत कर लिया है— रुपया, मान, लैक्चर। अब मन को कुछेक दिन ईश्वर में दो; और यहाँ पर कभी-कभी आना, ईश्वर की कथा सुनने से उद्दीपन होगा।

कुछ समय पश्चात् डॉक्टर विदा लेने के लिए उठे। उसी समय श्रीयुक्त गिरीश घोष आ गए और ठाकुर की चरण-धूलि लेकर बैठ गए। डॉक्टर उन्हें देखकर आनन्दित हुए और फिर दुबारा आसन ग्रहण कर लिया।

डॉक्टर— मेरे रहते हुए ये (गिरीश बाबू) नहीं आए। ज्यों ही चलने लगा, त्यों ही आ उपस्थित हुए *(सब का हास्य)*।

गिरीश के संग डॉक्टर की विज्ञान-सभा (Science Association) की बातें होने लगीं।

डॉक्टर— तुम वहाँ पर जाओगे तो बेहोश हो जाओगे— ईश्वर का सारा आश्चर्यपूर्ण काण्ड देखकर!

श्री रामकृष्ण— निश्चय ही?

षष्ठ परिच्छेद

(गुरु-पूजा)

डॉक्टर *(गिरीश के प्रति)*— और सब करो but do not worship him as God (किन्तु ईश्वर मानकर इनकी पूजा मत करो)। ऐसे अच्छे व्यक्ति का सिर खाते हो?

गिरीश— क्या करूँ महाशय? जिन्होंने इस संसार-समुद्र और सन्देह-सागर से पार किया है, उनको और क्या कहूँ; बताइए? उनका गू क्या गू बोध होता है?

डॉक्टर— गू के लिए तो ऐसा नहीं होता। मुझे भी घृणा नहीं है। एक दुकानदार का लड़का आया था। उसने टट्टी कर दी। सबने नाक पर कपड़ा लगाया। मैं उसके पास आध घण्टा बैठा रहा। नाक पर रुमाल नहीं लगाया और जब तक मेहतर उठाकर नहीं ले गया, तब तक मैंने नाक पर कपड़ा नहीं लगाया।मैं जानता हूँ, जो वह है, मैं वही हूँ। उससे क्यों घृणा करूँ? क्या मैं इनके पैरों की धूलि नहीं ले सकता? यह देखो, लेता हूँ। (श्री रामकृष्ण की पद-धूलि ग्रहण।)

गिरीश— Angels (देवगण) इस क्षण धन्य-धन्य कर रहे हैं**!**

डॉक्टर— इनके पाँव की धूलि लेने में क्या आश्चर्य है? मैं तो सब की ही ले सकता हूँ। यह लो! यह लो! *(सबके पाँव की धूलि लेते हैं)*

नरेन्द्र *(डॉक्टर के प्रति)*— इनको हम ईश्वर के जैसा मानते हैं। जानते हो, कैसे? जैसे वेजिटेबल क्रियेशन (उद्भिज) और ऐनिमल क्रियेशन (जीव-जन्तु गण) के बीच में ऐसा विशेष एक पायेन्ट (स्थान) है, जहाँ पर यह उद्भिज है कि प्राणी है, यह स्थिर करना अत्यन्त कठिन है। उसी प्रकार man-world (नरलोक) और God-world (देवलोक)। इन दोनों के मध्य में विशेष स्थान है, जहाँ पर कहना कठिन है कि यह व्यक्ति मनुष्य है या ईश्वर।

डॉक्टर— अरे भाई, ईश्वर के विषय में उपमा नहीं चलती।

नरेन्द्र— मैं God (ईश्वर) नहीं कह रहा। God-like man (ईश्वर-तुल्य व्यक्ति) कह रहा हूँ।

डॉक्टर— ऐसे अपने-अपने भाव दबाए रखने चाहिएँ। प्रकाश करना ठीक नहीं। मेरा भाव कोई नहीं समझता। My best friend (मेरे परम बन्धु) तक मुझे कठोर निर्दयी सोचते हैं। अब तुम लोग भी शायद मुझे जूता मार कर भगा दोगे।

श्री रामकृष्ण *(डॉक्टर के प्रति)*— यह कैसी बात? ये लोग तो तुम्हें कितना प्यार करते हैं! तुम आओगे, इस आशा में, पलक-पाँवड़े बिछाए रहते हैं।

गिरीश— Every one has the greatest respect for you. (सब ही आपमें असीम श्रद्धा रखते हैं)।

डॉक्टर— मेरा लड़का, मेरी स्त्री तक मुझे 'hard-hearted' (स्नेह-ममता शून्य) समझते हैं, क्योंकि मेरा दोष यही है कि मैं अपना भाव किसी के निकट प्रकाश नहीं करता।

गिरीश— फिर तो महाशय, at least out of pity for your friends (अपने मित्रों पर तो कम से कम कृपा करके) आपको अपने मन के कपाट खोल ही देना अच्छा है।

डॉक्टर— क्या कहूँ भाई! तुम्हारी तरह मेरी भी feelings worked-up होती हैं (मुझे भाव होता है)। *(नरेन्द्र के प्रति)* I shed tears in solitude. (मैं अकेला बैठा हुआ रोता हूँ)।

(महापुरुष और जीव का पाप ग्रहण— अवतार आदि और नरेन्द्र)

डॉक्टर *(श्री रामकृष्ण के प्रति)*— अच्छा जी, तुम भाव हो जाने पर लोगों के शरीर पर पाँव देते हो, यह तो अच्छा नहीं?

श्री रामकृष्ण— मुझे क्या पता होता है कि किसी के शरीर पर पाँव रख रहा हूँ कि नहीं।

डॉक्टर— वह ठीक नहीं है, इतना तो बोध होता है।

श्री रामकृष्ण— मेरी भावावस्था में मुझे क्या होता है, तुम्हें क्या बताऊँ? उस अवस्था के पश्चात् ऐसा सोचता हूँ कि शायद रोग भी इसीलिए हो रहा है। ईश्वर के भाव में मुझे उन्माद होता है। उन्माद में ऐसा हो जाता है, क्या करूँ?

डॉक्टर— ये मान गए हैं। He expresses regret for what he does. (ऐसा काम sinful 'अन्यायपूर्ण' है— यह बोध है)।

श्री रामकृष्ण *(नरेन्द्र के प्रति)*— तू तो खूब शठ (बुद्धिमान) है, तू बोल ना, इसे समझा दे ना।

गिरीश *(डॉक्टर के प्रति)*— महाशय! आप गलत समझे हैं। ये उसके लिए दुःखित नहीं हुए हैं। इनकी देह शुद्ध-अपापविद्ध है। ये जीव के मंगल के लिए उनका स्पर्श करते हैं। उनके पाप ग्रहण करके इनको रोग होने की बड़ी संभावना है, तभी कभी-कभी सोचते हैं। आपको जब कॉलिक (शूलवेदना) हुई थी, तब आपको क्या रिग्रेट (दुःख, अफ़सोस) नहीं हुआ था कि क्यों रात भर जागकर इतना पढ़ता रहा? इस कारण क्या रात को जागकर पढ़ना दोषयुक्त है? रोग के लिए रिग्रेट (दुःख, अफ़सोस) हो सकता है। इसीलिए जीव के मंगल के लिए स्पर्श करने को गलत कार्य मत सोचो।

डॉक्टर *(अप्रतिभ हुए, गिरीश के प्रति)*— तुमसे हार गया हूँ। दो, अपने पैरों की धूलि दो। (गिरीश की पद-धूलि ग्रहण)। *(नरेन्द्र के प्रति)* और कुछ नहीं, अरे, his intellectual power (गिरीश की बुद्धिमत्ता) माननी पड़ेगी।

नरेन्द्र *(डॉक्टर के प्रति)*— और एक बात सोचिए। एक scientific discovery (जड़ विज्ञान का आविष्कार) करने के लिए आप life devote (जीवन उत्सर्ग) कर सकते हैं। तब शरीर के असुख इत्यादि कुछ भी नहीं मानते। और ईश्वर के लिए, grandest of all sciences (श्रेष्ठ विज्ञान) के लिए ये health risk (शरीर नष्ट होता है, होवे; ऐसा मन का भाव) न करें?

डॉक्टर— जितने religious reformer (धर्माचार्य) हुए हैं, Jesus (यीशु), चैतन्य, बुद्ध, मोहम्मद— अन्त में सब ही अहंकार-परिपूर्ण होकर बोले थे, 'मैंने जो बताया है, वही ठीक है।' यह कैसी बात?

गिरीश *(डॉक्टर के प्रति)*— महाशय, यह दोष तो आप का भी हो रहा है। आप में अकेले ही उन सब का अहंकार है। इस दोष के पकड़ने से तो बिल्कुल वही दोष आपका भी हो रहा है।

डॉक्टर चुप हो गए।

नरेन्द्र *(डॉक्टर के प्रति)*— We offer him worship bordering on Divine worship (इनकी हम जो पूजा करते हैं, वह ईश्वर की पूजा के प्रायः आस-पास ही है)।

ठाकुर श्री रामकृष्ण आनन्द में बालक की न्यायीं हँस रहे हैं।

•
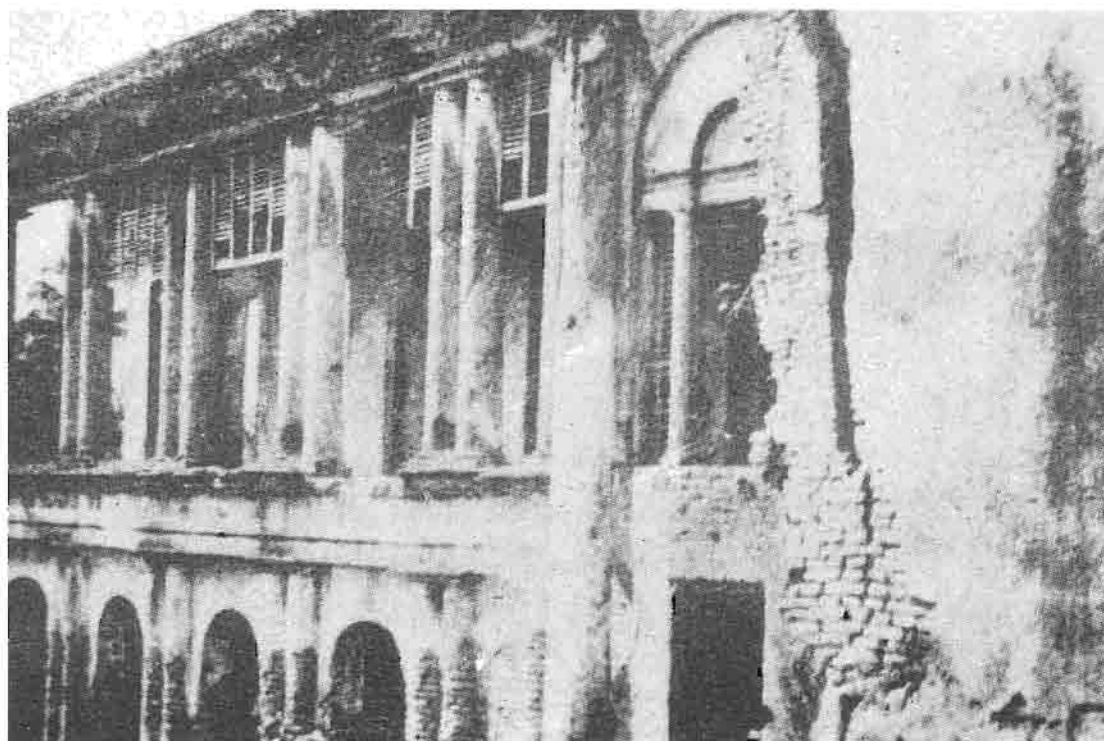
बराहनगर मठ

बायें से दाईं ओर पहले स्वामी शिवानन्द, दूसरे स्वामी रामकृष्णानन्द, तीसरे स्वामी विवेकानन्द, छठे कथामृतकार महेन्द्रनाथ गुप्त

परिशिष्ट

बराहनगर मठ

प्रथम परिच्छेद

आज सोमवार, 9 मई, 1887 ईसवी; ज्येष्ठ कृष्णा द्वितीया तिथि। नरेन्द्र आदि भक्त मठ में हैं। शरत्, बाबूराम और काली श्रीक्षेत्र[1] में गए हैं। निरंजन माँ को देखने गए हैं। मास्टर आए हैं।

खाने-पीने के पश्चात् मठ के भाई थोड़ा विश्राम कर रहे हैं। बूढ़े गोपाल गाने की कापी में गाना नकल कर रहे हैं। तीसरा प्रहर हो गया। रवीन्द्र पागल की न्यायीं आए— नंगे पाँव, काली किनारे की आधी धोती पहने हुए। उन्मादी की आँखों की न्यायीं उनकी आँखों की पुतलियाँ घूम रही हैं। सब ने ही पूछा— "क्या हुआ?"

रवीन्द्र बोले— ठहरो, कुछ बाद में सब बतलाता हूँ। मैं अब घर नहीं लौटूँगा। आप लोगों के यहाँ पर ही रहूँगा। वह विश्वासघातक है। महाशय, आपको क्या कहूँ? पाँच वर्ष का अभ्यास, शराब उसके लिए छोड़ी। आठ महीने हो गए।, वह कैसी बड़ी विश्वासघातक है!

मठ के भाइयों ने कहा— "तुम ठण्डे हो जाओ। आए कैसे?"

रवीन्द्र— मैं कलकत्ता से नंगे पाँव पैदल चल कर आया हूँ।

भक्तों ने पूछा— तुम्हारी आधी धोती कहाँ गई?

---

[1] श्रीक्षेत्र— जगन्नाथ पुरी, (उड़ीसा प्रान्त में) भारत का एक प्राचीन महान् तीर्थ।

रवीन्द्र बोले— उसने आते समय खेंचातानी की, उसी से आधी फट गई।

भक्तों ने कहा— तुम गंगा-स्नान करके आओ, आकर ठण्डे हो जाओ। तब फिर कथा-वार्त्ता होगी।

रवीन्द्र ने कलकत्ता के एक अति सम्भ्रान्त कायस्थ वंश में जन्म लिया है। वह 20-22 वर्ष का होगा। ठाकुर श्री रामकृष्ण के दक्षिणेश्वर की कालीबाड़ी में दर्शन किए थे और उनके विशेष कृपा-भाजन हो गए थे। एक बार तीन रात उनके पास वास किया था। स्वभाव अति मधुर और कोमल है। ठाकुर ने खूब स्नेह किया था— "किन्तु तुझे कुछ देर लगेगी, अभी तेरा थोड़ा-सा भोग है। अभी कुछ नहीं होगा। जब डाका पड़ता है, तब बिल्कुल उसी समय पुलिस कुछ नहीं कर सकती। थोड़ा-सा शान्त होने पर, तब पुलिस आकर गिरफ्तार करती है।"

ग़रीब के प्रति दया, ईश्वर-चिन्तन— ये सब हैं। वेश्या को विश्वासघातक सोचकर अर्धवस्त्र में मठ में आए हैं। संसार में अब नहीं लौटेंगे, यह संकल्प है।

रवीन्द्र गंगा-स्नान के लिए जा रहे हैं। परामाणिक घाट पर जाएँगे। एक भक्त साथ जा रहे हैं। उनकी बड़ी इच्छा है कि लड़के को साधुसंग से चैतन्य हो जाए। स्नान के पश्चात् वे रवीन्द्र को घाट के निकटस्थ श्मशान में ले गए। उनको मृतदेह-दर्शन करवाने लगे और कहा— "यहाँ पर मठ के भाई कभी-कभी अकेले आकर रात को ध्यान करते हैं। यहाँ पर हमारा ध्यान करना अच्छा है। संसार जो अनित्य है, वह बड़ा सुन्दर, अच्छा बोध हो जाता है।"

रवीन्द्र वह बात सुनकर ध्यान में बैठ गए। ध्यान अधिक क्षण नहीं कर सके। मन अस्थिर था। दोनों मठ में लौट आए। ठाकुर-घर में ठाकुर को दोनों ने प्रणाम किया। भक्त ने कहा, "इसी कमरे में मठ के भाई ध्यान करते हैं।" रवीन्द्र भी थोड़ा ध्यान करने बैठे। किन्तु ध्यान अधिक क्षण नहीं हुआ।

मणि— क्यों, मन क्या बहुत चञ्चल है? तभी शायद उठ आए हो— इसीलिए लगता है, ध्यान भी ठीक नहीं हुआ?

रवीन्द्र— अब फिर संसार में तो नहीं लौटूँगा, यह तो निश्चय कर लिया है। किन्तु, मन तो चाहे चञ्चल है ही।

मणि और रवीन्द्र मठ के एक एकान्त स्थान में खड़े हैं। मणि बुद्धदेव की कहानी सुना रहे हैं। देव-कन्याओं से एक गाना सुनकर महात्मा बुद्ध को प्रथम चैतन्य हआ था। आजकल मठ में 'बुद्ध-चरित' और 'चैतन्य-चरित' की आलोचना सर्वदा ही होती है। मणि वही गाना गाते हैं—

जुड़ाइते चाई कोथाय जुड़ाइ,
कोथा होते आसि कोथा भेसे जाइ।
फिरे-फिरे आसि, कतो कांदि हासि,
कोथा जाइ सदा भावि गो ताइ।

[शान्ति पाना चाहता हूँ, कहाँ शान्ति पाऊँ? कहाँ से आता हूँ, कहाँ तैरता हूँ और चला जाता हूँ! लौट-लौट कर आता हूँ, कितना रोता हूँ, कितना हँसता हूँ, सर्वदा यही सोचता हूँ कि कहाँ जाऊँ!]

रात को नरेन्द्र, तारक और हरीश कलकत्ता से लौटे। आकर कहने लगे, 'ओह! खूब खाना खाया!' उनका कलकत्ता के किसी भक्त के घर में न्योता था।

नरेन्द्र और मठ के भाई, मास्टर, रवीन्द्र इत्यादि भी दानाओं के कमरे में बैठे हैं। नरेन्द्र ने मठ में आकर सब सुना।

(संतप्त जीव और नरेन्द्र का उपदेश)

नरेन्द्र गाते हैं। गीत के बहाने मानो रवीन्द्र को उपदेश दे रहे हैं:

छोड़ो मोह, छोड़ो-छोड़ो रे कुमंत्रणा,
जानो ताँरे तबे जाबे यंत्रणा।

[अरे छोड़ो मोह, छोड़ो यह कुमन्त्रणा (बुरी सलाह)। उन्हें जानो तभी तुम्हारी यन्त्रणा जाएगी।]

नरेन्द्र ने फिर और गाया, मानो रवीन्द्र को हितवचन कह रहे हैं:

पी ले रे अवधूत हो मतवाला, प्याला प्रेम हरि-रस का रे।
बाल अवस्था खेल गंवायो, तरुण भये नारी-वश का रे
वृद्ध भयो कफ़ वायु ने घेरा, खाट पड़ो रह्यो शाम सकारे।
नाभि कमल में है कस्तूरी, कैसे भरम मिटे पशु का रे,
बिन सद्‌गुरु नर ऐसेहिं ढूँढे, जैसे मिरिग फिरे वन का रे॥

कुछ समय पश्चात् मठ के भाई काली तपस्वी के कमरे में बैठे हैं। गिरीश की 'बुद्ध-चरित' और 'चैतन्य-चरित', दो नई पुस्तकें आई हैं। नरेन्द्र, शशि, राखाल, प्रसन्न, मास्टर इत्यादि बैठे हैं। नूतन मठ (बराहनगर मठ) में जब से आए हैं, शशि एक मन से दिन-रात ठाकुर की पूजा आदि सेवा करते हैं। उनकी सेवा देखकर सब ही अवाक् हो गए हैं। ठाकुर के असुख के समय वे रात-दिन जिस प्रकार से उनकी सेवा किया करते थे, आज भी उसी प्रकार अनन्यमन से भक्तिपूर्वक सेवा कर रहे हैं।

मठ के एक भाई 'बुद्ध-चरित' और 'चैतन्य-चरित' पढ़ते हैं। स्वर के साथ थोड़ा व्यंग्य के भाव में चैतन्य-चरितामृत पढ़ते हैं। नरेन्द्र ने पुस्तक छीन ली। बोले "इसी प्रकार अच्छी वस्तु को मिट्टी कर देते हैं।"

नरेन्द्र स्वयं चैतन्यदेव के प्रेम-वितरण की कथा पढ़ते हैं।

मठ का भाई— मैं कहता हूँ कोई किसी को प्रेम नहीं दे सकता।

नरेन्द्र— मुझे परमहंस महाशय ने प्रेम दिया है।

मठ का भाई— अच्छा, तुमने क्या वह पा लिया है?

नरेन्द्र— तू क्या समझेगा? तू servant-class (ईश्वर के सेवक की श्रेणी) का है। सब मेरे पाँव दबाएँगे। शरता, मित्तिर और देसो तक। *(सब का हास्य)*। तू सोच रहा है कि शायद सब समझ गया है। *(हास्य)*। ले चिलम बना। *(सब का हास्य)*।

मठ का भाई— नहीं— ब -ना— ता।

मास्टर *(स्वगत)*— ठाकुर श्री रामकृष्ण ने मठ के भाइयों में अनेकों के भीतर तेज दे दिया है, केवल नरेन्द्र के भीतर ही नहीं। ऐसा तेज न रहे तो क्या कामिनी-काञ्चन त्याग होता है?

(मठ के भाइयों की साधना)

दूसरा दिन मंगलवार, 10 मई। आज महामाया का वार है। नरेन्द्र आदि भाई आज विशेष रूप से माँ की पूजा कर रहे हैं। ठाकुर-घर के सामने त्रिकोण यन्त्र बनाया गया है— होम होगा। बाद में बलि होगी। तन्त्र-मत में होम और बलि की व्यवस्था है। नरेन्द्र गीता-पाठ करते हैं।

मणि गंगा-स्नान के लिए गए। रवीन्द्र छत के ऊपर एकाकी विचरण कर रहे हैं। सुन रहे हैं, नरेन्द्र स्वर सहित स्तव कहते हैं—

ॐ मनोबुद्धयहंकारचित्तानि नाहं,
न च श्रोत्रजिह्वे न च घ्राण-नेत्रे।
न च व्योमभूमिर्न तेजो न वायु
श्चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम्॥
न च प्राणसंज्ञो न वै पञ्चवायु
र्न वा सप्तधातुर्न वा पञ्चकोषाः।
न वाक्पाणिपादं न चोपस्थपायू,
चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम्।
न मे द्वेषरागौ, न मे लोभमोहौ,
मदो नैव मे नैव मात्सर्य्यभावः।
न धर्मो न चार्थो न कामो न मोक्ष
श्चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम्॥
न पुण्यं न पापं न सौख्यं न दुःखं,
न मन्त्रो न तीर्थं न वेदा न यज्ञाः।
अहं भोजनं नैव भोज्यं न भोक्ता,
चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम्॥

[ॐ! मैं मन-बुद्धि-अहंकार-चित्त नहीं हूँ और न कर्ण,न जिह्वा, न नासिका, न नेत्र हूँ; और न मैं व्योम (आकाश) हूँ, न भूमि, न तेज, न वायु— मैं चिदानन्द-रूप कल्याणमय शिव हूँ।

और मैं न प्राणसंज्ञा हूँ, न फिर पञ्च वायु, न सप्त धातु, न पञ्चकोष, न वाणी, न हाथ, न पाँव, न उपस्थ, न पायुः— मैं चिदानन्द-रूप कल्याणमय शिव हूँ।

न मुझे द्वेष-राग है, न मुझे लोभ-मोह है, न मुझ में मद है, न मात्सर्य-भाव है। न मैं धर्म और न अर्थ, न काम, न मोक्ष हूँ। मैं तो चिदानन्द-रूप कल्याणमय शिव हूँ।

न पुण्य, न पाप, न सुख, न दुख, न मन्त्र, न तीर्थ, न वेद, न यज्ञ मैं हूँ। मैं भोजन भी नहीं हूँ, न भोज्य हूँ, न भोक्ता हूँ। मैं चिदानन्द रूप कल्याणमय शिव हूँ।]

रवीन्द्र गंगा-स्नान करके आए हैं, धोती गीली है।

नरेन्द्र *(मणि के प्रति, एकान्त में)*— अभी नहा कर आया है, अब संन्यास देना अच्छा है। *(मणि और नरेन्द्र का हास्य)*।

प्रसन्न ने रवीन्द्र से गीली धोती उतारने के लिए कहा और एक गेरुआ धोती उनको लाकर दे दी।

नरेन्द्र *(मणि के प्रति)*— अब त्यागी का वस्त्र पहनना होगा।

मणि *(सहास्य)*— क्या त्याग?

नरेन्द्र— काम-काञ्चन-त्याग।

रवीन्द्र गेरुआ कपड़ा पहन कर काली तपस्वी के कमरे में जाकर निर्जन में बैठ गए। लगता है कुछ ध्यान करेंगे।

•

द्वितीय परिच्छेद

(श्री रामकृष्ण अश्विनीकुमार आदि भक्तों के संग में— श्रीयुक्त केशवसेन (1881), श्री देवेन्द्रनाथ ठाकुर, अचलानन्द, शिवनाथ, हृदय, नरेन्द्र, गिरीश)

प्राणप्यारे भाई श्री म,

तुम्हारी भेजी श्री श्री रामकृष्ण कथामृत, चतुर्थ खण्ड, कोजागर पूर्णिमा के दिन पाकर आज द्वितीया को समाप्त की है। तुम धन्य हो! इतना अमृत देशभर में बखेर दिया है।

अच्छा, तुमने अनेक दिन हुए ठाकुर के साथ मेरा क्या आलाप हुआ था, जानना चाहा था। उसे ही बतलाने की थोड़ी चेष्टा करता हूँ। किन्तु मैं तो फिर 'श्री म' की भाँति भाग्य लेकर नहीं आया कि श्रीचरण-दर्शन के दिन-तारीख-मुहूर्त और श्रीमुख से निकली समस्त बातें एकदम ठीक-ठीक लिख दूँगा। जहाँ तक स्मरण है, लिखे देता हूँ। सम्भव है एक दिन की बात किसी और दिन की कहकर लिख दूँ। और कितनी ही तो भूल गया हूँ।

याद आता है 1881 सन् के शारदीय अवकाश के समय प्रथम दर्शन हुआ। उस दिन केशव बाबू के आने की बात थी। मैं नौका से दक्षिणेश्वर गया। घाट पर जाकर एक व्यक्ति से पूछा, परमंहस कहाँ पर हैं? उन्होंने उत्तर की ओर के बरामदे की तरफ़ दृष्टि डालकर गाओ-तकिये का सहारा लगाकर बैठे हुए एक व्यक्ति को दिखला कर कहा, ये हैं परमहंस। काली कन्नी की धोती पहने और गाओ-तकिये की ठेस लगाए देखकर सोचा, यह फिर किस प्रकार के परमहंस हैं? किन्तु देखा, दोनों टाँगें ऊँची किए और दोनों हाथों द्वारा उन्हें घेरे हुए अर्धचित् होकर तकिये की ठेस लगाई हुई है। मन में हुआ, इन्हें बिल्कुल भी बाबुओं की भाँति तकिये की ठेस लगाने का अभ्यास नहीं है, तभी तो

लगता है ये ही परमहंस होंगे। तकिये के अति निकट उनकी दाईं ओर एक बाबू बैठे हैं। सुना उनका नाम राजेन्द्र मित्र है, जो बंगाल गवर्नमेंट के असिस्टेण्ट सैक्रेट्री हुए थे। और भी दाईं ओर कई-एक जन बैठे हैं। तनिक बाद में राजेन्द्र बाबू से कहा, 'देखो तो ज़रा, केशव आ रहा है कि नहीं?' एक व्यक्ति ने थोड़ी दूर जाकर फिर वापिस आकर कहा था, 'ना'। दुबारा फिर तनिक-सा शब्द होने पर बोले— 'देखो, फिर दुबारा देखो।' इस बार भी एक व्यक्ति ने देखकर आकर कहा 'ना'। तभी परमहंसदेव हँसते-हँसते कहने लगे— 'पत्ते के ऊपर पड़ा पत्ता, राधा कहती है— लगता है वे ही आ गए हैं, प्राणनाथ।' हाँ, देखो, केशव की चिरकाल से ही क्या ऐसी रीत है! आए-आए, आए नहीं।

कुछ काल पश्चात् सन्ध्या हुई कि हुई। ऐसे समय केशव दलबल सहित आ उपस्थित हुए। आकर जैसे भूमिष्ठ होकर उनको प्रणाम किया। उन्होंने भी ठीक उसी प्रकार करके, कुछ देर पश्चात् सिर ऊपर किया। तब समाधिस्थ थे, बोले— 'कलकत्ता शहर भर के लोग जमा करके ले आए हो— जैसे मैं वक्तृता दूँगा। मैं तो वह कर नहीं सकूँगा। करना हो, तो तुम करो। मैं वह सब नहीं कर सकूँगा।' उसी अवस्था में थोड़ी सी दिव्य हँसी हँसकर कह रहे हैं— "मैं तुम्हारे यहाँ खाऊँगा, पीऊँगा, रहूँगा। मैं तुम्हारे यहाँ खाऊँगा, सोऊँगा और बाह्य जाऊँगा। मैं यह सब नहीं कर सकूँगा।" केशवबाबू देख रहे हैं और भाव में भरपूर होते जा रहे हैं। एक-एक बार भाव में भरकर, 'आह! आह!' कर रहे हैं।

मैं ठाकुर की अवस्था देखकर सोचता हूँ, 'क्या यह ढोंग है? और तो कभी भी ऐसा नहीं देखा!' और फिर मैं जैसा विश्वासी हूँ, वह तो तुम्हें पता ही है।

समाधि-भंग के पश्चात् केशव बाबू से कहा— 'केशव एक दिन तुम्हारे वहाँ पर गया था, सुना था तुम कह रहे हो— भक्ति-नदी में डुबकी लगाकर सच्चिदानन्द सागर में जा पड़ूँ। मैंने तब ऊपर की ओर देखा (जहाँ पर केशव बाबू की स्त्री तथा अन्यान्य स्त्रियाँ बैठी हुईं थीं) और सोचने लगा, तो फिर इनकी दशा क्या होगी? तुम लोग गृही हो,

एकदम सच्चिदानन्द-सागर में कैसे पड़ोगे? उसी नेवले की न्यायीं पीछे ईंट बँधी हुई है, ज़रा-सा कुछ भी हुआ, झट ताख पर चढ़कर बैठ गया, किन्तु ठहरे कैसे! ईंट खींचती है और झट से नीचे गिर पड़ता है। तुम लोग थोड़ा-सा ध्यान-श्यान कर सकते हो, किन्तु स्त्री-पुत्र रूपी ईंट खींचकर फिर दुबारा नीचे गिरा देते हैं। तुम लोग भक्ति-नदी में एक बार डुबकी मारकर फिर उठ जाओगे, फिर और डुबकी दोगे और फिर उठ जाओगे। ऐसे ही चलेगा। तुम लोग बिल्कुल कैसे डूब जाओगे?

केशव बाबू बोले— क्या गृहस्थ का नहीं होता? महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर? परमहंसदेव ने 'देवेन्द्रनाथ ठाकुर, देवेन्द्र, देवेन्द्र' दो-तीन बार बोलकर उनके उद्देश्य में कई बार प्रणाम किया, तत्पश्चात् बोले— "वह तो तुम जानते ही हो कि एक व्यक्ति के घर में दुर्गोत्सव हुआ करता, सुबह से शाम तक बकरा बलि हुआ करता। कई वर्ष पश्चात् घर में बलि की धूम-धाम नहीं रही। एक व्यक्ति ने पूछा— महाशय, आजकल तो आपके घर में बलि की धूम-धाम नहीं है। वह बोला— अरे, अब दाँत जो झड़ गए हैं। देवेन्द्र भी अब ध्यान-धारणा करता है, वह तो करेगा ही। किन्तु वह है बड़ा अच्छा मनुष्य।

"देखो, जब तक माया रहती है, तब तक मनुष्य डाब (हरा नारियल) की तरह रहता है। नारियल जब तक डाब रहता है, उसकी मलाई उतरने के साथ-ही-साथ उसकी खोली का तनिक-सा टुकड़ा भी उतर ही आता है। और जब माया शेष हो जाती है तब झुना बन जाता है। गूदा और खोली अलग हो जाते हैं, गूदा भीतर खड़-खड़ करता है। आत्मा अलग हो जाती है, शरीर अलग हो जाता है। देह के साथ योग नहीं रहता।

"यह जो 'मैं' है, वही तो बड़ी मुश्किल में डालती है। साला 'मैं' क्या जाएगा नहीं? भग्न घर में पीपल का पेड़ उग आता है; उखाड़ कर फेंक देने पर दूसरे दिन देखते हैं कि फिर दुबारा एक शाख उग आई है। इस 'मैं' का भी ऐसा ही ढंग है। प्याज़ के कटोरे को सात बार धो लेने पर भी साले की गंध क्या किसी तरह भी जाती है?" कुछ कहते-कहते

केशव बाबू से कहने लगे— “हाँ, केशव, तुम्हारे कलकत्ता के बाबू लोग क्या कहते हैं— ईश्वर नहीं हैं? बाबू सीढ़ियों से चढ़ रहे हैं, एक पाँव रखते हैं और दूसरा पाँव रखते ही ‘ऊंह! यह क्या हुआ’ कहते ही बेहोश हो गए। बुलाओ, डाक्टर को बुलाओ, डाक्टर को बुलाओ!— डाक्टर के आते-न-आते बस हो गया। और हाँ, ये कहते हैं ईश्वर नहीं हैं।”

एक अथवा डेढ़ घण्टे पश्चात् कीर्तन आरम्भ हुआ। तब जो देखा, वह तो लगता है, जन्म-जन्मान्तर में भी नहीं भूलूँगा। सब नाचने लगे, केशव को भी नाचते हुए देखा था— मध्य में ठाकुर हैं और सब उन को घेरकर नाच रहे हैं। नाचते-नाचते एकदम स्थिर— समाधिस्थ! अनेक क्षण इसी प्रकार बीते। सुनते-सुनते, देखते-देखते, समझ गया— ये परमहंस ही हैं, निश्चय।

और एक दिन शायद 1883 सन् में श्रीरामपुर के कई युवकों को संग में ले गया। उस दिन उन्हें देखकर ठाकुर ने कहा, ‘ये क्यों आए हैं?’

मैं— आपको देखने।

ठाकुर— मुझे क्या देखेंगे? ये सब बिल्डिंग-विल्डिंग देखें ना?

मैं— ये वह तो देखने नहीं आए, आपको ही देखने आए हैं।

ठाकुर— तब ये तो लगता है, चकमक पत्थर हैं। भीतर आग है। हज़ार वर्ष तक जल में डाले रखो, फिर भी ज्यों ही टकराओगे, त्यों ही आग निकलेगी। ये सम्भवतः उसी जाति के जीव हैं। हम लोगों को ठोकने पर कहाँ आग निकलती है?

हम लोग यह अन्तिम बात सुनकर हँस पड़े। उस दिन और क्या-क्या बातें हुईं, ठीक याद नहीं है। किन्तु ‘मैं’ की गन्ध नहीं जाती और ‘कामिनी-काञ्चन-त्याग’ की बात भी जैसे हुई थी। और एक दिन गया था। प्रणाम करके बैठ गया, बोले— “वही जो डाट खुलने पर फुस-फुस कर उठती है, वह कुछ खट्टी-सी, कुछ-कुछ मीठी, वह एक लाकर दे सकते हो?”

मैंने कहा— ‘लेमोनेड?’

ठाकुर बोले— 'लाओ न?'

याद आ रहा है, एक लाकर दी थी। जहाँ तक स्मरण है, उस दिन और कोई नहीं था। कई एक प्रश्न किए : आपमें क्या जाति-भेद है?

ठाकुर— वह कहाँ है? केशवसेन के घर चच्चरि (अनेक सब्जियों की भुजिया) खाई थी। किन्तु एक दिन की बात बतलाता हूँ। एक लम्बी दाढ़ीवाला व्यक्ति बर्फ लेकर आया था, उसे खाने की किसी तरह भी इच्छा नहीं हुई। फिर एक और जन थोड़ा पीछे उसके पास से ही बर्फ़ ले आया— कचर-पचर करके खा डाली। इससे तो समझो कि जाति भेद अपने आप ही झड़ पड़ता है। जैसे नारियल का पेड़ और ताल का पेड़ बड़ा होता है तो पत्ते अपने आप ही झड़ पड़ते हैं। जाति-भेद भी वैसे ही झड़ पड़ते हैं। उन्हें खींच कर मत उखाड़ो, झड़ने दो अपने आप।

मैंने पूछा— 'केशव बाबू कैसा व्यक्ति है?'

ठाकुर— अरे भाई, वह दैवी मनुष्य है।

मैं— और त्रैलोक्य बाबू?

ठाकुर— अच्छा व्यक्ति है, बढ़िया गाता है।

मैं— शिवनाथ बाबू?

ठाकुर— . . . भला मनुष्य है, किन्तु तर्क करता है।

मैं— हिन्दू में और ब्राह्म में क्या अन्तर है?

बोले— अन्तर और क्या? यहाँ पर रोशन चौकी (शहनाई का बाजा) बजती है, एक व्यक्ति शहनाई पर भौं पकड़े रहता है और एक व्यक्ति उसके ही भीतर से 'राधा मेरी मान करती है' इत्यादि रंग-बिरंगे राग बजा लेता है। ब्राह्म लोग निराकार भौं को ही पकड़कर बैठे हैं; और हिन्दू लोग रंग-बिरंगे राग बजा रहे हैं।

"जल और बर्फ— निराकार और साकार। जो जल है, वह ही ठण्ड में बर्फ़ हो जाता है, ज्ञान की गर्मी से बर्फ फिर जल बन जाती है, भक्ति-हिम में जल ही बर्फ़ हो जाता है।

"वही एक ही वस्तु है, नाना लोग नाना नाम लेते हैं। जैसे तालाब के चारों तरफ़ चार घाट होते हैं। जिस घाट से लोग जल ले रहे हैं, पूछने पर बताएँगे, हम 'जल' ले रहे हैं। अन्य घाट से जो जल ले रहे हैं, कहेंगे 'पानी' ले रहे हैं। और एक घाट पर कहेंगे, 'वाटर' और अन्य घाट पर, 'एकुआ'। किन्तु जल तो एक ही है।

मेरे कहने पर कि बरिशाल में अचलानन्द तीर्थावधूत के साथ मिलना हुआ था, वे बोले— "वही कोतरंग के रामकुमार तो?"

मैंने कहा, "जी हाँ।"

ठाकुर— वह तुम्हें कैसा लगा?

मैं— बहुत अच्छा लगा।

ठाकुर— अच्छा, वह अच्छा है कि मैं अच्छा हूँ?

मैं— उनके संग क्या आपकी तुलना होती है? वे पण्डित, विद्वान् व्यक्ति हैं। आप क्या पण्डित, ज्ञानी हैं?

उत्तर सुनकर थोड़ा अवाक् होकर चुप किए रहे। एक आध मिनट पश्चात् मैं बोला— "वे चाहे पण्डित हो सकते हैं, आप तो मज़े के व्यक्ति हैं, आनन्दमय पुरुष। आपके पास मज़ा बहुत है।"

उस समय हँसकर बोले— सुन्दर कहा, ठीक कह रहे हो।

मुझ से पूछा— मेरी पञ्चवटी देखी है?

मैंने कहा— जी हाँ।

वहाँ पर वे क्या-क्या किया करते थे, उसका भी कुछ-कुछ बताया— भाँति-भाँति की साधना की बातें। 'न्याँगटा' की बातें भी बताईं।

मैंने पूछा— उन्हें कैसे पाऊँ?

उत्तर— अरे भाई, चुम्बक लोहे को जैसे खींचता है, वे वैसे ही हमें खींच ही रहे हैं। लोहे के ऊपर कीचड़ लगा हुआ हो तो नहीं खिंच

सकता। रोते-रोते ज्यों ही कीचड़ धुल जाती है, त्यों ही झट से वह चिपक जाता है।

मैं ठाकुर की उक्तियों को सुनते-सुनते लिख रहा था। बोले— हाँ देखो, भाँग-भाँग करने से नहीं होगा। भाँग लाओ, भाँग घोटो, भाँग पीओ।... इसके बाद मुझसे कहा— "तुम लोग तो संसार में रहोगे, तो फिर ज़रा-सा गुलाबी नशा लेकर रहो। काम-काज कर रहे हो किन्तु फिर भी वह नशा चढ़ा ही हुआ है। तुम लोग तो फिर शुकदेव की भाँति नहीं हो सकोगे कि नशा पीकर नंग-धडंग होकर पड़े रहोगे।

"संसार में रहोगे तो एक आममुख्त्यारनामा लिख दो, बकलमा दे दो। वे जैसा हुआ करता है, करेंगे। तुम रहोगे बड़े घर की दासीवत्। वह बाबू के बच्चों आदि को कितना प्यार करती है, नहलाती है, धुलाती है, खिलाती है मानो उसी के हैं; किन्तु मन-मन में जानती है, ये मेरे नहीं हैं। ज्यों ही जवाब मिल गया, बस फिर तो कोई सम्पर्क ही नहीं।

"जैसे कटहल खाना हो तो हाथों पर तेल मल लेना चाहिए। वैसे ही वह तेल मल लो, जिससे फिर संसार में जड़ित न होवो, लिप्त न होवो।"

इतनी देर तक तो ज़मीन पर बैठकर बातें हो रही थीं; अब तख़्त-पोश के ऊपर चढ़कर सीधे लेट गए। मुझसे कहा, 'हवा करो।' मैं हवा करने लगा। चुप किए रहे। थोड़ी देर बाद बोले, 'बड़ी गर्मी है भाई, यह पंखा जल में भिगो लाओ।' मैं बोला, 'और फिर शौक भी हैं, देख रहा हूँ।' हँसकर बोले, क्यों नहीं होगा? क्यों नहीं होगा शौक?' मैंने कहा, तो फिर हो, हो, खूब हो।' उस दिन निकट बैठकर जो सुख पाया था, वह तो फिर बताया नहीं जाता।

अन्तिम बार— जिस बार की बात का तुमने तृतीय खण्ड (तृतीय भाग, 16वाँ खण्ड) में उल्लेख किया है— उस बार अपने स्कूल के हैड-मास्टर को लेकर गया था, उनके बी०ए० पास करने के फौरन बाद ही। उसी बार उसी दिन ही तो तुम्हारे साथ उनका मिलन हुआ है। उनको देखकर ही बोले थे— "और फिर इसको कहाँ से पाया? बढ़िया है यह तो। अरे भाई, तुम तो वकील हो। ओह! बड़ी बुद्धि है। मुझे थोड़ी सी

बुद्धि दे सकते हो— तुम्हारे पिता तो उस दिन आए थे, यहाँ पर तीन दिन थे।”

मैंने पूछा— उनको कैसा देखा?

बोले— अच्छा आदमी है, किन्तु कभी-कभी अंटशंट बकता है।

मैं बोला— अब दुबारा मिलने पर अंटशंट छुड़वा देना। ज़रा हँसे। मैंने कहा, “हमें कुछ मुख्य बातें सुनाइए।”

बोले— हृदय को पहचानते हो— (हृदय मुखोपाध्याय)?

मैंने कहा— वही अपका भानजा ही तो! मेरे साथ परिचय नहीं है।

ठाकुर— हृदय कहा करता था, ‘मामा तुम अपनी बातें समस्त एक बार ही कह डालो न। हर बार यह एक ही बात क्यों कहते हो?’ मैंने कहा, ‘उससे तेरा क्या रे साले? मेरी बातें हैं, मैं लाख बार वही एक बात ही कहूँगा, तेरा क्या है रे?’

मैं हँसते-हँसते बोला— हाँ, ठीक ही तो।

थोड़ी देर बाद बैठे हुए ‘ऊँ-ऊँ’ करते-करते गाना गाने लगे :

डुब् डुब् डुब् रूपसागरे आमार मन।

दो-एक पद गाते-गाते ‘डुब्-डुब्’ बोलते-बोलते डूब! समाधि भंग हो गई, टहलने लगे। धोती पहनी हुई थी। उसे दोनों हाथों से खींचते-खींचते एकदम कमर के ऊपर उठा ली। इधर से थोड़ी-सी ज़मीन पर झाड़ू देती जाती है, उधर से थोड़ी-सी यों ही गिर रही है। मैं और मेरे संगी आपस में इशारेबाज़ी और कानाफूसी करने लगे। धोती भली प्रकार पहनी हुई थी। थोड़ा-सा बाद में ही ‘हट री परे हो साली धोती’ कहकर धोती को फेंक दिया। नंगे होकर टहलने लगे। उत्तर की ओर से किसी का छाता और लाठी हमारे सामने लाकर पूछने लगे— ‘यह छाता, लाठी तुम्हारे हैं?’ मैंने कहा— नहीं। तुरन्त कहने लगे— “मैंने पहले ही समझ लिया था, ये तुम लोगो के नहीं हैं। मैं छाता, लाठी

देखकर ही मनुष्य को पहचान सकता हूँ। वही एक व्यक्ति जो राक्षसों की तरह से इतना सारा निगल गया है, यह निश्चय उसी के हैं।"

कुछ काल पश्चात् उसी प्रकार ही खाट के उत्तर की ओर पश्चिम-मुखी होकर बैठ गए। बैठते ही मुझसे पूछा— 'अजी, क्या मुझे असभ्य समझ रहे हो? मैंने कहा— नहीं, आप बहुत सभ्य हैं। किन्तु यह आप क्यों पूछ रहे हैं?

ठाकुर— अरे शिवनाथ, टिवनाथ असभ्य समझते हैं। उनके आने पर किसी तरह यह धोती-शोती लपेट कर बैठना पड़ता है। गिरीश घोष को पहचानते हो?

मैं— कौन-सा गिरीश घोष? जो थियेटर करता है?

ठाकुर— हाँ।

मैं— देखा तो कभी नहीं, नाम जानता हूँ।

ठाकुर— अच्छा व्यक्ति है।

मैं— सुना है, शराब पीता है वह, है ना?

ठाकुर— पिए ना, पिए ना, कितने दिन पिएगा?

बोले— तुम नरेन्द्र को पहचानते हो?

मैं— जी, नहीं।

ठाकुर— मेरी बड़ी इच्छा है, उसके साथ तुम्हारा आलाप हो, उस ने बी०ए० पास कर लिया है, विवाह नहीं करता।

मैं— जो आज्ञा, आलाप करूँगा।

ठाकुर— आज रामदत्त के घर पर कीर्तन होगा, वहाँ पर मिलेगा। सन्ध्या के समय वहाँ पर जाना।

मैं— जो आज्ञा।

ठाकुर— जाओगे? किन्तु जाइयो अवश्य।

मैं— आपका जब हुक्म हुआ है, तो उसे नहीं मानूँगा? अवश्य जाऊँगा। कमरे की कई छवियाँ दिखलाईं। बाद में पूछा— "बुद्धदेव की छवि मिलती है क्या?"

मैं— सुनता हूँ, मिलती है।

ठाकुर— वह एक छवि तुम मुझ को देना।

मैं— जो आज्ञा, अब की बार जब आऊँगा, लेता आऊँगा।

फिर मिलना ही नहीं हुआ। और फिर उनके श्रीचरणों में बैठना भाग्य में नहीं बदा। उस दिन सन्ध्या के समय राम बाबू के घर गया था। नरेन्द्र को देखा। ठाकुर एक कमरे में गाओ-तकिये की ठेस देकर बैठे हैं, नरेन्द्र उनके दाईं ओर हैं। मैं सन्मुख। नरेन्द्र को मेरे साथ आलाप करने के लिए कहा। नरेन्द्र बोले— आज मेरे सिर में बड़ा दर्द है। बातें करने की इच्छा नहीं हो रही। मैंने कहा— रहने दें, फिर किसी दिन आलाप होगा।

वही आलाप फिर 1897 सन् की मई या जून मास में, अलमोड़ा में हुआ। ठाकुर की इच्छा तो पूर्ण होनी ही है। तभी बारह वर्ष पश्चात् पूर्ण हुई। आहा, उसी स्वामी विवेकानन्द के संग अलमोड़ा में वे कुछ दिन, कितने दिन, आनन्द में ही काटे थे। कभी उनके घर में, कभी मेरे घर में और एक दिन निर्जन में उनको लेकर एक पर्वत श्रृंग पर। फिर उनके संग इसके पश्चात् मेल नहीं हुआ। ठाकुर की इच्छा पूर्ण करने के लिए ही उस बार दर्शन हुआ था।

ठाकुर के संग भी केवल चार-पाँच दिन का मेल हुआ था, किन्तु उसी अल्प समय में ही ऐसा हो गया था कि उन ठाकुर के लिए लगता था मानो हम एक क्लास में पढ़े हैं! कैसे बेअदबी से बातें की थीं! सामने से हटते ही लगता था, 'अरे बाप रे! किसके पास गया था?'

उन्हीं कुछ दिनों में जो देखा था और पाया था, उसने ही जीवन मधुमय कर दिया है। उसी दिव्य अमृत वर्षा, उसी जरा-सी हँसी को ही यत्न से पिटारी में भरकर रख दिया है। वही तो निःसम्बल का अफुरन्त (समाप्त न होने वाला) सम्बल है, भाई! और उसी हँसी से टपके हुए अमृत-कणों से अमेरिका तक भी अमृतायित हो रहा है— यही सोचकर

'हृष्यामि च मुहुर्मुहुः हृष्यामि च पुनः पुनः।'

[मेरा ही यदि ऐसा है, तब समझो तुम कितने भाग्यधर हो!]

•

ग्रन्थकार श्री म (महेन्द्रनाथ गुप्त) – संक्षिप्त परिचय

जन्म– माता-पिता

31वाँ आषाढ़, 1261 बं० साल। शुक्रवार; अंग्रेज़ी 14 जुलाई, 1854 ईसवी; नागपञ्चमी के दिन महेन्द्रनाथ ने कलकत्ता के सिमूलिया मुहल्ले में स्थित शिवनारायण दास लेन में जन्म ग्रहण किया।

पिता का नाम था मधुसूदन गुप्त तथा माता का स्वर्णमयी देवी। मधुसूदन भक्त थे और उनकी भक्ति की बात भी ठाकुर जानते थे। महेन्द्रनाथ मधुसूदन की तृतीय सन्तान थे। कहते हैं, एक-एक करके बारह बार शिव की पूजा मानसिक करने पर इस पुत्र का जन्म हुआ था। इसीलिए मधुसूदन की इस पुत्र के ऊपर विशेष स्नेह-दृष्टि रहती थी। किसी प्रकार भी बालक का कोई अनिष्ट न हो– इसके लिए वे

विशेष सतर्क रहते थे। बालक महेन्द्र अतिशय सुशील थे और जनक-जननी के प्रति अनुरक्त थे।

शैशव में ठाकुर-दर्शन श्री म अति अल्प वयस् की बातें स्मरण करके बता सकते थे— जैसे पाँच वर्ष की आयु में वे जननी के साथ माहेश का रथ देखने गए। वापसी के समय उनकी नौका दक्षिणेश्वर घाट पर लगी। सब जन जब मन्दिर में देव-देवी-दर्शन करने में व्यस्त थे, तब वे (श्री म) किसी प्रकार श्री श्री भवतारिणी के मन्दिर के सामने नाटमन्दिर में अकेले पड़ गए और माँ को न देख-पाकर क्रन्दन करने लगे। किसी एक व्यक्ति ने उस समय उनको रोता देखकर सान्त्वना देकर उनका क्रन्दन दूर कर दिया था। महेन्द्रनाथ कहते थे, यह घटना उनके मन पर सर्वदा खूब जागरूक थी। वे मनःचक्षु से उस नवनिर्मित और प्रतिष्ठित देवालय की श्वेतकान्ति को मन में खूब स्पष्ट देखा करते। जिन्होंने उनको तब सान्त्वना दी थी, वे सम्भवतः स्वयं श्री ठाकुर ही होंगे।

शिक्षा

महेन्द्रनाथ बाल्यकाल में हेयर स्कूल में पढ़ते थे। वे बहुत ही मेधावी छात्र थे और परीक्षा में वे सर्वदा ही प्रथम अथवा द्वितीय स्थान अधिकार किया करते थे। स्कूल जाते हुए और लौटते हुए रास्ते में ठनठने-शीतला माता का मन्दिर पड़ता था। वह मन्दिर अब कॉलेज-स्ट्रीट-मार्केट के सामने अवस्थित है। आते-जाते महेन्द्रनाथ इस मन्दिर के सामने खड़े होकर देवी को प्रणाम करना कभी भी नहीं भूलते थे। वे मेधा और परिश्रम के बल पर एन्ट्रेन्स, एफ०ए०, बी०ए० की प्रत्येक परीक्षा में छात्रवृत्ति और सम्मान सहित उत्तीर्ण हुए। एन्ट्रेन्स में द्वितीय स्थान पाया। एफ०ए० परीक्षा में अंक-गणित का एक पर्चा बिना दिए भी पञ्चम स्थान पाया था। और सन् 1874 में बी०ए० परीक्षा में तृतीय स्थान प्राप्त किया। प्रेसिडेन्सी कॉलेज में वे टोनी साहिब के प्रिय छात्र थे।

विवाह

पढ़ते-पढ़ते ही 1874 ईसवी में उनका विवाह केशवसेन की सम्पर्कीया बहन ठाकुरचरण सेन की कन्या श्रीमती निकुंजदेवी के साथ हो गया। निकुंजदेवी को भी श्री श्री ठाकुर और श्री श्री माँ ठाकुराणी विशेष स्नेह और प्यार करते थे। पुत्र-शोक में जब निकुंजदेवी उन्मादिनीप्राय हो गई थीं; उस समय ठाकुर उनके शरीर पर हाथ फेरकर उनके मन में शान्ति लाते थे।

व्यवसाय

अध्यापन-कार्य में व्रती होने से पहले श्री म ने कुछ दिन सरकारी कार्य और फिर सौदागरी दफ्तर में कार्य किया था; किन्तु ये सब कार्य स्थायी नहीं हुए। ठाकुर ने उनके जीवन की धारा अन्य प्रकार से निर्दिष्ट कर रखी थी— इन्होंने प्रोफ़ेसरी और अध्यापन के कार्य में प्रवेश किया। रिपन सिटी मैट्रोपोलिटन कॉलिज में अंग्रेज़ी, मनोविज्ञान तथा अर्थनीति पढ़ाई। जब इन्होंने 1882 ईसवी में ठाकुर के पास जाना आरम्भ किया, तब ये श्यामबाज़ार में विद्यासागर के श्यामपुकुर ब्रांच स्कूल के प्रधान शिक्षक थे।

मास्टर महाशय

राखाल, पूर्ण, बाबूराम, विनोद, बंकिम, तेजचन्द्र, क्षीरोद, नारायण आदि ठाकुर के अंतरंग भक्त उनके ही स्कूल के छात्र थे। इस लिए वे सब ही उनको मास्टर महाशय कहते थे। इसी प्रकार वे बाद में श्री रामकृष्ण-भक्त-मण्डली में महेन्द्र, मास्टर अथवा मास्टर महाशय के नाम से प्रख्यात हो गए। ठाकुर भी उन्हें 'मास्टर' और 'महेन्द्र मास्टर' कहकर पुकारते थे। ठाकुर की अनेक अन्तरंग संन्यासी और गृही सन्तानों को मास्टर महाशय ने ही प्रथम ठाकुर के निकट उपस्थित किया था। इसे ही लक्ष्य करके श्री गिरीश घोष ने कहा था— 'देखता हूँ, मास्टर ने चुपचाप ही सब कर लिया है।'

धर्म की प्रेरणा

धर्म की प्रेरणा महेन्द्रनाथ बाल्य जीवन से ही बोध किया करते थे। इसी बीच केशवसेन प्रसिद्ध धर्मप्रचारक और नवविधान (ब्राह्मसमाज) के प्रतिष्ठाता के रूप में लोगों के आगे प्रकाशित हुए। महेन्द्रनाथ इस समय केशव का संग किया करते थे, घर में या नवविधान मन्दिर में उपासना में योगदान किया करते। इस समय केशवसेन उनके आदर्श पुरुष थे। उन्होंने कहा था कि किसी-किसी दिन उपासना के समय केशवसेन ऐसी मर्मस्पर्शी भाषा में प्रार्थना किया करते कि उस समय वे उनको एक देवता की भाँति लगा करते। महेन्द्रनाथ ने बताया था कि बाद में ठाकुर के पास आकर और उनकी बातें सुनकर वे समझ सके थे कि केशव का वह हृदय-मुग्धकारी भाव ठाकुर से ही उन्हें प्राप्त हुआ था।

ठाकुर से प्रथम भेंट

1882 ईसवी में 26 फरवरी को महेन्द्रनाथ दक्षिणेश्वर में ठाकुर के पास पहुँच गए। देखते ही ठाकुर ने उनको उत्तम अधिकारी के रूप में पहचान लिया था। प्रथम दर्शन के दिन 'आबार ऐशो' (फिर आइयो) कहकर ठाकुर ने उन्हें विदा दी थी। उन्हें विवाहित और सन्तानादि के जनक जानकर क्षोभ प्रकाश किया था। किन्तु उनको बता दिया था कि उनके चक्षु-मुख के लक्षण अच्छे (योगीजनोचित) हैं। महेन्द्रनाथ इस समय निराकार ब्रह्म का ध्यान करना पसन्द किया करते; ठाकुर-देवता को मिट्टी की मूर्त्ति जानकर उनकी पूजा करना नहीं चाहते थे।

श्री म का शास्त्रीय ज्ञान

श्री म ने पाश्चात्य दर्शन, साहित्य, इतिहास, विज्ञान, अर्थशास्त्र आदि विषयों में विशेष पाण्डित्य प्राप्त किया था। संस्कृत-पुराण और काव्य-शास्त्रादि पर भी उनका विशेष अधिकार था। 'कुमार सम्भव', 'शकुन्तला', भट्टिकाव्य', 'उत्तर रामचरित' आदि के श्लोक श्री म को मुखस्थ थे। जैन और बौद्धदर्शन भी पढ़ा हुआ था। बाइबल, विशेषतः

न्यू टेस्टामेण्ट के अंशों का उन्होंने उत्तम रूप में अध्ययन कर लिया था। इस सबके फलस्वरूप महेन्द्रनाथ स्वयं को कुछ पण्डित समझा करते थे।

ज्ञान-अज्ञान-भेद

ठाकुर के प्रथम दर्शन के साथ-ही-साथ उनके इस अभिमान के ऊपर चोट पड़ी थी। ठाकुर ने उनको उनके ज्ञान की असारता दिखला दी और समझा दिया कि ईश्वर को जानने का नाम ही ज्ञान है, बाकी सब ही अज्ञान है। ठाकुर के दो-चार ही वाक्यों की चोट से महेन्द्रनाथ चुप हो गए। ठाकुर जैसे कहा करते— किंग कोबरा के हाथ में बड़ा मेंढक पड़ जाने पर दो-एक पुकार के बाद ही चुप हो जाता है, यह भी वैसा ही हुआ।

गार्हस्थ्य संन्यास का उपदेश

प्रथम आलाप के संग-संग ही ठाकुर ने उन्हें सिखला दिया था कि किस प्रकार से संसार-यात्रा करने के लिए इधर-उधर दोनों दिशाओं की ही रक्षा हो सकती है। इसका नाम है गार्हस्थ्य संन्यास का उपदेश। इसका सारांश यही है कि सब काम करो, किन्तु मन ईश्वर में रखो। स्त्री, पुत्र, बाप, माँ सबको लेकर रहो और सेवा करो, मानो ये कितने अपने जन हैं; किन्तु मन में जानो कि 'ये तुम्हारे कोई नहीं हैं।'

निर्जन में साधन

तैरती हुई सिप्पी जैसे स्वाति के जल की बूंद प्राप्त करके अतल जल में डूब कर गर्भ में मणि-पोषण करती रहती है, ठाकुर का यह संकेत समझ, महेन्द्रनाथ 'मन में, कोने में, और वन में' साधना में लग गए। समझ लिया कि मनुष्य जन्म का उद्देश्य है, ईश्वर-लाभ। निर्जन में साधन शुरु हो गया और अवसर मिलते ही ठाकुर के चरणों के समीप उपस्थित होने लगे। वे पीछे कहीं गृहस्थ के भँवर में न पड़ जाएँ, इसलिए ठाकुर भी बीच-बीच में उनकी अवस्था की परीक्षा किया करते और थोड़ी-सी भी अधिक देर अनुपस्थित रहने पर कारण पूछा करते।

'कथामृतकार' का प्रशिक्षण

ठाकुर आरम्भ से ही जानते थे कि इसको 'भागवत' सुनाना और सिखाना होगा। यदि अविद्या के चक्कर में पड़ जाते हैं तो फिर ठाकुर की कामना इनके द्वारा सिद्ध नहीं होगी, तभी तीक्ष्ण दृष्टि से इनका भीतर-बाहर अनुसन्धान किया करते कि कहीं पर गाँठ तो नहीं बन रही है। जब देख लिया कि ये होशियार हैं, तब 1884 ईसवी जनवरी मास में ठाकुर ने कहा, 'अब जाकर घर में रहो, उनको जनाना जैसे तुम उनके अपने हो और भीतर जानोगे कि तुम उनके अपने नहीं हो, वे भी तुम्हारे अपने नहीं हैं।' सारा जीवन भर इसी आदर्श, इसी गार्हस्थ्य-संन्यास-मन्त्र का महेन्द्रनाथ ने साधन किया। वे सर्वदा ही कहा करते— जगत् में रहो किन्तु जगत् के नहीं— Be in the world but not of the world. ठाकुर ने उनसे कहा था, 'तुम्हारे ललाट और चक्षुओं से लगता है मानो एक योगी तपस्या करते-करते उठकर आ गया है, जैसे चैतन्यदेव का एक पार्षद।

श्री म क्या हैं?— ठाकुर द्वारा उन्हें जनवाना

- तुम्हारा चैतन्य-भागवत-पाठ सुनकर तुम्हें पहचाना था।
- मास्टर स्वभाव-सिद्ध की जात।
- तुम कैसे हो, जानते हो? नारद ने (सनक-सनातन आदि) सब को ही ब्रह्म-ज्ञान देना आरम्भ कर दिया था। इसलिए ब्रह्मा ने श्राप देकर माया में बाँध लिया।
- तुम सब लोगों को पहचान सकोगे।
- तुम अन्तरंग हो, वैसा न होता तो इतना कुछ रहते हुए भी इधर इतना मन क्यों?
- माँ इसको बार-बार दर्शन देती रहना, नहीं तो फिर कैसे रहेगा? दोनों ही करे, एकदम छोड़कर क्या होगा? किन्तु तुम्हारी जो इच्छा है, वही करो; बाद में बिल्कुल छुड़वाना हो तो वैसा ही करो।

- माँ, इसको चैतन्य करो नहीं तो औरों को चैतन्य कैसे करेगा? क्यों इसको संसार में डाला? वैसा न होता तो क्या कमी हो जाती और यदि वही मसाला जलता?
- नरेन्द्र और राखाल स्त्रियों के पास से उठ जाएँगे— तुम भी उठ जाओगे। तुम भी कभी स्त्रियों के निकट घूम नहीं सकोगे।
- ये गंभीरात्मा हैं, फल्गु नदी— अन्तः सार।
- तुम्हारा प्रह्लाद-भाव है— सोऽहं और दास-भाव।
- मास्टर बड़ा शुद्ध है।
- इसके अभिमान नहीं है।
- तुम अपने जन हो, एक सत्ता— जैसे पिता और पुत्र।
- नाटमन्दिर के भीतर का स्तम्भ और बाहिर का खम्भा इत्यादि।

संन्यासी बनने की इच्छा

महेन्द्रनाथ के मन में ठाकुर के सामने से ही एक व्यथा उठा करती, मैं क्यों संन्यासी नहीं बना? वैसा हो जाता तो उनका मन मुक्त पक्षी की न्यायीं चिदाकाश में उड़ सकता था। ठाकुर उनको बीच-बीच में सान्त्वना-वाक्यों से शान्त किया करते और कहा करते—

- "मन से त्याग होने से ही त्यागी है। यहाँ पर जो आते हैं, उनमें से कोई भी गृही नहीं।"
- चैतन्यदेव के गृही भक्तगण संसार में अनासक्त रहते थे।
- तुम जो कार्य करते हो, उससे विषय-बुद्धि खूब कम हो जाती है।

ठाकुरमय श्री म

दुर्बल शिशु जैसे भय से उद्वेग में माँ को प्रधान और निरापद आश्रय जानकर सर्वशक्ति के साथ बाहों से कस कर आलिंगन में पकड़ लेता है, महेन्द्रनाथ ने भी वैसे ही अपने गृहस्थ-जीवन की दुर्बलता के भय से ठाकुर को ऐसे पकड़ कर रखा हुआ था कि समस्त जीवन भर के

लिए उसी रस में डूब गए थे। मुख में ठाकुर की कथा के अतिरिक्त और कोई बात नहीं थी। उनका भाव था— एकमात्र श्रेय, काम्य, लभ्य, प्रतिपाद्य यही ठाकुर हैं। महेन्द्रनाथ का जीवन ठाकुरमय हो उठा था। ठाकुर ही हैं परम पुरुषार्थ—

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते। — गीता 6:22

सदा-सर्वदा ठाकुर-कथा

कलियुग में जीव के बचने का यही कौशल ही दिन-रात उनके मुख से सुनाई दिया करता— साधुसंग और निर्जन में कुछ दिन साधन; तथा गुरुवाक्य में विश्वास। वृद्ध वयस् में महेन्द्रनाथ को जिन्होंने देखा था, वे सोचते थे कि लगता है, कोई योगी, कोई ऋषि जीव को प्रार्थना करके (बुला-बुला कर) श्री रामकृष्ण की भक्ति बाँटने के लिए ही आश्रमवासी होकर रह रहे हैं। सुबह-दोपहर-शाम किसी समय भी जाओ, देखोगे भक्ति-कथा और भक्तसंग में ही हैं। वेद, पुराण, बाइबल, कुरान, बौद्ध-शास्त्र, गीता, भागवत, अध्यात्म— सब शास्त्रों से हरि-कथा अजर झर रही है। श्रान्ति, क्लान्ति नहीं— केवल सर्वधर्म, सर्वसाधनमय ठाकुर की कथा ही। ठाकुर की यह कैसी असाधरण सेवा है! तन-मन-धन सब ही उनके काम में लगा हुआ है। इसी का नाम क्या 'दास मैं' है, जो हनुमान का भाव है?

ठाकुर के चिह्नित दास

श्री श्री रामकृष्णदेव का दास होने का सौभाग्य प्राप्त करना कौन नहीं चाहेगा? और फिर उनके सांगोपांगगण तो उनके दास निश्चय ही हैं। ये भी तो श्री रामकृष्ण के चिह्नित दास हैं। 'तुम अपने जन हो; एक सत्ता— जैसे पिता और पुत्र।' श्री ठाकुर के श्रीमुख की यह वाणी इस बात की ही परिचायक है। ठाकुर-काज करेंगे, यह बात ठाकुर ने नरेन्द्रनाथ के सम्बन्ध में लिख दी थी। महेन्दनाथ भी ठाकुर का कार्य

करेंगे, उसका आभास भी उन्होंने बीच-बीच में दिया है। वह हमें कथामृत के बीच-बीच में दृष्टिगोचर होता है—

- "माँ, मैं और नहीं कह सकता— राम, महेन्द्र, विजय आदि को शक्ति दो, ये अब से तुम्हारा कार्य करें।"
- "माँ, उसको (मास्टर को) एक कला शक्ति क्यों दी?— ओह, समझ गया! उससे ही तेरा काज होगा।"

मास्टर महाशय से एक दिन ठाकुर ने कहा था— 'माँ ने भागवत के पण्डित को एक पाश द्वारा संसार में रखा हुआ है, नहीं तो भागवत कौन सुनाएगा' इत्यादि। इसी कारण देखते हैं कि जैसे नरेन्द्रनाथ ठाकुर के कार्य के लिए आए थे और ठाकुर ने भी उनको शक्ति की 'चपड़ास' दी थी, उसी प्रकार महेन्द्रनाथ भी पितृधन से वंचित नहीं रहे थे। वे भी शक्ति और भक्ति के अधिकारी हुए थे।

तपस्या

लोक-संग्रह कार्य के योग्य बनाने के लिए ठाकुर उनसे बीच-बीच में तपस्या करवा लिया करते। 14 दिसम्बर 1883 ईसवी से जनवरी 1884 के लगभग मध्य तक एक महीने से भी अधिक काल तक श्री श्री ठाकुर की पदछाया में दक्षिणेश्वर में रहकर उन्होंने निरवच्छिन्न साधना की थी।

ठाकुर द्वारा अहंकार-नाश और ठाकुर-कार्य

ठाकुर का संग करते-करते जैसे उनका हृदय-कपाट खुल गया था, उसी तरह संग-संग अहंकार भी नाश हो गया था। ठाकुर कहा करते, इसका अहंकार नहीं रहा। उन्होंने जीवन में जो कार्य करने का भार ठाकुर से पाया था, अहंकार रहने से उसे वे कर नहीं सकते थे। वह कार्य था ठाकुर की वाणी जन-जन को सुनाना। पाँच भाग श्री श्री कथामृत में श्री म ने निज को प्रच्छन्न रखकर श्री रामकृष्णदेव को सम्पूर्ण रूप से प्रकाशित किया है। उन्होंने बहुत से काल्पनिक नामों का सहारा लिया

है— मणि, मोहिनीमोहन, एकटि भक्त, मास्टर, श्री म, इंग्लिशमैन इत्यादि। लेखक के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति कहीं पर भी नहीं है। दो-एक स्थानों पर दो-एक निभृत विचारों का केवल परिचय मात्र मिलता है, वह भी ठाकुर के भाव को नींव बनाकर उनकी ही महिमा-प्रकाश का प्रयास मात्र है। वे विचार और भाव सेवक के निर्मल हृदयाकाश पर श्री रामकृष्ण की छवि के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं हैं। इस प्रकार से अपने को पोंछकर फेंक दिया था। इसी कारण तो स्वामी विवेकानन्द ने 'गॉस्पेल' पढ़कर 1897 ईसवी में लिखा था— "I now understand why none of us attempted his life before. It has been reserved for you— this great work. Socratic dialogues are Plato all over. You are entirely hidden."

[मुझे अब समझ में आया है कि क्यों किसी ने पहले उनका जीवन लिखने का प्रयास नहीं किया। यह कार्य तुम्हारे लिए ही सुरक्षित रखा गया था— यह महत् कार्य। सुकरात का कथोपकथन तो सारा ही प्लेटो है। परन्तु तुम तो इसमें सम्पूर्ण अप्रकाशित हो।]

गॉस्पेल और श्री श्री रामकृष्ण कथामृत

श्री केशवगुप्त ने लिखा है, 'साहित्य-यश का लोभ-दमन श्री श्री रामकृष्ण कथामृत की सार्थकता है। रजनीगंधा की न्यायीं अपने को लुका रखकर सुगन्ध फैलाना ही इस धर्मग्रन्थ का गाढ़ सौन्दर्य है।'

बीच-बीच में जो ठाकुर उनकी परीक्षा लिया करते थे, उसका परिचय भी श्री श्री कथामृत में मिलता है— 1884 ईसवी, 9 नवम्बर। इस प्रकार पता लगता है कि यह कार्य उनके लिए ही निर्दिष्ट था। महेन्द्रनाथ ने श्री ठाकुर के सान्निध्य की उस अमृतमयी अमरवाणी को दैनन्दिन विवरण में, डायरी में वर्ष, तारीख, वार, तिथि सहित लिपिबद्ध कर दिया था। इसी को नींव बनाकर 'गॉस्पेल' और 'श्री श्री रामकृष्ण कथामृत' के पाँच भागों की उत्पत्ति हुई है। यह कार्य इतिहास में द्वितीय बार हुआ है— यह नहीं सुना जाता।

अवतार-पुरुष का जीवन-चरित इस प्रकार से कभी भी किसी अवतार का नहीं लिखा गया है। यह एक नूतन ढंग का है। श्री श्री कथामृत के सम्बन्ध में इण्डियन नेशन पत्र में श्री एन० घोष ने सत्य ही लिखा है, "They take us straight to the truth and not through metaphysical maze. The style is Biblical in simplicity. What a treasure would it have been to the world, if all the sayings of Sri Krishna, Buddha, Jesus, Mohammad, Nanak, Chaitanya could have been thus preserved."

[ये हमें आध्यात्मिक भूल-भुलैंया में से न ले जाकर सीधे सच्चाई की ओर ले जाते हैं। इसकी बाइबल जैसी सहज अभिव्यक्ति है। यदि श्री कृष्ण, बुद्ध, ईसा, नानक, चैतन्य की समस्त वाणियाँ इसी प्रकार सुरक्षित होतीं तो जगत् को कितना बड़ा खज़ाना मिलता!]

यह कार्य क्या हर कोई कर सकता है? कर भी ले तो ऐसे शुद्ध भाव में नहीं होता। इस कार्य में ठाकुर की इच्छा और कृपा चाहिए ही। जभी उन्होंने पात्र को पहले निरहंकार कर लिया था। जभी महेन्द्रनाथ ने अपने आपको लुकाने के लिए बहुत से काल्पनिक नाम ग्रहण किए थे, वे श्री श्री कथामृत में मिलते हैं।

महेन्द्रनाथ के मुख की वाणी और भाव को देखकर पता लगता है कि वे सर्व प्रकार से ठाकुर के दास बनकर उनके संग-संग रहे और अपने आपको संन्यासी रखा। प्रायः ही कहा करते, हमारा यही एकमात्र लक्ष्य होना उचित है— 'To be as perfect as our Father in heaven is perfect.' (हमें ऐसा ही पूर्ण होना चाहिए जैसे हमारे स्वर्गस्थित पिता हैं।)

ठाकुर-वाणी का पालन

- श्री श्री ठाकुर के देहान्त के पश्चात् वे बराहनगर मठ में जाकर बीच-बीच में गुरु-भाइयों के साथ रहा करते, जिससे कि उनकी सेवा और साधना, त्याग तथा कठोरता का आदर्श उनके अपने भीतर घनीभूत हो जाए।

- ईश्वर के ऊपर सम्पूर्ण निर्भर करने के उद्देश्य से बेसहारा निःस्व लोगों की न्यायीं सैनेट-हॉल के सामने रात बिताया करते।
- बीच-बीच में उत्तर प्रदेश[1] (वर्तमान में उत्तराखण्ड) आदि निर्जन तपोभूमिस्थलों में आकर, कुटिया में रहकर साधुओं की न्यायीं तपस्या किया करते।
- समय-समय पर तीर्थ से आए हुए यात्रियों को देखने के लिए हावड़ा स्टेशन पर चले जाते और उनको प्रणाम किया करते। उनसे प्रसाद माँगकर स्वयं ग्रहण करते और संग में कोई रहता तो उसे देकर कहते, "प्रसाद भगवान् के संग योगायोग करवा देता है।"

गुरु के प्रति श्रद्धा

महेन्द्रनाथ सुयोग-सुविधा पाते ही ठाकुर का संग किया करते, दक्षिणेश्वर में अथवा किसी भक्त-मन्दिर में। यहाँ तक कि आधी छुट्टी के समय में भी वे ठाकुर का संग करते जब किसी भक्त-मन्दिर में वे आते। ठाकुर के पास अधिक आने के कारण श्यामपुकुर के स्कूल का परीक्षा-फल इतना अच्छा न रहने पर, विद्यासागर महाशय ने उलाहना देते हुए कहा था— 'मास्टर परमहंस के लिए व्यस्त (बिज़ी) हैं, स्कूल के कार्य के भले-बुरे होने की ओर ध्यान नहीं है।' इस शिकायत में गुरु के नाम से उलाहना मिलने पर उन्होंने तत्क्षण स्कूल की नौकरी छोड़ दी। फिर ठाकुर ने सुनकर कहा था— 'वेश करेछो, मा चालिए देबेन।' (बहुत अच्छा किया, माँ सब प्रबन्ध करेंगी।)

ठाकुर श्री रामकृष्ण को किसी तरह का कोई प्रयोजन होने पर वे महेन्द्रनाथ से कह देते थे। इसी के साथ कहते— 'सकलेर जिनिस ग्रहण करिते पारि ना।' (सबकी वस्तुएँ मैं ले नहीं सकता।)

---

[1] ऋषिकेश, स्वर्गाश्रम में उनकी तपस्या-कुटीर की स्मृति है। 1912 ईसवी में वे वहाँ कई मास रहे थे।

नरेन्द्र के परिवार की सहायता

महेन्द्रनाथ अपने आचार-व्यवहार और सरलता के लिए श्री रामकृष्ण भक्त-मण्डली के बीच विशेष प्रिय थे। पितृ-वियोग के पश्चात् जब नरेन्द्रनाथ को संसार का अत्यधिक कष्ट था, परन्तु साधना के लिए उनका प्राण छटपट कर रहा था, तब महेन्द्रनाथ ने तीन मास के खर्चे के भार की व्यवस्था करके उनका ठाकुर के निर्देशानुसार निश्चिन्त मन से साधना करने का सुयोग कर दिया था। महेन्द्रनाथ बीच-बीच में नरेन्द्रनाथ की माता को अति छिपाकर कुछ-कुछ सहायता दे आया करते थे।

श्री श्री ठाकुर की महासमाधि के पश्चात् उनकी सन्तानों ने बराहनगर में एक मठ स्थापन किया। श्री सुरेश मित्र, श्री बलराम बसु, श्री म आदि मठ की प्रथम अवस्था में विशेष आर्थिक सहायता किया करते। महेन्द्रनाथ इस समय दो स्थानों पर पढ़ाते थे। एक स्थान की आमदनी मठ में खर्चे के लिए दे देते। 1890 ईसवी से 1893 ईसवी तक नरेन्द्रनाथ परिव्राजक रहे। उनकी देखादेखी अन्य गुरु-भाइयों में से कोई-कोई तपस्या के लिए हिमालय अथवा उत्तराखण्ड में चले गए थे।

माँ ठाकुराणी-सेवा

यह समय महेन्द्रनाथ डायरियों में डूबे हुए दिन-रात श्री श्री ठाकुर का चिन्तन एवं श्री श्री माँ का अवलम्बन करके काट रहे थे। मन में जब भी द्वन्द्व आता तो माँ के पास ही शरणागति स्वीकार करते थे। इसी समय महेन्द्रनाथ श्री श्री माता ठाकुराणी को बीच-बीच में अपने घर में लाकर उनकी सेवा किया करते। श्री श्री माँ ठाकुराणी भी कभी-कभी पखवाड़े से अधिक, फिर महीने से अधिक समय महेन्द्रनाथ के घर रहती थीं। श्रीघट-प्रतिष्ठा करने के लिए ठाकुर द्वारा स्वप्न में आदेश होने पर श्री श्री माँ ने महेन्द्रनाथ के घर जाकर निज हाथों से श्रीघट की स्थापना और पूजा की व्यवस्था की। तब से श्री म का घर 'ठाकुर-बाड़ी' नाम से परिचित और प्रसिद्ध हो गया। कॉलिज स्ट्रीट में ठनठनिया इलाके में विद्यासागर कॉलिज के एकदम निकट ही यह

ठाकुर-बाड़ी (13/2, गुरुप्रसाद चौधरी लेन, कलकत्ता) है। ठाकुर-घर में ठाकुर का पहना हुआ चटिजूता (स्लीपर), जप की माला, श्री माँ की सिंदूरदानी और उनके पदचिन्ह, ठाकुर और माँ के मस्तक के केश और श्री हस्त और श्री चरण के नाखून रखे हैं। यहाँ प्रातः, दोपहर और सांय पूजा-आरती होती है। इस ठाकुर-घर में उन्होंने कितनी ही पूजा, ध्यान और जप किया है! स्वामी जी और ठाकुर के अन्यान्य अन्तरंग संन्यासी और गृही भक्त भी इसी ठाकुर-घर में पूजा-अर्चना कर गए हैं। श्री म के कमरे में ठाकुर का पहना हुआ कुर्त्ता, गिलास, मोलस्किन का रैपर, मास्टर महाशय को ठाकुर द्वारा प्रदत्त ठाकुर की छवि भक्तों के दर्शनार्थ रखी हैं। इसी कमरे में ही कथामृत रची गई। बेलुड़मठ, मायेरबाटी (उद्बोधन), बलराम मन्दिर आदि की न्यायीं ही श्री म की ठाकुर-बाड़ी भी एक महान तीर्थ हो गया है और देश-देशान्तर से यहाँ पर भक्त मण्डली का समागम उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है।

1889 ईसवी से महेन्द्रनाथ प्रतिमास नियमित रूप से श्री श्री माँ की सेवा के लिए रुपया भेजते रहे। श्री श्री माता ठाकुराणी भी कभी कोई प्रयोजन होने पर महेन्द्रनाथ को पता दे दिया करतीं। श्री श्री जगधात्री-पूजा के निमित्त ज़मीन खरीदने के समय महेन्द्रनाथ को आदेश दिया था, ज़मीन खरीदने के लिए रुपया भेजो। उन्होंने भी पत्र पढ़कर 320 रुपये भेज दिए थे। गाँव में जल-कष्ट के समय कूप खुदवाने के लिए रुपया भेजने का निर्देश होने पर महेन्द्रनाथ ने 100 रुपये भेजे थे। मठ के साधु-भक्तों के साधन-भजन करने के लिए, पहाड़ अथवा दूर स्थानों पर जाने पर उन्हें रुपया भेजते थे।

कथामृत-प्रकाश

पहले भी इस ग्रन्थ के प्रकाश के लिए अनेक अनुरोध आने लगे थे। और पीछे जब बढ़ने लगे तब एक दिन श्री श्री माँ के आदेश से श्री म ने उनको 'कथामृत' सुनाया था। इसके श्रवण से श्री श्री माता ठाकुराणी अत्यन्त सन्तुष्ट हुईं। श्री म को आशीर्वाद करके बोलीं, "तुम्हारे मुख से यह सकल कथा सुनकर मुझे बोध हुआ कि वे (ठाकुर) ही ये सब बातें

बोल रहे हैं।" और इस पुस्तक को प्रकाशित करने का आदेश दे दिया। अत: 1897 ईसवी में महेन्द्रनाथ ने अंग्रेज़ी में Gospel of Sri Ramakrishna (According to M, a son of the Lord and disciple) प्रथम प्रकाशित किया।

अंग्रेज़ी में 'गॉस्पेल' प्रचारित होनी आरम्भ हो गई। श्री रामचन्द्र दत्त ने योगोद्यान से प्रकाशित 'तत्त्वमंजरी' में अगहन 1304 (बं०) साल; नवम्बर-दिसम्बर 1897 ईसवी में लिखा—

"श्रद्धास्पद महेन्द्रनाथ गुप्त... प्रभु के लिए उनका जिस प्रकार विश्वास है, उसी प्रकार के विश्वास के परिचय स्वरूप, प्रभु की उक्तियों को मनुष्य-शक्ति-योग्य चेष्टा से साधारण जन की शिक्षा के निमित्त पुस्तकाकार में मुद्रित करके वितरण कर रहे हैं।... गुप्त महाशय से हमारा अनुरोध है कि इस उपदेश-समूह को खण्ड-खण्ड रूप में न निकाल कर एकदम बड़े आकार में मुद्रित करने से साधारण जन की विशेष सेवा होगी।

"द्वितीय अनुरोध है कि उन्होंने क्यों बंगला भाषा परित्याग कर दी है— गंभीर भाव-पूर्ण तत्त्व-कथा अंग्रेज़ी में अनुवाद करते हुए अनेक स्थलों पर भावान्तर हो जाता है, यह बात उन्हें बतलाने की आवश्यकता नहीं है। इस देश के सर्व साधारण लोगों के लिए वह दुर्बोध्य हो जाएगी।"

पीछे वैसा ही हुआ। 'श्री श्री रामकृष्ण कथामृत— श्री म कथित' नाम धारण करके 'तत्त्व मंजरी', 'बंगदर्शन', 'उद्बोधन','हिन्दु पत्रिका' आदि तत्कालीन प्रचारित मासिक पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगी। फिर इन सबको एकत्रीभूत करके स्वामी त्रिगुणातीत द्वारा उद्बोधन प्रैस से 1902 ईसवी में प्रथम भाग प्रकाशित हुआ। फिर द्वितीय भाग 1904 में, तृतीय भाग 1908 में, चतुर्थ भाग 1910 में और पंचम भाग 1932 ईसवी में प्रकाशित हुए। भारतीय और विदेशी अनेक भाषाओं में इस पुस्तक का अनुवाद हो गया। सब ही कहने लगे— "बंग-साहित्य में एक अमूल्य रत्न का प्रचार हो रहा है।"

- नवभारत ने लिखा– 'म' के अतिरिक्त यह रत्न और किसी के पास नहीं है।
- संजीवनी ने लिखा— श्री श्री रामकृष्ण कथामृत वस्तुतः अमृत की निधि है।
- मनीषी रोमां रोलां ने लिखा— The exactitude is almost stenographic.' (इसकी तथ्यता प्रायः स्टेनोग्राफ़िक है)।

श्री श्री कथामृत प्रकाशित होने के पश्चात् मठ में और श्री श्री माँ के घर में नूतन-नूतन भक्तों का समागम होने लगा। श्री श्री कथामृत-पाठ में संन्यासियों की संख्या में वृद्धि होने लगी, शोक-ताप के संसार में शान्ति की मन्दाकिनी-धारा प्रवाहित होने लगी।

स्वामी प्रेमानन्द ने लिखा— कथामृत के पाठ से हज़ार-हज़ार लोग प्राण पा रहे हैं, सहस्र-सहस्र भक्त आनन्द प्राप्त कर रहे हैं, कितने ही सहस्र लोग संसार के ताप से तापित होकर इस शोक-मोह के गृहस्थ में शान्ति पा रहे हैं। सबने पहचाना— युगावतार श्री रामकृष्ण लोक-पावन रूप में आविर्भूत हुए हैं। उनके चरणों में प्राण समर्पित करने से ही जीव को शान्ति मिलेगी और जीव निर्भय होगा।

1955 ईसवी में श्री म के जन्मोत्सव के उपलक्ष्य में अपने सभापति के भाषण में श्री हेमेन्द्रप्रसाद घोष ने कहा— "श्री म ने प्रथम अपने कथामृत के माध्यम से श्री श्री रामकृष्णदेव को अति अल्प समय में ही लोकचक्षु के सम्मुख उद्घाटित किया है। इस कथामृत की वे यदि रचना न करते तो श्री ठाकुर को पहचानने में विलम्ब होता। गार्हस्थ्य धर्म-पालन करके भी जो भगवत्-सत्ता को लाभ किया जाता है, श्री रामकृष्ण द्वारा दर्शित यह सत्य श्री म में मूर्त्त होकर खिल उठा है।"

श्री म का कथामृत-वर्षण

पश्चिम के देशों से भी बहुत भक्तों का श्री म के घर में समागम होता था। वे दिनों पर दिन, महीनों पर महीने, वर्षों पर वर्ष लगातार एकमात्र गुरुदेव श्री रामकृष्ण की कथा ही उनको सुनाया करते।

महेनद्रनाथ कहा करते— "I am an insignificant person. But I live by the side of an ocean, and I keep with me a few pitchers of seawater. When a visitor comes, I entertain him with that. What else can I speak of but his wrods?"

[मैं तो एक नाचीज़ हूँ। परन्तु मैं समुद्र के किनारे रहता हूँ और समुद्र-जल के कुछ घड़े भरकर अपने पास रखता हूँ। जब भी कोई मिलने आता है, इसी से उसका सत्कार करता हूँ। गुरु-वचन सिवा और मेरे पास है भी क्या देने को?]

ऐसे प्राणस्पर्शी और दर्दपूर्णभाव में कहते कि मन में लगता मानो ठाकुर के निकट बैठे वे उन्हें ही सुन रहे हैं। जिस स्थान पर बैठकर वे ठाकुर के सम्बन्ध में आलोचना किया करते, उस स्थान और ठाकुर के लीला-क्षेत्रों के मध्य मानो सेतु निर्मित हो गया है। उनकी आलोचना वास्तविक रूप धारण कर लेती। पॉल ब्रन्टन महेन्द्रनाथ के संग मिले थे और उन्होंने अपने मिलन का विवरण अपनी 'सर्च इन सीक्रेट इण्डिया' (Search in Secret India) नामक पुस्तक में लिपिबद्ध किया है। प्रथम साक्षात्कार के विवरण के प्रसंग में उन्होंने एक स्थान पर लिखा है— "A venerable patriarch has stepped from the pages of Bible and a figure from Mosaic times has turned to flesh."

[मानो एक श्रद्धास्पद पादरी ने बाइबल के पृष्ठों में से कदम रखा है और मूसा युग की एक मूर्त्ति ने जीवन्त मानव-रूप धारण कर लिया है।]

भक्त-प्रेरक श्रीम

स्वामी योगानन्द ने अपनी "(Autobiography of a Yogi)" (ऑटोबायोग्राफी ऑफ़ ए योगी) नामक पुस्तक में लिपिबद्ध किया है कि उन्होंने अपने भावी अध्यात्म-जीवन-लाभ की प्रथमावस्था में महेन्द्रनाथ से किस प्रकार अनुप्रेरणा पाई थी!

महेन्द्रनाथ गृही-संन्यासी हैं, उनकी जीवन-कथा त्याग का उज्ज्वल दृष्टान्त है। श्री म कथित श्री श्री रामकृष्ण कथामृत केवल अपरूप साहित्य ही नहीं है, यह दिव्यजीवन की अमर वाणी है।

महेन्द्रनाथ के संस्पर्श में आकर अनेकों युवक संन्यासी हुए और उन्होंने धर्मजीवन में नूतन अनुप्रेरणा पाई। जिन्होंने एकबार उनका दर्शन किया है, वे लोग उनकी योगीजनोचित मूर्त्ति, निरहंकारिता और सरलता कभी भी भूल नहीं सकते।

कथामृत के अनुवादों पर श्री म की प्रतिक्रिया

Gospel of Sri Ramakrishan Vol. II के रूप में और मौर्न स्टार (Morn Star) में श्री श्री कथामृत के अन्य अध्यायों का अनुवाद उनकी अनुमति और परामर्श की उपेक्षा करके होने पर उन्हें किस प्रकार व्यथा हुई थी और अन्तर् में आघात लगा था, वह उनके निम्न पत्र से पता लगता है—

'Dear Avyakta Babaji,
My love and salutations to you all. The translation of the Gospel (श्री कथामृत) in the Morn Star is, I regret to say, not satisfying to me. Being an eyewitness I, naturally want the spirit to be kept up in the translation. Moreover, the report of a meeting should not appear in a mutilated form. The translation should be done by myself. You may do the work after my passing away which is by no means a distant contingency. I am 76 and my health is not at all good. It is painful to see the Gospel presented in this way. I do not approve the translation which has appeared as Vol. II from Madras ...'

[प्रिय अव्यक्त बाबा जी,
मेरा प्यार और प्रणाम आप सब लें। श्री श्री कथामृत का अनुवाद, जो 'मौर्न स्टार' में छपा है, बड़े दुःख से कहता हूँ कि इससे मैं

सन्तुष्ट नहीं हूँ। एक प्रत्यक्ष द्रष्टा होने के नाते स्वभावतः ही मैं अनुवाद में उसका यथार्थ भाव रखना चाहता हूँ। दूसरे, किसी भी मीटिंग की रिपोर्ट विकृत रूप से प्रकाशित नहीं होनी चाहिए। यह अनुवाद मेरे द्वारा ही किया जाना चाहिए था। मेरे शरीर-त्याग के पश्चात्, जो दूर नहीं है, आप जैसा चाहें कर सकते हैं। मैं 76 वर्ष का हो गया हूँ, स्वास्थ्य भी ठीक नहीं रहता। कथामृत को इस रूप में देखना कष्टदायक है। इस प्रकार के अनुवाद के लिए, जो मद्रास से द्वितीय भाग के रूप में निकला है, मेरी सहमति नहीं है...]

अन्तर् रामकृष्ण, बाहिर महेन्द्रनाथ गुप्त

महेन्द्रनाथ ने कभी किसी को भी शिष्य नहीं बनाया, मन्त्र अथवा दीक्षा नहीं दी। ठाकुर की प्रत्येक वाणी का वे अक्षरशः पालन करने की चेष्टा किया करते। महेन्द्रनाथ धर्म-विषय में कट्टर नहीं थे और वे सर्वक्षेत्रों में एकमात्र श्री रामकृष्ण की 'समन्वय मूर्त्ति' देखते थे। उन्होंने सारा जीवन माँ-ठाकुर की अमृतवाणी-परिवेशन को जीवन के व्रत के रूप में पालन किया है।

'मास्टर मोशायेर अनुध्यान' पुस्तक में महेन्द्रनाथ दत्त ने लिखा है, "उनका भाव था गुरु और इष्ट एक हैं। गुरु ही इष्ट हैं, इष्ट ही गुरु हैं, दोनों परस्पर अभिन्न हैं। श्री रामकृष्ण-प्रसंग, उनके विषय में चिन्तन, अनुध्यान और निर्विच्छिन्न चर्चा से उनका अन्तर् रामकृष्णमय हो गया था और बाहर महेन्द्रनाथ गुप्त था। अपना व्यक्तित्व वा स्वतन्त्रता-भाव त्याग करके उन्होंने रामकृष्णमय होने की चेष्टा की थी। अन्य प्रकार की चिन्ता, अपने स्वाधीन विचार और भाव— अपने में कुछ भी नहीं रखा था। जिसे अंग्रेज़ी में कहते हैं Fiery independent spirit या Self assertion, उन्होंने उसे नहीं रखा था अर्थात् प्रज्वलित अग्नि-शिखा की न्यायीं स्वाधीन चिन्तन या आत्मविकास की इच्छा का सम्पूर्णतया त्याग कर दिया था। उनका अन्तर् रामकृष्णयम हो गया था। रामकृष्ण का प्रतिबिम्ब बनकर रहना ही जैसे उनके जीवन का मुख्य उद्देश्य था।

इसीलिए कहता हूँ अपना स्वाधीन चिन्तन वा व्यक्तित्व वा स्वातन्त्र्य भाव विसर्जन करके वे गुरुगत प्राण हो गए थे। गुरु का आदेश, गुरु की वाणी, गुरु का प्रसंग— ये ही उनके लिए अभ्रान्त और एकमात्र ध्येय विषय थे। निःसन्देह, संसार के कार्य में वा स्कूल में पढ़ाने के समय अर्थात् निम्नस्तर के कार्यों के समय उनका अपना व्यक्तित्व और स्वातन्त्र्य था। वे जब घर-गृहस्थी करते वा स्कूल का परिचालन करते, तब उनका अपना स्वतन्त्र मत था (इन सब निम्नस्तर की बातों में)। किन्तु निम्नस्तर के कार्यों के भीतर भी जो उनकी रामकृष्णमय दृष्टि और रामकृष्ण-वर्ण मिले हुए थे वे खूब स्पष्ट प्रकाशित होते थे। इसीलिए तो कहता हूँ, मास्टर मोशाय का भाव हो गया था— अन्तर् रामकृष्ण, बाहिर महेन्द्रनाथ गुप्त।...'

श्री म की दक्षिणेश्वर, तारकेश्वर और पुरी-क्षेत्र की यात्रा

श्री श्री ठाकुर की जीवितावस्था में भक्तों में से महेन्द्रनाथ ने ही गुरु के जन्म-स्थान का प्रथम दर्शन किया। यह उनके लिए परम पवित्र तीर्थ-स्थान के रूप में परिगणित था। उस स्थान के प्रत्येक क्षेत्र को पवित्र मानकर साष्टांग किया था और उस स्थान की मिट्टी को पवित्र मानकर संग ले आए थे। ठाकुर यह सुनकर बोले, 'किसी ने कहा नहीं, अपने आप ही...।' उन्होंने आनन्द में अश्रु-विसर्जन किए और उनके सिर और शरीर पर हाथ से आशीर्वाद किया और कहा, 'मिट्टी लाना भक्ति है।'

महेन्द्रनाथ ने ठाकुर के आदेशानुसार तारकेश्वर में तारकनाथ और पुरी-क्षेत्र में जगन्नाथदेव को स्पर्श करके अभावनीय आनन्द पाया था। यह सुनकर ठाकुर महेन्द्रनाथ का हाथ स्पर्श करके बोले थे, 'तुमि शुद्ध'।

लेखन-प्रकाशन-काल में कठोर व्रत का पालन

जब-जब ही श्री श्री रामकृष्ण कथामृत का पुस्तकाकार में लेखन-कार्य आरम्भ होता था, तब-तब ही देखा जाता था कि वे शुद्धाचार में

एक आहार और हविष्याशी[1] होकर समय बिताते थे। जितने दिन इस पुस्तक की कापी प्रकाशित नहीं होती थी, उतने दिन इस व्रत का पालन किया करते। पञ्चम भाग की मुद्रण-समाप्ति के समय उन्होंने देहत्याग कर दिया था।

'भागवतकार' श्रीम

श्री श्री ठाकुर कहा करते, 'भागवत-भक्त-भगवान् तीनों ही एक हैं।' तभी भक्त महेन्द्रनाथ की चरित-कथा की आलोचना के प्रसंग में श्री श्री कथामृत की बातें ही अधिक परिमाण में कही गई हैं। और यदि वे श्री श्री कथामृत को प्रकाशित न करते तब फिर श्री रामकृष्ण के अन्यान्य भक्तों की न्यायीं महेन्द्रनाथ भी इतने दिनों में शायद विस्मृति के गर्भ में लुप्तप्राय हो जाते। किन्तु भागवतकार भागवत के संग में चिर-जीवन प्राप्त करते हैं, तभी महेन्द्रनाथ को भी अमरत्व लाभ हो गया है। जब तक श्री रामकृष्ण-नाम धराधाम में रहेगा, तब तक श्रीभागवत— श्री श्री रामकृष्ण कथामृत और उसी के साथ श्री 'म' भी अमर होकर रहेंगे।

महाप्रयाण

20वें ज्येष्ठ की रात को श्री श्री कथामृत लिखने का कार्य समापन करके महेन्द्रनाथ अस्वस्थ हो गए। शनिवार प्रातः 6 बजे के समय श्री श्री ठाकुर और माँ का नाम करते-करते और, 'गुरुदेव! माँ! मुझे गोद में उठा लो' (गुरुदेव! मा! आमाय कोले तुले नाओ) यही शेष प्रार्थना ठाकुर से कहकर इन योगीश्वर ने 78 वर्ष की वयस् में महासमाधि-लाभ किया। यह जैसे योगीजनसुलभ योग में देहावसान है, मानो जैसे बिल्कुल सोए हुए हैं।

---

[1] हविष्याशी— घृतयुक्त अन्न, निरामिष भोजन करने वाला।

काशीपुर श्मशान में जिस स्थान पर श्री श्री ठाकुर की देह पञ्चीभूत हुई थी, उसके ही दाहिने हाथ पर उनकी भी पवित्र देह को चरम परिणाम प्राप्त हुआ। महेन्द्रनाथ चिरकाल श्री श्री ठाकुर के दास बनकर रहे थे और अन्तिम काल में उनके ही निकट स्थान पा गए। महेन्द्रनाथ से पूर्व श्री श्री रामकृष्ण के बहुत से अन्तरंग भक्तों ने इस माया-जगत् का त्याग किया था। किन्तु यह अमूल्य स्थान श्री श्री ठाकुर ने जैसे अपने प्रिय दास-शिष्य के लिए ही निर्धारित रखा हुआ था।

इस समय ठाकुर का यह समाधि-स्थल श्वेत पत्थर की वेदी के आकार का था। मास्टर महाशय के मन्दिर की परिकल्पना के समय उनके दोनों सुयोग्य पुत्रों- श्री प्रभासचन्द्र गुप्त और श्री चारुचन्द्र गुप्त ने श्री श्री ठाकुर के और मास्टर महाशय के समाधि-मन्दिर इकट्ठे निर्माण करने के लिए प्रायः समग्र व्ययभार वहन किया।

— प्रकाशक

श्री रामकृष्ण साहित्य

श्री रामकृष्ण आश्रम, त्रिवेन्द्रम के स्वामी विमलानन्द ने कहा था : "भारत के पिछले एक-सौ वर्षों के धार्मिक इतिहास में दो घटनाएँ विशेष उल्लेखनीय हैं। एक स्वामी विवेकानन्द का पश्चिम में चार वर्ष का प्रवास और भारत लौटने पर बेलुड़मठ की स्थापना। आज ठाकुर-कृपा से इसी बेलुड़मठ के तत्त्वावधान में श्री रामकृष्ण विवेकानन्द नाम से देश-विदेश में सैंकड़ों केन्द्र / आश्रम स्थापित हो चुके हैं, हो रहे हैं जो श्रीरामकृष्ण-विचारधारा का बीज छिड़कने में कार्यरत हैं। दूसरी मास्टर महाशय (श्री म) द्वारा 'श्री श्री रामकृष्ण कथामृत' का कथन-लेखन-प्रकाशन।

स्वामी विवेकानन्द ने श्री रामकृष्ण-विचारधारा के बीज छिड़कने का कार्य किया तो श्री म ने कथामृत के कथन-लेखन-प्रकाशन द्वारा उन बीजों को सुरक्षित रखने का महान् कार्य किया। श्री म द्वारा एक ओर कथामृत-लेखन का कार्य चला; तो दूसरी ओर उनके पास आने वाले जिज्ञासु भक्तों के सम्मुख कथामृत-कथन, कथामृत-वर्षण होता रहा। ठाकुर के संग रहते-रहते और ठाकुर-वाणी का स्वयं पालन करते-करते श्री म का तो जीवन ही हो गया था ठाकुरमय! वे ठाकुरवाणी के अनुसार अपने ही घर में बड़े घर की दासीवत् असंग भाव से रहते और अन्त तक इसी भाव में रहे। ठाकुर-वाणी के कथन-वर्षण के साथ-साथ श्री म के अपने इस आचरण ने उनके अनेक गृही तथा संन्यासी भक्तों को प्रभावित किया।

आचार्य श्री म की सेवक-सन्तान जगबन्धु महाराज (स्वामी नित्यात्मानन्द) को दीर्घकाल तक अपने सद्गुरु श्री म के साथ रहने का, उनके मुख से ठाकुर-वाणी सुनने का, ठाकुर-वाणी के अनुकूल उन्हें जीवन-यापन करते देखने का सुयोग मिला। जिस तरह श्री म ठाकुर की

वाणी को, उनके प्रतिदिन के क्रिया-कलापों को नित्यप्रति अपनी दैनन्दिनी (डायरी) में संजोया करते, उसी प्रकार स्वामी नित्यात्मानन्द जी महाराज भी श्री म के मुख से निःसृत ठाकुर-वाणी को, श्री म के क्रिया-कलापों को, अपनी डायरी में नित्यप्रति लिखा करते। जिस तरह ठाकुर श्री म से अपनी बताई बातें सुनते और स्थान विशेष पर उनका संशोधन कर दिया करते, उसी तरह श्री म ने भी जगबन्धु महाराज से उनकी डायरी अनेक बार सुनी और जहाँ कहीं आवश्यक लगा, उसमें संशोधन कर दिया। जिस तरह ठाकुर के देहत्याग के पश्चात् श्री म ने ठाकुरबाड़ी (कथामृत भवन), कलकत्ता से 'कथामृत' के रूप में ठाकुर-वाणी का प्रकाश किया, उसी तरह स्वामी नित्यात्मानन्द जी महाराज ने भी अपनी शिष्या श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता[1] को निमित्त बनाकर श्री म ट्रस्ट की स्थापना की और ट्रस्ट के अधीन 'श्री श्री कथामृत पीठ', चण्डीगढ़ से श्री म दर्शन के रूप में श्री म के मुख-निःसृत ठाकुर-वाणी का, ठाकुर वाणी के अनुसार जी रहे श्री म के क्रिया-कलापों का प्रचार-प्रसार और प्रकाश किया।

'श्री रामकृष्ण श्री म प्रकाशन' नाम से बंगला 'श्री म दर्शन' का प्रकाशन-कार्य सन् 1960 से भी पहले से शुरु हो गया था। सन् 1967 में इस प्रकाशन-संस्था को स्वामी जी महाराज ने ट्रस्ट का रूप दिया और सन् 1977 में ट्रस्ट ने 'श्री श्री रामकृष्ण कथामृत पीठ' का निर्माण कराया। श्री रामकृष्ण-कथा के प्रचार-प्रसार का यह कार्य अब इसी कथामृत पीठ के तत्त्वावधान में श्रीमती गुप्ता के निवास स्थान 579, सैक्टर 18-बी, चण्डीगढ़ से हो रहा है। सन् 1975 में स्वामी नित्यात्मानन्द जी के देहत्याग के पश्चात् उन्हीं की शिष्या श्रीमती गुप्ता श्री म ट्रस्ट की अध्यक्षा बनीं।[2] वे सन् 1958 में माँ शारदा के जन्मोत्सव पर स्वामी नित्यात्मानन्द जी के सम्पर्क में आई थीं। सन्

---

[1] 26 मई, 2002 को उनका देहावसान हो गया।

1975 तक स्वामी जी के सान्निध्य में रहकर श्रीमती गुप्ता ने श्री रामकृष्ण श्री म साहित्य का न केवल मूल बंगला से हिन्दी में यथावत् अनुवाद-कार्य ही किया अपितु वे इस समस्त साहित्य का प्रकाश, प्रसार और प्रचार करते हुए अन्त तक ठाकुर-वाणी के ही अनुकूल जीवन यापन करती रहीं।

श्री म ट्रस्ट के अब तक के प्रकाशन :

1. **श्री 'म' दर्शन**

 बंगला संस्करण— भाग 1 से 16— **स्वामी नित्यात्मानन्द**

 श्री 'म' दर्शन महाकाव्य में ठाकुर, माँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द तथा अन्यान्य संन्यासी एवं गृही भक्तों के विषय में नूतन वार्त्ताएँ हैं। और इसमें है कथामृतकार श्री 'म' द्वारा 'कथामृत' के भाष्य के साथ-साथ उपनिषद्, गीता, चण्डी, पुराण, तन्त्र, बाइबल, कुरान आदि की अभिनव सरल व्याख्या।

2. **श्री 'म' दर्शन**

 हिन्दी संस्करण— भाग 1 **से** 16

 श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता द्वारा बंगला से यथावत् हिन्दी-अनुवाद।

3. **श्री 'म' दर्शन**

 अंग्रेजी संस्करण— ('M.'— **The Apostle and the Evangelist**)

 श्री 'म' दर्शन ग्रन्थमाला का अंग्रेजी-अनुवाद प्रोफेसर धर्मपाल गुप्ता ने 'M.'— **The Apostle and the Evangelist** नाम से किया है। ट्रस्ट के पास सभी (1-16) भाग उपलब्ध हैं।

4. **Sri Sri Ramakrishna Kathamrita Centenary Memorial**

 प्रोफेसर धर्मपाल गुप्ता और पद्मश्री श्री डी०के० सेनगुप्ता द्वारा अंग्रेजी में सम्पादित बृहद् ग्रन्थ, जिसमें ठाकुर श्रीरामकृष्ण, 'कथामृत', श्री 'म' और 'श्री म दर्शन' पर श्रीरामकृष्ण मिशन के संन्यासियों समेत अनेक गणमान्य विद्वानों के शोधपूर्ण लेख हैं।

5. **A Short Life of Sri 'M.'**

 स्वामी नित्यात्मानन्द जी महाराज के मन्त्र-शिष्य और श्री 'म' ट्रस्ट के भूतपूर्व सचिव, प्रोफेसर धर्मपाल गुप्ता द्वारा अंग्रेज़ी में लिखी गई श्री 'म' की संक्षिप्त जीवनी।

6. Life of M. and Sri Sri Ramakrishna Kathamrita

प्रोफेसर धर्मपाल गुप्ता द्वारा लिखित श्री 'म' के जीवन तथा 'कथामृत' पर शोध प्रबन्ध।

7. श्री श्री रामकृष्ण कथामृत (हिन्दी संस्करण— भाग 1 से 5)

श्री महेन्द्रनाथ गुप्त (श्री म) ने ठाकुर रामकृष्ण परमहंस के श्रीमुख-कथित चरितामृत को अवलम्बन करके ठाकुरबाड़ी (कथामृत भवन), कोलकता-700006 से 'श्री श्री रामकृष्ण कथामृत' का (बंगला में) पाँच भागों में प्रणयन एवं प्रकाशन किया था। इनका बंगला से यथावत् हिन्दी अनुवाद करने में श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता ने भाषा-भाव-शैली— सभी को ऐसे सरल और सहज रूप में संजोया है कि अनुवाद होते हुए भी यह ग्रन्थमाला मूल बंगला का रसास्वादन कराती है।

8. Sri Sri Ramakrishna Kathamrita (English Edition)

श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता के हिन्दी-अनुवाद से प्रोफेसर धर्मपाल गुप्ता द्वारा कथामृत का अंग्रेजी-अनुवाद। सभी पाँचों भाग प्रकाशित।

9. नूपुर (वार्षिक स्मारिका)

श्री म ट्रस्ट के संस्थापक और हम सब के पूजनीय गुरु महाराज स्वामी नित्यात्मानन्द जी के 101वें जन्मदिन पर उनकी स्मृति में 'नूपुर' नाम से सन् 1994 ईसवी में इस स्मारिका का प्रकाशन आरम्भ हुआ था। उसी स्मारिका ने अब वार्षिक पत्रिका का रूप ले लिया है, जिसमें अन्य बातों के अतिरिक्त ठाकुर रामकृष्ण परमहंस, माँ सारदा, श्री म, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी नित्यात्मानन्द, 'श्री म दर्शन' आदि के बारे में प्रचुर सामग्री रहती है। साथ ही 'कथामृतकार श्री 'म' के द्वारा 'श्री 'म' दर्शन' में कही उन बातों को भी प्रकाश में लाया जाता है, जो 'श्री श्री रामकृष्ण कथामृत' में नहीं हैं। नूपुर-2018 के प्रथम भाग में श्री 'म' ट्रस्ट का इतिहास वर्णित है अंग्रेज़ी भाषा में।

10. लाइयाँ ते तोड़ निभाइयाँ (स्मारिका)

श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता के 100वें जन्मदिवस पर सन् 2015 में यह स्मारिका प्रकाश में आई।

*